मिश्रबंधु

लिखित

भारतवर्ष का इतिहास

द्वितीय खण्ड

का

शुद्धिपत्र

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१ भू०	१४	भंडारकर	भांडारकर
२ ”	१३	अधिक	वर्द्धक
३ ”	१६	चाहे	चाहें
४ ”	४	शाष	शेष
१	७	अन्तगत	अन्तर्गत
२	३	सन्यास	संन्यास
३	अन्तिम	अ रौ	और
४	२	से	में
६	४	समाज	समाधि
९	१४	पग्व्रिाजक	परिव्राजक
”	अन्तिम	पुनभर्व	पुनर्भव
१०	४	भिक्षओं	भिक्षुओं
”	१८	भिक्षओं	भिक्षुओं
१२	२१	छटे	छठे
१३	३	स्ति	रति
”	६	कौशम्बी	कौशाम्बी
”	१४	भिक्ष	भिक्षु
१४	८	लुड़का	लुढ़का
१५	१७	वशाली	वैशाली
१६	४	भिक्षओं	भिक्षुओं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६	६	स्यविर	स्थविर
१८	१६	वेठरीति	वेठदीप
१६	३	कुशीनगर	कुशीनगर,
"	३-४	वैशाली, कपिलवस्तु,	वैशाली, रामग्राम, कपिलवस्तु,
"	१८	मार्ग-	मार्ग।
२०	२४-२५	सौत्रान्तिक.. माध्यमिक (इतना दो वार छपा है)	सौत्रान्तिक. माध्यमिक (इतना एक वार ही चाहिए)
२२	२२	चामत्कारिक	चमत्कारिक
"	२५	उपनिषद्कार	उपनिषत्कार
२३	२२	मेगस्थनीज़	मेगास्थनीज़
२६	१५	थी	था
२७	४	वधर्मान	वर्द्धमान
"	१५	मे	में
"	१६-१७	ऋपसदेव	ऋषस-देव
२८	१४	और स्याद्वाद अहिंसा	स्याद्वाद और अहिंसा
"	२१	परमेष्ठिनों	परमेष्ठियों
३०	२३	महात्मा गौतम	यहां तक महात्मा गौतम (नया पैराग्राफ़ होना चाहिए)
३१	१२	सुत्तपिटिक	सुत्तपिटक
३२	२३	विभंग	विभंग।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३२	१	चुल्लावग्ग	चुल्लवग्ग
"	१६	बौद्धों । की	बौद्धों की
३४	६	लंक	लंका
"	११	हैं । और	हैं और
"	१६	(सम्वत ४५६-६७१)	(सम्वत ४५६-४७१)
"	२१	कोक	लोक
३८	२०	सवत स्मृति	संवर्त स्मृति
४२	२५	यदि	आदि
४७	५	प्रकृत	प्राकृत
"	८	निग्दर्शन	दिग्दर्शन
"	१५	शिंशयामन	शिंशुपायन
"	अन्तिम	तथा वैदिक तथा वैदिक (ऐसा छपा है)	तथा वैदिक (दो वार नहीं एक वार ही चाहिए)
४६	१	कोशाकार	कोशकार
"	५	वंश्य नुचरितं	वंश्या नुचरितं
"	६	होते हैं,	होता है,
५४	२५	समव	समय
५७	३	देवीभागवत,	देवी भागवत ।
"	१४	कृतिमता	कृत्रिमता
५६	६	कालिदास ने ।	कालिदास ने इसका ।
६२	१८	वर्णित	कथित
६७	१७	जावेगा,	जावेगा ।
"	२१	पुरुष,	पुरुष ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६८	१४	उत्तम	उत्तर
७५	अन्तिम	द्वारा किसी कामक्रीड़ा	द्वारा कामक्रीड़ा
७७	१६	थी।	थी,
८०	१०	में	ने
”	१७	वर्णन	वर्ण
८३	१४	हरिवंश, श्रवण	हरिवंश आदि की भांति श्रवण
”	१५	बताया है।	बताया गया है।
८७	६	वलि	वाले
६१	१४	शकटार	शटकार
”	२४	शकटार	शटकार
६४	८	साथ	हाथ
६५	८	निकेनर	निकेतर
६६	१	था	था।
६७	१६	क्षत्रय (सङ्क्षेय)	क्षत्रप (सङ्क्षेप)
१००	१८	क्षत्रय	क्षत्रप
”	२३	क्षत्रय	क्षत्रप
१०१	१३	पेरस	पोरस
१०२	६	भारत मुख्य	भारत के मुख्य
१०३	१	उत्तर-दक्षिण	उत्तर; दक्षिण
१०५	८	बहुत अपनाया	बहुत नहीं अपनाया
१०८	२	उतरी	उत्तरी
१०६	४	अधिकार पुनरुज्जीवित	अधिकार को पुनरु-जीवित

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११४	१०	प्रवहणः ही समुद्र	प्रवहणः समुद्र
"	१४	युल्य	मुल्य
११९	४	अर्थ	अर्थों
"	१८	पार्पो	पापों
१२४	१२	सुथात,	सुग्रात,
"	१७	राज्य सम्मिलित	राज्य में सम्मिलित
१२६	२२	अमराइयां	अमराइयां
१२७	४	मोसिडोनियां	मैसिडोनियां
१३०	अन्तिम	पुष्पमित्र	पुष्यमित्र
१५६	१	८९·८२८९८७+	=९·८२८९८७+
"	३	='४ घं०	=४ घं०
"	१९	२४+७२=१७२८	२४×७२=१७२८
१६०	१२	संविविष्ट	संनिविष्ट
१६३	१२	विलिवापङ्कुर	विलिवायङ्कुर
"	२३	राना	राजा
१६४	५	प्रर्य्यन्त	पर्य्यन्त
१६५	७	नहाया	नहापा
"	१४	क्षामोतिक	प्सामोतिक
"	२४	क्षात्रप	क्षत्रप
१६५	२५	महाक्षात्रप	महाक्षत्रप
१६७	२५	१७६ आंध्र	१७ आंध्र
१६९	१२	कृष्ण शातकर्णी,	कृष्ण, शातकर्णी,
"	२०	काण्व	फाएव
१७१	१२	जन	जैन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७२	८	स्थापतिं	स्थापित
१७३	८	पुत्र ऊपावदात,	पुत्र, ऊपावदात
१७८	६	पर्थिया	पार्थिया
१७६	१४	चाना	जाना
"	"	पाश्व	पापर्व
१८६	६	केलर	केरल
"	२०	राजा से	राजा जह्नु से
"	२५	तल	तट
१६३	६	"यशस	यशसः
१६५	अन्तिम	हिमाचल	हिमाचल।
२०६	१२	साथ	साज
२०७	अन्तिम	राल्य	शल्य
२१०	४	उन्होंने	जिन्होंने
"	५	५०३	६०३
"	६	५०५	६०५
"	७	'५२६	६२६
"	१८	मौरवरि	मौखरि
२१५	४	थे।	थे,
२१६	७	प्रेरणॉं	प्रेरणा
२२०	१८	˙कित	अकित
"	२२	वैठे	वैठा
२२१	६	वसों	व्रैसो
२२३	२	तया, वंग	तथा वंग
"	१२	ने डुंजेलियन	नेईडुंजेलियन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२२४	२५	द्रुपद	द्रुपद
२२६	१७-१८	"वाणोच्छिष्टं ।जग-त्सर्वम्"	"वाणोच्छिष्टंजग-त्सर्वम्" ।
२२८	११	संस्थायें में भी थी।	संस्थायें भी थीं।
"	२४	स्नार्थ	स्नानार्थ
२२९	२५	भक्ष्य, पेय	भक्ष्य व पेय
२३२	२२	था,	था।
"	२४	था।	था,
२३४	१०	।अव	और
२३७	३	वश	वंश
"	१२	पिया	किया
२३८	१८	अय्यायिक	अप्पायिक
२४०	९	चाल	चोल
२४१	९	भाँडार कर	भांडारकर
"	अन्तिम	पाँड्य	पांड्य
२४३	१३	साले	सालै
"	२०	वडिम्वलम्वनित	वडिम्वलम्वनिन्न
२४८	१	पेरुना	पेरुनर
"	२	वेरिवेर.	वेँरिवेर
"	अन्तिम	विष्णुगोय	विष्णुगोप
२५२	१५	अय्यर	अप्पर
२५४	२१	कन्नोज नरेश यशोवर्मन उपनास महोद्य	कन्नोज उपनाम महो-द्य नरेश यशोवर्मन
२५६	८	भुद्र,	मद्र,

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५६	१५	शरणता की	शरण ताकी
२५७	१६	था। और	था और
"	"	कन्नोज के पीछे	कन्नौज के। पीछे
"	२४	सं० ४६७ से ५४७	सं० ८६७ से ६४७
२५६	२४	अभी	अब
२६१	३	लमद्यान	लमघान
२६२	१६	सुहितदेव	सुहिलदेव
"	१८	सुहितदेव	सुहिलदेव
२६७	४	समनन	समतत
२७१	३	हुआ। सो	हुआ सो
"	२५	पाली	पालों
२७२	११	पिछे	पीछे
२७३	११	हिमांचल	हिमाचल
२७४	१	के	में
२७६	१	सम्मिलित हुआ था	सम्मिलित था
२७७	३	बंगाल	भारत
"	१४	स्थरपाल	स्थिरपाल
२७८	६	सं० १०६८ से १११७	सं० १०६८ से ११११
"	१२	तथा पहले	तथा चालुक्य पहले
२८०	१	भीमपालों	भीम पालों
"	४	पिथी के देव रक्षित	पिथीके देवरक्षित
"	२१	जात वर्मन सामल वर्मन,	जातवर्मन, सामल-वर्मन,
२८५	११	के	का

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२९०	अन्तिम	गोविन्द घदे	गोविन्द देव
२९१	२२	प्रधान्य	प्राधान्य
२९२	८	विध्वंश	विध्वंस
२९५	२२	था शंकर घर्मन	था। शंकर वर्मन
२९६	२०	शासक	सिफा
२९७	१६	को	के
३०२	९	मौखरि	मौखरि
३०४	१६	घौद्ध	बौद्ध
३०७	२३	आधियत्य	आधिपत्य
"	अन्तिम	आधियत्य	आधिपत्य
३१४	५	१ ९७	१०९७
३१५	३	गोंड़ावाना	गोंडवाना
३१९	८	तक।	तक था।
३२०	२२	कालिंजरपुर व राधीश्वर	कालिंजर पुरवराधीश्वर
३२६	२१	शाक्त घंटाई	शाक्त। घंटाई
३३१	९	सभी	सभी
३३४	१०	काठीलोग	काठी लोग
"	अन्तिम	वनथाली	वनथली
३३६	१३	राठूरी	राठूरों
३३७	१७	किया रुद्र दामन	किया। रुद्रदामन
३३९	५	है। तथा	है, तथा
"	९	सकते. कुछ	सकते। कुछ
"	१६	लिया	लिया।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४३	२	भिलामाल	भिलमाल
३४६	२	पहुंचा वह	पहुँचा। वह
"	६	छोड़ा इसका	छोड़ा। इसका
३४७	२४	भाई स्थान	भाई के स्थान
३४८	१४	ढोल्का के वाघिल	धौल्का के वाघेल
"	१८	ढाल्का	धौल्का
३४६	५	ढोल्का	धौल्का
"	१७	लाट वाल	लाट वाले
३५०	१०	लिया उसकी	लिया और उसकी
३५५	११	जयाविलास	जयविलास
"	२३	वंश भी कहा जा-सकता है।-	वंश भी मैत्रक वंश कहा जा सकता है।
३५८	१०	अपको	आपको
"	१७	अपने	आपने
"	२४	उढाया	उठाया
३६३	४	नरेश के	नरेश को
३६४	८	स्वासिलोन	स्वामिलोन
"	२०	१० वर्ष	१०० वर्ष
३६६	१३	(डफ़ के अधार पर)	(डफ़ के आधार पर)
३७०	५	खीची, भदौरिया	खीची, हाडा, भदौरिया
"	१२	युद्ध ने	युद्ध में
३७२	१७	हुआ इस	हुआ। इस

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३७५	८	पुत्र	पौत्र
"	२१	सं० ७८८८	सं० ७८८
३७७	८	हुआ, इस	हुआ। इस
३८१	११	राजा का	राजा को
"	१६	मृतक प्राय:	मृतक प्राय
३८७	अन्तिम	पाया है।	पाया।
३८६	२४	को बड़ी	का बड़ी
३६१	१५	कोमलुफ	कोमलुक
"	१७	वंश को	वंश के
३६६	७	दान्ति	दन्ति
४०४	२४	संवन १२४१	संवत् १२४६
४०६	३	प्रसन्न रक्ना	प्रसन्न रक्खा।
४१२	२०	पाण्डिल्य	पाण्डित्य
४१७	६	तक नरेश	तक १८ नरेश
४१६	१७	प्रभावशाली थे,	प्रभावशाली थे।
४२३	१७	८८२	८२२
४२५	२४	आया था जब	आया था। जब
४२६	१८	पराक्रुश	परांकुश
४२७	अन्तिम	उम	उग्र
४२६	१	अपने देश	अपना देश
"	२२	चोल, पांड्य, प्रति-निधि	चोल पांड्य प्रतिनिधि
४३०	५	लंकापुर, दंडनाथ	लङ्कापुर। दंडनाथ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४३२	१६	अलाउद्दीन सेनापति	अलाउद्दीन का सेना-पति
४३३	१३	जाटिल वर्म्मन	जटिल वर्म्मन
४३६	२४	चोरों की	चेरों की
४३६	१३	प्रासिद्ध	प्रसिद्ध
४४०	७	सं० १०२७	सं० ११७
४४१	२४	विद्देव	विद्देव
४४४	२	यच्च नन्दिन	यवनन्दिन
४४६	६	को उधर	को । उधर
४४८	२५	पारि पोपक	परिपोपक
४५०	५	मौर	और
४५१	१६	१२४६	१२६६
४५४	२०	का पुत्र	का पौत्र
"	२१	विक्रमादिव्य	विक्रमादित्य
४५६	४	दल नियन्त	दलनियन्ता
४६०	३	रज्य	राज्य
४६१	२	फ़ल्तुद्दीन	फ़ख़ुद्दीन
४६५	१७	संभव है । विशेषतया	संभव है, विशेषतया
४६६	४	क्षत्रियों से	क्षत्रियों में
"	६	शक यूएची	शक, यूएची
४७३	१८	आत्मवल	आत्मवलि
४७४	१४	चलाने वाले एक रसूल	चलाने वाले एक एक रसूल
४७७	१३	आवूवक	अववक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४७८	१५	ग़ालिव	ग़ालिव
४७६	१६	इनाम हुसैन	इमाम हुसैन
”	२०	इनाम हुसैन	इमाम हुसैन
४८१	६	दाद्र	दाऊद
”	१३	अलमसूर	अलमंसूर
”	२४	मानिक वाने की थी।	मानिकवा ने की थी।
४८२	१४	को रात	को हिरात
”	”	फ़रगने	फ़रग़ाने
४६१	२१	(६) मसऊद नं० ८	(६) मसऊद नं० ७
४६२	१८	(२) फ़ख्रुद्दीन सूरी	(२) फ़ैख्रुद्दीन सूरी
४६३	२०	नरेश, जयचन्द्र	नरेश जयचन्द्र
४६४	६	जामा मसजिद	जुमा मसजिद
”	१८	कुतबुद्दीन को सुलताल	कुतबुद्दीन को दिल्ली का सुल्तान
४६६	२२-२३	अरवी, और अफगाली	अरवी और अफगानी
४६७	७	जो परिवर्तन हुआ	जो राज्य परिवर्तन हुआ
”	१७	प्रभास पत्तन, आदि	प्रभासपत्तन आदि
”	अंतिम	वाफिरों	काफ़िरों
४६८	२०	वैदिक्र	वैदिक
४६६	६	तामस, तथा	तामस तथा
५००	१	दिवदास	सुदास
”	७	तक्षशिला, और	तक्षशिला और

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५०२	१	मास	भास
५०४	७	महायान बुद्ध	महायान । बुद्ध
५०६	३	सं० पू० सात सौ	सं० पू० सवा सौ
"	६	तद्दश	तादृश
"	१६	सुशमा	सुशर्मा
५१०	२४	आहव मल्ल,	आहोमल्ल
५१३	१२	बाघेलखंड	बघेलखंड
"	१३	बाघेल	बघेल
५१४	८	तोरमाण	तोरमणि
"	२०	छूटने	टूटने
५१६	२	कनिष्क राज्यारंभ	कनिष्क का राज्यारंभ
"	१५-१६	पद्यमें में हैं, कुछ गद्यमें	पद्य में हैं और कुछ गद्य में
५२१	२	शिव, गिरजा	शिव गिरजा
"	१४	योचरण	गोचारण
"	१७	मृगया रामयुद्ध	मृगया, रामयुद्ध
५२३	१५	कृतिमता	कृत्रिमता
५२४	१६	"कवि दंडी"	"कविदंडी"
५२५	२४	इत्सिङ्ग	इुइत्सिङ्ग
५२६	७	तिलक अच्छे	तिलक में अच्छे
५३१	३-४	है अब इसके पाँच भाग होना सिद्ध है। पांच भागों के......	है। अब इसके पांच भाग हैं किंतु प्राचीन अनुवादोंसे इसमें १२

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
		......कहलाता है,	भाग होना सिद्ध है। पांच भागों के...... ......कहलाता है,
५३१	१७	रोचक कथाएं हैं।	कथाएं रोचक हैं।
५३२	२१	कर्णान्तृत	कर्णामृत
५३३	८	सक्रय किया।	सक्रम किया।
"	६	योग सांख्य,	योग व सांख्य,
५३६	१६	समय पर वौद्ध	समय पर हिन्दू, वौद्ध
५३७	१८	पुष्पमित्र	पुष्यमित्र
५४०	६	भारी	वहुत
५४२	१८	वौद्ध जैन,	वौद्ध, जैन,
५४५	२२	(४) पराशर संहिता	(५) पराशर संहिता
५४६	१	संहिता। और	संहिता और
५४७	२	मागधी अर्द्ध मागधी	मागधी, अर्द्ध मागधी,
"	३	आदि के विभाग हुए,	आदि विभाग हुए।
"	१५	सिंह सरोज ने	शिवसिंह सरोज ने

नोट। इन अशुद्धियों के अलावा विंदु (ं) और चन्द्रविन्दु (ँ) तथा कामाओं इत्यादि की एवं ऐसी ही छोटी मोटी और भी कुछ अशुद्धियां रह गई हैं जिन्हें इस शुद्धिपत्र में दर्ज करना हमने अनावश्यक समझा है। आशा है कि पाठक गण क्षमा करेंगे।

"मिश्र वंधु"।

भारतवर्ष का इतिहास
(प्राचीन और अर्वाचीन)

द्वितीय खण्ड

बौद्ध काल से हिन्दू-राज्य-पतन पर्यंत
(६०० सं० पू० से प्रायः १२५० सम्वत् तक)

लेखक
श्यामबिहारी मिश्र, एम० ए०, एम० आर० ए० एस,
तथा
शुकदेवबिहारी मिश्र, बी० ए०
["मिश्र-बन्धु"]

प्रकाशक
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

म] संस्करण
५०० प्रतियां
सम्वत् १९७७
मूल्य २॥)

विषय सूची।

+ इन अध्यायों में राजनैतिक इतिहास है।

† इनमें साहित्यिक और धार्मिक इतिहास मिलेगा।

नोट—प्रथम १६ अध्याय इस ग्रन्थ के पहले खंड में हैं जो अलग प्रकाशित हो चुका है।

भूमिका।

इस ग्रन्थ की विस्तृत भूमिका प्रथम खण्ड में दी जा चुकी है। उसीका इस खण्ड से भी सम्बन्ध समझना चाहिये। यहां पर दूसरे भाग के आधारों का कुछ कथन किया जाता है। यों तो इस ग्रन्थ के लिखने में बहुत से ग्रन्थों की सहायता ली गई है, जिनमें से बहुतों का कथन यथा स्थान ग्रन्थ ही में आ गया है। विशेष सहायता निम्न ग्रन्थों से मिली है:—

(१) विविध प्रान्तों तथा स्थानों के सरकारी गज़ेटियर।
(२) विंसेण्ट स्मिथ कृत भारत का प्राचीन इतिहास।
(३) टाड कृत राजस्थान।
(४) के० वी० सुब्रह्मण्य ऐयर कृत प्राचीन दक्षिण।
(५) कृष्णस्वामी ऐयंगर कृत प्राचीन भारत।
(६) सर रामकृष्ण गोपाल भंडारकर कृत दक्षिण का प्राचीन इतिहास।
(७) डफ़ कृत भारतीय समयावलि।
(८) कप्तान बेल कृत काठियावाड़ का इतिहास।
(९) मैकडानल कृत संस्कृत का इतिहास।

ये सब अंगरेज़ी भाषा के ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थकारों तथा अन्य सहायता प्रद ग्रन्थों के रचयिताओं प्रति वर्त्तमान ग्रन्थ-कर्त्ता हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं. पाली साहित्य के विषय में बहुत सी बातें डा० सुकठांकर के एक पत्र से

विदित हुई हैं। इतिहासकार निराधार कथन करने से ऐतिहासिक ही न रह जावेगा और विशेष परावलंबन से स्तेय के दूषण से बचना उसके लिए कठिन होगा। इन दोनों बातों से बच कर ही इतिहासज्ञ अपने पाठकों का कृपा भाजन हो सकता है। वर्त्तमान ग्रन्थकार इस प्रयत्न में कहां तक सफल हुए हैं, इसका निर्णय पाठकों पर अवलम्बित है। उन्हें अपनी सामर्थ्य पर कुछ भी भरोसा नहीं है।

हमारे एक मुसलमान मित्र ने कहा था कि भारतीय इतिहास लेखक पक्षपात की माला बढ़ा कर अपने ग्रन्थों को तिरस्करणीय बना डालते हैं। इनके मत में हिन्दू, मुसलमान तथा योरोपियन लेखक अपने अपने पक्ष की अनुचित प्रशंसा तथा शेष दोनों पक्षों की अनुचित निन्दा कर डालते हैं, जिससे भारतीय इतिहास ज्ञान अधिक होने के स्थान पर जातीय वैमनस्य को अनुचित प्रकारेण बढ़ाता है। उनका यह विचार कितना सत्य है सो भारतीय इतिहास पाठियों से छिपा नहीं है। हमने यथा साध्य पक्ष ग्रहण को बचाया है। इसी से कहीं कहीं यह ग्रन्थ लोगों को कुछ फीका जँचे तो असंभव नहीं। भारतीयों मे प्रेम का बढ़ाना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है। चौबीस करोड़ हिन्दू किसीके निकाले भारत से न निकलेंगे और न सात करोड़ मुसलमान किसी के हटाये भारत से हट सकते हैं। अब तो हँस कर या रोकर हम दोनों को साथ ही साथ रहना है। ऐसी दशा में माने हुए अथवा वास्तविक प्राचीन अत्याचारों पर कुढ़ कुढ़ कर अपना हृदय जलाना, तथा वर्त्तमान भारतीय हिन्दुओं और वर्त्तमान भारतीय मुसलमानों को पूर्व पुरुषों की उचित अथवा अनुचित कार्रवाइयों के कारण एक दूसरे को शत्रु-

भाव से देखना अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारना है। जब तक ये विचार चलेंगे तबतक भारतीय उन्नति का सूर्योदय न होगा। हिन्दू मुसलमान और ईसाई इन तीनों ने भारत को बहुत कुछ हानि लाभ पहुँचाया है, किन्तु हानियों पर विशेष ध्यान देने से हम लोग अपनी समझ में तो देश प्रेम प्रदर्शित करते हैं, पर वास्तव में आपस की शत्रुता जागृत कर के उसको हानि पहुचा रहे हैं। इतिहासकार का कर्त्तव्य है कि वर्ण्य लोगों का कथन करने में उनके विचारों पर भी ध्यान देते हुए उनके कार्य्यों को समालोचना करें। अपने धर्म, वर्त्तमान उन्नत विचार तथा बीसवी शताब्दी के समाज का तुला ग्रहण करने से बहुत से विधर्मी मनुष्यों के साथ इतिहास लेखक द्वारा अन्याय हो जाना संभव है। इसलिए यदि हमने सोमनाथ, विश्वनाथ मंदिरादि के ध्वंसन में शोकोत्पादक उद्गारों को बचाया है तो इससे किसीको कोई भ्रम न करना चाहिये। ऐसे स्थानों पर इतिहास लेखन का भाव मुख्य माना गया है और व्यक्ति गत भाव अमुख्य। हमने हिन्दू नेत्रों से भारतीय इतिहास न देखकर इसे भारतीय नेत्रों से देखा है। जो महाशय हिन्दूपने के विचार से वर्णन देखना चाहे, वे हमारे पद्य ग्रन्थ भारत विनय के कुछ विशेष अंश देखने का कष्ट उठावें। इन कारणों से आशा है कि हमारे सहृदय पाठक हिन्दूपन के उद्गारों का अभाव क्षमा करेंगे।

इसी विषय से मिलता हुआ विदेशियों द्वारा भारत पराजय का कथन है। हमने इन बातों को छोड़कर इस ग्रन्थ में केवल इतिहास लिखा है। संवतों के लिखने में प्रायः यह अड़चन पड़ी है कि ईसवी सन का महीना ज्ञात न होने से

संवत् बनाने में ५७ जोड कर काम निकाला गया है ऐसी दशा में कहीं कहीं भ्रम हो जाना संभव है, क्योंकि जनवरी से अपरैल के भाग तक सन में ५६ जोड़ने से शुद्ध संवत आता है, और शष वर्ष में ५७ जोड़ने से। मास न जानने से किसी सन के बदले एक ही संवत लिखने से थोड़ी अशुद्धि की संभावना बनी ही रहेगी। इसके लिए हम पाठकों से क्षमा के प्रार्थी हैं।

प्रयाग,
कृष्ण जन्माष्टमी
सम्वत् १९७६

"मिश्र बन्धु"

भारतवर्ष का इतिहास

बीसवाँ अध्याय

गौतम बुद्ध और बौद्ध धर्म

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है महात्मा गौतम बुद्ध का जन्म ५०७ सं० पू० में महाराजा शुद्धोदन की स्त्री मायादेवी के उदर से लुम्बिनी कानन में हुआ था। यह कानन कपिलवस्तु राज्य के अंतगत था। कपिलवस्तु नेपाल की तराई में राप्ती और रोहिणी नदी के बीच में था। उस कालपर्यन्त अपुत्र होने के कारण महाराजा शुद्धोदन ने बुद्ध की उत्पत्ति से बड़ा पुत्रोत्सव मनाया। जन्म से पांचवें दिन राज पुरोहित विश्वामित्र ने इस शिशु का नाम गौतम रक्खा। इनकी माता मायादेवी इनके जन्म से सातवें ही दिन स्वर्गवासिनी हुई। इसलिए इनकी मौसी तथा विमाता महारानी प्रजावती ने इनका पालन पोषण किया। राजकुमार का जन्मवृत्तान्त सुन असित महर्षि अपने भागिनेय नारद सहित कपिलवस्तु पहुंचे और उसके शरीर का भली भांति निरीक्षण करके उसमें महा पुरुषों के बत्तीस लक्षण तथा अस्सी अनुव्यंजन पाये। अनन्तर महाराजा के भाग्य की सराहना करके महर्षि ने कहा

कि यह बालक या तो चक्रवर्ती राजा होगा अथवा बुद्ध । उन्होंने उसी समय अपने भागिनेय को शिक्षा दी कि यदि यह बालक सन्यास ले तो तुम इसके शिष्य होना। जब कुमार की अवस्था आठ वर्ष की हुई तब महाराजा शुद्धोदन ने शिक्षणार्थ इन्हें विश्वामित्र को सौंपा। ऋषिवर ने वर्ण तथा लिपि सिखा कर बालक गौतम उपनाम सिद्धार्थ को क्रमशः कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिप, षडंग और चारों वेद पढ़ाये। अनन्तर वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, पुराण, बार्हस्पत्य, निगम आदि की भी शिक्षा विश्वामित्र ने कुमार सिद्धार्थ को दी। अपनी प्रखरा बुद्धि के कारण सिद्धार्थ ने ये विषय थोड़े ही काल मे पढ़ लिये। पच्चीस वर्ष की अवस्था में कुमार का विद्याध्ययन समाप्त हुआ। गौतम के इतने विषयों की शिक्षा पाने से प्रकट होता है कि ये तत्कालीन हिन्दू धर्म से अनभिज्ञ न थे वरन् उसके निगूढ़ रहस्यो को भी गुरुद्वारे ही में भली भांति अवगत कर चुके थे। इनके इतिहास तथा पुराण पढ़ने से यह भी सिद्ध होता है कि उसी काल से ऐसे ग्रन्थ प्रस्तुत थे और ऐसे प्राचीन हो चुके थे कि भारी गुरुद्वारों में उनके पढ़ाने की परिपाटी स्थिर थी। ज्ञान पड़ता है कि कुमार ने प्राकृत भाषा के ग्रन्थ पढ़े होंगे। उस काल का कोई इतिहास ग्रन्थ अब प्रस्तुत नहीं है। इस काल हमारे पास पुराने से पुराने इतिहास ग्रन्थ महाभारत तथा हरिवंश ही हैं। इससे जान पड़ता है कि जैसे पाणिनीय व्याकरण के आधारस्वरूप व्याकरण थे अवश्य किन्तु अष्टाध्यायी के बनने पर अनावश्यक समझे जाकर क्रमशः लुप्त हो गये, वैसे ही हरिवंश और महाभारत के

आधारस्वरूप भी प्राचीन इतिहास ग्रन्थ थे जो इनके बनने पर क्रमशः नष्ट हुये।

कुमार के कृतविद्य हो जाने पर महाराजा शुद्धोदन ने गुरुद्वारे में जा इनका समावर्तन संस्कार कराया और विश्वामित्र को प्रचुर दक्षिणा दी। अनंतर बड़े गाजे बाजे के साथ कुमार कपिलवस्तु लाये गये। सिद्धार्थ एकान्त प्रेमी थे और खेल कूद आमोद प्रमोदादि में सम्मिलित न होते थे। वे उचित स्थानों पर बैठ कर ध्यान में मग्न हो जाया करते थे और यही सोचा करते थे कि मनुष्य त्रिविध तापों से कैसे छुटकारा पावै। कहते हैं कि इन्हों ने भीषण रोगी, वृद्ध, तथा शव को क्रमशः देखकर संसार की असारता पर शोक मनाया था तथा एक सन्यासी को देखकर निश्चय किया था कि उसका जीवन अनुकरणीय है। वे सदा संसार के दुःखों से निवृत्ति के उपाय सोचा करते थे और स्वयं सुख दुःख की कुछ भी परवाह न करते थे। ब्रह्मविद्या ही उनकी सर्वश्रेष्ठ जीवनाधार थी। महाराज शुद्धोदन कुमार की यह दशा देख महर्षि असित के वचनों का स्मरण करके बहुत घबड़ाये और जब अन्य प्रकार से इनका मन दार्शनिक सिद्धान्तों से हटता न देखा तब उन्होंने इन्हें विवाह बन्धन में जकड़ने का मनसूबा बांधा। गुरुद्वारे में कुमार ने शस्त्रविद्या का भी अच्छा अभ्यास किया था और इसी का नैपुण्य दिखाकर इन्हों ने पिता का क्षोभ कुछ दूर किया। अनन्तर देवदह के महाराज दण्डपाणि की पुत्री यशोधरा उपनाम गोपा से इनके विवाह की बात चीत चलाई गई। दण्डपाणि कुमार के मामा थे। उनके भेजे हुए पुरोहित अर्जुन ने राजकुमार की वेद शास्त्रों में परीक्षा लेकर विवाह का प्रस्ताव स्वीकृत किया और

यथोचित प्रकारेण विवाह हो गया। वधू प्राप्त होने से भी कुमार का एकान्तवास न छूटा और ये आराम से बैठे हुए नित्य जन्ममरणादि प्रश्नों पर विचार किया करते थे। आत्मा के संबन्ध में भी इन्होंने बहुत कुछ सोचा। यह दशा देख महाराजा शुद्धोदन ने इनके लिए षट्ऋतु के आनन्द से युक्त एक बड़ा सुखद आराम बनवाया और कामोद्दीपन की सामग्रियों से उसे सुसज्जित करके तथा अनेक काम-क्रीड़ाकुशल रूपवती नवयौवना बालिकाओं को वहीं नियुक्त करके कुमार को उसमे वास दिया। कुमार इस मोह में भी न फंसे और वहां भी सदैव संसारी जीवधारियों की क्षण-भंगुरता तथा संसार के दुःख सागर होने ही के विचारों में निमग्न रहे। कुमार के अट्ठाईसवें वर्ष राजकुमारी यशोधरा गर्भवती हुईं और यथा समय राहुल नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। इन्हीं दिनों इनके मन में सन्यास ग्रहण के विचार प्रबल हो रहे थे। पुत्रोत्पत्ति का सुसमाचार सुनकर कुमार ने अपने को पितृऋण से भी मुक्त समझा। ऋषिऋण तथा देवऋण से तो ये पहिले ही उऋण हो चुके थे। तीनों ऋणों से मुक्त समझ कर अब ये अपने को मोक्षपद के अधिकारी समझने लगे। इस विचार के उठते ही इनके मुख पर सोलहों कलायुक्त आनंदेन्दु का उदय हुआ, किन्तु तत्काल ही पुत्रो-त्पत्ति भव राग ने इनके विराग भव आनन्द पर आक्रमण किया और सारा मानसिक सुख अन्तर्ध्यान हो गया। अतएव इनके मन मे आया कि यह पुत्र राहु है जिसने मेरे आनन्दचन्द्र का ग्रास कर लिया। इसीसे आपने उसका नाम राहुल रक्खा।

थोड़े दिनों में कुमार सिद्धार्थ ने अपने पिता से हाथ जोड़ निवेदन किया कि अब मैं पितृऋण से भी मुक्त हो-

चुका हूं सो आप सहर्ष मुझे गृहत्याग की आज्ञा दीजियें। पिता ने पुत्र का यह कडुआ कथन सुन कर उसे बहुत समझाया तथा यह भी कहा कि मैं अभी राज्य छोडता हूं, तुम इसका यथेष्ट उपभोग करो। गौतम ने कहा कि यदि मैं अजर, अमर नीरोग और सदैव सम्पत्तिवान हो सकूं तथा कभी विपत्ति मेरे पास न आवे तो राज्य कर सकता हूं अन्यथा नहीं। यह सुन राजा ने इन बातों को असंभव बतलाया और कुमार गृह त्यागने की इच्छा में दृढ रहे। अनन्तर थोडे दिनों में गौतम ने एक दिन आधी रात के समय छन्दक नामक सेवक से कंठक अश्व मंगवा कर और उसी पर सवार हो पूर्व दिशा का रास्ता लिया। मार्ग में घने जंगलों, सुनसान मैदानों, अनेक छोटी मोटी नदी नालों तथा रोहिणी नदी को पार करके ये कौलिय (कौडिया) राज्य में पहुंचे। और फिर भी आगे बढ़ते हुए पावा (पडरौना ज़िला गोरखपुर) के मल्लों का राज्य पार करके गौतम ने अनामा नदी को पार किया। इस स्थान पर इन्होंने दो एक साधारण वस्त्र अपने शरीर पर रक्खे और शेष वस्त्राभूषण तथा घोडा छन्दक को देकर उसे हठपूर्वक कपिलवस्तु को भेज दिया। फिर इन्होंने तलवार से अपनी शिखा काट डाली और आगे चल कर एक ढंग से अपने बहुमूल्य वस्त्रों के बदले में साधारण वस्त्र ले लिये। इन्होंने छन्दक द्वारा अपने पिता से संदेशा कहा भेजा था कि मैं बुद्ध पद प्राप्त करके कपिलवस्तु में फिर आपके दर्शन करूंगा। इनके जाने से शोक विह्वल राजपरिवार रो पीट कर इसी वचन के सहारे किसी प्रकार बैठ रहा। उधर कुमार वैशाली पहुंच कर आण्डु कालाम नामक पंडित के ब्रह्मचर्याश्रम में पहुंचे, जहां ३०० ब्रह्मचारी विद्याध्ययन

करते थे। इसी पंडित से महात्मा गोतम ने ब्रह्मचर्याश्रम ग्रहण किया और आकिञ्चायतन धर्म की शिक्षा प्राप्त की। अनन्तर आपका विचार हुआ कि वेद पाठ, वीर्य स्मृति, तथा समाज मात्र से मनुष्य क्लेशों को ध्वस्त नहीं कर सकता। यही मत महात्मा आण्डु पर प्रकाशित करके आप उनकी आज्ञा ले राजगृह की ओर प्रस्थित हुए। यहां रुद्रक नामक एक प्रसिद्ध दार्शनिक रहता था। राजगृह में महाराजा बिम्बिसार ने गौतम को भिक्षा दी और इनके रूप, यौवन, अवस्था और गुण देखकर अपना भारी मागध राज्य इन्हें अर्पित किया। इन्होंने उत्तर दिया कि यदि मुझे राज्य से क्षण भंगुर पदार्थ की लालसा होती तो मैं अपने पिता शुद्धोदन का ही राज्य क्यों छोड़ता। यह सुन राजा लज्जित हुआ और बुद्धत्व प्राप्त करने पर गौतम को अपने यहां आने का निमन्त्रण देकर महल को चला गया। प्रातःकाल गौतम राम पुत्र आचार्य रुद्रक के यहां पहुंचे जिसके यहां ७०० ब्रह्मचारी अध्ययन करते थे। कुछ दिन तक रुद्रक से शिक्षा प्राप्त करके उससे कहा कि मैंने श्रद्धा, वीर्य, समाधि और स्मृति को प्राप्त कर लिया है, किन्तु केवल इन्हीं से निर्वाण की प्राप्ति दुर्लभ है, सो प्रज्ञा को भी साक्षात् करना चाहता हूं। इसकी शिक्षा रुद्रक न दे सका और तब उससे आज्ञा लेकर गौतम आगे बढ़े। उस आश्रम के पांच ब्रह्मचारी भी प्रज्ञा लाभार्थ गौतम के साथ चले। इन्हीं पांचों को पंच भद्रवर्गीय कहते हैं। ये छहों महात्मा भिक्षा ग्रहण करते हुए कई दिनों में गया पहुंचे। उस काल वहां कोई उत्सव मनाया जा रहा था। यहां के साधुओं को तीव्र, मृदु और मध्य कोटि के पाकर गौतम ने सोचा कि सब से पहिले शारीरिक शुद्धता के

लिए तपस्या आवश्यक है क्योंकि बिना इसके चित्त शुद्ध नहीं होता। इस विचार से आप तपश्चर्या के योग्य स्थान ढूंढने लगे और यहां से थोड़ी ही दूर उरुविल्व ग्राम में निरंजना नदी के किनारे एक समुचित स्थान पाकर आप वहीं घोर तपश्चर्या में लीन हुए। अब धीरे धीरे इनका शरीर पाषाण मूर्तिवत् हो गया और यह ऐसे बलहीन हुए कि एक बार थोड़े ही परिश्रम से मूर्छित होकर गिर पड़े। यहां पर इन्होंने छः वर्ष तक तप किया। इतने कष्ट सहने पर भी प्रज्ञा-लाभ होते न देख कर गौतम ने तपस्या को अनावश्यक समझा और ग्राम में प्रवेश करके शरीर पोषण का यत्न प्रारंभ किया। यह देख पंचमहावर्गीय ने इन्हें समाधि भीरु तथा पोच समझ कर इनका साथ छोड़ दिया; तथा वे वाराणसी को चले गये। अब वहां से चल कर और निरंजना नदी को पारकर के गौतम एक अश्वत्थ के नीचे बैठ कर प्रज्ञालाभ का विचार करने लगे। इस स्थान पर इन्हें काम विजय के कई अवसर पड़े जिनमें ये कृतकार्य हुए। इस वृक्ष के नीचे गौतम को कई लोगों ने बहुत प्रकार से डराया तथा जल, वायु, विद्युत आदि के भी कई कष्ट हुए किन्तु इन्होंने अपना आसन न छोड़ा। कई सुन्दरी स्त्रियों ने भी इनका प्रलोभन किया परन्तु फल कुछ न हुआ। काम विजयी होने पर इनका मन एकाग्र हुआ और उससे चंचलता का तिरोभाव हुवा। धीरे धीरे अभ्यास और वैराग्य की पूर्णता से इन्होंने दुर्दम-नीय मन का दमन करके चित्तवृत्ति का निरोध कर लिया और इस प्रकार ये अखंड समाधि के अधिकारी हुए। आषाढ़ी पूर्णिमा की पवित्र रात्रि में उरुविल्व ग्राम के निकट महाबोधि वृक्ष के नीचे आपको बोधि प्राप्त हुई। इसी समय से आप बुद्ध

कहलाये । कहते हैं कि इसी समय से दिव्यचक्षु ज्ञानदर्शन विद्या प्राप्त करके आप जातिस्मर हुए अर्थात् पूर्व जन्म के वृत्त का इन्हें स्मरण हो आया।

सबोधि प्राप्त करने के पीछे महात्मा बुद्ध देव ने सप्त सप्ताह पर्यन्त बोधि द्रुम के नीचे तथा आस पास भिन्न भिन्न छः स्थानों में एक एक सप्ताह निवास किया। कहते हैं कि यहाँ भी किन्हीं सुन्दरी युवतियों ने काम चेष्टा द्वारा इनके डिगाने का फिर निष्फल प्रयत्न किया। अनन्तर आपको यह चिन्ता हुई कि जो महाज्ञान मैंने कठिन परिश्रम द्वारा प्राप्त किया है उसे यदि यहीं तक रक्खूं तो संसार का क्या लाभ होगा, क्योंकि इस महाज्ञान को न पाकर वह पूर्ववत् बंधनों में जकड़ा रहेगा। आपने बहुत देर तक इस बात का विचार किया कि इसका अधिकारी कौन है। आपकी संमति में रुद्रक आचार्य और आराड कालाम क्रमशः उत्तम और मध्यम अधिकारी ठहरे, किन्तु उनके पास चलने का विचार करते ही आपने उनका अशुभ समाचार सुना। इस बात से आपको बड़ी चिन्ता हुई और सोच विचार करते हुए उपरोक्त पंचवर्गीय भिक्षु अधम अधिकारी समझ पड़े। यह सोच आप उन्ही के पास काशी चल पड़े। मार्ग में आजीवक सम्प्रदाय के उपक नामक व्यक्ति से वार्तालाप करके तथा गया मे नागराज सुदर्शन का आतिथ्य स्वीकार करके आप काशी पुरी मे पहुंच कर मृगदाव प्रदेश में कौंडिन्य, वप, भद्रिय, महानाम और अश्वजित नामक पंच वर्गीय भिक्षुओं से मिले। ये लोग अपने आश्रम मे घोर तप कर रहे थे। गौतम को आते देखकर इन्होंने अपने पुराने विचारानुसार उन्हें अभ्युत्थान, अर्घ्यपाद्य आदि न देने का निश्चय

किया, किन्तु गौतम के कुछ निकट आने पर उन लोगों का यह संकल्प स्थिर न रहा और उन्होंने उठकर इनका उचित सन्मान किया। उचित वार्तालाप के पीछे महात्मा गौतम ने कहा कि मैं बोधिज्ञान प्राप्त कर चुका हूं और तुम्हें उपदेश देने आया हूं। पहिले तो उन्होंने विश्वास न किया, किन्तु अपने में से सब से वयोवृद्ध कौण्डिन्य का मत मान कर उन्हों ने गौतम का उपदेश सुनना आरंभ किया। अब महात्मा गौतम ने पांच दिन पर्यन्त इन भिक्षुओं को उपदेश दिया। पहिले दिन कौण्डिन्य उसे मान गया और फिर क्रम से एक एक दिन में एक एक भिक्षु मानता गया। इन लोगों ने इसी क्रम से नया मत माना जिस क्रम में उनके नाम ऊपर लिखे गये हैं। यही बौद्ध मत का जगत्प्रसिद्ध धर्मचक्र प्रवर्तन है जो काशी में हुआ था।

इस उपदेश का सारांश यह था कि परिव्राजक को काम तथा शारीरिक क्लेश नामक दोनों अन्तों को त्यागकर मध्यमा प्रतिपदा ग्रहण करनी चाहिये जो चक्षु तथा ज्ञान प्रदायिनी है और जिससे उपशम, अभिज्ञान, संबोधि, और निर्वाण मिलते हैं। इसी प्रतिपदा को अष्टाङ्गिक मार्ग भी कहते हैं, जो यह है:—सम्यक्कर्मान्त, सम्यग्दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यग्वाचा, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि। अनन्तर इस ऋषिराज ने चारों आर्य्यसत्यों का उपदेश दिया। पहिला आर्य्यसत्य दुःख है, दूसरा तृष्णा, तीसरा दुःख निरोध और चौथा निरोध गामिनी प्रतिपदा जिसे अष्टाङ्गिक मार्ग भी कहते हैं। आप का मत है कि जन्म, जरा, व्याधि, मरण, प्रिय न मिलन, प्रियवियोग, इच्छा की अपूर्ति आदि पंचोपादान स्कंध दुःख हैं। पुनर्भव का

कारण तृष्णा है। इनका दमन तृतीय और चतुर्थ आर्य्य सत्यों से हो सकता है। गौतम ने इन चारों आर्यसत्यों को त्रिप्रवर्तित करके द्वादशाकार माना है।

पंचवर्गीय भिक्षुओं को अपने धर्म में दीक्षित करके महात्मा बुद्ध ने ४५ वर्ष पर्यन्त उत्तरीय भारत में इतस्ततः भ्रमण करके बौद्ध मत का प्रचार किया। आप केवल चातुर्मास्य में प्रायः एक स्थान में रहते थे और शेष मासों में भ्रमण किया करते थे। आपका पहला चातुर्मास्य काशी के समीप ऋषिपतन वन में बीता; दूसरा, तीसरा, चौथा, छठा, सत्रहवां, अट्ठारहवां और बीसवां राजगृह में; पांचवां वैशाली के कूटाराम में; सातवां त्रयस्त्रिंश नामक देवलोक में; आठवां शिशुमार गिरि पर; नवां कौशाम्बी में; दसवां मगध देश के पललेय वन में; ग्यारहवां राजगृह के दक्षिण नाडक ग्राम में; बारहवां वेरुवंजर ग्राम में; तेरहवां चालिय पर्वत पर बकुलवन में; चौदहवां तथा इक्कीसवें से पैंतालीसवें पर्यन्त श्रावस्ती के जेत वन में; पंद्रहवां कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम में और सोलहवां आलवी ग्राम मे।

पंचवर्गीय भिक्षुओं के पीछे असित देवल का भागिनेय नारद भगवान का उपदेश प्राप्त करके मौनी हो गया। अनन्तर काशी के एक समृद्धशाली सेठ का पुत्र यश दीक्षित हुआ तथा उसके चार मित्र भी परिव्राजक बने। प्रथम वर्षारंभ में कुल मिलाकर ६१ शिष्य हुए तथा ऋषिपतन वन में संघ का संगठन हुआ; जिससे बौद्ध मत के, बुद्ध, धर्म और संघ नामक तीनों अंग पुष्ट हुए। इन्हीं को रत्नत्रय कहते हैं। अनन्तर भगवान ने उरुवेला जाते समय मार्ग के कापास्य

वन में तीस भद्रीय कुमारों को दीक्षा देकर धर्मोपदेशार्थ उन्हें चारों दिशाओं में भेज दिया। बिल्व काश्यप, नदी काश्यप और गय काश्यप नामक तीनों भाई भारी आचार्य थे और एक सहस्र शिष्यों को अध्ययन कराते थे। ये सब शिष्यों सहित भगवान के शिष्य हो गये। यह सब कार्य प्रथम वर्ष ही में समाप्त हुआ। दूसरे साल राजगृह के महाराजा बिम्बिसार तथा बहुत से ब्राह्मणों ने बौद्ध मत स्वीकार किया। इसी बीच आपने सारिपुत्र और मौद्गलायन नामक भिक्षुओं को शिष्य करके अपने सब शिष्यों में उन्हें प्रधानता दी। अब अपने पुत्र का भारी यश सुनकर महाराजा शुद्धोधन ने कई दूतों को भेज कर आपको बुला भेजा। आप दो मास पर्यन्त चलकर कपिलवस्तु में संघ समेत पहुंचे और उसी के निकट न्यग्रोध कानन में ठहरे। दूसरे दिन नगर में आप स्वयं भिक्षा मांगने लगे। यह सुन राजपरिवार में बड़ा कोलाहल मचा और महाराज वहीं पधार कर गौतम से कहने लगे कि वत्स! इस प्रकार भिक्षा मांग कर मुझे लज्जित क्यों करते हो? क्या मैं संघ समेत तुम्हारा सत्कार नहीं कर सकता? तथागत ने उत्तर दिया कि महाराज यह तो मेरा कुल धर्म है क्योंकि अब मैं अपने को राजकुलोत्पन्न न मान कर बौद्धकुल में जन्मा हुआ समझता हूं। अनन्तर महल में भगवान की संघ समेत ज्यौनार हुई और वहीं राजभवन में राजपरिवार तथा सेवकों को उपदेश भी दिया गया। इस उपदेश में पूरे राजपरिवार के सम्मिलित होने पर भी भगवान की रानी यशोधरा न सम्मिलित हुईं। उनका भाव समझ कर तथा पिता की आज्ञा लेकर सारिपुत्र और मौद्गलायन के साथ

भगवान उसकी कक्षा में पधारे । यशोधरा भूमि पर बैठी थी । वह भगवान को सन्यासी के वेष में देख परम विह्वल हो उनके पैरों पर गिर पड़ी और फूट फूट कर रोने लगी । भगवान ने उसका आश्वासन करके उसे अनेक उपदेश दिये । अनंतर आपके छोटे भाई नंद ने भी युवराज होना स्वीकार न करके भगवान से दीक्षा ग्रहण की । भगवान के पुत्र राहुल ने भी ऐसा ही किया । यह देख महाराजा शुद्धोधन ने परम व्याकुल हो कर भगवान से आग्रह किया कि आगे से बिना माता पिता की आज्ञा के कोई बालक सन्यासी न बनाया जावे । भगवान ने यह बात मान ली और इसके अनुसार घोषणा भी प्रचारित कर दी । तीसरे चातुर्मास्य में आपने काश्यप और महापिप्पल को दीक्षा दी । चौथे साल वैशाली में भारी दुर्भिक्ष पड़ा था परन्तु भगवान के उस ग्राम में पदार्पण करते ही खूब वृष्टि हुई । पांचवे वर्ष महाराज शुद्धोधन का शरीरपात हो गया और भगवान ने अपने हाथों से उनका अग्निसंस्कार किया । अब आपकी विमाता महा प्रजावती तथा कई अन्य शाक्य स्त्रियों ने ब्रह्मचर्य ग्रहण करके भिक्षुणी बनने की इच्छा प्रगट की । भगवान ने पहिले तो उन्हें टाल दिया परन्तु फिर उनके अत्यन्त आग्रह करने पर उनकी इच्छा पूर्ति की । महा प्रजावती पहली स्त्री थी जिसने उपसंपदा ग्रहण की । छटे वर्ष महाराजा बिंबिसार की पहली महिषी क्षेमा, तथा राहुल की माता यशोधरा ने भी ऐसा ही किया । भगवान ने भिक्षु संघ को योग की विभूतियां दिखाने से मना किया । नवें वर्ष भगवान कौशम्बी में विराजमान थे । इसीके निकट कर्मासदम्म ग्राम में भगवान को मागन्धय नामक उस ब्राह्मण से भेंट हुई जिसकी कन्या मागंधी अति

रूपवती थी। उसने अपनी कन्या के साथ भगवान का विवाह करना चाहा किन्तु आपने कहा कि हे ब्राह्मण! मार की तृष्णा, आरति तथा राति नाम्नी तीनों कन्याओं को देखकर भी जब मुझे इच्छा न हुई तब साधारण कुमारिकाओं की ओर मेरा मन क्या चंचल होगा। इस उत्तर से मागंधी बहुत रुष्ट हुई। थोड़े दिनों में कौशम्बी के स्वामी महाराज उदयन के साथ उसका विवाह हो गया। वासव दत्ता तथा श्यामावती नाम्नी उनकी दो अन्य रानियें थी, जिनमें पहिली क्षत्रिया थी तथा दूसरी वैश्या। दसवें वर्ष भगवान का सगोत्री शिष्य देवदत्त आनन्द, सारिपुत्र और मौद्गलायन की प्रधानता न सहकर सब से रुष्ट होकर राजगृह चला गया। तेरहवें वर्ष एक दिन गया में भगवान शूचीलोम और खरलोम नामक यक्षों के घर पर पधारे। शूचीलोम ने अपने घर पर आकर जब एक भिक्षु को बैठा पाया, तब उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। वह भगवान से सटकर बैठ गया और बोला कि श्रमण, मैं तुमसे प्रश्न करता हूं, यदि तुम उसका उत्तर न दे सके तो तुम्हारा हृदय फाड़ डालूंगा और तुम्हारा पेर पकड़कर तुम्हे गंगा पार फेंक दूंगा। भगवान ने उत्तर दिया कि हृदय फाड़ने और पैर पकड़कर फेंकनेवाला तो आज तक कोई मुझे मिला नहीं है और ऐसा सोचना तुम्हारा साहस मात्र है, किन्तु आप प्रश्न कीजिये मै अवश्य उत्तर दूंगा। अनन्तर यक्ष ने प्रश्न किया और उसका समुचित उत्तर दिया गया। चौदहवें वर्ष भगवान अपने उपदेशों से अंगुलिमाल नामक उस दुष्ट को सन्मार्ग पर लाये जो लोगों की तर्जनी काट काट कर उसकी माला पहिना करता था। इसी प्रकार पंद्रहवें साल

आपने आलवक नामी हिंसक यक्ष को उपदेश द्वारा सच्चरित्र बनाया। चालिय पर्वत से चलकर जिस काल भगवान गृध्रकूट पर ठहरे, तो एक दिन अजातशत्रु से मन्त्रणा करके इनके शिष्य देवदत्त ने इनके ऊपर मत्त हाथी छुड़वा दिया, किन्तु उसने इनका कोई अनिष्ट न किया। तब उसने भगवान के विनाशार्थ धनुर्धरों की योजना की, किन्तु उनसे भी आपको कोई हानि न पहुंची। इस पर देवदत्त ने इनके ऊपर भारी पत्थर लुढ़का दिया जिससे इनके बांये पैर के अंगूठे पर चोट लगी। भगवान ने जीवक नामक चिकित्सक को बुलाकर इसकी दवा की। एक बार भगवान को कष्ट पीड़ित देखकर जीवक ने पूंछा कि क्या जीवन्मुक्त होकर आपको भी त्रिविध ताप सताते हैं और आपके भी शरीर में कष्ट होता है? भगवान ने उत्तर दिया कि जीवन्मुक्त को भी कष्ट होते अवश्य हैं किन्तु उनसे वह विचलित नहीं होता, यही मुक्त और बद्ध में अन्तर है। यह उपदेश सुन जीवक भी बौद्ध धर्म में आ गया। इस काल देवदत्त की सलाह से अजातशत्रु अपने बूढ़े पिता महाराज बिम्बिसार की बात बात मे अवज्ञा करने तथा उसके विश्वासपात्र जनों को भाँति भांति के कष्टों से पीड़ित करने लगा। इसलिए अपना २०वां चातुर्यमास्य राजगृह में किसी तरह बिताकर भगवान ने संकल्प किया कि आगे सब चातुर्मास्य श्रावस्ती में ही बितावें। एक बार अग्नीक भारद्वाज से वार्तालाप करने में भगवान ने यह मत प्रकाशित किया कि ब्राह्मण और वृषल में जन्म से कोई भेद नहीं, कर्म से ही लोग ब्राह्मण अथवा वृषल होते हैं। जब देवदत्त के भगवान के विरुद्ध सारे प्रयत्न व्यर्थ हुए तो उसकी चिन्ता ऐसी प्रबल हुई कि उसको राजयक्ष्मा हो

गया। इस बात से डरकर अजातशत्रु भी प्रायः गौतम के पास आने लगा और उसको भी भगवान के सदुपदेश सुनने का अवसर मिलने लगा। थोड़े काल में वह भी बौद्ध हो गया। इसी बीच देवदत्त एक तालाब में फंस कर मर गया। महात्मा बुद्ध के अविश्रान्त परिश्रम का यह फल हुआ कि मल्ल, लिच्छवी, शाक्य आदि राजपुत्रों ने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया। एक बार अवध प्रान्त के शासक विरूधक ने कई कारणों से शाक्यो पर भारी क्रोध करके उनका सर्व-नाश कर डाला। अपना ४५ वां चातुर्मास्य श्रावस्ती में व्यतीत करके भगवान ने राजगृह जाते हुए मार्ग मे ध्वंसा-वशेष कपिलवस्तु का निरीक्षण किया। मार्ग मे भगवान पाटलिग्राम भी पहुंचे जहां उस काल एक दुर्ग बन रहा था। वहां आपने भविष्य भाषण किया कि "यह पाटलि-ग्राम पाटलिपुत्र (पटना) कहलायेगा। इसकी समृद्धि, सभ्यता और वाणिज्य बढ़ेंगे और यह सर्व श्रेष्ठ नगर होगा। परन्तु अन्त को अग्नि, जल और गृहविच्छेद से इसका सर्वनाश होगा।" उस काल वैशाली में आम्र पाली नाम्नी एक वेश्या रहती थी, जिसने एक बार भगवान का संघ समेत भोजनार्थ निमन्त्रण किया और भगवान ने यह निम-न्त्रण स्वीकार कर लिया। इस बात से लिच्छवी लोगों को कुछ अप्रसन्नता हुई परन्तु भगवान ने भक्त को न छोड़ा। थोड़े दिनों में आपको बिल्वग्राम में अपने प्रिय शिष्य सारि-पुत्र और मौद्गलायन का अशुभ समाचार मिला। इसी साल आपके शरीर में कठिन पीड़ा हुई जिससे आपके अमंगल का भय करके सारा भिक्षु वर्ग घबरा गया। उस काल अपने प्रिय शिष्य आनन्द को संबोधित करके भगवान ने कहा कि

सब लोगों के लिए मेरी आज्ञा है कि धर्म ही का आश्रय ग्रहण करें, किसी दूसरे का आश्रय न लेकर आत्मनिर्भरता पर दृढ़ रहें और निर्वाण प्राप्ति के लिए धर्म का दीप प्रदीप्त करें। जो लोग ऐसा करेंगें वही भिक्षुओं में अग्रगण्य होने का मान प्राप्त करेंगे। मेरे पीछे यदि कोई भिक्षु अथवा स्थविर तुम्हें किसी बात का उपदेश देवे तो मेरे सिद्धान्तों से उस उपदेश का मिलान करके अनुकूल होने ही पर मानना अन्यथा नहीं।

इतस्ततः भ्रमण करते हुए कुछ काल में भगवान पावा पहुँचे। वहां चुन्द नामक किसी कर्मकार ने आपका संघ समेत भोजनार्थ निमन्त्रण किया। भोजन करते समय जब भगवान ने देखा कि चुन्द सूअर का मांस परोसने वाला है तब उन्होंने आज्ञा की कि हे चुन्द! तुम मुझे छोड़ यह मांस और किसी को न देना क्योंकि मनुष्यलोक, देवलोक और ब्रह्मलोक मे बुद्ध को छोड़ कर और कोई इस मांस को पचा नहीं सकता। जो मांस मेरे खाने से बच रहे उसे यहीं पर गढ़ा खोद कर गाड़ देना। ऐसा ही किया गया। भगवान का शरीर पहिले ही से अस्वस्थ था और इक्यासीवें वर्ष में आपका वयक्रम पहुंच चुका था, सो शूकर मांस भक्षण से आपको आंव और लोहू के दस्त होने लगे। इसी दशा में आप कुशीनगर की ओर चल पड़े। मार्ग मे रोग के कारण कई स्थानों पर विश्राम करते हुए भगवान हिरण्वती नदी पार करके कुशीनगर के समीप एक शाल वन में ठहरे। उसी नगर में द्रोणाचार्य वंशोद्भव द्रोण नामक एक ब्राह्मण रहते थे। उन्ही की कुटी के समीप एक चारपाई लाकर लोगों ने दो शाल वृक्षों के बीच बिछाई और भगवान उसी पर दक्षिण की

ओर पैर करके लेट गये । इसी दशा में आनन्द ने भगवान का अन्तिम समय देखकर स्त्रियों के विषय में भिक्षुओं के कर्तव्य पूंछे । भगवान ने यथा साध्य अदर्शन और अनालाप की आज्ञा दी तथा यह भी कहा कि अनिवार्य होने पर आलाप अत्यन्त सावधानी से किया जावे । इसी समय सुभद्र नामक एक परिव्राजक भगवान से कुछ प्रश्न पूंछने के लिए उपस्थित हुआ । आनन्द ने भगवान की अंतिम दशा तथा शरीर को क्लान्त समझ कर उसे प्रश्न करने से रोका, किन्तु यह बात तथागत के कान में पड़ गई और आपने उसे प्रश्न करने की आज्ञा दी । सुभद्र ने तीन प्रश्न किये अर्थात्, "आकाश में रूपादि हैं वा नही, आपके शासन के अतिरिक्त अन्य कोई कल्याण मार्ग है वा नहीं और संस्कार शाश्वत है वा नही ।" भगवान ने पहिले दोनों प्रश्नों का उत्तर नही में दिया और तीसरे के विषय में आज्ञा दी कि सब संस्कार नाशमान हैं, सारी प्रजा प्रपंच में रत है, केवल तथागत निष्प्रपञ्च है । ज्ञानी को किसी बात की इच्छा नहीं होती ।

अनंतर इक्यासी वर्ष की अवस्था में संसार के सबसे बड़े इस उपदेशक ने अंतिम बार अपनी आंखें मूंद लीं और वह निर्वाण को प्राप्त हुआ । इस प्रकार तथागत ने संसार में २५ वर्ष ब्रह्मचर्य व्रत पालन एवं अध्ययन में बिताये, २८ वर्ष की अवस्था में गृह त्याग किया, ३५ वर्ष की आयु में ज्ञान लाभ किया, और ४१ वर्ष तक संसार मे उसका उपदेश करके ८१ वर्ष की आयु में ४२७ सं० पू० में निर्वाण प्राप्त किया । यह समाचार सुन मल्लराज बहुत मल्ल क्षत्रियो समेत बड़े समारोह के साथ उस स्थान पर पहुंचा । भगवान का शरीर

तेल की नाव में रक्खा गया और चारों ओर भिक्षुसंघों को सूचना दी गई । सातवें दिन अंत्येष्टि क्रिया के लिए शरीर चिता पर धरा गया । देश देश से बौद्ध भिक्षु एकत्र हो चुके थे । अग्नि संस्कार के थोड़े ही पहिले महाकाश्यप ५०० शिष्यों समेत आये । उन्होंने चिता की तीन बार प्रदक्षिणा करके भगवान के शरीर की पाद वंदना की । अनंतर अग्नि संस्कार किया गया और बात की बात में यह अमूल्य शरीर जल कर भस्म होगया । दूसरे दिन अस्थिचयन की क्रिया हुई और तथागत की हड्डियां एक घड़े में रक्खी गईं । मल्लराज ने चिता के स्थान पर स्तूप बनाने का प्रबन्ध किया । इसी बीच मगध राज अजातशत्रु, वैशाली के लिच्छवियों, कपिलवस्तु के शाक्यों, अल्ल कल्प के वूलयों, राम ग्राम के कोलियो और पावा के मल्लो ने कुशीनगर के मल्लराज के पास दूत भेज कर लिख भेजा कि "भगवान क्षत्रिय थे । हम भी क्षत्रिय हैं । इस नाते उनके शरीर पर हमारा भी स्वत्व है" । वेठरीति के ब्राह्मणो ने भी इसी विषय पर मल्लराज को लिखा । यह देख मल्लराज ने कहा कि भगवान का शरीर हमारी सीमा मे छूटा है अतः हम किसी को न देवेंगे । यह सुन शेष राजे दल बल समेत कुशीनगर पर चढ़ दौड़े और घोर युद्ध की संभावना होने लगी । यह देख महात्मा द्रोणाचार्य ने सब के बीच खड़े होकर कहा कि हे क्षत्रियो ! जिस महात्मा ने यावज्जीवन शान्ति का उपदेश दिया उसी की अस्थि के अवशिष्टांश के लिए यदि आप घोर युद्ध करें तो बड़ी लज्जा की बात है । मैं इस पवित्र अस्थि निचय के आठ भाग किये देता हूं । आप लोग अपने अपने भाग लेकर सब दिशाओं मे उनके ऊपर स्तूप बनाइये जिससे

उस की कीर्ति दिगन्तव्यापिनी हो। इस उचित सम्मति पर सब लोग सहमत हुए और द्रोणाचार्य ने तथागत की पवित्र अस्थियों के आठ भाग करके कुशीनगर पावा, वैशाली, कपिलवस्तु, अल्ल कल्प, राजगृह और वेठद्वीप वालों में बांट दिये। अनन्तर पिप्पलीय वन के मोरी क्षत्रियों का दून भी भाग लाभार्थ आ पहुंचा । द्रोणाचार्य ने उसे चिता की भस्म देकर विदा किया । तदनंतर जिस कुंभ में हड्डियां रक्खी गई थीं उसे सब से मांग कर उसपर द्रोणाचार्य ने स्वयं स्तूप बनवाया ।

बौद्ध धर्म के कुछ अंगों का कथन भगवान बुद्ध के उपरोक्त जीवन चरित्र में आगया है। इस महान धर्म के मुख्य सिद्धान्तों का दिग्दर्शन कराना भी हम आवश्यक समझते हैं। यह स्वयं भगवान के उस उपदेश का सार है जो आपने भिक्षु संघ को आमंत्रित करके महावत कुटागार शाला में प्रयाण के थोड़े ही पहिले दिया है। आपकी आज्ञा थी कि ब्रह्मचर्य स्थापन करना चाहिये। बौद्ध धर्म के सात रत्नों को आपने सप्तत्रिंशच्छिक्ष्यभाण धर्म कहा है । वे ये हैः—स्मृत्युपस्थान, सम्यक् प्रहाण, ऋद्धिपाद, इन्द्रिय, बल, बोध्यंग और मार्ग। स्मृत्युपस्थान चतुर्धा है, (१) शरीर अपवित्र है, (२) संसार की सब वेदनायें दुःखमयी हैं (३) चित्त चंचल है और (४) संसार के सब पदार्थ क्षणिक हैं । पदार्थों में रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार की गणना है । सम्यक् प्रहाण भी चतुर्विध है अर्थात् अर्जित पुण्य संरक्षण, अलब्ध पुण्योपार्जन, अर्जित पाप परित्याग और अलब्ध पापानुत्पत्ति। ऋद्धिपाद के दृढ़ संकल्प, उद्योग, उत्साह और आत्मसंयम अंग हैं। श्रद्धा, समाधि, वीर्य, स्मृति और प्रज्ञा को इन्द्रिय

कहा है तथा इन्हीं पांचों का बल बल कहा है । बोध्यंग सप्तधा है अर्थात् स्मृति, धर्म संचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि और अपेक्षा । आर्य मार्ग अष्टधा है जिसका वर्णन ऊपर अष्टांगिक मार्ग अथवा मध्यमा प्रतिपदा कह कर हुआ है । भगवान का कथन है कि इन्हीं ३७ पदार्थो को लेकर मैंने धर्म की व्यवस्था की है ।

अहिंसा और निर्वाण बौद्धधर्म के मूल मंत्र हैं । तथागत का विचार था कि दुःख का मूल वासना है । वासना से कर्म, कर्म से कर्मफल और उससे दुःख की उत्पत्ति हैं । अतएव दुःख के निराकरणार्थ वासना का हनन आवश्यक है । वासना नाश से आत्यन्तिक सुख भव शान्ति मिलती है जिसे निर्वाण कहते हैं । यह पद सभी को प्राप्त हो सकता है और जाति पांति का इसमें कुछ भेद नहीं है क्योंकि धर्म आत्मा से संबन्ध रखता है जो सब में एक है । तात्कालिक मुख्य धार्मिक सिद्धान्तों पर आपका विचार था कि यज्ञ तिरस्करणीय है । ईश्वर तथा वेद की आपने निन्दा कभी नहीं की, किन्तु अपनी धार्मिक व्यवस्था में उन्हें स्थान न दिया और सदा उपेक्षा की दृष्टि से देखा । तपश्चर्या को आप व्यर्थ समझते थे और सम्यक् व्यायाम आपके मुख्य धार्मिक सिद्धान्तों मे से एक था । बौद्ध धर्म की मुख्यता वासना हनन द्वारा निर्वाण प्राप्ति है ।

भगवान के पीछे जब उनकी शिक्षा पर धार्मिक विचार उठे तब बौद्धों के चार भेद हुए अर्थात् सौत्रान्तिक, वैभाषिक, योगाचार और माध्यमिक । सौत्रान्तिक तथा वैभाषिक,

योगाचार और माध्यमिक । सौत्रान्तिक तथा वैभाषिक

लोग विज्ञान और उसके बाहर के पदार्थ दोनों को मानते हैं। वैभाषिक लोगों का कथन है कि वाह्य पदार्थ प्रत्यक्ष हैं अर्थात् इन्द्रियों द्वारा जो वस्तु जैसी है वैसी ही ज्ञात होती है। यह लोग इन्द्रिय भव ज्ञान को सत मानते हैं। सौत्रान्तिक लोगों का विचार है कि हमारे लिए केवल हमारा ज्ञान प्रत्यक्ष है और वाह्य पदार्थों की स्थिति अनुमान से ही जानी जाती है अर्थात् हम अपने ज्ञान के आधार पर वाह्य पदार्थों की स्थिति का अनुमान करते हैं। येगाचारियों का मत है कि ज्ञान ही ज्ञान है और वाह्य पदार्थों का हम भूल से अनुमान करते हैं। माध्यमिक लोग सर्वशून्यवादी हैं। यह लोग ज्ञान धारा का भी नाश मानते हैं। आजकल मतवादियो का प्राधान्य नहीं है और बौद्धों में उत्तरीय तथा दाक्षिणात्य दो ही प्रधान मत हैं जिन्हें महायान और हीनयान भी कहते हैं।

महात्मा बुद्ध देव के निर्वाण के पीछे ही लोगों का यह विचार हुआ कि बौद्ध धर्म की मुख्यताओं को स्थिर कर लेना चाहिये। इसलिए महाराजा अजातशत्रु के संरक्षकत्व में ५०० बौद्ध भिक्षुओं की पहिली सभा राजगृह की सप्तपर्णी गुहा में हुई। इसके संगठित करने मे मुख्य प्रयत्न काश्यप का था और वही इसके सभापति थे। इसमें आनन्द और उपाली ने भगवान के वाक्यों का गान किया और शेष लोगो ने उसे दोहराया। इन कथनो को इस सभा ने तीन बड़े संग्रहों मे संगृहीत किया, जिन्हें सूत्रपिटक, अभिधर्म और विनयपिटक कहते हैं। इन तीनों का एक नाम त्रिपिटक है। अब यह ग्रंथ प्रस्तुत नहीं है किन्तु अनुमान किया जाता है कि हीनयान और महायान के त्रिपिटक ग्रंथों में इसका मुख्य

भाग वर्तमान है। कहते हैं कि हीनयान का त्रिपिटक इसका तृतीय संस्करण है। दूसरी बौद्ध सभा पहिली से सो वर्ष पीछे वैशाली में हुई और तीसरी महाराजा अशोक के समय १६३ सं० पू० में पाटलिपुत्र में हुई। इसीका त्रिपिटक हीनयान का त्रिपिटक है। चौथी बौद्ध सभा महाराजा कनिष्क ने कश्मीर में कराई जिसमें महायान का त्रिपिटक बना और बौद्ध ग्रन्थो का संस्कृत में उल्था हुआ।

यद्यपि महात्मा बुद्धदेव ने ही अपने धर्म का, उपासक धर्म तथा श्रमण धर्म नामक, दो विभागों में वर्णन किया है जिनमें पहला गृहस्थों से संबन्ध रखता है और दूसरा गृहत्यागियों से, तथापि आपने प्रधानता संन्यासियो ही की रक्खी और महाराजा अशोक के पूर्व बौद्ध धर्म बहुत करके संन्यासियों ही का रहा और गृहस्थों ने उसे न अपनाया। महाराजा अशोक के पूर्व लोगो ने बहुत करके इसे हिन्दू मत से भिन्न कोई अन्य धर्म न समझा और केवल संन्यासियों की पृथक् शाखा मानी। महाराजा अशोक ने बड़े चाव के साथ इसका प्रचार गृहस्थों में भी किया और तभी से यह सांसारिक धर्म माना जाने लगा। बौद्ध धर्म के लिए अशोक का वही पद है जो मुसलमानी मत के लिए ख़लीफ़ा उमर का। इन दोनो महात्माओं ने अन्य महाशयों द्वारा प्रचारित मत को बड़े चाव से फैलाया। अशोक के पूर्व भी गौतम बुद्ध का प्रभाव भारतवर्ष मे बड़ा ही चामत्कारिक हुआ था। इनसे पूर्व व्यक्तित्व की ऐसी भारी महत्ता भारत में कभी न हुई थी। इनके समय पर्यन्त भारत में वेदर्षि, ब्राह्मणकार, उपनिषद्कार, सूत्रकार आदि अनेकानेक महानुभाव हो चुके थे, किन्तु गौतम बुद्ध के समान उनके व्यक्तित्व का

प्रभाव देश पर नहीं पड़ा था और देश ने उन व्यक्तियों को प्रधानता न देकर उनके उपदेशों ही पर ध्यान लगाया था। इस व्यक्ति प्रभावाभाव का प्रधान कारण यह भी था कि अबतक आचार्यों के मत समुदाय में भारी अन्तर नहीं पड़ा था और धार्मिक विचार धीरे धीरे, बिना किसी भारी उलट फेर के, ऐसा विकसित होता आया था कि नवागत विचारों की नवीनता पर देश का ध्यान भी नहीं गया था। हमारा धार्मिक अंकुर धीरे धीरे बढ़ता हुआ गगनावलम्वी वृक्ष हो गया था, किन्तु प्रत्येक नये आचार्य ने नवविचारों का प्राचीनता के साथ ऐसा सुन्दर संमिश्रण किया था कि यह किसीने न देख पाया कि यह अंकुर किस समय और कैसे कैसे गगनावलम्वो वृक्ष बन गया। महात्मा बुद्ध ने उसकी टेढ़ी शाखा तथा पल्लवों का ऐसी शीघ्रता से काट छांट किया और धार्मिक संसार में ऐसी भारी खलबली मचाई कि मानों जादू के ज़ोर से एकाएक दूसरा वृक्ष खड़ा कर दिया। ऐसी दशा में व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ना स्वभाविक था और हुआ भी ऐसा ही। यद्यपि इन्होंने ईश्वर तक को न माना तथापि हिन्दुओं ने इनमें विशेष ईश्वरांश पाकर इन्हें अवतारी पुरुष समझा। बुद्ध के पूर्व हिन्दुओं में अवतार का विचार भी न उठा था किन्तु इनके निर्वाण से दो सौ वर्ष भीतर वह ऐसा दृढ़ हो गया था कि चंद्रगुप्त के समकालीन यूनानी राजदूत मेगस्थनीज़ ने मथुरा में अवतार पूजन की स्थिति भली भाँति प्रचलित पाई। जान पड़ता है कि अवतार का विचार महात्मा बुद्ध के साथ उठ कर बहुत शीघ्रता से विकसित हुआ और इनसे पहिले वाले राम कृष्णादि आठ महात्मा भी अवतार माने जाने लगे और एक

भविष्य अवतार की भी विधि हुई। बौद्ध काल के पूर्व हिन्दुओं में त्रिदेव का विचार कुछ दृढ हो चुका था। आदिम बौद्ध काल में इस की पूरी दृढ़ता हुई और अवतारों का विचार भी उठकर शीघ्र दृढ़ हो गया। महाराजा अशोक के समय पर्यन्त तत्कालिक हिन्दू सिद्धान्तों का प्रभाव बौद्ध मत पर नहीं पड़ा था, किन्तु ज्यों ही बौद्ध मत को सर्व साधारण ने ग्रहण किया त्यों ही उसपर उनके विचारों का प्रभाव पड़ने लगा और समय के साथ वह भी बदलता चला एवं उसका हिन्दू मत से साम्य होता चला। हिन्दू समाज में त्रिदेव और अवतारों के विचार बड़े दृढ़ थे। ज्यों ज्यों बौद्धमत इनमें फैलता गया, त्यों त्यों लोक में तथागत का माहात्म्य भी बढ़ता गया और बुद्ध संबन्धी विचारों में क्रमशः मानुषीय गुणों की हीनता तथा दैवी गुणो को प्रचुरता बढ़ती गई, यहां तक कि समय पर बहुत लोग उन्हें मनुष्य छोडकर पूरा देवता मानने लगे और हिन्दू देवताओं में उन्हें भी स्थान मिल गया। अब हिन्दुओं और इन बौद्धों मे मुख्य भेद यही रहा कि देव समाज में हिन्दू लोग बुद्ध का पद नीचा समझते थे किन्तु बौद्ध लोग सर्वोत्कृष्ट। ये बौद्ध लोग भी हिन्दू देवताओं को देवता मानते थे किन्तु देव भाव में महात्मा बुद्ध को सब से ऊंचा समझते थे। इधर हिन्दू लोग भी बुद्ध को देवता मानते थे किन्तु पद नीचा देते थे। जो बौद्ध लोग इस नवीन परिवर्तन को ग्राह्य न समझ कर पुराने मत को मानते गये उनका मत हीनयान कहलाया। इधर परिवर्तित बौद्ध धर्म महायान कहलाने लगा। इसीलिए महाराजा अशोक के समय का त्रिपिटक हीनयानीय तथा महाराजा कनिष्क के समय का महायानीय है। महाराजा

अशोक के समय में जिन जिन देशों में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ वहां अब भी हीन यान मत चलता है। इनमें लंका, श्याम, ब्रह्मदेश आदि की गणना है। महाराजा कनिष्क के समय मे अथवा उनसे पीछे जहां जहां बौद्ध धर्म फैला वहां महायान का मान रहा। इन देशों में तिब्बत, चीन, जापान, मंगोलिया आदि की गणना है। महायानीय बौद्ध धर्म पर शैव मत का विशेष प्रभाव पड़ा था। तिब्बत के मूल धर्म के साथ ही साथ तंत्र मंत्रों की वृद्धि होती रही। वहां स्वर्ग नरक के विचारों में भी बहुत विस्तार हो गया। देवताओ की वृद्धि तिब्बत में विशेष हुई। बुद्ध, मंजूसरी, अवलोकितेश्वर आदि के विचार बढ़कर देव भाव को प्राप्त हुए। पोपों की भांति लामा लोगों का प्रभाव बढ़ा। लामा दो प्रकार के हैं अर्थात् पन्नश्येन और दलाई। ये दोनो क्रमशः अमिताभा और अवलोकितेश्वर के अवतार माने जाने लगे। चीन मे बौद्ध मत ने महात्मा कान्फ्यूशस के मत से मिलकर एक नवीन रूप धारण किया जो अब तक वर्तमान है। जापान में बौद्ध देवताओं के साथ शिन्तो देवता भी मिल गये। शुद्ध महायान मत भारत मे रहा। स्वयं गौतम बुद्ध का मत हीनयान था। महायान में माहात्म्य वृद्धि और हिन्दू प्रभाव भी संमिलित हैं और तिब्बत, चीन तथा जापान के मतों में उन उन देशों की प्रधानतायें आ गई हैं।

जैसे आज कल आर्य समाज और सनातन धर्म दो होने पर भी एक है, क्योंकि कोई भी यथा रुचि एक से दूसरे में बेखटके आ जा सकता है, वैसे ही भारतीय हिन्दू और बौद्ध मत हिन्दू मुसलमान धर्मों की भांति पृथक कभी नहीं हुए। इन दोनो में सामाजिक भिन्नता बिलकुल न थी और कोई

मनुष्य यथोरुचि हिन्दू अथवा बौद्ध हो सकता था। यह दोनों पृथक् धर्म न होकर पृथक् मत मात्र थे। मौर्य काल पर्यन्त बौद्ध मत भी गण्य रहा और दाक्षिणात्य आंध्रों ने भी इसे अपनाया, किन्तु शुंगों तथा काण्वों ने हिन्दू मत की ही प्रधानता रक्खी। गुप्तों के राजत्वकाल में बौद्धमत का बहुत कुछ पतन हो गया और हर्षवर्धन के समय कुछ उन्नति पाकर महात्मा शंकराचार्य के काल में यह भारत से प्रायः निर्मूल हो गया। फिर भी पाल आदि राजाओं में इसकी कुछ सत्ता बनी रही, किन्तु मुसलमानी अत्याचारों ने इसे सदा के लिए भारत से विदा कर दिया। हिन्दू समाज पर इसका मुख्य प्रभाव दयावृद्धि में हुआ। दशावतारों के वर्णन में हिन्दुओं की दृष्टि से महात्मा बुद्ध का मुख्य कर्म "कारुण्य मातन्वते" द्वारा कहा जाता है। वास्तव में करुणा एवं क्षमा इनके पवित्र जीवन का एक बहुत बड़ा अंग थी। महाराजा उदयन की ब्राह्मण स्त्री मागंधी द्वारा प्रेरित दुष्टों ने मार्ग में इन्हें कई बार गालियां भी दीं किन्तु आपने किसी प्रकार का क्रोध न किया। बुद्ध के भारी माहात्म्य वर्धन से भारत में पहले पहल बौद्धों द्वारा प्रतिमा पूजन का भी विचार हुआ। इस दुर्गुण अथवा सुगुण को हिन्दुओं ने भी बड़े चाव से ग्रहण किया। स्त्रियों का पद बौद्ध समाज में पुरुषों की अपेक्षा कुछ नीचा था। बौद्ध धर्म के अभ्युदय से भारत में धीरे धीरे स्त्रियों का पद पहले से नीचा हो गया। अतः बौद्ध धर्म के तीन प्रधान प्रभाव हिन्दू समाज पर पड़े, अर्थात् स्त्रि-अधिकार-पतन, प्रतिमा-पूजन और कारुण्य-वर्धन।

उस काल यज्ञ संबन्धी वलिदानों की अनुचित वृद्धि से हिन्दू समाज कुछ कुछ निर्दयता का दोषी हो चुका था। इसी लिए न केवल बुद्ध ने वरन् जैनियों के २४वें तीर्थङ्कर वधर्मान उपनाम महावीर ने भी अहिंसा और दया का प्रतिपादन किया। आपका जन्म ५४२ सं० पू० में नाथ क्षत्रिय बंश में वैशाली में हुआ था। आप भी २८ वर्ष की अवस्था पर्यन्त गृही रहे और आपके एक पुत्री उत्पन्न हुई। अनन्तर अ प भी जंगल में चले गये। यह जंगल शायद महावन था। १४ वर्ष के कठिन परिश्रम से आपने मानुषीय कष्टों का मूल जाना और ५०० सं० पू० से लगाकर ३० वर्ष पर्यन्त (४७० सं० पू० तक) संसार में अपने सिद्धान्तों का उपदेश किया। इस अन्तिम वर्ष दीवाली के दिन पावा पुरी में आपने निर्वाण प्राप्त किया। कुछ जेनो का मत है कि महावीर ने जैन धर्म चलाया नहीं वरन् उसे फैलाया। वे पार्श्वनाथ को जैन धर्म प्रवर्तक मानते हैं। आपका शरीर पात सं० पू० ७१६ मे हुआ था। कहते हैं कि जैन धर्म के आदिम प्रवर्तक महात्मा ऋषभ देव थे और पार्श्वनाथ तथा महावीर केवल २३वें तथा २४वें तीर्थङ्कर थे। २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ कहे जाते हैं। कहते हैं कि ये श्रीकृष्ण चन्द्र के चचा के पुत्र थे। जैन ग्रंथों का यह कथन हिन्दू ग्रंथों से समर्थित नहीं है अतः अनिश्चित समझ पड़ता है। महावीर के पीछे ११ अंग और १४ पर्वो का ज्ञान सं० २१३ पर्यन्त प्रचलित रहा। कहते हैं कि महावीर के पीछे ६२ वर्ष पर्यन्त गौतम, सुधर्म और जम्बू नामक तीन केवलियों ने जैन धर्म सुरक्षित रक्खा। अनंतर ३०८ सं० पू० पर्यन्त विष्णुनंदिन, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु नामक पांच श्रुति केवलियों ने इस धर्म के तत्वों की

रक्षा की। तदनंतर ५२१ वर्ष तक १० पूर्वियों, ११अंगियों, चतुरंगियों और एकांगियों ने इसको सुरक्षित रक्खा। बौद्ध तत्वों की भांति जैन धर्म के तत्व भी बहुत काल तक लिपिबद्ध नहीं हुए वरन् स्मरण शक्ति द्वारा रक्षित रहे। सं० पू० ४ थी शताब्दी में श्वेताम्बरों और दिगम्बरों की शाखायें निकलीं। श्वेताम्बरों का मत है कि पाटलिपुत्र की सभा ने सं० पू० तीसरी शताब्दी के मध्य में जैन तत्वों को दृढ़ किया और वल्लभी की सभा ने संवत् ५११ में उसे अंतिम रूप दिया। यह सभा देवर्धि ज्ञानी की अध्यक्षता में हुई। इस काल ८४ ग्रंथ मुख्य माने गये, अर्थात् ४१ सूत्र, ३० प्रकीर्णक, १२ निरुक्त और एक महाभाष्य। दिगम्बरों का विश्वास है कि उनके ग्रंथ ११४ संवत् में लिखे गये।

जैनों के मुख्य तीन सिद्धान्त है अर्थात् मनुष्य को देवत्व प्राप्ति का अधिकार, और स्याद्वाद अहिंसा। जैनों का विचार है कि मनुष्य को आध्यात्मिक बल से शारीरिक स्थूल प्रकृति को स्ववश रखना चाहिये। स्थूल प्रकृति के पूर्णतया वशीभूत होने से ही मनुष्य को पूर्णत्व, स्वतन्त्रता और परमानन्द प्राप्त होते हैं। ऐसे ही स्वतंत्र और आनन्दयुक्त प्राणी को जिन अथवा तीर्थङ्कर कहते हैं। यदि ये धर्मोपदेश करें तो तीर्थङ्कर हैं नहीं तो सामान्य सिद्ध। प्रत्येक धार्मिक जैन को नित्य पंच परमेष्ठिनों को निम्नानुसार प्रणाम करना चाहियेः—नमो अर्हन्तानं, नमो सिद्धानं, नमो आचार्याणं, नमो उपज्झायानं, नमो सोये सब्ब साधूनं। जैन मत एक ईश्वर तथा अनेक देवताओं में श्रद्धा रखता है। इसके अनुसार संसार ईश्वर निर्मित नहीं है।

जैन तथा बौद्ध आचार्यों ने ब्राह्मण सन्यासियों के विचार बहुत अंशों में मान लिये हैं। आवागमन तथा कार्मिक सिद्धान्त उनके दर्शनों में घुसे हुए हैं। किन्तु इन्होंने अहिंसा को प्रधानता दी। अहिंसा का विचार पूरा पूरा शतपथ ब्राह्मण में पाया जाता है। यही दशा इन मतों के अन्य प्रधान विचारों की है। वे सब प्रचीन हिन्दू धर्म ग्रन्थों में पाये जावेंगे। अतः प्रकट है कि इन दोनों धर्मों ने नवीन विचार न उत्पन्न करके प्राचीन हिन्दू सिद्धान्तो में से किन्हीं किन्ही को मुख्यता दी है। हीनयान मत का संबंध छान्दोग्य उपनिषद् और सांख्यदर्शन से समझ पड़ता है। महायान दर्शन हीनयानिक दर्शनशास्त्र से कुछ पृथक हो गया। महायान ने प्रेम को प्रधानता दी। इस प्रकार महायानिक सिद्धन्तों का लगाव शैव तथा वैष्णव सिद्धान्तो से विशेष हुआ। अतः जैसे जैसे उपनिषद् और दर्शनकाल का हिन्दूमत उन्नति करता हुआ शैव तथा वैष्णव सिद्धान्तों पर आरहा था, वैसे ही वैसे बौद्ध मत का हीनयान समय के साथ बढ़ता हुआ महायान में परिणत हो रहा था। हिन्दू और बौद्ध का प्रभाव एक दूसरे पर पड़ रहा था और मुख्य मुख्य सिद्धान्तों को छोड़ अमुख्य बातों में उनका एकीकरण हो रहा था। सं० पू० पहिली शताब्दी में विष्णु, शिव और बुद्ध साथ ही साथ देवता माने जाते थे। चीनी और जापानी बौद्ध एक प्रकार के तांत्रिक, पौराणिक हिन्दू हैं; क्योंकि उनका बौद्ध धर्म हिन्दुओं के वर्तमान तांत्रिक तथा पौराणिक मतों का रूपान्तर है। याज्ञिक सेवा चीनियों के प्रधान धार्मिक अंगों में से एक है। चीनियों के मुख्य धर्म ग्रन्थ शीकिंग और शूकिंग हैं। वे भी अग्नि को पुनीत करने वाला

(पावक) समझते हैं। चीनियों ने पहले पहल पृथ्वी और आकाश की पूजा की। ताऊ धर्म बुद्ध पूर्व हिन्दू धर्म से कई अंशों में मिलता था। इससे पूर्व में वहां भी ब्राह्मणों का महत्व समझ पड़ता है। मुक्ति की ईहा चीन में भी भारत के समान प्राचीन है। पूर्वकालिक एशिया को प्रकाण्ड ज्ञान ज़रतुश्त या ज़ोरोस्टर (६०३-५२६ सं० पू०), शाक्यसिंह या बुद्ध (५०७—४२७ सं० पू०), और कान्फ्यूशस (४९४—४२२ सं० पू०) ने सिखलाया। जो विचार अब कान्फ़्यूशस के नाम से प्रचलित हैं उनके दृढ़ करने में उनसे इतर अनेकानेक महात्मा सम्मिलित थे। कान्फ़्यूशस ने उन विचारों का संकलन मात्र किया। कान्फ़्यूशस के समकालीन लोगों ने उनका समुचित मान नहीं किया क्योंकि आप स्वयं लिखते हैं कि जब संसार मे मेरे विचार प्रचलित नहीं होते हैं तब मैं प्रसिद्ध कैसे हो सकता हूं ? शाक्यसिंह मुख्यतया दार्शनिक थे और कान्फ़्यूशस इतिहासज्ञ एवं समाजशास्त्र-वेत्ता। इन बातों से हिन्दू और चीनी धार्मिक विचारों का साम्य समझ पड़ता है। उपरोक्त विचारो से प्रगट होगा कि बौद्ध मत हिन्दू मत से बहुत पृथक् न था वरन् बौद्ध और हिन्दू विचारो ने मिल कर पूर्वीय धार्मिक ज्ञान को परिष्कृत किया है। इनका प्रभाव पाश्चात्य मत समुदाय पर भी बहुत पड़ा है जैसा कि तीसरे अध्याय मे दिखाया जा चुका है। अतः बौद्धकालीन भारत मत संशोधन ने न केवल भारत पर वरन् सारे संसार पर प्रभाव डाला है। महात्मा गौतम बुद्ध की जीवनी, सिद्धान्तो तथा समकालीन उपदेशकों के विषय में कुछ कथन हो चुके हैं तथा बौद्ध धर्म के विस्तार एवं इतिहास का कुछ दिग्दर्शन कराया जा चुका है। अब

बुद्ध के ग्रंथों का कुछ वर्णन शेष है। बौद्ध मत का सर्व प्रधान ग्रंथ त्रिपिटक है जिसके समय समय पर ४ संस्करणो का हाल हम चारों बौद्ध सभाओ के साथ सुन आये हैं। इसे स्वयं बुद्ध कृत ग्रंथ समझना चाहिये। दत्त महाशय ने इसके भागों का अच्छा कथन किया है। अतः इस कथन मे हम विशेषतः उन्ही का आधार लेकर चलेंगे यद्यपि कई बातें अन्यत्र से भी ली गई हैं। त्रिपिटको में पहले का नाम सूत्र है जिनमें बुद्ध की वार्ता तथा उनके किए हुए निरूपण हैं, दूसरे का विनय (जिसमें पूजन और सद्व्यवहार के नियम हैं) तथा तीसरे का अभिधर्म है जिसमे आज्ञाएँ एवं शास्त्रीय विचार हैं।

सुत्तपिटिक—१-दीर्घ निकाय अर्थात् बड़े ग्रन्थ जिनमें ३४ सूत्तो का संग्रह है।

२-मज्झिम निकाय अर्थात् मध्यम ग्रन्थ जिनमें मध्यम विस्तार के १५२ सूत्त हैं।

३-सम्युत्त निकाय अर्थात् संबद्ध ग्रन्थ।

४-अंगुत्तर निकाय अर्थात् ऐसे ग्रन्थ जिनमें कई भाग हैं और प्रत्येक भाग का विस्तार एक एक करके बढ़ता गया है।

५-खुद्दक निकाय अर्थात् छोटे ग्रन्थ। इनमें १५ ग्रन्थ हैं जिनका वर्णन हम विस्तारपूर्वक करेंगे:—

१-खुद्दक पाथ अर्थात् छोटे छोटे वचन।

२-धम्मपद जिसमें धार्मिक आज्ञाओं का एक अच्छा संग्रह है।

३-उदान जिसमें ८२ छोटे छोटे छन्द हैं और ऐसा कहा जाता है इन्हें गौतम ने भिन्न भिन्न समयों में बड़े जोश में कहा था ।

४-इति वुत्तिक अर्थात् बुद्ध की कही हुई ११० बातें ।

५-सुत्तनिपात जिसमे ७० शिक्षाप्रद छन्द हैं ।

६-विमान वत्थु जिसमे स्वर्गीय महलों की कथायें हैं ।

७-पेतवत्थु जिसमें प्रेतों का विषय है ।

८-थेरगाथा जिसमें भिक्षुओं के लिए छन्द हैं ।

९-थेरी गाथा जिसमें भिक्षुनियों के छन्द हैं ।

१०-जातक जिसमें पूर्व जन्मों की ५५० कथायें हैं ।

११-निद्देश जिसमें सुत्तनिपात पर सारिपुत्र का भाष्य है ।

१२-पति सम्भिदा जिसमें अंतर ज्ञान का विषय है ।

१३-अपदान जिसमें अर्हतों की कथायें हैं ।

१४-बुद्धवंश जिसमें गौतम बुद्ध तथा उनके पहिले के बुद्धों के जीवन चरित्र हैं ।

१५-चरिया पिटक जिसमें गौतम बुद्ध के पूर्व जन्मो के सुकर्मों का वर्णन है ।

विनय पिटक—१ विभंग डाक्टर ओडेनबर्ग और डाक्टर रिज़ डेविड्स महाशयों का मत है कि यह पाति मोक्ख का केवल विस्तृत पाठ है ।

२-खंडक अर्थात् महावग्ग और चुल्लावग्ग।
३-परिवार पाथ, यह विनय पिटक का पूर्व के भागों का एक पिछला संस्करण और परिशिष्ट भाग है।

अभिधम्म पिटक—१-धम्म संगनी जिसमें भिन्न भिन्न लोकों की जीवनावस्थाओं का वर्णन है।
२-विभंग जिसमें शास्त्रार्थ की १८ पुस्तकें है।
३-कथा वत्थु जिसमें, विवाद के १००० विषय हैं।
४-पुग्गल पञ्ञत्ति जिसमे शारीरिक गुणों का विषय है।
५-धातु कथा जिसमें तत्वों का वर्णन है।
६-यमक जिसमे एक दूसरे से भिन्न या मिलती हुई बातों का वर्णन हैं।
७-पत्थान जो अस्तित्व के कारणो के विषय मे है।

ये पिटक महात्मा बुद्ध के निर्वाण काल के थोड़े ही दिन पीछे संकलित हुए जब कि बौद्धो की पहली महासभा हुई थी। इसके बहुत दिन पीछे अशोक के समय मे प्रायः २०० सं० पू० उत्तरीय बौद्धों के धर्म ग्रन्थ संकलित हुए। इनके अनुवाद कई भाषाओं में हैं जैसे तिब्बती, चीनी, मंगोलियन। काल्मुक इत्यादि। ये संस्कृत में भी पाये जाते हैं। दक्षिणी बौद्धों के धर्म ग्रन्थ अब संस्कृत मे नहीं मिलते पर सम्वत ४६७ व ४८६ के बीच मे उनके अनुवाद पाली में हुए जो वर्त-

मान हैं । इन ग्रंथों के भी वही तीन विभाग हैं जो त्रिपिटकों के । दक्षिणी बौद्धों के धर्म ग्रंथ उत्तरी वालों से बहुत कम हैं ।

पाली के ऐतिहासिक ग्रंथ महावंश को महानाम नामक व्यक्ति ने सम्वत ५३७ में बनाया ।

मागधी भाषा पीछे से पाली कहाई पर उसका पूर्ण विकास लंक मे हुआ ।

सूत्त ग्रथों के दो विभाग हैं अर्थात सूत्र मात्र और महावैपुल्या या महायान सूत्र । दूसरे कुछ नूतन हैं और उनमे बुद्ध का सत्संग प्रायः देवताओ तथा बोधिसत्वो का ही लिखा गया है पर साधारण सूत्तों मे उनके साथी मनुष्यमात्र कहे गए हैं । और देवताओं का नाम कम आया है । इनमें उत्तरी बौद्धों के विशिष्ट आराध्य देवों (यथा अमिताभ, मंजूश्री, आदि बुध इत्यादि) का नाम तक नहीं है तथा मंत्र तंत्रों का भी पता नहीं मिलता पर महावैपुल्य सूत्रो में इनकी भर मार है । सूत्र गद्य में ही हैं पर महावैपुल्य सूत्रों मे छोटे बड़े पद्य भी अनेक हैं । फ़ाहियान की यात्रा (सम्वत ४५६-६७१) के समय महावैपुल्य सूत्रों का अच्छा प्रचार हो चुका था ।

महात्मा गौतम ने अन्य उपदेशकों की भांति लोक प्रचलित भाषा ही को उपदेश के लिए उचित समझा । इस लिए संस्कृत मे ग्रंथ न लिख कर आपने अपनी रचनाओं के लिए कोक प्रचलित पाली भाषा का ही व्यवहार किया । यही दशा मौर्य काल पर्यन्त स्थिर रही । किन्तु पीछे से बौद्ध मत का हिन्दू मत से विशेष संमिश्रण हुआ जिससे कुशन कालीन त्रिपिटक का संस्करण संस्कृत में हुआ । सुत्तपिटक में महात्मा गौतम के सिद्धान्त और आज्ञायें उन्हीं के शब्दों मे कही गई हैं ।

विनय पिटक में भिक्षुओं, भिक्षुनियों आदि के विषय में नियमो पनियम हैं। कुछ लोगों का मत है कि विनयपिटक की कुछ आज्ञायें गौतम बुद्ध के पीछे प्रचारित हुईं। अभिधम्म पिटक के विषय उपरोक्त सूची से कुछ अधिक कहना अनावश्यक है। जातकों की कथायें यद्यपि बहुत स्थानो पर अनैतिहासिक हैं, तथापि तत्कालीन विचारों एवं प्रचलित कथाओं और अनेक अन्य बातों का उनसे बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त होता है। गौतम बुद्ध से पहिले ही लेखनकला का प्रचार भारत मे हो चुका था, किन्तु हिन्दुओ के पवित्र ग्रंथ तीन चार हज़ार वर्षों से स्मरण-शक्ति द्वारा ही रक्षित होते चले आये थे। अतः पवित्र ग्रंथो को लिपिबद्ध करने की प्रथा निंद्य समझी जाती थी। इसी लिए बौद्ध एवं जैन ग्रंथ लिखे न गये। त्रिपिटक पहिले पहल ३१ संवत पूर्व मे लिखा गया। हमारा विचार पाली साहित्य का हाल लिखने का था पर उसका इतिहास अभी जहां तक हमें ज्ञात हो सका क्रमबद्ध लिखा ही नही गया है। इसले वह यहाँ पर नही दिया जा सका है। तो भी सूक्ष्म रूप से कहा जा सकता है कि तीनों पिटकों के अतिरिक्त जो कुछ और मसाला हमे मिल सका उसका भी कुछ दिग्दर्शन करा देना उचित प्रतीत होता है।

त्रिपिटकों के विषय मे बहुत सी बातें लिखी जा चुकी हैं। शुद्ध (साधारण) सूत्रो में कहीं ऐतिहासिक वर्णन (इत्युक्त व व्याकरण) मात्र हैं और कही कथाएँ (अवदान), आश्चर्यमय घटनाएँ (अद्भुत धर्म), पद्य (जिनमें गद्य वर्णनों का समर्थन है), उपदेश और निदान पाए जाते हैं जिनमें विशेष विषयों की मीमांसा की गई है। इनके बीज मूल ब्राह्मणों व आरण्यकों में मिलते हैं तथा महाभारत के गद्य भागो में इनका प्रभाव

देख पड़ता है। इन शुद्ध सूत्रों में ही जातक भी हैं जिनमें बुध तथा बोधिसत्वों के पूर्व जन्मों के वर्णन हैं।

बौद्ध सूत्रों में अनेक देवताओं के भी नाम आए हैं। बुद्ध ने चातुर्वर्ण और हिन्दू देवताओं को अस्वीकार नहीं किया है पर दोनों की महिमा बिलकुल घटा दी हैं। विनय पिटक के ग्रन्थ साधारण जन समुदाय के देखने मे बहुत कम आते हैं, क्योंकि बौद्ध भिक्षुगण उन्हे बहुत श्रद्धेय और गोप्य मानते हैं। बौद्ध कहते हैं कि सूत्र और विनय पिटक स्वयं बुध कृत हैं पर अभिधर्म पिटक उनके शिष्यों ने बनाया।

जान पड़ता हैं कि युरोपीय शंकावाद (agnosticism) हमारे सांख्य और बौद्ध सिद्धांतों पर ही अवलम्बित हैं और इनका प्रभाव सूफ़ी सिद्धान्तों पर भी अवश्य पड़ा है।

तीनों पिटकों के अतिरिक्त बौद्ध मत के अनेक अन्य ग्रन्थ भी संस्कृत में हैं। बहुतो मे पिटको पर टीकाएँ और विचार पाए जाते हैं और कुछ तांत्रिक हैं।

बौद्ध और पाली ग्रन्थो का कुछ विशेष विस्तृत हाल जानने के लिए निम्नलिखित ग्रन्थो व लेखो को देखना चाहिए। विस्तारभय से यहाँ अधिक नहीं लिखा जाता।

(१) डा० पिशेल की (Pischel's) Buddha sein leben की अनुक्रमणिका (Index)

(२) विंटरनिज़ (Winternitz's) का Indische Litterktur geschichte Bond IV (Stuttgart) जिसमें सर्वास्तिवादिन, महायान और शून्यवाद पर विशेष मीमांसा है।

(३) कून (Kuhn's) कृत पाली व्याकरण (Pali grammatik)

(४) Suder's Bruchstucke Budhistischer Drumen (Kleine Sanskrit Texte) जिसमें बौद्धों के कुछ प्राचीन नाटकों और कहानियों का हाल है।

(५) डा० ग्रियर्सन का Bhandarkar Comm Volume में लेख जिसमें पुराने मसाले पर बहुत कुछ लिखा गया है।

(६) R. Spence Hardy's Eastern monarchism.

(७) Introduction to Dr. Turnout's edition of the महावंश (1835 Ceylon).

(८) Westerguard's catalogue of the Copenhagen Indians Mss.

(९) Spiegel's anecdota Palica

(१०) Weber's History of Indian Literature

पुराण कालीन धर्म साहित्य की श्लोक संख्या का सूचीपत्र।

भारत मूल रूप	८८००	श्लोक
भारत संवर्धित संस्करण	२५०००	"
भारत संपादित संस्करण	१०००००[illegible]	"
गीता ...	७००	"
हरिवंश ...	२२०००	"
रामायण ...	४८०००	"
विष्णुपुराण ...	२३०००	"
नारदीयपुराण ...	२५०००	"
भागवतपुराण ...	१८०००	"
गरुडपुरण ...	१५,००० वा १९०००	"
पद्मपुराण ...	५५००० वा ४५,०००	"

वाराहपुराण	...	२४०००	श्लोक
मत्स्यपुराण	...	१४००० वा २ ००००	,,
कूर्मपुराण	...	१७०००	,,
लिंगपुराण	...	११०००	,,
वायुपुराण	...	५४०००	,,
स्कंद पुराण	...	८११०१	,,
अग्नि पुराण	...	१६०००	,,
ब्रह्माण्ड पुराण	...	१२००० वा १२२००	,,
ब्रह्मवैवर्त पुराण	...	१८०००	,,
मार्कंडेय पुराण	...	६०००	,,
भविष्य पुराण	...	१४००० अथवा १४५००	,,
वामन पुराण	...	१० ००० या ७०००	,,
ब्रह्म पुराण	...	१०,००० (७०००-८०००)	,,
मनुस्मृति	...	२६८४	,,
अत्रिस्मृति	...	४००	,,
याज्ञवल्क्य स्मृति	...	१०००	,,
उशनस स्मृति	...	६००	,,
अंगिरस स्मृति	...	२७	,,
यम स्मृति	...	८८	,,
सवत स्मृति	...	२००	,,
कात्यायन स्मृति	...	५००	,,
बृहस्पति स्मृति	...	अधुनिक ८०	,,
पराशर स्मृति	...	६००	,,
व्यास स्मृति	...	२००	,,
शंख स्मृति	...	३००	,,
लिखित स्मृति	...	९२	,,

शातातप स्मृति	...	४४	श्लोक
विष्णु स्मृति	...	गद्यग्रन्थ	

शिव पुराण का विस्तार ६००० है पर वह उप पुराणों में से है।

ऊपर की सूची में कुछ भ्रम पाया जा सकता है पर उसमे दी हुई संख्याएं अधिकांश में प्रायः ठीक पाई जायंगी। बहुत विस्तृत खोज की आवश्यकता हमें नहीं प्रतीत हुई क्योंकि यह ग्रन्थ कोई स्मृतियों अथवा पुराणादि का विस्तृत इतिहास नहीं है जितना विवरण यहां पर दिया गया है उससे इनके विस्तार का कुछ दिग्दर्शन हो जाता है।

गौतम बुद्ध और बौद्ध धर्म के इतिहास तथा बौद्ध ग्रन्थों का हाल हम यहीं पर समाप्त करते हैं। पौराणिक काल के साहित्य का कुछ ब्योरेवार विवरण आगे के अध्याय में दिया जायगा।

इक्कीसवां अध्याय।

पौराणिक समय का साहित्य, सं० पू० ७वीं से २री शताब्दी तक।

अब तक हमने आर्य साहित्य के तीन काल देखे हैं अर्थात् वैदिक, ब्राह्मणिक, और सौत्र। वैदिक समय में संहिताओं का गान हुआ तथा ब्राह्मणिक में याज्ञिक रीतियों का विस्तार एवं ज्ञान का प्रादुर्भाव देखा गया। अबतक लेखनकला का आविष्कार न हुआ था और यह सारा साहित्य स्मरणशक्ति के ही सहारे संसार में स्थित था, अतएव सूत्रकाल में थोड़े शब्दों मे बहुत कुछ कहने की परिपाटी स्थिर हुई, इसी पवित्र काल मे लेखनकला का प्रचार हुआ और आर्य-भाषा को नियमबद्ध करके उसका संस्कार किया गया। इस प्रकार यह भाषा संस्कृत कहलाने लगी। लेखनकला के प्रचार से ग्रन्थ बाहुल्य द्वारा स्मरणशक्ति पर बोझ पड़ने का भय न रहा। अतः भारी भारी साहित्य ग्रन्थों की रचना होने लगी और सूत्रों को बढ़ा कर हमारे आचार्यों ने बड़े बड़े स्मृति ग्रन्थ रचे, जिनका कुछ दिग्दर्शन सौत्रकालीन साहित्य में हो चुका-है. स्मृति ग्रन्थों के साथ ही साथ पुराण ग्रन्थों की भी रचना होने लगी, जिनमें इतिहास को धार्मिक विषय से मिला कर भारतीय आचार्यों ने मनोरंजकतापूर्वक पाठकों

को निगूढ़ धार्मिक तथा सामाजिक रहस्यों का भी शिक्षण दिया। पौराणिक साहित्य में पाणिनीय व्याकरण के नियमों का यथासाध्य पालन हुआ है। यही दशा स्मार्त ग्रन्थों की है। इसलिए इनका निर्माण काल महर्षि पाणिनि के पीछे होना सिद्ध है। पाणिनि का समय ऊपर के वर्णनों में ७वी ८वी शताब्दी संवत पूर्व के लगभग माना गया है इसलिए पौराणिक और स्मार्त ग्रन्थों का रचना काल इसके कुछ पीछे का समझ पड़ेगा। महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण आदि काव्य माना गया है। इसका भी समय मनुस्मृति तथा महाभारत का ही समय समझ पडता है। रामायण, महाभारत तथा मनुस्मृति पाणिनीय नियमों के पालन करने वाले सब से प्राचीन ग्रन्थ हैं। महाभारत की गणना पुराणों में नहीं है। हमारे यहां १८ पुराण तथा १८ उपपुराण हैं, किन्तु इनमें से अधिकांश का मूल भारत अथवा महाभारत ही है। विलसन आदि पाश्चात्य विद्वानों ने इनके समय निरूपण मे बहुत कुछ गड़बड किया है। इससे उचित समझ पड़ता है कि इनके समय संबन्धी विचार सबसे पहिले लिख दिये जावें।

महमूद गज़नवी के भारतीय आक्रमण संवत १०५८ से प्रारम्भ होकर १०८२ तक चले हैं। उनके साथ अलबरूनी नामक एक मुसलमान पंडित आया था जिसने संवत १०८७ में भारत का वर्णन लिखा है। उसने १८हों पुराणों के नाम लिखे हैं और अपने द्वारा मत्स्य, वायु और आदित्य पुराणों का देखा जाना भी बतलाया है। अतः संवत १०८७ में सब पुराणों का होना सिद्ध है। संवत ६७७ के लगभग बाण कवि ने हर्ष चरित नामक ग्रन्थ लिखा। इनके सामने

वायु पुराण पढ़ कर सुनाया गया था। डाकृर फ़्यूरर का मत है कि बाण के ग्रन्थों से उसका अग्नि भागवत, मार्कण्डेय और वायु पुराण का जानना सिद्ध है । स्कंद पुराण का नाम एक उम्र बंगाली हस्तलिखित लेख मे है जो विनसेंट स्मिथ के अनुसार ७वीं शताब्दी का लिखा हुआ है। पार्जिटर महाशय का मत है कि मत्स्य वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों के राजवंश भविष्य पुराण से लिये गये हैं । उनके अनुसार यह पुराण संवत ३१७ मे बना । महाभारत का कवि भाषा में एक अनुवाद जावा और बालि टापुओ में प्रचलित था। तिलक महाशय के अनुसार महाभारत का मूल ग्रन्थ वहां छठी शताब्दी के पीछे नहीं गया है। गुप्त राजाओं के एक पाषाण लेख में महाभारत का कथन आया है। यह लेख चेदि संवत १६७ का है। महाभारत में जहां दशावतार का वर्णन है वहां बुद्ध का कथन नही हुआ है। फिर भी वन पर्व के एक श्लोक में लिखा है कि "एडूक त्रिन्हा पृथिवीन देव गृह भूषिता" जिससे बौद्ध चिन्हो पर स्मारकों का अभिप्राय समझ पड़ता है। एक भूमिदान पत्र से जो कि ५८६ सवत के पीछे का नहीं हो सकता, यह सिद्ध है कि महाभारत का आकार प्रकार उस काल भी वैसा ही था जैसा कि आजकल है। यह महाभारत में एक लाख श्लोकों का होना कहता है जिससे-हरिवंश का भी उसमें सम्मिलित होना सिद्ध है। मेकडानल महाशय ने लिखा है कि संवत ५०७ से ५५७ तक के बहुत से भूमिदान पत्र मिले हैं जिनमे महाभारत के आधार पर दानियों की प्रशंसा और दानापहारियों को निन्दा है। इससे प्रगट है कि उस काल भी महाभारत का स्मृतियो के समान मान होने लगा था।

आपका मत है कि ईसाई सन के पूर्व महाभारत को धर्म-शास्त्र के समान प्रतिष्ठा मिल गई थी। वाण ने लिखा है कि महाभारत का पाठ उज्जैन के महाकाल के मंदिर मे हुआ था। संवत ६५७ के एक काम्बोजदेशीय लेख से सिद्ध है कि एक मन्दिर में रामायण, महाभारत तथा एक पुराण के नित्य पाठ का प्रबन्ध किया गया था। शंकराचार्य के समकालीन कुमारिल भट्ट के तंत्र वार्तिक मे महाभारत के १० पर्वों के नाम लिखे हैं। शंकराचार्य ने महाभारत को स्मृति के समान आदर दिया है। संवत १२वीं शताब्दी के आदि में काश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र ने भारतमंजरी नामक ग्रन्थ लिखा जिसमें महाभारत का सार है। महाराजा चंद्रगुप्त का समकालीन यवन राजदूत मेगास्थनीज २७३ संवत पूर्व का है। उसके लेखो से प्रगट होता है कि उसे शैवों, वैष्णवों तथा महाभारत का ज्ञान था। महाभारत मे भी लिखा है कि यवनों (ग्रीसवालों) ने कौरवों की सहायता की थी। मिलिन्द के प्रश्न नामक बौद्ध ग्रंथ से प्रगट होता हैं कि उस काल भी पुराण के ग्रन्थ थे। मिलिन्द का समय १०० विक्रम पूर्व के लगभग था। चाणक्य उपनाम कौटिल्य चंद्रगुप्त का समकालीन था। उसने अर्थशास्त्र मे लिखा है कि अथर्ववेद तथा इतिहास को चौथा तथा पांचवां वेद मानना चाहिये। इतिहास के उसने ६ अंग माने हैं अर्थात् पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र। महाभारत में नक्षत्रो की गणना अश्विनी से हुई है न कि कृत्तिका से तथा मेष और वृष का नाम भी नहीं आया है। यदि पर्व तथा अश्वमेधपर्व में लिखा है कि अश्विनी से नक्षत्र गणना की प्रथा विश्वा-

मित्र ने चलाई जिससे प्रगट होता है कि उस काल उत्तरायण अश्विनी से प्रारम्भ होता था। तिलक महाशय का मत है कि इन बातों से विदित होता है कि महाभारत शक संवत से ५०० वर्ष पहिले बना जिससे उसका सं० पू० ३५० वर्ष के पहिले का बनना जान पड़ता है। बौद्धायन सूत्र में महाभारत का कथन है। गृह्य शेष सूत्र में गीता का श्लोक "पत्रं पुष्पं फलं तोयं" लिखा गया है। बौद्धमताचार्य अश्वघोष भो महाभारत का वर्णन करता है। आश्वलायन गृह्य सूत्रों में भी महाभारत और भारत के नाम आये हैं। इन सब प्रमाणों से महाभारत का विक्रम पूर्व ६वीं या ७वीं शताब्दी में होना सिद्ध होता है। मैकडानल महाशय ने भी इसे ५०० खृष्ट पूर्व का माना है। यह निश्चय है कि महाभारत पुराण ग्रन्थों से पहिले का है। फिर भी उसमें भी १८ पुराणो का कथन है और कई पुराणों मे गुप्त काल तक के वर्णन हैं तथा कुछ में १६वीं शताब्दी तक के कथन मिलते हैं। महाभारत के आदि में लिखा है कि पहिले वह ग्रन्थ छोटा था किन्तु पीछे बढ़ गया। मेकडानल महाशय का मत है कि समय समय पर इसके तोन संस्करण हुए। पहिला ग्रन्थ भारत था जिसमें ८८०० श्लोक थे। उससे बढ़ कर २४००० श्लोकों का महाभारत ग्रन्थ हुआ। इन्हीं दोनों भारत तथा महाभारत का कथन आश्वलायन गृह्यसूत्रो मे समझ पड़ता है। पीछे से बहुत सी कथायें मिलकर यह १००००० श्लोको का ग्रन्थ बनाया गया। २४००० श्लोकों वाला महाभारत ग्रन्थ बहुत प्राचीन है किन्तु १००००० श्लोकों वाला मौर्यकाल में अथवा उससे कुछ पहिले ही बना और क्षुद्र परिवर्तनों के साथ गुप्तकाल में संपादित

हुवा। इसलिए इसमें १८ पुराणों का कथन होना आश्चर्य की बात नहीं। उपरोक्त बातों से समझ पड़ता है कि पौराणिक ग्रन्थों का निर्माण ६वीं अथवा ७वीं शताब्दी विक्रम पूर्व से प्रारंभ होकर गुप्त समय तक चला, अथवा जीर्णोद्धारित हुआ। भारतीय प्राचीन प्रथानुयायी कुछ पंडितों का यह भी विचार है कि पुराण ग्रन्थ गुप्तकाल से पहिले ही बन चुके थे किन्तु इस काल में उनका जीर्णोद्धार हुआ जिससे कुछ नवीन कथन उनमे आगये। इस मत के मानने मे भी कोई आपत्ति नही। यदि गुप्त काल के प्रथम १८ हों पुराण प्राचीन होकर सर्वमान्य न हो गये होते तो इस काल के पंडित लोग पुराणों का जीर्णोद्धार करने में भी महाभारत से लोकमान्य ग्रन्थ में १८ पुराणों के नाम न लिखते। पुराणों मे जो अर्वाचीन कथन पाये जाते हैं, उन्हें पीछे से प्रक्षिप्त समझने चाहिये। इन्हीं क्षेपकों के कारण पाश्चात्य विद्वानों मे वहुत कालतक इनकी प्राचीनता न मानी गई यद्यपि यह बात पुराण शब्द से ही प्रकट है।

पुराणों का आधार क्या है सो भी बड़े महत्व का प्रश्न है। जब इनका प्रारंभ काल संवत पूर्व ७ वीं शताब्दी के पहिले का नही माना जा सकता तब, इनके कथनो के आधार क्या हैं, यह जानना परमावश्यक है क्योंकि बिना दृढ़ आधार हुए उनके ऐतिहासिक मूल्य पर भी संदेह प्रगट किया जा सकता है। पुराणों के आधार जहां तक वैदिक, ब्राह्मणिक और सौत्र ग्रन्थों के कथन हैं, तहां तक वे निश्चय ही दृढ़ हैं, किन्तु पुराणों मे ऐसे हज़ारों वर्णन हैं जो इन तीनों आधारों के बाहिर चले जाते हैं। अब हम ऐसे ही विवरणों की दृढ़ता पर विचार करते हैं।

कहा जाता है कि जिस काल भगवान वेदव्यास अपने शिष्यों मे शास्त्र विभाग करने लगे तब लोमहर्षण सूत को पुराण का विषय मिला। वायु और पद्म पुराण में लिखा है कि सूतो को पुराण कहने का अधिकार जन्म से है। इसका मूल कारण यह समझ पड़ता है कि जिस काल ब्राह्मणों का ध्यान विविध वैदिक संहिता, उपनिषदों, आरण्यकों आदि की रचना पर था, उस काल उन्होंने राजयश कीर्तन तथा अन्य सांसारिक विषयों पर समुचित ध्यान न दिया। फिर भी राजाओं, स्त्रियों, शूद्रों तथा अन्य मनुष्यों को इन विषयों की आवश्यकता हुई, जिससे ब्राह्मणेतर वर्णन कर्ताओं की भी मांग संसार मे बढ़ी। ऐसे वर्णनकर्ता सूत लोग निकले। इन्हीं लोगों के आधार पर पौराणिक राजवंशों एवं अन्य सांसारिक विषयों का ज्ञान स्थिर किया जाने लगा। धीरे धीरे इन लोगों का मान वढ़ा और सूतो के अतिरिक्त कुछ ब्राह्मणो ने भी इन विषयों का ज्ञान प्राप्त किया। महाभारत मे लिखा हुआ है कि जिस काल बलराम जी नैमिष में तीर्थयात्रा को गये उस काल उन्होंने सूत पौराणिक को पुराण बांचते पाया और श्रोताओ मे कुछ ब्राह्मण भी देखे। इससे क्रुद्ध होकर आपने उसी काल सूत का वध कर डाला और एक ब्राह्मण को पुराण बांचने पर नियुक्त कर दिया। फिर भी पुराण बांचने की प्रथा सूतो मे ही स्थिर रही। ये लोग प्राकृत भाषा में पुराण बाँचते थे। इन पुराणों की महिमा बहुत न थी और इनकी उपयोगिता स्त्री तथा शूद्रों के लिए रही। जैसे ब्राह्मणों ने स्मरणशक्ति द्वारा वेदों, ब्राह्मणों तथा सूत्रों को रक्षित रक्खा उसी प्रकार सूतों ने पौराणिक विषय की रक्षा की। जब सं० पू०९ वीं अथवा

१०वीं शताब्दी मे भारत में लेखनकला का प्रचार हुआ तब ये प्राकृत पुराण भी लिपिवद्ध हुए। इन्ही के आधार पर ब्राह्मणोने समय पर महाभारत और भविष्य पुराण बनाये जिनसे एवं प्राकृत पुराणों से शेष पौराणिक ग्रन्थों की रचना हुई। प्राचीन प्रकृत पुराण साहित्यिक दृष्टि से वहुत ओछे थे, इसी लिए उन्हीं विषयों पर संस्कृत के साहित्य पूर्ण उत्कृष्ट ग्रन्थ वनने से वे क्रमशः नष्ट होकर लुप्त हो गये। इस मत का कुछ निग्दर्शन पार्जिटर (महाशय ने अपनी कलिकाल के राजवंश नामक (Dynasties of the kali age) पुस्तक मे किया है।

उपरोक्त कथनो का विष्णुपुराण से भी कुछ समर्थन होता है। उसमे लिखा है कि प्राचीन काल में वहुत से पौराणिक ग्रन्थ थे जिनका अब पता नही है। लोमहर्षण के ६ शिष्य थे। उन्होंने स्वय एक पौराणिक संहिता रची और उनके तीन शिष्यों ने तीन और संहितायें वनाईं। इन शिष्यों के नाम मैत्रेय, शिशयामन और आकृतव्रण थे। कहते हैं कि इन चारों संहिताओं का सारांश विष्णु पुराण मे हैं। एक स्थान पर यह भी लिखा है कि विष्णु पुराण स्वयं एक संहिता है। ये पौराणिक संहितायें वैदिक संहिताओं से पृथक् हैं और इनका अब कही पता नहीं लगता। समझ पड़ता है कि प्राकृत पुराणों की मूल स्वरूपा यही ४ संहितायें थो जिनमे समय के साथ नये नये प्राकृत वर्णन मिलते गये यहाँ तक कि संस्कृत पुराणों के वनने,से ये लुप्त हो गये।

यद्यपि सूतों मे सब से पहले लोमर्षण ही का नाम आया है तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि सब से पहिले पौराणिक सूत ये ही थे। जान पड़ता है कि सूत और मागध लोग अवैदिक तथा वैदिक तथा वैदिक समयों से ही ऐतिहासिक

तथा अन्य पौराणिक विषयों को रक्षित रखते चले आये थे। लोमहर्षण की महिमा सब से अधिक इस कारण से हुई कि उन्होंने इस प्राचीन ज्ञान को क्रमबद्ध करके स्वयं एक संहिता रची तथा अपने तीन शिष्यों द्वारा तीन संहितायें बनवाईं। इसी समय से सूतों की महिमा बढ़ने लगी। यहाँ तक कि थोड़े ही दिनों में उनकी पदवी की ईर्ष्या कुछ ब्राह्मणों तक को हुई, जैसा कि बलराम द्वारा सूतवध एवं ब्राह्मण पौराणिक स्थापन तथा प्राकृत पुराणों के आधार पर संस्कृत पुराणों के बनने से सिद्ध होता है। अथर्व वेद में मागधों का कथन आया है तथा पुराणों में सूतों का वर्णन मिलता है। समय पर चारणों ने भी इसी कार्य को अपनाया। आजकल ब्रह्मभट्ट लोग भी कुछ कुछ इसी काम को कर रहे हैं। यह मानना पड़ेगा कि वैदिक एवं ब्राह्मणिक ऋषियों की अपेक्षा सूत लोग कुछ निम्न श्रेणी के मनुष्य तथा राजाश्रित व्यक्ति थे। इसी लिए जहां वेदर्षियों के कथनों में सब बातें यथार्थ ही पाई जाती हैं वहीं इन सूतों के वर्णन अत्युक्ति को लिये हुए थे। अतएव जब इनके आधार पर ब्राह्मणों ने पौराणिक ग्रन्थ बनाये तब उनकी रचनाओं में भी अत्युक्ति की मात्रा पाई जाने लगी। समय पर वैदिक ग्रन्थों के माहात्म्य-वर्धन से ब्राह्मण ग्रन्थों में भी कुछ कुछ अत्युक्ति आने लगी थी। इसी माहात्म्य वर्धन के विचार ने ब्राह्मणिक पुराणों में सौत पुराणों की अपेक्षा अत्युक्ति की मात्रा शायद कुछ और भी बढ़ा दी। अतएव कुछ मनुष्य अमर कहलाये तथा बहुत से राजाओं का राजत्व-काल बढ़ कर १०००० वर्ष का हो गया, जिससे आजकल प्राचीन काल के विवरणों में बड़ी अड़चन पड़ती है।

अमर सिंह नामक प्रसिद्ध कोशाकार संवत के प्रारंभ काल में हुए हैं। आपने पुराणों को पंचलक्षणात्मक माना है, अर्थात् आपके मतानुसार पंच विशेष गुणयुक्त ग्रन्थ को ही पुराण कहेंगे अन्य को नहीं। "सर्गश्च प्रति सर्गश्च वंशो मन्वंतराणि च। वंश्य नुचरितं चेति पुराणं पंचलक्षणम्। दैवी उत्पत्ति, मानुषी सृष्टि, वंश वर्णन, मन्वन्तर वणन तथा राजवंश वणन ये ही पुराणों के पांच लक्षण हैं। आजकल १८ हों पुराणों की जो प्रतियां मिलती हैं उनमें केवल विष्णु पुराण पर यह लक्षण पूर्णतया घटित होते हैं, शेषपर नहीं। यदि पुराणों का रूप अमरसिंह के समय मे वैसा ही होता जैसा कि आज है, तो वे ऐसा लक्षण कदापि न बनाते जो १८ में से १७ में पूर्णतया चरितार्थ ही न होता। इससे जान पड़ता है कि अमर सिंह के पीछे पुराणों में वहुत कुछ उथल पुथल हुई। यह वात भी एक प्रकार से गुप्त कालीन पौराणिक संपादन को पुष्ट करती है। विलसन महाशय ने लिखा है कि कई पुराणों में महात्मा शंकराचार्य, रामनुजाचार्य, मध्वाचार्य और वल्लभाचार्य के नवीन वैष्णव तथा शैव सिद्धान्त पाये जाते हैं। इससे आप समझते हैं कि ऐसे पुराण वहुत अर्वाचीन हैं। यह समय संबंधी मत यथार्थ नहीं जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है। यह अवश्य संभव है कि पुराणों के कुछ भाग नवीन काल में प्रक्षिप्त हो गये हों।

पुराणों की संख्या निश्चयतया १८ है, किन्तु इस गणना में कौन कौन से ग्रंथ आने चाहिये इसमें कुछ मतभेद है। महाभारत और हरिवंश पुराण न होकर इतिहास माने गये हैं। साधारणतया पुराणों में निम्न १८ ग्रन्थों की गणना है:—

विष्णु, नारदीय, भागवत, गरुड़, पद्म, वाराह, मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, शिव या वायु, स्कन्द, अग्नि, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन, और ब्रह्म। यह गणना भागवत के द्वादशस्कंध तथा विष्णु पुराण और मार्कण्डेय मे पाई जाती है, कूर्म और अग्नि पुराणो में वायु पुराण की भी गणना है और पहिले में अग्नि पुराण छोड़ दिया गया है तथा दूसरे में शिव। वाराह पुराण में गरुड़ और ब्रह्माण्ड के स्थान पर वायु और नरसिह के नाम हैं। मत्स्यपुराण की गणना अग्नि पुराण से मिलती है। उपरोक्त १८हो पुराणों मे से गुणानुसार पहिली षट्क सात्विक, द्वितीय राजस और तृतीय तामस है। वैष्णव मत प्रधान पुराण सात्विक कहे गये हैं, शैव प्रधान तामस तथा ब्राह्म प्रधान राजस। कुछ राजस पुराण शाक्त मत की ओर भी झुकते हैं। उप पुराणों में निम्न ग्रन्थों की गणना है जो देवी भागवत से ली गई है:—सनत्कुमार, नरसिंह, नारदीय, शिव, दुर्वासा, कपिल, मानव, औशनस, वरुण, कालिका, साम्ब, नंदा, उपनाम नंद, सौर, पराशर, आदित्य, महेश्वर, भागवत, और वशिष्ठ। रेवा खंड में शिवधर्म, ब्रह्मांड, कूर्म और भविष्य के नाम दिये गये हैं तथा नारदीय, शिव आदित्य और वशिष्ठ के छोड़े गये हैं। शेष नामावली दोनों मे एक है।

अब हम पुराणों के विषय का थोड़ा सा वर्णन करते हैं, किन्तु ऐसा करने के पूर्व महाभारत तथा हरिवंश के विषय मे भी कुछ लिख देना आवश्यक है। महाभारत मे कौरवों और पांडवों का भारी वर्णन है। इस कथा का कुछ विवरण ऊपर के अध्यायों में आगया है। जैसा ऊपर कहा गया है महाभारत का पहिला रूप भारत ग्रन्थ था जिसमें

८८७० श्लोक थे। पंडितों का मत है कि इसमें भी गीता का मूल रूप था। पीछे से भारत ग्रन्थ बढ़कर प्रायः २५००० श्लोकों का हो गया। इसमें कौरवों और पाण्डवों की कथा अधिक विस्तार के साथ कही गई। अनन्तर आदि, सभा, वन, उद्योग, भीष्म, शांति आदि पर्वो में बहुत बाहिर की कथायें परम प्रचुरता से मिलाई गईं, यहां तक कि महाभारत का आकार २५००० से बढ़ कर १०००० का हो गया। कुछ युरापीय महाशयो का कथन है कि महाभारत में बहिरंग कथायें तथा वर्णन इस प्रचुरता से मिले हुए हैं कि कहीं कहीं कथा का मुख्य सूत्र पाना ही कठिन हो जाता है। फिर भी इन वर्णनों से ही ग्रन्थ की भारी महत्ता हुई है। यदि ये विवरण न होते तो महाभारत घराऊ झगड़े का एक साधारण ग्रन्थ मात्र होता जिसकी ओर कोई दृष्टिपात भी न करता। इन्ही बहिरंग वर्णनों ने महाभारत की महत्ता को इतिहास की कोटि से बढ़ाकर स्मृति की पदवी तक पहुंचाया। इन वर्णनों मे वरन् यों कहें कि सारे पौराणिक साहित्य में श्री भगवद्गीता एक ऐसा अनमोल रत्न है जिसकी बराबरी कोई भी अन्य पौराणिक विषय नही कर सकता। गीता के पीछे महाभारत में वन, तथा शान्ति पर्वो की प्रधानता है। इनको पढ़कर पाठक तत्कालीन भारतीय विचारों का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकता है। उद्योग, गदा, तथा अन्य पर्वो में भी बहुत से अच्छे अच्छे विषय पाये जाते हैं।

श्री भगवद्गीता में १८ अध्याय तथा ७०० श्लोक हैं। इन अध्यायों का पहिला षट्क मुख्यतया ज्ञान संबन्धी है, दूसरा ईश्वर संबन्धी और तीसरा गुणत्रय विषयक। ज्ञान वर्णन मे

गीता ने सांख्य और योग के अनमिल विषयों को इस उत्त-मता से मिलाया है कि उन दोनों दर्शनों का मत पार्थक्य बिलकुल तिरोहित हो जाता है। गीता में भगवान ने प्रत्यक्ष कह भी दिया है कि "सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पंडिताः । एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ।" गीता में ईश्वर की एकता का बड़ा ही दृढ़ वर्णन हुआ है तथा त्रिमूर्ति, के विषय का भी त्याग नहीं है। अवतार का भी गीता में हर स्थान पर आदर है। इन बातों से जान पड़ता है कि यद्यपि गीता संबन्धी ज्ञान का मूल रूप विक्रम पूर्व ७वीं शताब्दी मे उपस्थित था तथापि समयान्तरो के संपादन द्वारा गीता ने अपना वर्तमान रूप मौर्यकाल के प्रायः एक ही शताब्दी के पूर्व पाया। यद्यपि वेदों, ब्राह्मणों तथा सूत्रो में भारतीय धार्मिक विचारो की बहुत कुछ उन्नति हो गई थी, तथापि गीता ने प्राचीन औपनिषद् ज्ञान को नव विवर्धित त्रिमूर्ति तथा अवतारिक सिद्धान्तो से मिलाकर तत्कालीन धर्म का ऐसा चमत्कृत रूप उपस्थित किया कि पीछे के आचार्यों ने इस एक ग्रंथ को हिन्दू मत का मूल माना और अपने नवीन सिद्धान्त चलाने मे भी उन्हें नया न कह कर गीता ही का तदनुसार अर्थ लगाने का प्रयत्न किया। अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैतवादी सब अपने मत गीता से ही निकालने का प्रयत्न करते हैं। महात्मा शंकराचार्य का मत है कि गीता में ज्ञान की श्रेष्ठता प्रतिपादित है। तथा हाल ही में तिलक महाशय ने उसे कर्मवादी बतलाया है। यद्यपि सर्व साधारण को शंकर स्वामी का मत छोड़कर यह नवीन मत मानना कठिन समझ पड़ेगा, तथापि इस मत के तर्कों का खंडन करना सुगम नहीं है। उधर प्राचीन मत न

केवल प्राचीन होने से सर्वमान्य है, वरन् उसका समर्थन करने वाली कारण माला भी अखंडनीय है। गीता ने सांख्य और योग को मिलाकर मनुष्य का कर्तव्य निकाला है। इसके अनुसार "ज्ञेयः स नित्य संन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति" (संन्यासी वह है जो न किसी का द्वेप करे न अपने लिए कुछ इच्छा करे) तथा "योगः कर्मसु कौशलम्" (कर्मों में कुशलता ही योग है) इनके मिलाने से यही समझ पड़ता है कि गृह त्यागी किसी से शत्रुता न करे, अपने लिए कुछ न चाहे और कुछ करता अवश्य रहे। इन कथनों से स्वाध्याय, जपयोग, परोपकार, तप आदि के कर्म उचित कर्मावली की श्रेणी में आते हैं। इस स्थान पर गोता के सिद्धान्तों का विशेष वर्णन स्थानाभाव से नहीं हो सकता। आशा है कि थोड़े ही कथन से वड़े आनन्द का अनुभव कर लिया जावेगा।

शांति पर्व एक प्रकार की स्मृति ही है। उसमें तत्कालीन प्रायः सभो महत्व पूर्ण विचारों का सारांश आगया है। वन पर्व को पढकर यह जाना जा सकता है कि कोई प्रवीण पुरुष कुटुम्ब का अच्छा नेता किस प्रकार हो सकता है। आदि पर्व मे वहुत से साहित्य पूर्ण उपाख्यान मिलेंगे। यही दशा वन पर्व की है। साहित्य गरिमा की प्रचुरता प्रायः समग्र भारत में पाई जावेगी। यह महाभारत की ही महत्ता है कि गीता के से शुष्क, एवं नीरस विपय में भी साहित्य का आनन्द सभी ठौर भरा हुआ है। विराट्, भीष्म, द्रोण, कर्ण, गदा, सौप्तिक, आश्रम वासिक, महा प्रस्थान आदि पर्वों में भी साहित्य का अच्छा आनन्द मिलता है। वर्णन प्रचुरता और पूर्णता महाभारत का मुख्य अंग है। उसने कौरव पाण्डव के समय को हमारे सामने प्रत्यक्ष उपस्थित कर दिया है।

नवों रसों का वर्णन महाभारत में अच्छा आया है। युद्ध वर्णन यहां कमाल को पहुंचा दिया गया है। ऐसा अद्वितीय वर्णन संसार साहित्य मे मिलना कठिन है। महाभारत एवं १८ हों पुराणों के रचयिता व्यास भगवान कहे जाते हैं। विष्णु पुराण के अवलोकन से प्रगट है कि भारत में कई व्यास हो गये हैं। वेदर्षियों में भी व्यास पाये जाते हैं। व्यासों मे भगवान कृष्ण द्वैपायन व्यास सर्व प्रधान हैं। इनकी प्रधानता ऐसी बढ़ी चढ़ी है कि व्यास नाम लेने से सहसा इन्हीं पर ध्यान जाता है। इसी लिए अन्य व्यास भारतीय स्मृति से बाहर हो गये हैं और सारे पौराणिक ग्रंथों, वेदान्त सूत्रों, व्यासस्मृति आदि के रचयिता अकेले कृष्णद्वैपायन व्यास माने जाते हैं। वर्तमान हिन्दू मत की महत्ता वास्तव में गीताकार व्यास और शंकराचार्य ही पर अवलंबित है। फिर भी सारे व्यास ग्रंथो के रचयिता कृष्णद्वै-पायन को ही मानने से काल विरुद्ध का बड़ा भारी दूषण पड़ता है। आप युधिष्ठिर दुर्योधन आदि के पितामह थे। उस काल आर्य भाषा का संस्कार होकर वह संस्कृत भी न कहलाई थी और न पाणिनीय नियम संसार मे प्रचलित थे। इधर पौराणिक भाषा संस्कृत है और पाणिनीय नियमो पर पूर्णतया चलती है। पौराणिक साहित्य इतना भारी है और इतने समय पर्यन्त बनता रहा है, तथा उसमें इतना मतभेद है कि एक ही पुरुष मे उसका कर्तृत्व स्थापित करना असंभव है। यदि व्यास शब्द को नाम न मान कर उपाधि मानें तो कहा जा सकता है कि ये सब ग्रन्थ व्यासकृत हैं, क्योंकि ऐसी दशा में माना जा सकता है कि समय समय के अनेकानेक व्यास विद्वानो ने इन ग्रंथों की रचना की। ऐसे पंडित

शतमुख से धन्यवादार्ह हैं कि जिन्होंने अपना यश छोड़ कर अपने ग्रंथों की महत्ता बढ़ाने के द्वारा भारतीय सभ्यता की उन्नति करने का प्रयत्न किया।

हरिवंश में राजवंशों का वर्णन बहुत प्रचुरता से आया है। इसके आदिम भाग में ग्रंथ के प्रायः चतुर्थांश पर्यन्त जगदुत्पत्ति, दशावतार तथा अनेकानेक अन्य वर्णनों का समावेश हुआ है और शेष ग्रन्थ में एक प्रकार से भगवान श्रीकृष्णचन्द्र का जीवन वृत्तान्त है। इसमें भगवान के केवल माथुर चरित्रों पर प्राधान्य नहीं है वरन् शेष जीवनी भी अच्छे विस्तार के साथ लिखी गई है। रासमंडल का इसमें बिलकुल फैलाव नहीं है। कुल मिला कर ग्रन्थ बहुत उपादेय है। यह ग्रन्थ एक प्रकार से महाभारत का परिशिष्ट है और उसी का अंग भी माना जाता है। इसको भी मिलाने से महाभारत में १९ पर्व कहे जा सकते हैं। बिना इन दोनो के मिलाये इनमे से किसी में पौराणिक विषय की पूर्णता नहीं आती। केवल इन्ही दोनों ग्रन्थों के पढने से प्रवीण पाठक प्राचीन समय का भारतीय इतिहास जान सकता है। हमको इस इतिहास के लिखने में इन दोनों ग्रन्थों से बहुत सहायता मिली है। संस्कृत साहित्य मे मुख्यतया यही दोनों इतिहास ग्रंथ माने भी गये हैं।

अब हम १८ हों पौराणिक ग्रन्थों का कुछ दिग्दर्शन यहां कराते हैं। विष्णुपुराण हरिवंश से कुछ छोटा बैठेगा। पुराणो के पांचो लक्षण इसमें पूर्णतया घटित होते हैं। राजवंश भी इसमें बहुत उत्तमता से कहे गये हैं। हमने बहुत करके विष्णुपुराण तथा हरिवंश के आधार पर ही इस इति-

ह्रास ग्रन्थ के राजवंश लिखे हैं। यद्यपि यह वैष्णव पुराण है तथापि हर स्थान पर इतना गंभीर है कि किसी अन्य देवता के प्रतिकूल इसमें कहीं कुछ न मिलेगा। प्राचीन मनोरंजक गाथा तथा आध्यात्मिक विषय पर भी इसमें मनोरम कथन पाये जाते हैं। इसमें पराशर द्वारा कथन कराये गये हैं। बहुत स्थानों पर यह महाभारत का अनुसरण करता है।

नारदीय पुराण में नारद के कथन हैं। बृहन्नारदीय पुराण इससे कुछ बड़ा है। नारदीय में ध्रुव, प्रह्लाद आदि की कथायें हैं और वृहन्नारदीय में विष्णु की कथा बहुतायत से है। श्रीभागवत के विषय में पंडित समाज में कुछ संदेह है। किन्हीं महाशय का मत है कि वैष्णव भागवत पुराण है और कोई देवी भागवत को मानते हैं। कुछ लोगों का यह भी मत है कि श्रीभागवत को वोपदेव ने बनाया था। यह महाशय प्रायः १३वीं शताब्दी में हुए हैं। वोपदेव के भागवतकार होने के विषय में कोई युक्तियुक्त प्रमाण नहीं, है। केवल एक प्राचीन टीकाकार ने भागवत की टीका में लिखा है कि "वोपदेवेन कृतमिति न शंकनीयम्"। प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधर स्वामी ने लिखा है कि वैष्णव भागवत ही पुराण ग्रन्थ है अन्य नहीं। इन बातां से कुछ महाशयों का विचार है कि उसकाल ऐसी शंकाएं लोगों में अवश्य थी नही तो श्रीधर स्वामी सा प्राचीन टीकाकार ऐसा क्यों लिखता। श्रीभागवत की रचना शैली अन्य पौराणिक ग्रंथों की अपेक्षा साहित्यिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से गीता को छोड़ बहुत उत्कृष्ट है। इससे भी समालोचक लोग सोचते हैं कि यह आधुनिक ग्रन्थ है नहीं तो इतने ऊंचे विचार तथा प्रेम आदि के इतने उत्कृष्ट वर्णन उस प्राचीन काल में कहां उपलब्ध थे ? इसी

विषय पर महात्मा रोमाश्रम ने "दुर्जनमुख चपेटिका" लिखकर सिद्ध किया है कि श्रीभागवत ही व्यासकृत पुराण है न कि देवीभागवत, इस पर काशीनाथ भट्ट ने "दुर्जन मुख महा चपेटिका" में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि देवीभागवत ही वास्तविक पुराण है । किसी अन्य लेखक ने "दुर्जनमुख पद्म पादुका" में महात्मा रोमाश्रम के कथन का खण्डन किया है । इन समालोचकों ने जो ग्रन्थ लिखे हैं उनके नामों ही से प्रकट होता है कि प्राचीन काल में ही इन बातों पर बड़ी तीव्रता से विचार हुआ था। श्रीभागवत इतना सुन्दर ग्रन्थ है कि उसकी अप्रतिष्ठा वर्तमान भारतीय पंडितों को असह्य है । काव्य संबन्धी कृत्रिमता से ही श्रीभागवत को अर्वाचीन कहना भूल है। नाशिक और गिरिनार के शिलालेख दूसरी शताब्दी की रचनायें हैं। इनमे भी कृतिमता बहुतायत से पाई जाती है, वरन् कुछ पंडितों का विचार है कि संस्कृत ग्रन्थों में कृत्रिमता का आरम्भ इन्हीं रचनाओं द्वारा हुआ । जो हो, हम पौराणिक वर्णन में श्रीभागवत को ही स्थान देते हैं। इसमें १२ स्कन्द हैं जिनमें दशम को छोड़ शेष बहुत बड़े नही हैं। दशम स्कन्द में श्रीकृष्णचन्द्र के बालचरित्रों की प्रधानता और पांचो प्रकार के प्रेम की मुख्यता है । रासमंडल का भी इसमें बहुत अच्छा वर्णन है। इसी ग्रन्थ के आधार पर वैष्णव सम्प्रदायों में प्रेम का माहात्म्य उच्च स्थापित हुआ है । एकादश स्कन्द में आध्यात्मिक विषयों का अच्छा वर्णन है। अन्य स्कन्दों में भी अन्यान्य पुराणोचित कथायें उत्तमता से कही गई हैं। कहते हैं कि व्यास भगवान ने यह ग्रन्थ सब से पहिले अपने प्रिय पुत्र शुकाचार्य को पढ़ाया और

उन्हीं से सुनकर सूत ने नैमिषारण्य में ऋषियों को इसे सुनाया। कहा जाता है कि भगवान वेद व्यास पैल आदि को वेद तथा लोमहर्षण को इतिहास एवं पुराण बांट कर भी संतुष्ट न हुए और सरस्वती नदी के किनारे अपने आश्रम के निकट बड़ी उद्विग्नतापूर्वक फिरते रहे। ऐसी दशा मे नारद भगवान से उनकी भेंट हुई जिन्होंने कहा कि उनकी उद्विग्नता इसी कारण बढ़ी कि उन्होंने अपने ग्रंथों में भगवान वासुदेव का यथार्थ पूजन नहीं लिखा। यह सुन कर वेद व्यास ने श्रीभागवत बनाया और उनका चित्त शांत हुआ। आज कल हिन्दू समाज में इस ग्रंथ का माहात्म्य बहुत अधिक है और इसका प्रायः सप्ताह पाठ किया जाता है जिसमे पंडित लोग इसे विधिपूर्वक अर्थ समेत ७ दिन में श्रोताओं को सुनाते हैं। जो पंडित भागवत बांच सकता है उसका भागवती पंडित कह कर सम्मान किया जाता है।

गरुड़ पुराण की कथा विष्णु भगवान ने कही है। इसका अंतिम भाग प्रेत कल्प सोलह अध्यायों का है, जिसका पाठ प्रायः किसी के मरणोपरान्त ४थे दिन से ९वें दिन तक कुटुम्बियो के सामने किया जाता है। इसमें सूतक संबन्धी संस्कारों का माहात्म्य अधिकता से कहा गया है, जो कुछ उपहासास्पद है। यमराज की सभा में गंभीरता का अभाव हो गया है, जिससे गरुड़पुराण के रचयिता की मानसिक दुर्बलता एवं सभ्यता की हीनता प्रगट होती है। पद्मपुराण में सृष्टि खंड, भूमि खण्ड, स्वर्ग खण्ड, पाताल खंड, उत्तर खंड और क्रिया योगसार नामक छः भाग हैं। अंतिम भाग में भक्ति का अच्छा वर्णन है। इसके कहने वाले लोमहर्षण के

पुत्र उग्रश्रवस सूत हैं। इसके पाताल खंड में भागवत का बड़ा भारी वर्णन है जिसमें वैष्णवता का बड़ा माहात्म्य बताया गया है। पद्मपुराण में जो राम कथा है वह न केवल वाल्मीकीय रामायण वरन् कालिदास कृत रघुवंश के आधार पर चलती है। पद्मपुराण में शकुन्तला की कथा महाभारत के अनुसार न होकर कालिदास कृत शकुन्तला के आधार पर है। मेकडानल महाशय का मत है कि कालिदास कृत ग्रन्थ और पद्मपुराण पढ़ने से प्रकट होता है कि इस पुराण ने ही कालिदास का अनुसरण किया है न कि कालिदास ने। इसका वाराह पुराण का वर्णन वाराह भगवान ने पृथ्वी देवी से किया है। मत्स्य पुराण का वर्णन भगवान ने मनु से किया है। कूर्म पुराण में कूर्म भगवान ने इन्द्रद्युम्न, इन्द्र तथा ऋषियों से वर्णन किया है। इसमे लक्ष्मी कल्प की कथा है। सूत ऋषियों से कथा कहते हुए इस ग्रन्थ मे कहना है कि कूर्म पुराण गणना में १५वां है। सूत ने यहां यह भी कहा है कि संहितायें ४ प्रकार की होती हैं अर्थात् ब्राह्मी, भागवती, सौरी और वैष्णवी, जिनसे धर्म, अर्थ, काम ओर मोक्ष की प्राप्ति होती है। ये संहितायें क्या हैं इसके विषय मे इस पुराण में कोई निश्चयपूर्वक कथन नही हैं। कूर्म पुराण ब्राह्मी संहिता कही गई है। जान पड़ता है कि ये चारों वे ही प्राकृत पुराणों वाली संहितायें हो सकती हैं जो लोमहर्षण तथा उनके तीन शिष्यो ने बनाई थीं। नाम से यह पुराण वैष्णव समझ पड़ता है परन्तु वास्तव में है शैव। कहते हैं कि लिंग पुराण की रचना ईशान कल्प में ब्रह्मा ने की थी। यह शैव पुराण है और इसमें शिव के २८ अवतारो की कथा भी वर्णित है। शैव लिंग पूजन विधि में शैव पुराणों

के अवलोकन से किसी प्रकार का अनुचित भाव नहीं निकलता वरन् लिंग में महेश्वर का वास माना गया है। शिव तथा वायु पुराणों में से किसे मुख्य मानना चाहिये और किसे उप पुराण, इस बात पर पौराणिक व्यासों में मतभेद है। अतः हम दोनों का कथन यहां किये देते हैं किन्तु इनमें से एक पुराण है, दूसरा उपपुराण। शिव पुराण का वर्णन नैमिषारण्य मेंसनत्कुमारने व्यास तथा अन्य ऋषियों से किया था। इसमें लिंग पूजन को मुख्यता और उसीसे सब पदार्थों की उत्पत्ति कही गई है। पहिले भाग मे पूजन भाग की मुख्यता है और दूसरे में शैव कथाओं की। इसमें त्रिपुरासुरवध, दक्ष यज्ञ, कार्तिकेय, गणेश, नन्दीभृङ्गी आदि की उत्पत्ति एवं अन्य ऐसी ही कथाये हैं। वायु पुराण मे वायु ने श्वेतकल्प के अनुसार श्वेतकल्प का धर्म कहा है। इसमें भी शैव कथाओं को मुख्यता है। यह भी सूत द्वारा नैमिषारण्य मे ऋषियों को सुनाया गया था। इस ग्रन्थ का विभाग ४ पदों मे है अर्थात् प्रक्रिया, उपोद्घात, आनुषंग और उपसंहार। स्कंद पुराण में स्कंद उपनाम षण्मुख ने तत्पुरुष कल्प की कथाएं कहीं है। इसमें माहेश्वरी पूजा की प्रधानता है। स्कंद पुराण का ग्रन्थ अविकल रूप में अप्राप्त है। इसके संहिता, खण्ड, माहात्म्य आदि वाले अनेकानेक खंड यत्र तत्र मिलते हैं। इनमे काशी खंड की प्रधानता है जिसमें काशी के मन्दिरों का विस्तृत वर्णन है। महर्षि अगस्त्य द्वारा दक्षिण में हिन्दू सभ्यता विस्तार का विवरण आया है तथा यह भी लिखा है कि काशीपति दिवदास के समय में कुछ काल के लिए स्वयं काशी मे बौद्ध धर्म विस्तार के सम्मुख शैवपूजन विधान की हीनता हो गई थी। इसमें काशी का

वर्णन महमूद गज़नवी के धावों से पहिले का है। उत्कल खंड में भुवनेश्वर तथा जगन्नाथ जी के मन्दिर का भी कथन है। इनके अतिरिक्त ब्रह्मोत्तर खंड, शिवरहस्य खंड, हिमवत खंड, रेवा खण्ड आदि इसी पुराण में माने जाते हैं। स्कंद पुराण संबन्धी संहिताओं में सूत संहिता, सनत्कुमार संहिता, सौर संहिता, उपल संहिता आदि की प्रधानता है। सूत संहिता के अनुसार स्कंद पुराण में ६ संहितायें तथा ५०० खंड हैं। कर्नल क्येनेडी महाशय का मत है कि संहिता एवं खंड मान्य हैं किन्तु माहात्म्य संदिग्ध। विल्सन महाशय संहिता तथा खंडों को भी संदिग्ध बताते हैं। यह बात अवश्य माननी पड़ेगी कि विविध प्रकार के पौराणिक वर्णन स्कंद पुराण के ही अन्तर्गत कहे गये हैं। तीज पूजन में हरितालिका की कथा भी स्कंद पुराण में मानी गई है। जब ग्रंथ एकत्रित रूप में नहीं मिलता तब उसके स्फुट खंडों, संहिताओं, माहात्म्यों आदि में कुछ संदेह पडना स्वाभाविक है। फिर भी काशी खंड, ब्रह्मोत्तर खंड, रेवा खंड, सूत संहिता आदि निश्चित भागों पर संदेह प्रकट करना अनुचित है। अग्नि पुराण में ईशान कल्प की कथायें हैं, जिसमें अग्नि ने वशिष्ठ से पुराण का वर्णन किया है। इसमें १५ हज़ार श्लोक हैं। अग्नि ने ब्रह्म का द्विविध ज्ञान इसमें कहा है। इसे वशिष्ठ से प्राप्त करके व्यास ने सूत को पढ़ाया जिसे सूत ने नैमिषारण्य में ऋषियों को सुनाया। इसमें राम और कृष्ण की कथायें रामायण तथा महाभारत की समझ पड़ती हैं। अग्नि पुराण के धार्मिक वर्णनों में तांत्रिक रीतियों का भी समावेश हो गया है। गया का माहात्म्य इसमें खूब कहा गया है तथा अन्य माहात्म्य भी हैं। विष्णु पुराण की

भांति जगदुत्पत्ति क्रम भी वर्णित है। इस पुराण मे राजनीति, धर्मशास्त्र एवं युद्ध ज्ञान के भी अच्छे वर्णन आये हैं तथा आयुर्वेद, अलंकार, पिंगल, व्याकरण आदि के भी विवरण सुश्रुत और पाणिनी के आधार पर किये गये हैं। इन बातों से प्रगट होता है कि इसके बहुत से भाग पीछे से प्रक्षिप्त हुए हैं, फिर भी उपरोक्त विषयों के वर्णन हिन्दू विचारानुकूल हैं और वाह्य देशों के तद्विषयक ज्ञान से असंबद्ध हैं। इन विषयो के अतिरिक्त पौराणिक कथायें, राजवंश आदि भी भली भांति वर्णित है।

ब्रह्माण्ड पुराण में ब्रह्म के अण्ड की प्रधानता है। स्कंद पुराण की भांति इसका भी कोई एक रूप नहीं मिलता वरन् अनेकानेक स्कंद तथा माहात्म्य इसी के अन्तर्गत कहे जाते हैं। ऐसी दशा मे कोई भी पंडित इस ग्रन्थ में नवीन उपाख्यान जोड़ सकता था। इन्हीं कारणो से विलफर्ड महाशय का मत है कि ब्रह्माण्ड, स्कंद, और पद्म चोरो एवं जालसाज़ो के पुराण हैं। विलसन महाशय का मत है कि पद्म के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह एक रूप में मिलता है। इसमें लिखा है कि महर्षि अगस्त्य कांची गये थे जहां हयग्रीव विष्णु ने उन्हें पराशक्ति पूजन ही मुक्तिमार्ग बतलाया। ललिता देवी द्वारा भण्डासुर विनाश की कथा भी इसमें है। ग्रन्थ विशेषतया तांत्रिक है। ब्रह्मवैवर्त की कथा सावर्ण्य ने नारद को सुनाई। इसमे कृष्ण माहात्म्य एवं रथंतर की कथा कही गई है। वर्तमान ब्रह्मवैवर्त पुराण मे ऋषि नारयण नारद को कथा सुनाते हैं, जिसको सुनकर व्यास सूत को सिखाते हैं जो नैमिषारण्य में ऋषियों के आगे दुहराते हैं। इसके चारों कल्पों में ब्रह्म, देवी, और

गणेश की कथायें कही गई हैं। इसमें साम्प्रदायिक विचारों की परम प्रचुरता है और विष्णु पुराण की जैसी गंभीरता बिलकुल नही है। कृष्ण की वृन्दावन तथा गोकुल वाली कथायें एवं राधा और गोपियो से उनके प्रेम का इसमें भारी वणन है। श्री भागवत की भांति श्री कृष्णचन्द्र के बाल चरित्रों को ब्रह्मवैवर्त भी प्रधानता देता है किन्तु साहित्य गरिमा तथा अन्य सद्गुणो मे उससे बहुत फीका है। मार्कंडेय पुराण की कथा मार्कंडेय ऋषि ने कही है। इसके आदिम भाग में ऐसे पक्षियों का वर्णन है जिनको उचितानुचित का ज्ञान था। जैमिनि ऋषि मार्कंडेय से इस ग्रन्थ में महाभारत संबन्धी कुछ प्रश्नों का उत्तर पूंछते हैं। मार्कंडेय अपने धार्मिक कृत्यों के कारण समयाभाव बतलाकर जैमिनि को पिंगाक्ष पक्षी तथा उसके भाइयो के पास भेजते हैं। जैमिनि वहा भी जाकर कृष्णावतार द्रौपदी के पंचभर्तृत्व तथा उसके पुत्र विनाश आदि का प्रश्न पूछता है। इसका उत्तर दिया जाता है और वशिष्ठ, विश्वामित्र की कथायें भी पक्षियो द्वारा कही जाती है। नरको का वर्णन अन्य पुराणो की अपेक्षा इसमे विस्तार से वर्णित है। इसमें मन्वन्तरो का भी वर्णन है और भावी मन्वन्तरो में काली, चण्डी, दुर्गा आदि के कथन बताये गये हैं। इस पुराण में सांप्रदायिक विचार नहीं हैं तथा धार्मिक विचारों, विनतियों, विधि निषेध आदि की कमी है। इसमें कथाओ की प्रधानता और प्राचीन पुरुषों के विषय मे भी कुछ नवीन बातें कही गई हैं। कुल मिलाकर यह पुराण साधारण पुराणों को अपेक्षा श्रेष्ठतर है। इसमें यह भो स्पष्टतया कह दिया गया है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव वास्तव में एक ही देवता हैं। भविष्य पुराण में अघोर कल्प की कथा है, जैसा-

इसके नाम से प्रगट है, यह भावी बातों का भी कथन करता है। ७००० श्लोकों का एक भविष्योत्तर ग्रन्थ भी है। इसकी कथा सुमन्तु ने शतानीक से कही है। कहते हैं कि पहिले इसको स्वयंभू ब्रह्मा ने कहा था। इसके ४ भागों में ब्रह्मा, विष्णु शिव और त्वष्टा की कथाएं हैं और सारे ग्रन्थ में धार्मिक रस्म रिवाजों की प्रधानता है। संस्कारों, संध्या, नागपंचमी आदि के वर्णन इसमें बहुतायत से आये हैं अन्त में शाकद्वीपि अग्निपूजक मगो का कुछ वर्णन है। भविष्योत्तर भी इसी प्रकार का है। पार्जिटर महाशय का मत है कि पौराणिक राजवंशों का संबद्ध वर्णन प्राकृत पुराणों से पहिले पहल भविष्य ही में लिया गया, जिससे समय पर वह अग्नि, वायु, विष्णु आदि पुराणो मे आया। इस पुराण का नाम भविष्य पुराण होने से समय समय पर पंडितों ने भविष्य भाषण की रीति पर नूतन घटनायें भी इनमे लिख दीं, जिससे कुछ पाश्चात्य पंडितो को इस ग्रन्थ की प्राचीनता मे भी संदेह उठने लगा है। वास्तव मे बहुत से अन्य पुराणो की अपेक्षा यह ग्रन्थ प्राचीनतर है। इसका कथन आपस्तंब धर्म सूत्र तक में प्रस्तुत है, जो बड़ा प्राचीन ग्रन्थ है।

वामन पुराण में वामन भगवान की प्रधानता है। नारद के प्रश्नों पर पुलस्त्य ऋषि के उत्तरो मे ग्रन्थ कहा गया है। इसमे विविध विषयों और स्थानो का माहात्म्य अधिकता से है तथा लिङ्ग पूजन का भी वर्णन है। गोदावरी माहात्म्य का भी विवरण आया है। बलिबन्धन की कथा स्वारोचिष मन्वन्तर में कही गई है यद्यपि अन्यत्र वह चाक्षुष में वर्णित है। यह साम्प्रदायिक ग्रन्थ नहीं है क्योंकि शैव तथा वैष्णव माहात्म्यों को निःपक्षता से वर्णन करता है। ब्रह्म पुराण की

कथा ब्रह्मा मरीचि को सुनाते हैं। ब्रह्मोत्तर पुराण तीन हज़ार श्लोकों में है और ब्रह्मपुराण का ही भाग समझा जाना चाहिए। यदि उसको पृथक् मानें तो प्रायः ७००० हो श्लोक रह जायंगे। ब्रह्मपुराण को आदि अथवा सौर पुराण भी कहते हैं। इसकी कथा लोमहर्षण ने ऋषियों को सुनाई है। इसमें सौर एवं चांद्र वंशावलियां कृष्ण के समय तक कही गई हैं। जगन्नाथ पूजन महत्ता ही इस ग्रन्थ का मुख्य अभिप्राय समझ पड़ता है, क्योंकि उड़ीसा के जगन्नाथ जी के महत्व का बहुत वर्णन इसमें आया है।

पौराणिक ग्रन्थों से सौर, चांद्र एवं अन्य वंशो का धीरे धीरे पूर्वीय, उत्तरीय, मध्य, दक्षिण एवं दक्षिण पाश्चात्य भारत में फैलने का इतिहास प्रकट हो सकता है, जैसा कि ऊपर के अध्यायों में दिखलाया जा चुका है। सौर वंश का मुख्य स्थान अयोध्या था किन्तु उसकी शाखायें तिरहुत एवं वैशाली में भी फैलीं। चांद्रवंश पहिले पहल प्रतिष्ठानपुर मे प्रतिष्ठित हुआ किन्तु समय समय पर इसमे से अनेकानेक भिन्न भिन्न राजवंश उत्पन्न हुए जिनके राज्य स्थान विविध अथवा कभी कभी एक ही समयों मे काशी, मगध, विहार, विन्ध्य, निषध, विदर्भ, कुशस्थली उपनाम द्वारिका, मथुरा, हस्तिनापुर, इन्द्रप्रस्थ, काम्पिल्य आदि थे। चांद्रवंशियों के कुछ उपनिवेश मणिपूर, बंगाल, कलिङ्ग, दक्षिण आदि में भी स्थापित हुए। आर्यराज्यों ने अपने जीते हुए देशों में चातुर्वर्ण्य एवं हिन्दू सभ्यता के अन्य अंगो को स्थापित किया। यदि पौराणिक व्यास लोग माहात्म्य वर्धन एवं अन्य विचारों से तथा आदिम सूत लोग अपने राजाओं की अनुचित प्रशंसा के ध्यान से पौराणिक विव-

रणों में समय संबन्धी अत्युक्ति न मिला देते तो आज ये ग्रन्थ सभी प्रकार से अनमोल समझे जाते और भारतीय प्राचीन इतिहास इस बीसवीं शताब्दी में भी संशयाकीर्ण न रहता। अत्युक्ति संबन्धी दूषण रखते हुए भी हमारे पौराणिक ग्रन्थ इतिहासकार के लिए परमावश्यक हैं। इनसे राजनैतिक, एवं अन्य विषयो का तत्कालीन ज्ञान हम लोगों को भली भांति होता है। दो एक दूषणो के कारण इस पूरे साहित्य को निन्द्य अथवा आधारशून्य ठहराने वाले केवल अपनी समालोचना शक्ति के शैथिल्य का परिचय देते हैं। विलसन, पार्जिटर, आदि पाश्चात्य विद्वानो ने भी इन ग्रन्थों की उपयोगिता को मुक्त कंठ से स्वीकृत किया है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है हमारे सूत्र काल मे ही अनेकानेक आदिम जातियों के हिन्दू मत में आने से उनके तत्कालीन विचारो के अनुसार नये भावों तथा देवताओ की सृष्टि हिन्दू मत में होने लगी और त्रिमूर्ति के विचार उत्पन्न होकर पुष्ट होने लगे थे। ये विचार आदिम पौराणिक समय मे ही पूर्णतया पुष्ट हो गये। अब वैदिक देवताओ की महत्ता कम हो गई और कुबेर, गणेश, षण्मुख, लक्ष्मी, दुर्गा आदि नवीन देशी देवताओं के भाव उठकर पुष्ट हुए। नागो, यक्षों, गंधर्वों, किन्नरों आदि को एक प्रकार से देव योनि के समान पदवी मिली। वैदिक देवताओं में द्यौस, मित्र, सावित्री पूषन्, अश्विनीकुमार, मरुत, अदिति, दिति और आदित्यों के विषय या तो देव भाव लुप्त हो जाता है या महत्ता कम होकर मनुष्य जैसा वर्णन होने लगता है। वैदिक प्रधान देवता इन्द्र यद्यपि देवराज रहे तथापि त्रिमूर्ति के सम्मुख उनका विभव बिलकुल फीका पड़ गया। गौतम बुद्ध के कुछ ही पीछे

अवतारों का विचार उठकर अति शीघ्रता से पुष्ट हो गया। कार्मिक सिद्धान्त एवं आवागमन सम्बन्धी विचार यद्यपि इस काल की अपेक्षा प्राचीनतर थे, तथापि बौद्ध धर्म के कारण इनको भारी बल प्राप्त हुआ, जिससे पौराणिक साहित्य में भी इनकी महत्ता कुछ बढ़ी हुई देख पड़ती है। मौर्यकाल के पूर्व ये सब विचार उत्तरीय भारत में भली भांति स्थिर हो चुके थे। जिस काल महाभारत के आदिम रूप भारत की रचना हुई थी तब अवतारों का विचार नहीं चला था। समझ पड़ता है कि महाभारत के पीछे वाले वर्धमान संस्करणों में ये भाव बढ़ा दिये गये। गीता के समय में अवतारों का विचार पूर्णतया स्थापित था। गीता निर्वाण का भी कथन बड़ी श्रद्धा से करती है। यह निर्णय करना कठिन है कि यह विचार गीता में बौद्ध मत से आया अथवा हिन्दुओं में पहिले ही से प्रचलित था और बुद्ध भगवान इसके लिए हिन्दूमत के ऋणी हैं। वाल्मीकीय रामायण द्वितीय से पंचम भाग पर्यन्त आदिम भारत ग्रन्थ का समकालीन समझा जाता है जैसा कि आगे दिखलाया जावेगा, पडितों का मत है कि इस ग्रन्थ में प्रथम और सप्तम भाग कुछ पीछे से जोड़े गये। रामायण के उपरोक्त पांचों प्राचीन भागों में अवतारों का सिद्धांत कहीं नही कहा गया है और रामचन्द्र राजपुत्र वीर आदि कहे गये हैं न कि कोई अवतारी पुरुष, यह धार्मिक क्षति शेष दोनों भागों में पूरी कर दी गई है। इससे भी तत्कालीन अवतार संबंधी विचारों का अभाव सिद्ध होता है। मेकडानल महाशय का मत है कि संस्कृत का पुराणों के समान अवैदिक साहित्य वैदिक साहित्य के पीछे ही उत्पन्न हुआ; ऐसा नहीं कहा जासकता। आपकी

सम्मति में ऐसा साहित्य वैदिक तथा ब्राह्मणिक समय मे भी गद्य अथवा पद्य में बनता होगा, किन्तु लेखन काल के लिए गद्य काव्य की प्रथा बिलकुल उठ गई। जैसा कि वैदिक वर्णनो में ऊपर कहा जा चुका है गद्य पहिले पहल यजुर्वेद में मिलता है। अनन्तर ब्राह्मण ग्रन्थों में उसका प्राधान्य है। यास्क कृत निरुक्त ग्रन्थ मे बहुत सी गद्यात्मक कथायें हैं। बौद्धों का पाली साहित्य भी विशेषतया गद्य ही में है। फिर भी पौराणिक साहित्य के प्रभाव से गद्य का उस काल ऐसा ह्रास हुआ कि धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, कोश आदि की रचनायें तक पद्य में होने लगीं और गद्य केवल काल्पनिक कथाओं, भूत प्रेतों आदि के वर्णनों, प्रेम कहानियों नाटकों आदि में रह गया। गद्य की कमी से लेखकों का ध्यान उसकी उत्तमता पर भी कम गया जिससे यह गद्य प्राचीन ब्राह्मणिक गद्य की अपेक्षा उत्तम होने के स्थान पर फीका जंचता है। सूत्र काल पर्यन्त हमारा प्राचीन साहित्य विशेपतया धार्मिक रहा, किन्तु पौराणिक समय में विविध विषयक वर्णनों की परिपाटी स्थिर होकर वलवती हुई, जिससे हमारे तत्कालीन साहित्य में अच्छी पूर्णता आई। पौराणिक व्यासों ने नवों रसो को पूर्णतया आदर दिया और साहित्य के प्रायः सभी अंगों को अपने रचना चमत्कार से पुष्ट किया। कथाओ, उपाख्यानो आदि का वर्णन वैदिक संहिताओं में है ही नहीं। ब्राह्मणिक ग्रन्थों में याज्ञिक, आध्यात्मिक, लोक रचना विषयों आदि से संबन्ध रखने वाली कुछ गाथायें कही गई किन्तु आर्ष साहित्य मे कथा वर्णन परिपाटी ने विलकुल बल न पाया। वैदिक साहित्य की इस कमी को सूतों ने कुछ अंशों में पूरा किया। सूत्रकाल में गाथा कथन

की प्रथा भी लुप्त हो गई। इधर पौराणिक साहित्य में कथा वार्ताओं को ही पूर्ण प्रधानता मिली और अन्य विषय इन्हीं के सहारे कहे गये। पहिले पुराणों की रचना स्त्रियों तथा शूद्रों के लाभार्थ हुई किन्तु धीरे धीरे सारे भारतीय समाज ने इनका मान बढाया और वैदिक साहित्य मनोरंजकता की दृष्टि में इसकी अपेक्षा बहुत फीकी होने के कारण भारी भारी पण्डितों ही के लिए रह गया और सर्वसाधारण से उसका प्रचार उठ गया। यही दशा अब तक चली जाती है। गाथाओं पर प्रधानता रखने के कारण पौरारिणक साहित्य ने धार्मिक विचार से शैव तथा वैष्णव कथाओ पर अधिक ध्यान दिया। बौद्ध धर्म प्रचार के साथ ही साथ भारत में शैव तथा वैष्णव पूजन विधानों का माहात्म्य भी बढ़ता गया। साधारण समाज के इस भाव ने पुराणों में ऐसी कथाओं के प्रचार का भाव बढ़ाया और पौराणिक वर्णनो ने जन समाज मे भी इन विचारों की अधिकाधिक वृद्धि की। इस प्रकार अन्योन्याश्रय की रीति से शैव तथा वैष्णव विचार एवं कथायें साधारण जन समाज तथा पुराणों मे बढती गई। इन्हीं के साथ बंगाल की ओर शक्ति पूजन एवं शाक्त विचारो का कुछ कुछ प्रचार बढता गया। ऊपर कहा जा चुका है कि इन लोगो के हिन्दू होने के पहिले इनमे शैव एवं शाक्त पूजनों से मिलते जुलते आचार विचार थे। आर्य लोगो के संघट्ट ने इन पुरानी जातियों पर ऐसा प्रभाव डाला कि शैव पूजन विधान इतना उन्नत एवं परिष्कृत हुआ कि वैष्णव पूजन एवं विचारों के प्रायः सम हो गया। फिर भी वैष्णव पुराणों की अपेक्षा शैव पुराणों मे कुछ विशेष साम्प्रदायिक कट्टरपन तथा हलकापन अवश्य पाया जाता है। आर्य प्रभाव से शाक्त

पूजन भी समय के साथ कुछ कुछ परिष्कृत होता गया किन्तु शैव पूजन की अपेक्षा उसमें अब भी प्रचंड विचार तथा रीतियां बहुतायत से पाई जाती हैं। आर्यों की मुख्य पूजन विधि एवं विचार वैष्णव हैं जिन पर बौद्ध एवं जैन दयालुता का भी कुछ प्रभाव पड़ा हुआ समझ पड़ता है। हिन्दू समाज में जीवहिंसा के प्रतिकूल जो आचार विचार हैं, उनके पोषक मत प्राचीन आर्य साहित्य में अवश्य मिलते हैं, तथापि उनपर बौद्धों एवं जैनो का भी कुछ प्रभाव समझ पड़ता है। बौद्ध विचारों ने आर्यों के जाति सम्बन्धी कट्टरपन के विचारों को कुछ हलका कर दिया जिससे जितनी आर्य्येतर जातियां सांसारिक होड़ मे उन्नत थीं या हुईं उनको समय के साथ आर्यों ही के प्रायः सम अधिकार मिल गये। बौद्ध काल पर्यन्त जाति भेद में इतनी तीव्रता नहीं हुई थी कि विविध जातियों में मिलित विवाह निन्द्य समझे जाते। महाराजा उद्यन की तीन रानियों में से एक ब्राह्मणी, दूसरी क्षत्रियाणी, तीसरी वैश्या थी। फिर भी ऊंची जातियों में निम्नतर श्रेणियों की कन्यायें बराबर जाती थीं किन्तु इसके विपरीत विवाहों की प्रथा शिथिल हो गई थी। आर्यों में जाति भेद की दृढ़ता का विस्तार सूत्रकालिक हिन्दुओं में अन्य जातियों के सम्मिलित होने से होने लगी। बुद्ध के समय तक अनमिल विवाह होते थे किन्तु गणना मे वे कम हो चले थे। ये बिलकुल बन्द कब हो गये इसका पता लगना कठिन है। शूलपाणि ने कलिवर्ज्य में ऐसे विवाहों को निंद्य माना है। शास्त्रकार समाज में प्रचलित रीतियों के अनुसार ही नियम बनाते थे। इससे जान पड़ता है कि यह शूलपाणि के समय में ही भली भांति स्थिर थी। हिन्दुओं में पौराणिक

समय पर्यन्त खानपान के छुआ छूत संबंधी विचार न चले थे। पुराणों में लिखा है कि ब्राह्मण लोग तक औरों के यहां बराबर भोजन करते थे। भोजन बनाने वाले का उस समय कोई माहात्म्य न था और पाककर्ता को संस्कृत में सूदकार कहते हैं। आज कल भोजन बनाने वाले प्रायः ब्राह्मण होते हैं सो उनके स्वामी तक उनकी प्रतिष्ठा के लिए उन्हें महाराज कहते हैं। ब्राह्मणों का मान अथर्ववेद के समय से ही बढ़ चला था। उसकी क्षति पौराणिक समय में भी कुछ न हुई। यद्यपि बौद्ध धर्म के कारण शूद्रों की कुछ उच्च जातियों को समाज में कुछ अच्छा पद मिल गया, तथापि कुल मिला कर पौराणिक समय में चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था दृढ़ हुई। वैदिक तथा ब्राह्मणिक समयों में बहुत से अध्यापक एवं अन्य ब्राह्मण ऋषि सशिष्य वर्ग बनों में रहा करते थे। यह प्रथा धीरे धीरे बौद्ध काल में लुप्तप्राय हो गई। गौतम बुद्ध का बहुत से बड़े बड़े अध्यापकों से संघट्ट हुआ था किन्तु ये सब नगर निवासी थे। बनों, आरामों, विहारों आदि में केवल तपस्वी रहते थे। बौद्ध भिक्षुओं ने विहारों, मठों, आदि में रहने की प्रथा चलाई। इसका कुछ प्रभाव हिन्दू समाज पर भी पड़ा। समय पर पौराणिक काल के कुछ पीछे हिन्दुओं में भी देवालय आदि बनने लगे और उनमें भी मठ पतियों का निवास होने लगा। पौराणिक समय में भी हिन्दू गृह त्यागी बौद्ध भिक्षुओं की भांति जंगल में रहने लगे थे ऐसा समझ पड़ता है। मुख्य एवं माननीय पौराणिक ग्रन्थों में प्रतिमा पूजन का विचार नहीं पाया जाता है। रामचन्द्र, युधिष्ठिर, बलराम, नन्द आदि की तीर्थ यात्राओं के वर्णनों में भी प्रतिमाओं का कथन नहीं आता है, वरन् पहाड़ों,

नदियों, तड़ागों, कूपों तथा विविध घटनाओं के आधार पर पूज्य स्थानों की महत्ता वर्णित है। ऐसे ही स्थानों पर तीर्थ यातायें हुई हैं। वाल्मीकि कृत रामायण मे भी प्रतिमाओं का पूजन विधान नहीं कहा गया है। यदि प्रतिमा पूजन का उस काल कुछ भी चलन होता तो रामेश्वर के कारण महर्षि वाल्मीकि अपनी वर्णन प्रणाली के अनुसार दो चार अध्यायों में इसका कथन अवश्य करते। इस विषय के जो दो चार श्लोक रामायण में आये हैं वे वाल्मीकीय वर्णन प्रणाली के प्रतिकूल होने से प्रक्षिप्त समझ पड़ते हैं। समय के साथ बौद्धों में प्रतिमा पूजन का बल बढ़ा। महाराजा कनिष्क तथा उनके वंशधरों ने प्रतिमाओं पर भारी श्रद्धा करके उनका माहात्म्य बहुत बढ़ाया। समझ पड़ता है कि हिन्दुओं में प्रतिमा पूजन कुशन राज्य के कुछ ही पहिले प्रारम्भ हुआ और इस राज घराने के समय वृद्धि को प्राप्त हुआ। प्रतिमाओं के साथ ही साथ मन्दिरों की परिपाटी बढ़ती गई। पौराणिक समय की राज्य प्रणाली कहने को तो एकाधीन थी किन्तु वास्तव में प्रवीण मंत्रियों, विद्वानों तथा ऋषियों के विचारों का पूरा मान होता था। राजा लोग बहुधा सर्व संम्मति पर ही चलते थे। राज्य का अंग केवल राजा नहीं समझा जाता था वरन् स्वामी, सचिव, सुहृद्वर्ग, कोष, राष्ट्र, बल, दुर्ग और प्रजा नामक सात राज्याङ्ग थे। महात्मा गौतम बुद्ध के समय में भी दो प्रजातंत्र राज्य थे। इनकी प्रणाली का भी प्रभाव तत्कालीन अन्य राज्यों पर प्रजाबल वर्धन में पड़ता होगा। कानून बनाने का अधिकार राजा को न होकर शिष्ट लोगों को था। व्यापार बहुधा नदियों द्वारा होता था, किन्तु भारी थल

मार्गों की भी कमी न थी, जैसा कि १६वें अध्याय में कुछ विस्तार के साथ दिखाया जा चुका है। साधारण समाज की दशा का वर्णन जैसा कि उस अध्याय में हुआ है, प्रायः वैसा ही पौराणिक समय में भी समझना चाहिये। पुराणों में युद्ध विद्या, की ऐसी भारी उन्नति लिखी हुई है जिसपर विश्वास करना भी कठिन है। सभ्य देशों की भांति भारत में भी युद्ध सम्बन्धी उन्नत नियम भली भांति प्रचलित थे। इनसे तत्कालीन सभ्यता का अच्छा परिचय मिलता है। इतना निश्चित है कि धनुर्विद्या उन्नत अवस्था में थी तथा कृपाण प्रयोग में भी अच्छी पटुता संपादित हुई थी। स्वयं गौतम बुद्ध ने इन तथा अन्य शस्त्रास्त्रों में अपना हस्तनैपुण्य अपने पिता के सामने प्रदर्शित किया था। रामचन्द्र और युधिष्ठिर के समयों में एक एक व्योमयान का वर्णन है किन्तु इनके पीछे व्योमयानों का अस्तित्व प्रगट नहीं होता। सूत्रकाल में गृहत्यागियों, गृहस्थों आदि के विषय में वर्णानुसार अनेकानेक नियमोपनियम बने थे। पौराणिक समय में भी उनकी दृढ़ता बनी रही वरन् कुछ बढ़ भी गई सूत्रकाल में यज्ञों का विधान अधिकता से था। पौराणिक समय में बौद्ध प्रभाव के कारण इसकी एवं बलिदानों की कमी हुई यद्यपि इनका लोप नहीं हुआ। वैदिक धर्म तथा देवताओं के स्थान पर क्रमशः पौराणिक देव समाज का स्थापन हुआ जिससे नव विकसित धर्म का प्रभाव सर्वसाधारण पर भी दृढ़ हुआ, एवं साधारण जन समाज में धार्मिक विचार पहिले की अपेक्षा कुछ अधिक फैला। साकार तथा निराकार उपासनाओं की विधि स्थापित हुई और भक्ति मार्ग को

भारी स्तुति प्राप्त हुई। साकार उपासना के साथ स्वर्ग, नरक आदि के विचारों का बड़ा फैलाव हुआ।

ऊपर कहा जा चुका है कि भारत, वाल्मीकीय रामायण तथा मनुस्मृति प्रायः एक ही समय में बनी थीं। पुराणों का सूक्ष्म वर्णन हम ऊपर दे आये हैं और पौराणिक साहित्य से सामाजिक विषयों पर कुछ निष्कर्ष भी प्रदर्शित कर चुके हैं। अब रामायण तथा स्मृतियों के विषय में कुछ लिखना शेष है। संस्कृत साहित्य के मुख्य दो विभाग हैं अर्थात् पहिला इतिहास आख्यान या पुराण और दूसरा काव्य। पहिले में भारी कथाओं का संग्रह होता है और दूसरे में इनमें से कोई कथा लेकर उसका चामत्कारिक रीति से सविस्तर साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया जाता है। पाश्चात्य पंडितों का मत है कि रामायण की रचना बहुत करके एक रस है जिसमें एक ही कवि का हाथ बराबर देख पड़ता है किन्तु महाभारत में कई कवियों की कृति समझ पड़ती है। जिस काल भारत की द्विधा वृद्धि होकर वह महाभारत का रूप ग्रहण कर रहा था और इस लिए ग्रन्थ परिवर्तन दशा में था; उस काल भी रामायण निश्चित और स्थिर था। इसमें वृद्धि केवल दो कांडों की समझ पडती है। प्राचीन ग्रन्थ अयोध्या कांड से उठा है और क्रमशः आरण्य, किष्किंधा, और सुन्दर कांडों को समाप्त करता हुआ लंका काण्ड के साथ स्वयं समाप्त होगया है। इन पांचों काण्डों में प्रक्षिप्त भाग बहुत थोड़ा है और इनसे तत्कालीन आर्य विचारों का अच्छा ज्ञान प्राप्त होता है। अतएव सच्चे इतिहास के विचार से यह महाभारत से भी अधिक उपयोगी है। यदि हमारे पास प्राचीन भारत ग्रन्थ अपरिवर्तित रूप में प्रस्तुत होता तो उसकी ऐतिहासिक

महत्ता इन पांचों कांडों के बराबर होती। खेद केवल इतना है कि इसके काव्य ग्रन्थ होने के कारण इसमें कथा भाग थोड़ा है और वर्णन विस्तार भाग अधिक। पीछे से पंडितों ने इसमें बाल और उत्तर कांड जोड़ कर अन्य वर्तमान रामायणों की भांति इसे भी सप्त कांडात्मक बनाया। ऐसा करने में उन्होंने अयोध्याकांड का थोड़ा आदिम भाग बालकांड के आदि में रख दिया। वर्तमान रामायण में २५००० श्लोक हैं। इसकी तीन प्रधान प्रतियां हैं, अर्थात् पश्चिम भारतीय, बंगाली और बम्बई वाली। मेकडानल का मत है कि रामायण का सबसे पुराना रूप बहुधा बम्बई वाली प्रति में सुरक्षित है। विक्रमीय १३वीं शताब्दी के आदि में रामायण कथासार मंजरी नामक रामायण का एक सार ग्रन्थ बना। इसी समय रामायण चंपूकार भोज ने बम्बई वाली प्रति के सहारे ग्रंथ रचा। उधर मंजरीकार क्षेमेन्द्र ने पश्चिमी प्रति का अवलंबन किया था। कहा जाता है कि रामचन्द्र के समय में ही एक रामायण बनी थी जिसका गान उन्हीं की सभा में उन्हीं के पुत्र कुश और लव ने किया था। कहते हैं कि वह रामायण रामचन्द्र के समकालीन किसी वालमीकि ने बनाई थी। रामायण की कथा सबसे पहिले सूतों की संहिताओं तथा प्राकृत पुराणों में कही गई किन्तु ये ग्रन्थ अब अप्राप्य हैं। प्राप्य रामायण ग्रन्थों के रचयिताओं में सब से पहिला भास कवि है जिसने एक एक नाटक द्वारा रामायण के प्रत्येक कांड की कथा दृश्य काव्य में दिखलाई। दूसरे कवि महर्षि वालमीकि हैं जो पहिला काव्य ग्रन्थ रचने के कारण आदि कवि भी कहलाते हैं। कहते हैं कि किसी व्याध द्वारा किसी कामक्रीड़ा में संलग्न किसी क्रौंच पक्षी का

वध देखकर महर्षि ने उसके भर्त्सन मे एक वाक्य कह डाला जो अकस्मात् अनुष्टुप् श्लोक के रूप मे निकला। वह श्लोक इस प्रकार है :—"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः। यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्॥" कहते हैं कि ब्रह्मा नामक किसी भद्र पुरुष ने वालमीकि को इसी छन्द से रामायण की कथा कहने को प्रोत्साहित किया और महर्षि वाल्मीकि ने इस आज्ञा को शिरोधार्य मानकर जगद्विख्यात रामायण ग्रंथ रचा, जो काव्य का प्रथम ग्रंथ होने से आदि काव्य भी कहलाता है। पंडितों का मत है कि रामायण ग्रंथ अयोध्या वाले ऐक्ष्वाकुओं द्वारा शासित कोशल देश में बना था। बालकांड में लिखा है कि ऐक्ष्वाकुओ के घराने मे यह ग्रंथ निकला। जान पड़ता है कि इस राजकुल के सूतों ने स्मरण-शक्ति द्वारा इस अपूर्व कथा को सुरक्षित रक्खा और फिर वालमीकि ने इसे रामायण के रूप मे परिणत किया। महाभारत के द्रोण पर्व मे वालमीकि के लंकाकांड से एक श्लोक उद्धृत है। पंडितो का मत है कि महाभारत का यह भाग प्राचीन है। वन पर्व वाली रामायण में भी वालमीकीय श्लोको से मिलते जुलते कई श्लोक है। इस बात से रामायण की प्राचीनता प्रमाणित होती है। मेकडानल महाशय ने दिखलाया है कि रामायण का एक श्लोक पाली रूप मे बौद्ध ग्रंथ दशरथजातक मे पाया जाता हैं, किन्तु रामायण पर बौद्ध विचारों तथा दशरथजातक का कोई प्रभाव नही देख पड़ता। अयोध्या कांड के कुछ श्लोकों में रामचन्द्र द्वारा ऐसे कथन कराये गये हैं कि जिनसे बौद्ध भिक्षुओं की निन्दा व्यञ्जित होती है। ये श्लोक प्रक्षिप्त समझ पड़ते हैं और पाश्चात्य पंडितों का भी ऐसा ही विचार है। रामायण के प्राचीन पांचों कांडों

में यवन (यूनानी) शब्द एक ही वार आया है जिसे भी जेकोबी महाशय ने प्रक्षिप्त प्रमाणित कर दिया है। यवन शब्द का अभाव भी रामायण की प्राचीनता का एक प्रमाण है। मेकडानल महाशय ने इस विषय में कुछ और भी प्रमाण दिये हैं जिनका साराँश यहां लिखा जाता है। पाटलिपुत्र को कालाशोक ने सं० पू० ३२३ मे वसाया था। रामायण में, रामचन्द्र का उस स्थान पर जाना लिखा है किन्तु पाटलिपुत्र का नाम नही कहा गया है यद्यपि कोशाम्बी, कान्यकुब्ज, काम्पिल्य आदि के नाम आये हैं। इससे प्रगट है कि रामायण पाटलिपुत्र के वसने के प्रथम वना। रामायण में कोसल की राजधानी सदा अयोध्या कही गई है तथा साकेत और श्रावस्ती के नाम तक नही आये हैं, यद्यपि महर्षि पतञ्जलि तथा वौद्ध, जैन एवं यूनानी लेखक सदा उसे साकेत कहते हैं। गौतमवुद्ध के समय कोसलराज प्रसेन था जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी। यदि रामायण के प्राचीन भाग इस काल के पीछे वने होते तो श्रावस्ती का नाम उनमें अवश्य आता जैसा कि नवीन भाग उत्तर कांड में प्रस्तुत है। इन वातों से प्रगट है कि रामायण निर्माण के समय तक अयोध्या नहीं उजड़ी थी। श्रावस्ती में राजधानी नही हुई थी और साकेत नाम प्रख्यात नही हुवा था। वालकांढ के प्राचीन भाग मे लिखा है कि मिथिला और वैशाली में दो पृथक् राजा थे। गौतम वुद्ध के समय से पहिले ही ये दोनों राज्य एक हो चुके थे और वैशाली में प्रजातंत्र राज्य था। इन वातों से निश्चित है कि रामायण का प्राचीन भाग गौतम वुद्ध से पहिले का है। इन दोनों समयों में कितना अंतर है इसका जानना सुगम नहीं है। कुछ पाश्चात्य पंडितों का

यह भी मत है कि यद्यपि साधारणतया रामायण की भाषा पाणिनीय नियमों को मानने वाली समझी गई है तथापि ध्यानपूर्वक देखने से यह बात निश्चित प्रकारेण सिद्ध नहीं होती। यह मत समर्थनीय नहीं समझ पड़ता क्योंकि रामायण की भाषा निश्चय ही पाणिनीय नियमों पर चलने वाली समझ पड़ती है। अतएव रामायण की प्राचीनता से पाणिनि की भी प्राचीनता प्रमाणित होती है। हम रामायण को संवत् पूर्व ७वीं शताब्दी का ग्रंथ समझते हैं। मेकडानल महाशय का मत है कि रामायण के नवीन भाग प्रायः २५० सं० पू० के लगभग के हैं।

रामायण की कथा में रामचन्द्र का चरित्र कहा गया है जिसका वर्णन हम श्रीरामचन्द्र के अध्याय मे कर आये हैं। रामायण का साहित्य प्राचीन होने पर भी ऊंचे दर्जे का है। इसमें सर्व प्रधान गुण वर्णन पूर्णता का है। आप जिस विषय को उठाते हैं उसका विस्तार पूर्वक साङ्गोपांग वर्णन कर देते हैं। उपमाओं का व्यवहार आप बहुत अधिकता से करते हैं। एक ही प्रकार के वर्णन मे कहीं कहीं आपकी एक ही उपमा को अनेक स्थानो पर कह जाते हैं। रूपकों तथा अन्य अलंकारों के अच्छे उदाहरण रामायण में पाये जाते हैं। वर्णन पूर्णता के कारण रामायण के प्रायः प्रत्येक वर्ण्य विषय का पाठक के सामने चित्र ही उपस्थित हो जाता है। सुप्रबन्ध के अतिरिक्त महर्षि वाल्मीकि में प्रसाद गुण बहुत अच्छा पाया जाता है। इस ग्रन्थ का माहात्म्य इतना अधिक है कि अब भी पुण्यार्थ लोग इसका पाठ कराते हैं। लोकप्रियता रामायण का एक प्रधान गुण है। इन्हीं के आधार पर सैकड़ों कवियों ने रामचन्द्र पर ग्रन्थ रचे। महात्मा तुलसी-

दास ऐसे कवियों में अग्रगण्य हैं। आपका रामचरित मानस आजदिन हिन्दी भाषी भारतवर्ष में गीता और बाइबिल के समान प्रधान धर्म ग्रन्थ हो रहा है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है रामायण आदि काव्य है। इसके पीछे अनेकानेक अन्य काव्य ग्रन्थ बने, जिनका प्रारंभ अन्तिम पौराणिक समय से ही हो गया था। फिर भी उनका कथन किसी अन्य अध्याय में एकत्र करना युक्तियुक्त समझ पड़ता हैं। अब इस स्थान पर स्मृतियों का कुछ सूक्ष्म वर्णन कर देना आवश्यक है। जैसा कि सूत्र काल के कथन में लिखा जाचुका है स्मृति ग्रन्थ सूत्रों ही के आधार पर बने और विषय मे भी उन्हीं से मिलते हैं यद्यपि इनमें विस्तार और विषय बाहुल्य सूत्र ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक है। तात्पर्य यह है कि स्मार्त ग्रन्थ विषय में सूत्र ग्रन्थों के समान हैं किन्तु उन्हीं से सीमा संकुचित नहीं है। इनका रचना काल भी मोटे प्रकार से पौराणिक समय ही है। मुख्य स्मार्त ग्रन्थ १८ हैं अर्थात् मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशनस, अंगिरा, यम, आपस्तंब, कात्यायन, बृहस्पति, पाराशर, व्यास शंख लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप और वशिष्ठ। सतयुग, द्वापर, त्रेता और कलियुग के लिए क्रमशः मनुस्मृति, गोतम स्मृति, शंख लिखित स्मृति और पाराशर-स्मृति की प्रधानता है। सबसे प्राचीन तथा सारगर्भित मनुस्मृति है जिसे मानव धर्मशास्त्र भी कहते हैं। इसका मूलाधार मानव धर्म सूत्र ग्रन्थ हैं। मनुस्मृति में २६८४ श्लोक हैं जिनमें से २६० जेसे के तसे महाभारत और मनुस्मृति में पाये जाते हैं। इससे प्रगट है कि इन दोनों ग्रन्थों का बहुत बड़ा साम्य है। महाभारत की भांति मनुस्मृति के भी तीन

पृथक आकार प्रकार समय समय पर रहे हैं। कहते हैं कि पहिले राजर्षि मनु ने इसे बनाया, किन्तु समय पर ग्रन्थ लुप्त हो गया और तब उनके शिष्य भृगु ऋषि ने इसको पुनरुज्जीवित करके इस अपने शिष्यों को पढ़ाया। मनु के शिष्य होने से भृगु उनके ग्रन्थ को जानते थे। पीछे भृगु के शिष्यों ने उसके उस रूप का सङ्कलन किया, जो अब हमारे समय तक प्रस्तुत है। अनेकानेक महाशयों ने इसपर टीकायें लिखी हैं, जिनमें कुल्लूक भट्ट की प्रधानता है। माण्डलिक महाशय के संस्करण में ७ टीकायें है। महाभारत और मनुस्मृति के २६० श्लोक मिलने से प्रगट है कि या तो महाभारत मे स्मृति के अवतरण लिए अथवा स्मृति ने भारत के। महाभारत बहुत काल पर्यन्त बनता और बढ़ता रहा है, तथा धीरे धीरे पुराण से स्मृति का रूप धारण करता गया है। इससे समझ पड़ता है कि महाभारत ने ही स्मृति से अवतरण लिये होंगे।

मनुस्मृति में बहुत से अध्याय हैं जिनमें चातुर्वर्ण्य संबंधी विविध नियमोपनियम कहे गये हैं। यही दशा चारों आश्रमों के विषय में भी है। प्राचीन काल में वर्णन तथा आश्रम संबन्धी विचार प्रायः साथ ही साथ चलते थे यहाँ तक कि दोनों मिलकर वर्णाश्रम धर्म कहलाते थे। मनुस्मृति में सामाजिक नियमों के अतिरिक्त, क़ानून के भी नियम हैं। न्यायालयों, प्राड्विवाकों (वकीलों), वादी, प्रतिवादी आदि के विषय मे नियमोपनियम पाये जाते हैं। दण्ड संग्रह, अभियोग संचालन विधि आदि सभी बातें सूक्ष्मी रीत्या इसमें वर्तमान हैं। दायभाग, दत्तक, विवाह, दान, आदि से संबंध रखनेवाले नियमोपनियम इसमें प्रस्तुत हैं। इसी भांति संस्कारों श्राद्धों, दानपात्रों, युद्ध, विग्रह, शांति, राजनीति, व्यापार,

सेवा, ब्याज, कृषि, कर आदि के विषय में भी वर्णन पाये जाते हैं। कहीं कहीं बहुत से प्रक्षिप्त श्लोक भी मिलते हैं। अध्यायों के अंत में दो चार श्लोक प्रायः ऐसे देख पड़ते हैं जो उसी अध्याय के अन्य भागों में कहे हुए नियमों के बिलकुल प्रतिकूल होते हैं और ग्रन्थ के उदार आशय को तोड़ मरोड़ कर आचार विचारों में आधुनिक समय वाले पंडित समुदाय के विचारानुसार कट्टरपन, संकुचन और क्षुद्रता लाने का प्रयत्न सा करते हुए देख पड़ते हैं। ऐसे प्रक्षिप्त भागों को छोड़ देने से मनुस्मृति में उदाराशय का प्राधान्य है। उन्नत जातियों के जैसे आचार विचार होने चाहिये वैसे ही ग्रन्थ में देख पड़ते हैं। यह ग्रन्थ रत्न भी तत्कालीन आचार विचारों का अच्छा वर्णन करता है। देवालयों आदि का इसमे वर्णन नही है। युद्ध के नियम शौर्योचित गुणों को लिये हुए हैं। इनका उदाहरण आगे चलकर हम कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र के वर्णन में देंगे। दोनों ग्रन्थों के विचार इस विषय में प्रायः सम हैं। विष्णुस्मृति उपनाम वैष्णव धर्मशास्त्र स्मार्त ग्रन्थों मे बड़ी महत्ता का है। मेकडानल महाशय इसका रचना काल २५० संवत में समझते हैं। इसका विषय मनुस्मृति से मिलता जुलता है। यह गद्य ग्रन्थ है। स्मृतिकार विष्णु दो थे एक प्राचीन दूसरे नव्य। प्रायः सभी स्मार्त ग्रन्थ एक प्रकार की नियमावलियां हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति की महत्ता आजकल बहुत अधिक है। इसकी श्लोक संख्या १००६ है। विज्ञानेश्वर कृत प्रसिद्ध ग्रन्थ मिताक्षरा इसी की टीका है। वर्तमान समय के अंगरेज़ी न्यायालयों में बहुत करके मिताक्षरा के अनुसार ही हिन्दुओं में डोली क़ानून वर्ता जाता है। याज्ञवल्क्य स्मृति का निर्माण शुक्लयजुर्वेदीय धर्मसूत्रानुसार समझा जाता है।

एक याज्ञवल्क्य मिथिला के थे जिनका शुक्ल यजुर्वेद से विशेष संबन्ध है। संभव है कि वर्तमान याज्ञवल्क्य स्मृतिकार उसी प्रांत के हों। नारदीय स्मृति में १२००० श्लोक हैं। यह मनु-स्मृति के आधार पर चलती है। पाराशरीय स्मृति पीछे का ग्रन्थ समझा जाता है क्योंकि वह कलियुग में प्रामाणिक कही गई है।

अत्रि स्मृति में ४०० श्लोकों से भी कम हैं। इसमें फल्गू नदी स्नान, गदाधर दर्शन, चरणामृत पान, म्लेच्छों से घृणा आदि के उपदेश हैं। विधवाओं के जलाने का वर्णन भी इसमे आया है। इन बातों से यह आधुनिक ग्रंथ समझ पड़ता है। हारीत स्मृति जैसी कि आज कल मिलती है पद्य में है। इसमें शेषशायी विष्णु, नरसिह. आदि के कथन हैं और अन्तिम अध्याय में योगशास्त्र का विवरण किया गया है। इसका वर्तमान विषय पौराणिक विवरणों से मिलता है। इस ग्रंथ के मिताक्षरा आदि वाले अवतरण गद्य मे हैं और इसका नाम प्राचीन बौद्धायन, आपस्तंब सूत्रकारों की रचनाओं में भी आता है। जान पड़ता है कि प्राचीन हारीत स्मृति ग्रंथ लुप्त हो गया है और वर्तमान पौराणिक समय से पीछे बना है। उशनस स्मृति ९ अध्यायों मे प्रायः ६०० श्लोकों का ग्रंथ है। इसमें प्रायश्चित्तों के वर्णनों की अधिकता है, समुद्रयात्रा निंद्य ठहराई गई है और सती का कथन किया गया है। त्रिमूर्ति का भी वर्णन इस ग्रंथ में आया है। अंगिरस और यम स्मृतियों के वर्तमान रूप आधु-निक समझ पड़ते हैं। ये छोटे छोटे ग्रंथ हैं। कात्यायन स्मृति ५०० श्लोकों का ग्रंथ है जिसका निर्माण उस समय हुआ जब हिन्दुओं में मूर्तिपूजा प्रचलित थी। वर्तमान वृहस्पति

स्मृति का अनुवाद पूर्वीय पवित्र पुस्तकावली में किया गया है। व्यास स्मृति मे सती की प्रशंसा है। इसमें मुसलमानो समय के हिन्दुओं के व्यवहारों का अच्छा वर्णन आया है। शंखस्मृति में सूत्र और पद्य नामक दो भाग हैं। गद्यवाला भाग पुराना समझ पड़ता है और पद्य वाला आधुनिक। पद्य वाला भाग कहता है कि उच्च जाति के मनुष्यों को नीच जाति की स्त्री से विवाह न करना चाहिये। विधवा विवाह की इसमें आज्ञा है। लिखित स्मृति ९२ श्लोकों का एक छोटा सा ग्रन्थ है जिसमें काशी के मंदिरों और गया के पिंडदानों का कथन है। जो शंख लिखित स्मृति द्वापर के लिए मान्य समझी गई थी वह अब लुप्त प्राय है। दक्ष स्मृति में गार्हस्थ्य जीवन का अच्छा कथन है किन्तु सती की भी प्रशंसा है। शानातप स्मृति वर्तमान हिन्दुओं के विचारानुसार देवताओं के रूप और पूजन बताती है। इसमे महाभारत, हरिवंश, श्रवण मुक्ति मार्ग बनाया है।

उपरोक्त वर्णन से प्रकट है कि बहुत से प्राचीन स्मार्त ग्रन्थ लुप्त हो गये और उनके स्थान पर उन नामों के नवीन ग्रंथ प्रख्यात हैं। प्राचीन स्मृति ग्रन्थ सूत्रों से निकले थे, अतः उनमें गद्य भाग भी थे। वर्तमान स्मृति ग्रन्थों में से बहुत से पौराणिक समय से पीछे के हैं। स्मार्त ग्रन्थों में, मनु; विष्णु और याज्ञवल्क्य ही की महत्ता समझनी चाहिये।

९वां अध्याय।

आदिम बौद्धकाल (५०७ सं० पू० से २६४ सं० पू० तक)।

अब हम राजनैतिक इतिहास के डोर को फिर से उठाते हैं। आदिम कलिकाल वाले अध्याय में हम मगध के प्रसिद्ध महाराजा बिम्बिसार को गद्दीपर देख आये हैं तथा उत्तरी एवं मध्य भारत में १६ राज्यों का अस्तित्व कह आये हैं। इस काल की सामाजिक धार्मिक, आदि दशाओं का हाल ऊपर कहा जा चुका है। यह समय भारतीय उन्नति का कहा जा सकता है, क्योंकि इसमें धार्मिक संशोधन बड़ी महत्ता के साथ हुआ, तथा लेखनकला के विस्तार से अन्य बातों के साथ सामुद्रिक व्यापार की भी अच्छी उन्नति हुई। कोसल-राज का मागध नरेशों से बेटी व्यवहार था। इस समय कोसल की राजधानी श्रावस्ती थी। यह राज्य इस काल भारी उन्नति पर था और १६ राज्यों मे से काशी को जीन कर उसे अपने राज्य में मिला चुका था। मागध नरेश बिम्बि-सार का दूसरा नाम श्रेणिक भी था। आपने नवीन राजगृह नगर बसाया और अंग राज्य को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। इसी महाराज के समय से तत्कालीन मागध राज्य की भारी उन्नति हुई। आपकी रानियों में से एक

कोसल वंश की और दूसरी वैशाली के लिच्छवी घराने की थीं। लिच्छवी रानी से बिम्बिसार का अजातशत्रु उपनाम कुणिक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब आपको अवस्था उतरने लगी, तब आपने युवराज अजातशत्रु को राज्य के अनेक अधिकार देकर स्वयं साधारण जीवन व्यतीत करना आरंभ किया। महत्वाकांक्षी युवराज अजातशत्रु उन थोड़े से अधिकारों को भी न सह सका जो महाराज ने अपने पास रक्खे थे। गौतम बुद्ध का प्रसिद्ध शत्रु शिष्य देवदत्त अजातशत्रु का गुरू, मित्र एवं अंतरंग मंत्री था। इसकी बुरी सलाहों से अजातशत्रु और भी उद्धत हो उठा और दिनों दिन बूढे महाराज की अधिकाधिक अवज्ञा करने तथा उनके हितेच्छुओ को कष्ट देने लगा। पुत्रवत्सल महाराज ने इस पर भी उसके अधिकारो मे कोई क्षति न की। फिर भो जान पडता है कि आपके हितेच्छु लोग अजातशत्रु के कुकर्मों से क्रुद्ध कर उसके मन्तव्यो में बाधक होते थे। इसो लिए सब झगड़ा दूर करने के विचार से यह कुपुत्र युवराज बूढ़े महाराज को बंदीगृह में डाल कर उनके जीवनकाल ही मे सिंहासनारूढ हो गया। इतिहासकारो का मत है कि महाराज बिम्बसार ने २८ वर्ष राज्य किया। अजातशत्रु सं० पू० ४४२ के लगभग सिंहासन पर बैठा। कहते हैं कि कारागार में महाराज को शारीरिक कष्ट भी दिये गये। उनके शरीरान्त के दिन अजातशत्रु ने पुत्र लाभ का समाचार सुनकर भारी प्रसन्नता मनाई और यह भी सोचा कि मेरी उत्पत्ति से मेरा पिता भी इसी प्रकार प्रसन्न हुआ होगा। इस विचार से उसने राजा को कारागार से मुक्त होने की आज्ञा दी किन्तु पिता का शरीरपात तथा पुत्र जन्म के समाचार राजा के पास साथ ही

आये थे और दूतों ने पुत्रजन्म ही पहले कहना उचित समझा था। यह हाल सुनकर अजातशत्रु ने बड़ा शोक मनाया और उसने अपने पिता का दाह संस्कार उचित रीति से किया।

बौद्ध ग्रन्थों मे लिखा है कि अजातशत्रु ने महात्मा बुद्ध के दर्शन किये थे और कुछ दिनों में बौद्ध मत स्वीकार किया। पहिली बार तथागत से मिलने पर राजाने पिता के प्रतिकूल अपने कर्मो के लिए भारी पश्चात्ताप प्रगट किया था। तथागत की आज्ञा हुई थी कि यद्यपि तुमने पाप अवश्य किया, तथापि मैं तुम्हारा सच्चा पश्चात्ताप स्वीकार करता हूं। अजातशत्रु द्वारा बिम्बिसार की यह दशा और मरण देख कर उनकी कौसल रानी मारे दुःख के मर गई। यह देख उसके भाई वूढ़े कोसलराज ने अजातशत्रु से युद्ध की ठानी। यह राजा प्रतापशाली महा कोसल का पुत्र था। विजयलक्ष्मी समय समय पर दोनों ओर मुस्कराती रही किन्तु अन्ततोगत्वा कोसलराज ने अजातशत्रु को बन्दी करके श्रावस्ती मे पकड़ बुलाया। अब उनका क्रोध शान्त होगया और उन्होंने अजातशत्रु के साथ अपनी कन्या का विवाह करके उन्हें मगध देश पर राज्य करने के लिए भेज दिया। जान पड़ता है कि अजातशत्रु के वास्तविक पाश्चात्ताप और दैन्य प्रकाशन से ही संतुष्ट होकर कोसलराज ने उसके ऊपर इतनी कृपा की होगी। फिर भी वर्त्तमान कोसलराज के पीछे इस राज्य ने उन्नति न कर पाई और प्रायः १०० वर्ष के भीतर कोसल देश मगध राज्य में मिला लिया गया। इस घटना का निश्चित संवत इतिहासवेत्ताओं को अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है। कोसलराज का अजातशत्रु के प्रति उचित व्यवहार उस बूढ़े महाराज की भारी न्यायप्रियता को प्रगट करता

है। किन्हीं कारणों से अजातशत्रु की वैशाली राज्य से भी मुठभेड़ हो पड़ी और उसने लिच्छवी वंश पर आक्रमण किया। जीत मागधों ही की हुई और वैशाली राज्य मागध में मिला लिया गया। अतः प्रगट है कि इस महत्वाकांक्षी मागध नरेश ने न केवल पिता को राज्यच्युत किया वरन् सौतेले और सगे दोनों मातामह वलि राजवंशो से लड़ कर दूसरे के राज्य पर अधिकार ही जमा लिया। इस प्रकार भारी वृद्धि करके मगध देश गंगा से हिमाचल तक फैल गया। लिच्छवियों को दबाये रखने के विचार से सोनभद्र और गंगा के संगम पर सोन के उत्तर किनारे पाटलिग्राम में एक दुर्ग बनाया गया। पीछे इसके पौत्र उदय ने यहीं शहर बसाकर इसका पाटलिपुत्र नाम रक्खा। इसीको पटना कुसुमपुर अथवा पुष्पपुर भी कहते थे।

महावंश के अनुसार अजातशत्रु के राज्यारंभ के आठवें वर्ष महात्मा गौतम बुद्ध का निर्वाण हुआ। तिब्बती ग्रंथ यही घटना अजातशत्रु के राज्यासीन होने से ५वें वर्ष बतलाते हैं और कहते हैं कि इसने ३२ वर्ष राज्य किया। जैनों का मत है कि अजातशत्रु ने ८० वर्ष राज्य किया। पाटलिपुत्र का उदय द्वारा बसाया जाना वायुपुराण से भी समर्थित है। गौतम की जीवनी में कहा जा चुका है कि निर्वाण के थोड़े ही दिन पूर्व कोसलेश विरूधक ने कपिलवस्तु पर धावा कर के उसे नष्टभ्रष्ट कर डाला और शाक्यों का निर्दयता के साथ वध किया। कहते हैं कि इसका कारण यह है कि कोसलेश प्रसेनजित द्वारा विवाहार्थ राजकन्या मांगी जाने पर शाक्यों ने उसका विवाह राजकन्या कहकर दासी के साथ कर दिया था। इसी बात से क्रुद्ध होकर विरूधक ने उनका विनाश

किया। ऐसा जातीय अपमान साधारण नही है। संभव है कि शाक्यों का कोसलों द्वारा ऐसा ही या कोई और अपमान किया गया हो जिसका यह उत्तर हो। इस घटना से शाक्यों का राज्य लुप्त नहीं हुआ था क्योंकि गौतम की हड्डियां लेने के लिए शाक्यराज ने भी अन्य सात राजाओ के साथ अपना अधिकार प्रगट किया था। महात्मा गौतम ने निर्वाण के थोड़े ही दिन पूर्व कपिलवस्तु का भग्नावशेष भाग आंखों से देखा था। विरूधक से पहले प्रसेनजित ने भी शाक्यों पर धावा किया था। ऐसी दशा में राज्य को सूना पाकर इनका कुपुत्र विरूधक इनसे विगड़ बैठा था। अपने को कोसल मे निर्बल पाकर वृद्ध महाराज प्रसेनजित कपिलवस्तु से ही अजातशत्रु की सहायता लेने को मगध की ओर प्रस्थित हुए थे किन्तु मार्ग मे उनका शरीर छूट गया था। इस प्रकार विरूधक ने निष्कंटक राज्य पाया था।

फ़ारसी राजा देरियस उपनाम दारा अजातशत्रु का समकालीन था। उसका राजत्व काल ४६४ से ४२८ सं० पू० पर्यन्त चलता है। उसने स्किलेक्स के आधिपत्य मे एक जलसेना फ़ारस से सिंध के मुहाने तक जल मार्ग खोजने को भेजी। इसने अच्छा काम किया और थोड़े दिनों में दारा ने सिंध प्रांत पर अधिकार जमाया। भारतीय धनुपधारी लोगों की फ़ारसी शाह ने एक सेना बनाई जिसने उनकी ओर से ४२२ सं० पू० मे ग्रेटिया पर युद्ध किया था। सिंध प्रांत शाह फ़ारस के वहिरंग प्रांतों में से २०वां था। इस पर उनके अधीन एक क्षत्रप (सट्रेप) प्रवन्ध करता था और शाह का इस प्रांत से प्रायः एक करोड़ की आमदनी थी। इसमें पंजाब का भी कुछ भाग सम्मिलित था, ऐसा समझ पड़ता है। उस काल

सिंध नदी का प्रवाह उसकी वर्तमान स्थिति से बहुत भिन्न था और यह प्रान्त आजकल की अपेक्षा बहुत उपजाऊ था। कहते हैं कि प्लेटिया के युद्ध में भारतीय धनुर्धरों ने ऐसे बाण चलाये थे जिनके मुहों पर लोहा लगा हुआ था। उनके धनुष और बाण दोनों बेंत के बने हुए थे। फ़ारस का यह राज्य कितने दिन तक स्थिर रहा सो ज्ञात नहीं है किन्तु इतना निश्चित है कि सिकंदरी धावे के समय सिंध में देशी राजे थे और फ़ारसी राज्य उसके पश्चिम में था। गौतम बुद्ध के जीवन-चरित्र में कहा गया है कि जब ब्राह्मण कुमारी मागंधी के साथ उन्होंने विवाह नहीं किया तब उसका पाणिग्रहण कौशाम्बी के राजा उदयन ने किया। इनकी रानी वासवदत्ता अवन्ति राज प्रद्योत की कन्या थी। यह विवाह भी विचित्र प्रकार से हुआ था। महाराज उदयन को हाथी के शिकार की बड़ी रुचि थी। इसी के बहाने प्रद्योत ने भुलावा देकर उन्हें अवन्ति मे बंदी करके बुलवाया था। भाग्यवश वासवदत्ता उनके प्रेम में मुग्ध हो गई और महाराजा उदयन युक्तिपूर्वक राजकन्या सहित अपनी राजधानी को भाग आये।

महाराजा अजातशत्रु का शरीरान्त ४१८ सं० पू० के इधर उधर हुआ और उनका पुत्र दर्शक गद्दी पर बैठा। किसी भास कवि ने ३री शताब्दी में वासवदत्ता नाटक रचा। उसमें मगधराज दर्शक, अवन्तिराज महासेन और वत्सराज उदयन समकालीन लिखे हैं। महाराजा दर्शक के पीछे उनके पुत्र उदय ३६३ सं० पू० के लगभग मागध गद्दी पर बैठे। बौद्ध ग्रन्थों में दर्शक का नाम नहीं आता है और अजातशत्रु के पीछे उदय का ही राज्य लिखा है, किन्तु

वासवदत्ता नाटक और कुछ पुराण ग्रन्थों से दर्शक का होना सिद्ध है। उदय के विषय में पाटलिपुत्र बसाने के सिवाय अन्य कोई घटना नहीं लिखी है। उदय को उदासीन भी कहते हैं। उदय के पीछे क्रमशः नंदिवर्धन और महानंदिन मगध के नरेश हुए। मत्स्य पुराण ने इन दोनों का राजत्व-काल ४० और ४३ वर्ष लिखा है, किन्तु पौराणिक वर्णनों में यह प्रायः बढ़ा हुआ मिलता है। इस लिए स्मिथ महाशय ने इन दोनों का शासन काल ४६ वर्ष माना है। महानंदिन का पुत्र महा पद्मनंद शूद्रा स्त्री से उत्पन्न हुआ था। इसका राजत्वकाल ३१५ सं० पू० से चलता है? इस प्रकार ३६३ से ३१५ सं० पू० पर्यंत ७८ वर्षों का शासनकाल उदय, नंदि-वर्धन और महानंदिन का मिला कर पड़ता है। पुराणो में उदय का शासनकाल ३३ वर्ष लिखा है।

पुराणों में लिखा है कि शैशुनाग वंश के पीछे क्षत्रियों का राजत्वकाल जाता रहा और शूद्रों का समय आया। सिकंदर के साथ बहुत से यूनानी वीर भारत में आये थे। यूनानी राजदूत मेगास्थनीज़ भी यहां बहुत दिनों तक रहा था। इससे उनको महापद्म का हाल जानना सुगम था। यूनानी लेखकों के अनुसार महानंदिन की रानी का एक नाई के साथ संपर्क हो गया। इन दोनों ने मिल कर युक्ति से मगध नरेश महानंदिन का वध कर डाला और उनके बालक पुत्रों के पालक बनकर उनका भी विनाश किया। इस प्रकार सारे राजवंश को नष्ट करके इस पापिनी रानी ने नाई से उत्पन्न अपने पुत्र महानन्द को गद्दी पर बिठलाया। इस कथा से पुराणों के कथन का भी समर्थन होता है। फिर भी इस यूनानी कथा का पूरा समर्थन भारतीय आधारों

से नहीं होता, यद्यपि उनमें से बहुत से नंदवंश की नीचता का कथन करते हैं। मुद्राराक्षस नाटक में नंद वंश कुलीन माना गया है, किन्तु यह पीछे का ग्रन्थ है और ऐतिहासिक दृष्टि से उपरोक्त आधारों की अपेक्षा आदरणीय नहीं कहा जा सकता। कुल बातों पर विचार करने से यूनानी कथा प्रामाणिक समझ पड़ती है।

पुराणों में महापद्म और उसके ८ पुत्र एक दूसरे के पीछे राजा माने गये हैं। मौर्यकुल का पहिला महाराज चंद्रगुप्त इसी महापद्म का मुरा नाम्नी नायन के गर्भ से उत्पन्न पुत्र था। कहते हैं कि चंद्रगुप्त महानन्द के शेष पुत्रो से जेठा था और इसलिए अपने को राज्य का अधिकारी भी समझता था, किन्तु महानद इसे नाइन पुत्र होने के कारण अयोग्य समझ कर अन्य पुत्रों को श्रेष्ठतर मानता था। इसलिए चंद्रगुप्त की नंदों से अनबन थी। मुद्राराक्षस में महानंद के शकटार और कात्यायन उपनाम राक्षस नामक दो प्रधान मंत्री कहे गये हैं। कथा सरित्सागर में भी कात्यायन नंद वंश के मंत्री माने गये हैं। इनका दूसरा नाम वररुचि था। इन्हीं महाशय ने पाणिनीय अष्टाध्यायी पर वार्तिक लिखे और प्राकृत व्याकरण भी बनाया। आपके नाम से एक स्मृति भी प्रसिद्ध है। जगत्प्रसिद्ध कात्यायन गोत्र के चलाने वाले आप ही हैं। आपकी राजभक्ति नंद कुल में बड़ी प्रगाढ़ थी। आपने दिखला दिया है कि यदि कोई भद्र पुरुष एक बार किसी नीच को भी स्वामी मान ले तो उसके साथ स्वामिभक्ति कैसी करनी चाहिये। उधर शकटार मंत्री एक अनुचित अपमान से चिढ़ कर नंद वंश का घोर शत्रु हो गया था। उसने कौटिल्य उपनाम चाणक्य को चन्द्र गुप्त का साथी बना कर इन दोनों के

द्वारा नंद वंश के विनाश की नीव डाली। मुद्राराक्षस के अनुसार महापद्म नंद अपने आठों पुत्रों समेत इसी गोष्ठी के कुचक्रो से यमलोक का वासी हुआ। पुराणों में नंद वंश का राजत्व काल १०० वर्षों का दिया हुआ है और जैनग्रन्थ इसी समय को १५५ वर्ष बतलाते हैं। चन्द्रगुप्त गद्दी पर बैठने के समय वृद्ध न था। उस पर नंद वंश की दूसरी ही पीढ़ी होती है यद्यपि वंश का नाम नंद से बदल कर मौर्य हो जाता है। इस लिए नंद वंश का राजत्वकाल इनता भारी नहीं हो सकना था। स्मिथ महाशय ने यह समय ५० वर्ष का माना है जो ठीक समझ पड़ता है। सं० पू० २६४ से चंद्रगुप्त का राजत्व काल चलता है, जो मौर्य व'श का राज्यारंभ काल है

नंद व'श के समय भारत पर सिकंदर का आक्रमण हुआ था। यह राजनैतिक दृष्टि से बड़ो भारो घटना न थी, किन्तु इसका ऐतिहासिक मूल्य भारी है क्योंकि इससे विदेशी लेखको द्वारा तत्कालीन भारत का अच्छा हाल ज्ञात होता है। पाश्चात्य भारत में उस काल बहुत सी छोटी छोटी स्वाधीन रियासतें थीं जिनके पतनोत्थान से मागध राज्य अपना कोई सम्बन्ध नहीं समझता था। मध्य तथा उत्तरी भारत मे उस काल मगध राज्य प्रधान था। पाश्चात्य राज्यों को सुगमता पूर्व'क जीत कर भी सिकंदर इसके आतंक से डर कर आगे न बढ़ सका। इस काल कोसल, तिरहुत, काशी और अंग के प्राचीन राज्य मागध राज्य के ही अंग थे। यद्यपि नंद व'श के लिए यह राज्यक्रांति का समय था, तथापि उसके ऐसे प्रभुत्व से प्रगट है कि कात्यायन मंत्री ने इसका प्रबन्ध बड़ी उत्तमता पूर्वक किया था। नंद व'श नीच उत्पत्ति का होकर भी भारत को सिकंदर के आक्रमण से बचाकर

अपना ऋणी छोड़ गया है। प्रबन्ध उत्तमता के लिए कात्यायन मंत्री भी धन्यवादार्ह हैं। अब हम सिकंदर के धावे का कुछ सूक्ष्म वर्णन करते हैं।

जैसा कि ऊपर के एक अध्याय में कहा जा चुका है, सिकंदर (एलेकज़ैंडर) मेसिडन (यूनान के एक भाग) का राजा था। उसने पाश्चात्य राज्यों को स्ववश करके पूर्वीय देशों पर आतंक जमाने का निश्चय किया और इस विचार से भारी सेना संनद्ध करके मिश्र आदि कई राज्यों का दमन किया, जैसा कि ऊपर के एक अध्याय में कहा जा चुका है। अंत में फ़ारस को भी पराजित करके सिकंदर ने ५०।६० हज़ार सैनिकों समेत भारत पर आक्रमण किया। इसका धावा सं० पू० २७० की मई से आरभ होकर स० पू० २६७ की मई पर्य्यन्त रहा। इसकी सेना हिन्दूकुश की खावक तथा कौशान घाटियों को पार करके कोहे दामन पर पहुंची। दो वर्ष पूर्व सिकंदर ने यहां सिकंदर्या नामक शहर बसाया था। तक्षशिला का शासक झेलम के प्रसिद्ध राजा पोरस का विद्रोही गवर्नर होने के कारण शत्रु था। इस लिए उसने विपक्षी-मर्दन के विचार से देशभक्ति को निलांजलि देकर सिकन्दर का साथ दिया। तब सिकन्दर ने फ़िलिपस को तक्षशिला का क्षत्रप बनाया और यहां के ५००० भारतीय उसकी सेना में मिले। यह देख उस प्रांत के अन्य छोटे छोटे राजे भी यूनान राज के वशीभूत हो गये किन्तु हस्ती नामक एक राजा ने सामना किया। उसका दुर्ग तीस दिन तक ठहरा किन्तु फिर ध्वस्त कर डाला गया। तब सिकंदर भारत में घुसकर चित्राल नदी के पास घाटी पर चढ़ा। यहां उसके कंधे पर किसी भारतीय युद्धकर्त्ता का बाण लगा

गया। इससे क्रुद्ध होकर सिकंदर ने अपने सारे भारतीय बन्दियों का बध कर डाला। बाजोर में अरिगैवोन स्थान समझा गया है। वहां के निवासी उसे जला कर भाग गये थे। सिकंदर ने क्रेटेरस को उसे फिर बसाने पर नियुक्त किया। अनंतर वह बाजोर और स्वात घाटी मे दलबल समेत घुसा। यहां अस्पासियन लोगों ने भारी सेना लेकर उसका सामना किया। ये लोग पराजित हुए। इनके ४०००० सैनिक बन्दी हुए और २३०००० बैल सिकंदर के साथ आये। अनंतर सिकंदर ने गौरैओस (पंजकोरा) पार किया और अस-केनोई की राजधानी मसागा को ध्वस्त करके युद्ध मे उसके राजा का वध कर डाला। इसके साथ २०००० घुड़सवार ओर ३०००० पदाति थे। इसकी रानी भी सिकंदर के हाथ आई जिससे उसका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पहिला प्रसिद्ध यूरेशियन यही बालक था। मसागा राज्य में ७००० भारतीय सैनिक भी नौकर थे। सिकंदर ने इन्हें इस नियम से छोड़ना चाहा कि ये उसकी नौकरी कर लेवें। इन भारतीय वीरों ने विजातियों का पक्ष लेकर स्वदेश दमन मे योग देना मरण से निकृष्टतर समझा और इसलिए जोरू बच्चों समेत छिपे छिपे निकल जाने का डौल डाला। सिकंदर ने यह जान कर इन पर धावा बोल दिया। इन्होंने भी जी तोड़ कर युद्ध किया जिसमें इनकी स्त्रियों ने भी योग दिया। बहुत रिपुओं को मार कर भी ये वीरगण शत्रुओं की भारी संख्या को पराजित न कर सके और कठिन युद्ध करके उनके हाथ से धराशायी हुए। सिकंदर ने इस युद्ध में स्त्रियों और शस्त्रविहीन मनुष्यों को छोड़ दिया। डयोडोरस नामक इतिहासकार लिखता है कि सिकंदर ने इन लोगों को बड़ा गर्हित धोखा दिया, किन्तु

एरियन का मत है कि वह निर्दोष है क्योंकि इनके भागने का विचार जान कर ही उसने ऐसा किया। मसागा पतन के पीछे ओरा और बज़ीरा भी जीते गये। बज़ीरा के लोग औरनोस पहाड़ी पर जा छिपे किन्तु यम्बालिमा स्थान से सेना संयोजित करके सिकन्दर ने वह पहाड़ भी घोर युद्ध के पीछे प्राप्त किया। यह देख पेशावर से १७ मील उत्तर पच्छिम हश्त नगर के प्यूकेलावोटिस लोग यूनानियों के वश हो गये। यूनानी निकेनर सिन्ध नदी के पच्छिम देश का भी शासक नियत हुआ। अब सिंध नदी को पुल द्वारा अटकसे प्रायः १६ मील पर पार करके सिकदर ओहिन्द पहुंचा। यहां पर उसे तक्षशिला के मृत राजा के पुत्र नवीन राजा अंभि के राजदूत, भेंट के साथ मिले। उन लोगो की सहायता से सिकंदर ने भारत में पदार्पण किया और झेलम नदी के पास जाकर पोरस उपनाम पौरव से युद्ध की तय्यारी की।

पोरस उस राज्य का स्वामी था जो अब मोटे प्रकार से झेलम गुजरात और शाहपुर ज़िलों में विभक्त है। यह युद्ध २६८ सं० पू० के जुलाई मास मे हुआ। सिकंदर के साथ तक्षशिला की सेना ने भी पोरस से युद्ध किया। पोरस की सेना में २०० हाथी, ३०० रथ, ४००० घुड़सवार और ३०००० पैदल थे। प्रत्येक रथ को ४ घोड़े खीचते थे और उसमें दो धनुर्धारी, दो ढलैत और दो सारथी होते थे। पदातियों के पास चौड़ा खांड़ा होता था जो दोनों हाथों से चलाया जाता था। ये लोग बैल के चमड़े की एक एक ढाल भी रखते थे। भारतीय धनुष धनुर्धारी के बराबर लंबा होता था और उससे तीन गज़ का बाण चलाया जाता था। चलाते समय धनुष के नीचे का भाग पृथ्वी पर रख कर बायें पैर से दबाया

जाता था उसमें इतनी शक्ति होती थी कि कवच, ढाल, आदि कोई वस्तु उसे रोक नहीं सकती थी। जिस स्थान पर युद्ध हुआ वह दुर्भाग्य वश फिसलने वाला था। अतः भारतीय धनुष ने समुचित कार्य न किया। भारतीय हयसादी यूनानियों की अपेक्षा निर्बल थे और पहिला युद्ध इन्हीं घुड़सवारों से हुआ। सिकंदर के रिसाले ने भारतीयों के वामपार्श्व पर पहिले धावा वोला और उसको दवा दिया। यह देख भारतीय हाथियों ने आक्रमण किया और यूनानी बाणों से घायल होने पर अधिक उन्मत्त होकर यूनानी दलको कुचलते हुए वे आगे बढ़ गये, किन्तु ऐसा करने में उनके द्वारा दोनों दलों को क्षति पहुंची। फिर भी युद्ध होता रहा और अंत में यूनानी हयदल की प्रवलता ने भारतीय दल को तितर बितर कर दिया। पोरस साढ़े छः फ़ीट ऊंचा वड़ा ही वलवान पुरुष था। वह अन्त तक लड़ता रहा, किन्तु ६ घाव लगने से अचेतप्राय हो गया और तव पकड़ लिया गया। उसने सिकंदर को यह दर्पपूर्ण संदेशा कहला भेजा कि मेरे साथ राजाओं का सा वर्ताव किया जावे। सिकंदर ने उसकी वीरता से प्रसन्न होकर न केवल उसका राज्य लौटा दिया वरन् अपनी ओर से भिम्बर तथा राजौली और भी मिला दिये। इस प्रकार इस यूनानी वीर के कौशल ने एक वलवान शूर शत्रु को सदा के लिए इसका प्रगाढ़ मित्र वना दिया। इसी स्थान पर सिकंदर ने निकाइया और वोकेफला नामक नगर बसाये। वर्त्तमान झेलम शहर मोटे प्रकार से इसी अंतिम नगर के स्थान पर वसा है। पोरस के भतीजे का भी नाम पोरस था। वह गंडरिस का राजा था। यह स्थान चनाव और झेलम के वीच मे था और वर्तमान गोंडलवार समझा

जा सकता है। इस पोरस ने पहले ही से आत्मसमर्पण कर दिया, किन्तु सिकंदर ने चनाब पार करके उसे रावी पार खदेड़ दिया। यहां वर्तमान ज़िला अमृतसर या गुरदासपूर में अद्रेस्तोई जाति की राजधानी प्रिम्प्रम थी। इसने भी आत्म-समर्पण किया और तब सिकंदर ने कथाई लोगों का सांगल स्थान छीना। अब झेलम और चनाब पार होने के पीछे सिकंदर ने व्यास नदी के उस पार भी जाना चाहा किन्तु उसके सैनिकों को नंद राज्य का बल श्रवण करके आगे बढ़ने का साहस न हुआ। विवश होकर सिकंदर ने पलटने का निश्चय किया। तब उसने १२ यूनानी देवताओं के नाम पर १२ सिकन्दरी भुजा पत्थर के बनवाये और व्यास नदी के निकट उन्हें स्थापित किया। ये चौकोर पत्थरों के खंभ पचास पचास हाथ ऊंचे थे।

सिकन्दर का विचार था कि वह अपने भारतीय विजयों को स्थिर रक्खेगा। इसलिए जब पलटने का निश्चय हुआ, तब उसने अभिसार के राजा को अपना क्षत्रप (सट्रेप) बनाकर उसे हज़ारा (तत्कालीन उरसा) के राज्य पर अधिकार दिया। इसी उरसा राज्य की राजधानी मसागा थी जिसे आपने प्रथम जीता था। अभिसार में राजोली और भिंभर सम्मिलित है। इस समय उसके पास ७००० यूनानी पैदलों का एक दल थ्रेस प्रांत से चलता हुआ भारत पहुंचा। इनके साथ ५००० घुड़सवार भी थे। इस नवीन सेना को पाकर सिकन्दर बड़ा प्रसन्न हुआ। अब वह झेलम नदी को गया। इस स्थान पर नई और पुरानी प्रायः दो हज़ार बड़ी नौकायें प्रस्तुत कराई गईं। यह अक्तूबर ३२६ सं० पू० की घटना

है। अब इन्होंने अपने अधीन कर्मचारियों तथा राजदूतों की एक सभा करके पोरस को झेलम और व्यास नदियों के बीच वाले देश का राजा बनाया और तक्षशिला के राजा का इनसे मेल कराकर उसे झेलम और सिंध के बीच वाले भूभाग का शासक माना। अब सदल सिकन्दर जलमार्ग से झेलम नदी पर चला। चिनाव के संगम पर दो नौकायें सेना समेत डूब गईं और स्वयम् सिकन्दर की नौका डूबते डूबते बची। कुछ आगे चलकर सिकन्दर ने मार्ग में सिबोई, अगलसोई, और मलोई (मालवीय), जातियों को जीतना चाहा, क्योंकि ये युद्धोन्मुख समझ पड़ी थीं। सिकन्दर का युद्ध विचार जानकर सिवोई लोगों ने अधीनता स्वीकार कर ली किन्तु अगलसोई ने ४३००० सेना लेकर कठिन युद्ध करके बहुत से यूनानियो का वध किया। अन्त में हार कर उनके कई हज़ार योद्धा अधीनता स्वीकार करने के स्थान पर अपना नगर स्वयम् भस्मकर के उसमे ज़ल मरे। सिकन्दर ने प्रायः तीन हज़ार लोगो को बचाया। अब मलोई जाति से युद्ध की बारी आई। जान पड़ता है कि ये लोग मालवीय थे। उस काल पञ्चनद के पास इनका राज्य था। इनके सहज शत्रु क्षुद्रक लोगों ने विदेशियों का आक्रमण समझ अपनी शत्रुता भुलाकर इनका साथ दिया, किन्तु जब तक ये दोनों जातियां सम्मिलित दल का सेनापति निर्वाचन के झगड़े मे लगी रहीं, तबतक सिकन्दर ने शीघ्रता से बढ़कर दोनों को पराजित कर दिया। मलोई लोगो का एक क़िला जीतने मे अकेला सिकन्दर तीन सहायकों के साथ उसमें कूद पड़ा, किन्तु उसका एक साथी मारडाला गया और उस (सिकन्दर) की छाती में ऐसी तीव्रता से एक बाण लगा कि वह मूर्छित होकर गिर गया। भाग्यवश इस

गाढ़े समय में उसके अन्य अनुयायी वहीं पहुंच गये जिससे सिकन्दर बच गया और क़िला भी उसके हस्तगत हुआ। अब मलोई और जुद्रकों ने भी अधीनता मान ली। सिकन्दर ने इन लोगों की भेंटें स्वीकार करके इनके राज्यों मे हस्तक्षेप न किया। यूनानी लोगों ने लिखा है कि ये लोग बड़े ऊंचे, बली और धनवान समझ पडते थे। ये दोनों प्रजातन्त्र राज्य थे। निकैनर पहले सिन्ध नदी के पच्छिम वाले देश का गवर्नर नियत हुआ था। तक्षशिला के राजा का मान बढ़ाने पर सिकन्दर ने वहां के यूनानी शासक फ़िलिपस को हटा कर उसे निकैनर वाला देश दिया। इन्हीं के अधीन वह प्रान्त भी किया गया जो चनाव और सिन्ध के संगम पर्य्यन्त था। इस स्थान पर सिकन्दर ने एक शहर बसाया जो उस स्थान पर समझ पडता है जहाँ वर्तमान ऊच शरीफ़ है। सिंध-सागर दोआब भी फ़िलिपस के अधीन किया गया। अब सिंध नदी पार होता हुआ सिकन्दर सिंध देश में पहुंचा। यहाँ के राजा मूसिकनों ने पहले लडने की ठानी, किन्तु जब सिकन्दर सेना समेत बडी शीघ्रता से चलकर अचानक उस की सरहद पर पहुंच गया, तब राजा डरकर उससे मिला और उसने बहुत से उपहार दिये। सिकन्दर ने भेंट स्वीकार करके मूसिकनो को उसके राज्य पर दृढ़ रक्खा, किन्तु राजा की इस भीरुता को न सहकर उसके ब्राह्मण मंत्रियो ने युद्ध का मंत्र दिया। युद्ध में राजा पकड़ लिया गया और सिकन्दर ने ब्राह्मण मंत्रियों समेत उसका वध किया। अब पतालापुरी पर पहुंच कर सिकन्दर ने वहाँ एक किला बनवाया। झेलम से समुद्र तक पहुंचने मे उसे दस महीने लगे। इस स्थान पर सिकन्दर ने नरकोस नामक जल सेनापति को

यह नौका समुदाय समुद्रमार्ग से फ़ारस ले जाने की आज्ञा दी और स्वयं वह कुछ सेना लेकर मकरान होता हुआ फ़ारस की ओर जाने के विचार में लगा। वह अक्तूबर ३२८ सं० पू० में थलमार्ग से चल पड़ा और दो तीन सप्ताह के पीछे अनुकूल वायु पाकर नरकोस ने भी जलयात्रा आरंभ की। बड़ी कठिनाइयां पार करके और भारी क्षति उठाकर नरकोस फ़ारस में टाइग्रिस नदी के किनारे सूसा पर सिकन्दर को मिला। इस स्थान पर पहुंचने में सिकन्दर को जलसेना से भी अधिक कठिनाइयां पड़ी थीं। कहते हैं कि वह हाला पहाड़ के अस्तित्व से अनभिज्ञ था। इसलिए उसे बहुत चक्कर देकर जाना पड़ा। मार्ग में प्यास के मारे हज़ारों यूनानी मर गये और जो लूट का सामान वे भारत से ले गये थे वह सब उन्हें जला देना पड़ा। इस प्रकार यूनानियो की विशाल सेना का एक बहुत छोटा भाग बड़ी दुर्दशा के साथ फ़ारस पहुंचा।

जिस काल यूनानी सेना करमानियां ही में थी उसी समय सिकन्दर के पास समाचार पहुंचा था कि उसका भारतीय क्षत्रय फ़िलिपस अपने ही अधीनस्थ कुछ भारतीय सैनिकों द्वारा मार डाला गया था। यद्यपि इन लोगों का भी यूनानी सिपाहियों ने वध कर डाला, तथापि गड़बड़ का आरंभ तो हो ही गया। सिकन्दर कुछ कर न सका। उसने अपने भारतीय सेनापति यूडेमस और तक्षशिला के राजा को केवल इतना लिख भेजा कि जब तक दूसरा क्षत्रय न नियत किया जावे तबतक उस प्रांत का शासन भार वे लोग अपने ऊपर लेवें। यह घटना सं० पू० २६७ की है। दूसरे साल जून मास में स्वयं सिकन्दर का बैबिलोन में शरीरान्त

हो गया। यह घटना भारतीय प्रान्तों से यूनानी शासन उठ जाने की मूल कारण हुई। उसके अफ़सरों ने राज्य का बटवारा आपस में कर लिया। दो बरस पीछे सिकंदरी राज्य का दूसरा बटवारा हुआ। इसी थोड़े समय में यूनानियों का भारत पर कोई वास्तविक अधिकार न रह गया था। पेन्टीपेटर ने पोरस और अंभी को पंजाब और सिंधदेश के आस पास के देशों का शासक माना। सिकंदर ने पेठान को सिंधदेश का क्षत्रप नियत किया था। उसका दो ही साल में वहां कुछ अधिकार न रहा, अतएव वह वहां से हटा कर अरकोशिया भेज दिया गया, क्योंकि बल बढ़ा कर पोरस ने पेठान का शासन हटा कर सिन्ध देश पर अधिकार जमाया था। यह देख यूडेमस ने उसे धोखा देकर बन्दी कर लिया और छः साल के पीछे मार भी डाला। पोरस के मरते ही सारा पंजाब यूनानियों के प्रतिकूल उठ खडा हुआ। २६० सं० पू० में यूडेमस ने छल से पोरस को मार डाला था किन्तु इसी साल उसको अपनी लघुकाय सेना सहित यूमिनस के सहायतार्थ जाना पडा और उसका रहा सहा अधिकार भी लुप्त हो गया। इस प्रकार सिकंदर का विशाल भारतीय प्रयत्न यूनानियों के लिए पूर्णतया निष्फल हुआ। यदि उसकी सेना उसे व्यास नदी के पूर्व में बढ़ने से न रोकती; तो नंदों की भारी सेना से लड़कर छोटा सा यूनानी दल अवश्यमेव निःशेष हो जाता। भारत से यूनानी स्वत्व यद्यपि बहुत शीघ्रता से उठ गया, तथापि इसके पश्चिमीय देशों में बहुत काल पर्यंत उनका शासन रहा। जिस सिकंदर ने मिश्र, बवेरू (वैबिलोन), फ़ारस आदि विशाल राज्यों को परम सुगमता पूर्वक ध्वस्त कर दिया, उसी के भारतीय क्षुद्र नरेश पोरस से

लड़ने में दांत खट्टे हो गये और मागध सेना के सन्मुख खड़े होने का उसके सैनिकों को साहस तक न पड़ा। पोरस उतनी पृथ्वी का स्वामी था जो इस काल पंजाब के केवल तीन ज़िलों में आती है। सिकंदर का धावा भारतीय आक्रमण न होकर वास्तव में केवल पंजाब और सिंध पर चढ़ाई थी। यदि वह भारत मुख्य सम्राट् मागध नरेश का सामना करता जैसा कि उसके पीछे सिल्यूकस ने किया, तो उसका धावा वास्तव में भारतीय आक्रमण कहा जा सकता। सिकंदर के कारण भारत में कोई भी परिवर्तन न हुए। मृत राजाओं के स्थान पर उनके उत्तराधिकारी शासक हो गये, खेती जैसी की वैसी होती रही और भारतीय जनसंख्या में कोई क्षति न पहुंची। भारतीय हिन्दू, बौद्ध, जैन आदि लेखकों में से किसी एक ने भी सिकंदर का नाम तक न लिखा। उसके सन्मुख लड़ने वाली पोरस आदि की सेनाओं की जो भारी भारी सख्याएं लिखी हुई हैं, वे कथन भी केवल यूनानी लेखकों के आधार पर अवलंबित हैं, जिनमें आत्मप्रभाव वर्धन के विचार से कुछ अत्युक्ति का होना संभव है। भारत का यूनानी आक्रमण से इतना शीघ्र छुटकारा पा जाना तथा फ़ारस आदि का बहुत काल पर्यन्त उनके अधीन रहना प्रगट करता है कि उस काल एशिया में भारतीय शक्ति सर्व प्रधान थी। यूनानी शक्ति निर्मूल करने में मुख्य प्रयत्न चन्द्रगुप्त मौर्य्य का था।

वर्तमान तथा आदिम कलिकाल वाले अध्याय मे हम उत्तरी, पूर्वी, पश्चिमी और मध्यभारत की राजनैतिक स्थिति का वर्णन कर आये हैं। अब दक्षिण के विषय में कुछ कहना शेष है। ऐतिहासिक दृष्टि से भारत के तीन प्रधान भाग

माने गये हैं, अर्थात् उत्तर-दक्षिण और ठेट दक्षिण (तामिल देश)। मौर्य्यकाल के प्रथम इन देशों के विषय में इतिहासज्ञों का ज्ञान बहुत विस्तीर्ण नहीं है। हम प्राचीन काल में महर्षि अगस्त्य द्वारा दक्षिण में एक हिन्दू उपनिवेश स्थिर होते देख आये हैं और कोसलेश रामचन्द्र का वहां जाना तथा लंका जीतना भी कह चुके हैं। जैसे महर्षि पाणिनि ने संस्कृत का व्याकरण रचा, वैसे ही किसी अगस्त्य ने तामिल व्याकरण बनाया। आपने पाणिनि का कथन किया है। युधिष्ठिर के अनुज सहदेव द्वारा कई दाक्षिणात्य देशों का जीतना भी महाभारत के वर्णन में कहा जा चुका है। वाल्मीकीय रामायण में तुंगभद्रा नदी के उत्तरी किनारे वाला पंपा स्थान पंपा सर कहा गया है किन्तु तामिल रामायण ने उसी को पंपा नदी माना है। यह वर्त्तमान हम्पे स्थान पर था। मध्य और दक्षिणी भारत को महाकान्तार नामक भारी वन पृथक् करता था। इसीको दण्डकारण्य भी कहते थे। इस जंगल में होकर दक्षिण के लिए एक मार्ग था। उसीके कारण सारा दक्षिण देश प्राचीन ग्रन्थों में दक्षिणपथ कहलाया। दक्षिणपथ का कथन महाभारत में भी आया है। वाल्मीकीय रामायण में ठेट दक्षिण के पाण्ड्य राज्य का नाम आया है, किन्तु आदि कवि से पहिले के व्याकरणाचार्य पाणिनि ने अन्य देशों का वर्णन करते हुए भी दक्षिण के किसी स्थान का कथन नहीं किया है। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि महर्षि विश्वामित्र ने अपने ५० पुत्रों को आर्य निवासों की सीमा पर रहने की आज्ञा दी। यही लोग आंध्र, पुंड्र, शवर पुलिन्द और मूतिव कहलाये और इनमें से कुछ दस्युओं में भी मिल गये। रामायण में लिखा है कि आंध्र लोग दक्षिण में रहते थे और पुराणों

के अनुसार पुण्ड्र तथा शबर भी वहीं के अधिवासी थे। व्याकरणाचार्य पाणिनि गांधार देश के निवासी थे। इनके व्याकरण में अनेकानेक स्थानों के नाम उदाहरणों में आये हैं। इनमें से अधिकांश पंजाब और अफ़गानिस्थान से संबंध रखते हैं। आपने अवन्ति कोसल, कारूष, कलिंग के भी नाम लिखे हैं। पंडितों का मत है कि पाणिनि दक्षिणी भारत से अनभिज्ञ थे। बाल्मीकि ने पांड्य, चोल, केरल और आंध्रों का कथन किया है और यह भी कहा है कि पांड्य राजधानी का फाटक स्वर्ण और मोतियों से सुशोभित है। महावंश ग्रन्थ मे लिखा है कि लका नरेश विजय ने गौतम के निर्वाण के दिन लंका में पदार्पण किया। इनका विवाह पांड्य नरेश की पुत्री से हुआ था। उनके पास लंकराज बहुमूल्य भेंटें भेजा करता था। कहते हैं कि पाँड्यो की राजधानी मदुरा को यादवों ने द्वारिका वाले पराभव के कुछ ही पीछे बसाया था। कात्यायन ने दक्षिण के कई स्थानों का ज्ञान प्रगट किया है तथा पतंजलि के ग्रन्थों में यह ज्ञान और भी बढ़ा हुआ देख पड़ता है। कात्यायन ने नाशिक्य का नाम लिखा है जिससे नाशिक का ज्ञान समझ पड़ता है। पुराणों मे लिखा है कि नासिक में ही पचवटी है। पुराणों में पाण्ड्य, केरल और चोल राजवंश का ययाति वंशी होना लिखा है। ठेट दक्षिण का चौथा राजघराना पल्लव अपने को द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा का वंशधर समझता है। उपरोक्त प्रमाणों से प्रगट है कि बौद्ध कालीन उत्तरी और मध्य भारत के सोलह राज-घरानों के समय दक्षिण तथा ठेट दक्षिण में आंध्र, पाण्ड्य, चोल और केरल घराने प्रस्तुत थे। इनमे से पाण्ड्य घराना शासक भी था। शेष के विषय मे नहीं कहा जा सकता कि वे देश

निवासी मात्र थे अथवा शासक भी। इस काल पर्यन्त द्रविड़ों का नाम नहीं आया है। महाभारत में कहा गया है कि राजा युधिष्ठिर के समय दक्षिण में कुछ अनार्य घरानों का भी राज्य था। इसके वर्णन सहदेव वाले विजय में कुछ विस्तार के साथ हैं। बौद्ध काल के पूर्व दाक्षिणात्य लोग जल यात्रा करके बवेरू पर्यन्त जाते थे। इसका भी वर्णन कुछ विस्तार के साथ ऊपर आ गया है। यद्यपि आर्य्यों ने तामिल देश को छोड़ शेष देशों की अपेक्षा दक्षिण को बहुत अपनाया था, तथापि इनकी सभ्यता का प्रभाव दक्षिण पर वैसा ही पूरा पड़ा जैसा कि पहिले वाले देशों पर। इस देश की भाषा आर्य्य भाषा पर ही अवलम्बित है और आचार विचारों में भी पूरा साम्य है। तामिल देश की भाषा मात्र पृथक है। शेष बातों में वहां भी आर्य्य प्रभाव पूरा देख पड़ता है। दक्षिण के समीप काठियावाड़ उपनाम सौराष्ट्र देश भी इतिहास मे प्रसिद्ध रहा है। कहते हैं कि श्रीकृष्णचन्द्र के समय वहां रेवत नामक सूर्य्यवंशी राजा का राज्य था। इन्ही की पुत्री रेवती का विवाह बलराम के साथ हुआ था। पोर बन्दर और विरावल के बीच माधवपुर नामक एक स्थान समुद्र तट पर था। यही श्रीकृष्णचन्द्र का विवाह रुक्मिणी के साथ हुआ था। इसी प्रान्त में प्रभासपट्टन तीर्थ और सुदामापुरी हैं। द्वितीय नगर को अब पोर बन्दर कहते हैं। सोमनाथ का मन्दिर भी इसी प्रान्त में प्रभासपट्टन पर था।

काश्मीर प्रान्त के कलहण कवि ने वहां की इतिहास स्वरूपा राजतरंगिणी पुस्तक रची थी, जिसमें श्रीकृष्णचन्द्र के समकालीन कश्मीरी राजा आदि गोनन्द से इतिहास का डोर उठाया गया है। यह ग्रन्थ प्रमाणनीय ग्रन्थों द्वारा

समर्थित न होने से इतिहासज्ञों द्वारा अग्राह्य माना गया है। इसीलिए तदनुसार कश्मीर का वर्णन यहां नहीं किया गया है। तामिल ग्रन्थों में भी प्राचीन इतिहास की प्रचुर सामग्री मिलती है, किन्तु पण्डितों द्वारा संशोधित होकर उनके कथनों का स्थिरीकरण अभी नहीं हुआ है। इसलिए उनका भी समावेश यहां नहीं किया जाता।

२३वां अध्याय।
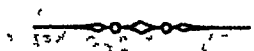
मौर्य, शुङ्ग तथा कण्व घराने (२६४ सं० पू० से सम्वत् ३० तक)

नन्दवंश के वर्णन में कहा जाचुका है कि महापद्मनन्द का पुत्र चन्द्रगुप्त मुरा नाइन से उत्पन्न हुआ था। उसकी अपने पिता से अनबन थी और चाणक्य की सहायता से वह नन्दवंश के मूलोच्छेदन में प्रवृत्त हुआ था। सिकन्दर के पंजाब आने में चन्द्रगुप्त उससे भी जाकर मिला था और मगध पर धावा कराने के प्रयत्न में था। सिकन्दर के चले जाने पर चन्द्रगुप्त के साहस और चाणक्य के कौशल ने उसे एक सेना का स्वामी बना दिया, जिसकी सहायता से उसने २६५ सं० पू० में यूनानी दल पर धावा करके पंजाब पर अधिकार जमाया। इस काल महापद्म नन्द का पुत्र मगध में राज्य करता था। मुद्राराक्षस नाटक में लिखा है कि चाणक्य ने युक्ति पूर्वक महापद्मनन्द और उसके आठों पुत्रों का विष अथवा खड्ग प्रयोग द्वारा संहार किया। अनन्तर नन्द-मंत्री कात्यायन ने अफ़गानिस्तान से लाकर कुमार मलयकेतु को गद्दी पर बिठलाना चाहा, किन्तु चन्द्रगुप्त के पंजाबी बल और चाणक्य की युक्तियों के सन्मुख किसी का कोई उपाय काम नहीं आया और २६४ सं० पू० मे वह मगध

को गद्दी पर बैठा। चन्द्रगुप्त ने भारी सेना एकत्रित कर के नर्मदा पर्यन्त प्रायः समस्त उत्तरी भारत को स्ववश कर लिया। कुछ लेखकों का विचार है कि नर्मदा के दक्षिण भी चन्द्रगुप्त का कुछ राज्य था। इस प्रकार थोड़े ही काल में यह भूपाल बंगाल की खाड़ी से अरब समुद्र पर्यन्त अकेला शासक रह गया। चन्द्रगुप्त न केवल भारत में वरन् संसार में सब से पहिला सम्राट हुआ। इसकी सेना मे ६००० हाथी, ३०००० घुड़सावर और ६००००० पैदल थे। मेगास्थनीज़ के अनुसार तत्कालीन तीन अन्य भारतीय राज्यों का बल नीचे लिखा जाता है।

	पैदल	घुड़सवार	हाथी
कलिंग	६००००	१००००	७००
तालुक	५००००	४०००	७००
आंध्र	१०००००	२०००	१०००

यद्यपि चन्द्रगुप्त की माता मुरा एक नायन मात्र थी, तथापि अपनी इस उत्पत्ति को नीच न समझ कर इसने मौर्य कहलाने में अपनी प्रतिष्ठा समझी।

जिस काल इधर चन्द्रगुप्त अपना नवीन राज्य दृढ़ करने में लगा था, उसी काल उधर सिकन्दर के सेनापतियो मे प्रभुत्व प्राप्त्यर्थ घोर विभ्राड् मचा था। उन अनेक महत्वाकांक्षियों मे समय के साथ दो प्रधान निकले, अर्थात् ऐन्टिगोनस और सिल्यूकस निकेटर (विजयी)। पहिले तो ऐन्टिगोनस ने सिल्यूकस को निकाल दिया, किन्तु ३१५ सं० पू० में इसने वैबिलोन राज्य पर अधिकार जमाया और ६ वर्ष के अनन्तर शाह की पदवी ग्रहण की। साधारणतया इसको

सीरीया का राजा कहते हैं किन्तु वास्तव में यह पश्चिमी और मध्य एशिया का स्वामी था। उसके राज्य की पूर्वी सीमायें भारत से मिलती थीं। इसलिए २४८ सं० पू० में उसने सिकन्दर के मृत अधिकार पुनरुज्जीवित करने के विचार से भारत पर आक्रमण किया। यह गंगा के प्रदेश तक घुसता हुआ चला आया और तब चन्द्रगुप्त ने एक महती सेना लेकर इसका सामना किया। इस प्रचंड सेना से युद्ध करने का साहस विजयी सिल्यूकस को न हुआ और इसने दबकर संधि कर ली जिसके अनुसार ५०० हाथियो के बदले चन्द्र-गुप्त ने सिल्यूकस से काबुल, कंधार और हिरात के प्रदेश पाये तथा उसकी कन्या का हाथ भी प्राप्त किया। यह संधि २४६ सं० पू० में हुई। यहां से चलकर सिल्यूकस ने २४८ सं० पू० में अपने विपक्षी ऐन्टिगोनस को इप्सस के युद्ध मे पराजित कर के मार डाला। महाभारत के पीछे इन प्रान्तों का शासन कुशनों को छोड़ किसी भारतीय सम्राट को नही प्राप्त हुआ था। इन सफलताओं के कारण चन्द्रगुप्त इतिहास के सर्वोत्कृष्ट सम्राटों में गिना जाने के योग्य है। इनका शासन सिद्धान्त क्रूर न होकर सबल था। सेल्यूकस ने संधि करने के थोड़े ही दिन पीछे मेगस्थनीज़ नामक राजदूत चन्द्रगुप्त की सभा में भेजा जिसने कई वर्ष पाटलि-पुत्र (पटना) में रह कर भारत का अच्छा वर्णन किया जिससे तत्कालीन भारतीय भूगोल, उपज, संस्थाओं आदि का ज्ञान अद्य पर्यंत प्राप्त है। मेगस्थनीज़ ने लिखा है कि भारत में सब लोग स्वतंत्र थे और एक भी दास न था। आपके अनुसार बौद्ध श्रमण ब्राह्मणों के प्रतिकूल थे। आपने लिखा है कि चंद्र-गुप्त के यहां राजाओं का एक प्राचीन वंश विवरण था जिसमें

६००० सं० पू० से भारतीय राजाओं की वंशावली लिखी थी। पाटलिपुत्र ९ मील लंबा और डेढ़ मील चौड़ा था। इसमे लकड़ी की एक भारी चहार दीवारी और सोन नदी से प्राप्त जलपूर्ण अच्छी परिखा थी। इस चहार दीवारी में ६४ फाटक और ५७२ मीनार थे। यद्यपि राजमहल विशेषतया लकड़ी का बना था तथापि मेगास्थनीज़ के मत मे उसकी महत्ता सूसा और एकबराना के महलो से अधिक थी। छः छः फुट व्यास तक के सोने के गोल वर्तन प्रस्तुत थे। अमीरी का और भी बहुत कुछ ठाट बाट था। चंद्रगुप्त दूर की यात्राओं में हाथी पर चलते थे और थोड़ी दूर घोड़े पर। आपको पहलवानों की कुश्ती तथा बैल, मेंढ़ा, भैंसा, हाथी आदि की लड़ाई देखना पसंद था। बैलो की दौड़ भी होती थी। मृगया से विशेष रुचि थी। बाह्य प्रदेशों की शस्त्र धारिणी स्त्रियां राजा की शरीर रक्षिका थीं। साल मे एक बार उन्हें सर्व साधारण के सम्मुख अवश्य उपस्थित होना पडता था। जब राजा सर्व साधारण के सम्मुख मुकदमों का फैसला किया करते थे तो ४ सेवक हाथीदांत से उनकी देह दाबते थे। राजा को शत्रुओं द्वारा आकस्मिक शारीरिक आक्रमण का सदा खटका रहता था। कहते हैं कि महापद्मनंद की सेना में ६००० हाथी, ८००० रथ, ८०००० घुड़सवार और २००००० पैदल थे। चंद्रगुप्त ने घुड़सवार कम करके हाथी तथा पैदल सेना बढ़ाई थी। चंद्रगुप्त की सेना में कुल मिलाकर ६९०००० युद्धकर्ता थे। इस सेना का प्रबन्ध ६ समितियां (बोर्डों) द्वारा होता था। चंद्रगुप्त की सेना तथा राज्य शासन बहुत ऊंचे दर्जे की योग्यता से चलाये जाते थे।

पाटलिपुत्र का प्रबन्ध तीस म्युनिसिपल सभ्यों द्वारा होता था जो ६ समितियों में बट कर कार्य चलाते थे। पहिली समिति शिल्प की संरक्षिका थी, और दूसरी विदेशियों का प्रबन्ध करती थी। उनके रहने, अनुयायियों, चिकित्सा आदि का उचित प्रबन्ध होता था। मृत विदेशियों का माल उनके उत्तराधिकारियों के पास भेज दिया जाता था। विदेशियों के लिए पृथक् समिति होने से प्रगट है कि उस काल पाटलिपुत्र में उनकी संख्या अधिक थी। तीसरी समिति जन्म मरण का लेखा रखती थी और चौथी वणिज व्यापार का। सरकारी ठप्पा लगे हुए नापतोल के बांट वट्टे आदि थे। पांचवी समिति दस्तकारी का प्रबन्ध करती थी। नया और प्राचीन माल पृथक् रक्खा जाता था और बिना राजाज्ञा के प्राचीन माल नहीं बेंचा जाता था। छठवी समिति बिक्रियों पर दशमांश कर वसूल करती थी। जो कोई धोखा देकर इस कर से बचता था उसे प्राणदण्ड मिलता था। इन कामों के अतिरिक्त तीसों सभ्य मिल कर बाज़ार, मन्दिर, बन्दर, सड़क आदि का प्रबन्ध करते थे।

तक्षशिला और उज्जैन मे दो राज प्रतिनिधि राज घराने के रहते थे। इन नगरो का प्रबन्ध भी पाटलि पुत्र के समान ही होगा। बहिरंग प्रांतो के स्थानीय शासकों को सन्मार्ग पर रखने के लिए समाचार प्रेरक भी रहते थे। ऐतिहासिक एरियन का कथन है कि ये लोग सदा सत्य समाचार लिखते थे, और कोई भारतीय पुरुष कभी झूठ नही बोलता था। चोरी का इतना अभाव था कि जहां ४००००० मनुष्य रहते थे, वहां चोरी का परता १००) रु० रोज़ से अधिक नहीं बैठता था। राजदंड में कड़ाई विशेष थी। राज कर पृथ्वी

की चौथाई उपज का होता था और किसानों को फ़ौजी नौकरी माफ़ थी। दो राज्यों में युद्ध होते हुए भी किसानों को कोई नहीं सताता था और उनका काम साधारण दशा की भांति चला करता था। सिंचाई विभाग ही अलग था और इस कार्य के लिए नहरों की प्रचुरता थी। काठियावाड़ के स्थानिक शासक पुष्पगुप्त ने एक छोटी सी नदी पर बन्धन डाल कर सुदर्शन नाम्नी भारी झील बनवाई। इसके प्रबन्ध की नहरें अशोक के समय में बनकर तय्यार हुईं। सड़कों का प्रबन्ध ठीक रहता था यहां तक कि मुग़ल सम्राटों की अपेक्षा चंद्रगुप्त की सड़कें अधिक अच्छी थीं। २०२२½ गज़ की दूरी पर स्तंभाकार मील का पत्थर गाड़ा जाता था जिसे अर्धकोस कहते थे। पटने से वायव्य (उत्तर पश्चिम) प्रान्त तक ५०० कोस लंबी एक सड़क बनी हुई थी। स्मिथ महाशय का मत है कि चंद्रगुप्त के समय उत्तरी भारत में उच्च प्रकार की सभ्यता थी, जो विना कई शताब्दियों में धीरे धीरे बढ़े इस दशा को नहीं पहुंच सकती थी। लिखने के लिए काग़ज़ के स्थान पर वृक्षों की छाल और रुई के कपड़े काम में लाये जाते थे।

उपरोक्त वर्णन यूनानी लेखकों के आधार पर किया गया है, जिन सब का मूल विशेषतः मेगस्थनीज़ है। विष्णुगुप्त चाणक्य उपनाम कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र ग्रंथ भी इस विषय में बड़ा उपयोगी है। उसके देखने से यूनानी लेखकों के कथन बहुत अंशों में समर्थित होते हैं। पाश्चात्य पंडितों ने भी मान लिया है कि यह ग्रंथ वस्तुतः मौर्य काल का है। इसकी प्राचीनता के सम्बन्ध में कई प्रमाण हैं। कामन्दक नीतिसार तथा दंडीकृत दशकुमार चरित्र अर्थशास्त्र को

चाणक्य का ग्रन्थ मानते हैं। दंडी ने इस ग्रन्थ से कुछ अंश लिये भी हैं। फिर विष्णु, मत्स्य, वायु, तथा ब्रह्मांड पुराण में चाणक्य द्वारा नन्द राज्य का नष्ट होना तथा चन्द्रगुप्त का राज्य पाना लिखा है। स्थविरावलिचरित्र में हेमचन्द्र ने भी यह कथा इसी प्रकार से लिखी है। इस मौर्य कालीन ग्रन्थ से महाराजा चन्द्रगुप्त के राजत्वकाल की बहुत सी अन्य बातें ज्ञात होती हैं, जिनमें से कुछ का सूक्ष्म कथन यहां भी किया जाता है। खनिज पदार्थों के निकालने का काम बहुतायत से होता था। राज्य में खनिज विभाग भी था। खानें जल और थल दोनों की होती थीं। नहरों की अच्छी उन्नति थी। पानी कितना बरसता था, सो नापने के लिए यन्त्र भी थे। लिखा है कि जंगली देशों में १६ द्रोण वर्षा होती है, अश्मन्द देश में १३½ द्रोण, अवन्ती में २३ द्रोण इत्यादि । मेघों का शास्त्र बहुत उन्नत था। तीन प्रकार के ऐसे बादल कहे गये हैं जो सात सात दिन तक मूसलाधार वर्षा करते हैं, तथा ८० प्रकार के ऐसे बादल हैं जो छोटे छोटे बूंद बरसते हैं। इनके अतिरिक्त ६० प्रकार के वे बादल हैं जो सौर ज्योति के साथ दिखते हैं। चरागाहों का प्रबन्ध करने को भी एक पृथक राज विभाग था। इसके द्वारा ढोरों के साथ अनुचित व्यवहार रोकने के भी मृदु नियम बरते जाते थे। हाथी घोड़ों आदि के बड़े बड़े विभाग थे जिनमें इनके चारा, दवा, उपयोग आदि के उचित प्रबन्ध किये जाते थे। मार्गों, सड़कों आदि पर विशेष ध्यान दिया जाता था। पाटलिपुत्र से सिंध नदी के उसपार तक जाने वाले राजमार्ग के इतर अनेकानेक अन्य सड़कें भी थीं। दक्षिण देश को जानेवाली सड़कों की व्यापार बाहुल्य के कारण विशेष महत्ता समझी जाती थी।

उनके भेदान्तरों से ही मार्ग बाहुल्य का पता लग जाता है। रथ्या (३२ फ़ीट चौड़ी सड़क), रथपथ, पशुपथ, महापशुपथ, क्षुद्र पशुपथ, खरोष्ट्रपथ, चक्रपथ (गाड़ी चलने योग्य मार्ग), असंपथ (पतली सड़क), पादपथ, बणिकपथ, आदि शब्दों से, जो उसकाल प्रचलित थे, मार्ग बाहुल्य का पता चलता है। जलमार्ग की भी प्रचुरता थी। यह नहरों, नदियों, समुद्र, आदि पर था। नहरों को कुल्या कहते थे। नावों के भी अनेक भेद थे। सांयात्रिक नावः का व्यवहार व्यापारी लोग करते थे। बन्दरगाहों को क्षेत्र कहते थे और वहां के महसूल को क्षेत्र शुल्का। प्रवहणः ही समुद्र पर जाने वाले जहाज़ों को कहते थे। शंखमुक्ता, ग्राहिणः, नावः, महानाव, क्षुद्रकाः नावः, हिंसिकाः (लुटेरो की नावें), स्वतरणानि आदि अनेक भेद पाये जाते हैं। जहाज के कप्तान को शासक कहते थे और मुख्य मांझी को नियामक। नावाध्यक्ष, खन्यध्यक्ष, पत्तनाध्यक्ष, आदि इन विभागों से सम्बन्ध रखने वाले सरकारी कर्मचारी थे। कालेयक एक प्रकार का चंदन था जो स्वर्ण भूमि (वर्मा) से आता था। पार समुद्र (लंका) से अगर आता था। इसे पार सामुद्रक कहते थे। चीन भूमि जाः चीन पट्टाः आदि पदार्थ चीन से आते थे। काशी तथा तक्षशिला मे दो प्रधान विश्वविद्यालय थे जिनमें विज्ञान तथा आयुर्वेद की ऊंची शिक्षा दी जाती थी। गौतम बुद्ध की दवा करने वाले जीवक वैद्य ने तक्षशिला में आत्रेय से शिक्षा पाई थी। सुश्रुत के अध्यापकों में से काशिराज एक थे। महर्षि पाणिनि तथा चाणक्य ने तक्षशिला मे ही शिक्षा पाई थी। आप उसी प्रान्त के निवासी थे। जिस काल सिकन्दर पंजाब में आया था, तब उसके डाक्टर सर्पदंश की दवा न कर सके, किन्तु

भारतीय वैद्य ऐसी दशा में पीड़ित मनुष्य अति शीघ्र चंगा कर देते थे। यह देख सिकन्दर ने इन दशाओं तथा अन्य भारी रोगों की दवा करने को अपने साथ कई अच्छे भारतीय वैद्य रक्खे। यह वर्णन एरियन में पाया जाता है। उस काल के भी युद्धों में आयुर्वेदीय शस्त्र लेकर वैद्य लोग सेनाओं के साथ जाते थे। उनके साथ दवा के तेल (अगद स्नेह) तथा बांधने को कपड़े आदि रहते थे। पशुओं की दवाओं के लिए शालिहोत्र लोग भी साथ रहते थे। प्रत्येक वैद्य का कर्तव्य था कि घातक रोगों की सूचना सरकार को दे। ऐसा न करने पर उसे धन दंड दिया जाता था। यदि वैद्य की बेपरवाई करने से रोगी का मरण हो जावे अथवा उसका रोग बढ़ जावे तो चिकित्सक दंड का भागी होता था। अनाज, नमक, तेल, दवाओं आदि में मेल करने वालों को भी दंड मिलता था। आशुमृत परीक्षा का भी विधान था। चाणक्य तीनों वेद के ज्ञाता थे। आप तक्षशिला के ही निवासी थे। दुर्भिक्षों में अकाल पीड़ितों के लिए काम खोले जाते थे जिन्हें दुर्गत कर्म कहते थे।

उस काल भवन प्रायः काठ के ही बनते थे। इसलिए उनमें आग लगने का बड़ा भय रहता था। सो आग बुझाने के भी अच्छे प्रबन्ध थे। जिन गांव वालों के घर पर आग से घर बचाने को "दशमूली संग्रह" नहीं रहता था उन्हें गर्मी में खुले में भोजन पकाना पड़ता था। दशमूली संग्रह में निम्न वस्तुएं थीं, अर्थात् पंचघट्यः, कुंभ, द्रोणी (यह काठ का एक टब होता था जो द्वार पर रहता था), निश्रेणी (सीढ़ी), परशु, शूर्प (धुवां उड़ाने को), अंकुश (जलते हुए पदार्थों को खींचने के लिए), कच (रस्सी)

ग्रहणी (सामान हटाने का झौवा), और दृति। (उपरोक्त काम के लिए खाल का बैग)। यदि किसी के यहां आग लगे तो जो पड़ोसी बिना कारण उसे बुझाने को न दौड़े उसे जुर्माना होता था। प्रति चौगैला तथा बड़े मार्गों पर हज़ारों जलपूर्ण घट आग बुझाने को रक्खे रहते थे।

राजा की वर्षगांठ, राजपुत्र की उत्पत्ति, युवराजोत्सव तथा नये देश पर विजय के समय क़ैदी छोड़े जाते थे। पूर्णमासी को बच्चे, बूढ़े तथा रोगाक्रान्त क़ैदी छूटते थे। कारागार में सच्चरित्र के पुरस्कार में भी क़ैदी छूटते थे। कर्तव्य पालन में मरने वालों राजासेवियों के बच्चे तथा स्त्रियां मरवट्टैं पाती थीं तथा मृत साधारण राज सेवियों के भी बच्चों तथा असहाय सम्बंधियों पर दया की जाती थी। मनुष्यगणना का विभाग भारी था। उसके सब से बड़े कर्मचारी को समाहर्ता कहते थे। उनसे छोटे स्थानीय सेवक स्थानिक तथा गोप (गांव के अफ़सर) कहलाते थे। इन्स्पेक्टरों को प्रदेष्टा कहते थे। ये लोग जनसंख्या के अतिरिक्त कर स्थिरीकरण का भी काम करते थे यह विभाग आजकल की भांति नैमित्तिक न होकर नित्य था। न्यायालयों की अच्छी वृद्धि थी। कंटक शोधन तथा धर्मस्थीय नाम के दो न्यायालय होते थे। इनके अधिकारों का पूर्ण विभाजन था। इनमें दास कल्प का भी काम था। मेगस्थनीज़ ने लिखा है कि भारत में दास प्रथा न थी। चाणक्य के दासकल्प से या तो उनका कथन अशुद्ध ठहरता है या ऐसा हो सकता है कि वाह्य देशों के निवासियों के साथ उनके दास आते हों जिनका निर्णय दास कल्प में होता हो। नियम चार प्रकार के होते थे, अर्थात् धर्मशास्त्र,

व्यवहार (मुआहिदा), चरित्र (प्राचीन प्रथा) और राजशासन। यदि व्यवहार तथा धर्मशास्त्र में भेद हो तो धर्म ही माना जाता था। इसी भांति यदि राजशासन चरित्र के प्रतिकूल हो तो राजशासन हीन माना जाता था। इससे प्रकट है कि राजा के अधिकार भी प्राचीन प्रथा को नहीं मेट सकते थे। कहा जाता था कि राजशासन को धर्म, व्यवहार तथा न्याय के अनुसार होना चाहिये न कि उनसे प्रतिकूल। वादियों मे परोक्त दोष पर बड़ा विचार होता था। इसके अनेक प्रकार के उदाहरण अर्थ शास्त्र में हैं। साक्षियों के अतिरिक्त धर्माध्यक्षों के पास असली हाल प्रगट करने को गुप्त दूत भी रहते थे। बहुत अनुचित आज्ञा देने पर धर्माध्यक्ष को भी दंड मिलता था। साक्षी देने में ब्राह्मणों से केवल इतना कहा जाता था कि सच बोलना, किन्तु अन्य वर्णों को झूठ बोलने के कुछ फलाफल भी बतलाकर तब उनकी साक्षी ली जाती थी। यदि कोई साक्षी अपने वादी अथवा प्रतिवादी के बुलाने से न आवै तो उसके लिए स्वामिवाक्य (समन) का विधान था। व्यवहारों के मान्य होने के लिए अनेक प्रकार के नियम थे। न्यायालय वाले नियमों से इतर बहुत सी बातों मे राजा की इच्छा प्रधान थी किन्तु विद्वान ब्राह्मणों के विचारों का प्रभाव उसपर अवश्य पडता था। राजविद्रोह के अतिरिक्त किसी अपराध पर ब्राह्मण को प्राण दण्ड नहीं दिया जा सकता था। चाणक्य के अनुसार राजा को राज्य चलाने में पूरा परिश्रम करना चाहिये जिससे काम पिछलने न पावे। राजा के सहायतार्थ एक महती सभा थी जिसमें १२ से १६ तक सभ्य रहा करते थे। आप कहते हैं कि सभ्यो की संख्या आवश्यकतानुसार होनी

चाहिये। १८ राजविभागों के नाम लिखे गये हैं। इन सब का एक एक मुखिया रहता था जिनमें हिसाब, दस्तकारी, खेती, कर, नहर, आदि का निरीक्षण कार्य होता था। युवराज को ४०००१ रजतपण मासिक वेतन मिलता था। कुछ ऊंचे राज कर्मचारियों को भी यही मासिक वेतन युवराज के बराबर मिलता था। साधारण मजदूरों को ५ पण मासिक मिलना था। स्मिथ महाशय का मत है कि एक पण १२ आने का होता था। चाणक्य कहते हैं कि धन पर सभी बातें अवलम्बित हैं, सो राजा को कोष पर सब से अधिक ध्यान रखना चाहिये। भूमि कर के अतिरिक्त खेतिहरों को सिंचाई वाली भूमि पर जल कर भी देना पड़ता था। ऐसी भूमि के लिए किसानों को कुल मिला कर आधी उपज मिलती थी। आबकारी व मुस्क़रात के ठेके तथा लैसेन्स दिये जाते थे। चाणक्य के अनुसार राज्यशास्त्र वस्तुतः दण्डशास्त्र है। अपराधियों से अपराध स्वीकार कराने के लिए उन्हें कभी कभी शरीरिक कष्ट दिया जाता था। १८ प्रकार की ऐसी यन्त्रणाओं का वर्णन है। आपने लिखा है कि राज कर्मचारियों के लिए राजधन से अनुचित लाभ न उठाना ऐसा ही कठिन है जैसा कि जिह्वा पर रक्खे हुए पदार्थ का स्वाद न पाना। अतः आपने भेदियों और जासूसों की नियुक्ति भी राजा के लिए आवश्यक मानी है। आपके अनुसार अमित्र पर विश्वास करना अनुचित है ही किन्तु मित्र पर भी पूर्ण विश्वास न करना चाहिये, नहीं तो क्रुद्ध होने पर वह अपने सब दोष प्रकाशित कर देगा। राजा को अपने पुत्रों, भाइयों तथा अन्य सम्बन्धियों से सदा सजग रहना चाहिये। भेदिये लोग गुप्त संदेशों के भेजने में साइफ़र (शून्य) लेख का भी

प्रयोग करते थे। इसकी रीति यह है, कि साधारण वाक्यों में लेख न लिखा जाय वरन् जासूसी विभाग के लिए कुछ शब्दों के साधारण से इतर मुख्य मुख्य अर्थ पहिले ही से स्थिर कर लिए जावें और उन्हीं में पत्र लिखा जावे। इन स्थिर अर्थ को न जानने वाला पत्र को पढ़कर भी कुछ भेद नहीं समझ सकता। उपरोक्त बातों से प्रगट है कि अर्थशास्त्र ऊंचे आदर्श सिखलाने वाला ग्रंथ मात्र न होकर आन्हिक काम काज सिखलाता है। फिर भी इसमें ऊंचे विचारों का अभाव न था। उदाहरणार्थ इसके कुछ विचार नीचे दिये जाते हैं जो शुक्रनीति से भी मिलते हैं:—यदि स्त्रियों, आचार्यों आदि पर अत्याचार हुआ हो, या गोवध किया गया हो तो ब्राह्मण को भी युद्ध करना चाहिये। जो युद्ध से भागता है उसका देवता हनन करते हैं। आक्रमण होने पर ब्राह्मण को भी युद्ध श्रेयस्कर है। क्षत्रिय का शय्या पर मरण पातक है। जो क्षत्रिय शय्या पर वात, पित्त, कफ़ आदि से मरता है वह वास्तविक क्षत्रिय नहीं है। जो क्षत्रिय क्षत विक्षत पूर्ण होकर भी युद्ध से भागता है वह बन्धन योग्य है। कादरता गुरु पातक है। युद्ध में मर कर योद्धा स्वर्ग पाता है। ऐसा वीर सब पापों से विमुक्त और महर्षियों के समान पुनीत हो जाता है। जब क्षत्रिय निर्वीर्य हो जावें, और नीच लोग प्रजा को कष्ट देवें तो ब्राह्मणों को भी युद्ध करके उनका सर्वनाश करना चाहिये। अर्थशास्त्र का संक्षिप्त विवरण यहां से समाप्त किया जाता है।

चंद्रगुप्त को यूनानी राज कुमारी व्याही थी ही, सो उसके बहुत से नौकर-चाकर पाटलिपुत्र में रहते होंगे। राजदूत मेगस्थनीज़ के साथ भी बहुत से यूनानी रहते होंगे। कारीगरी, यात्रा आदि के सम्बन्ध में भी यूनानियों का

आना जाना पाटलिपुत्र में होता होगा। अतः वहां यूनानी विदेशियों की अच्छी, बस्ती होगी। फ़ारस वालों से भी उस काल भारत का अच्छा व्यवहार था। चंद्रगुप्त के पुत्र बिन्दु सार ने सीरिया के राजा को पत्र लिखा था और तत्पुत्र अशोक ने सीरिया नरेश ऐन्टियोकस से कुछ दवायें मँगाई थीं। सीरिया नरेश ने फ्रान्सीसी लोगों और सेल्टों से युद्ध करने में भारतीय हाथियों का भी व्यवहार किया था। मिश्र नरेश ने बिन्दुसार के पास भेंट लेकर अपना एलची भेजा था। अलेक्ज़ैन्ड्रिया से भारत को तीन रास्ते थे, अर्थात् पैलेस्टाइन होकर, फ़ारसी खाडी के समीप से और मिश्र के बन्दर गाहों द्वारा। यह तीसरा जलमार्ग था। इन बातों से तथा चंद्रगुप्त के दरबार में कुछ विदेशीपन के अस्तित्व से कुछ लोगों का विचार है कि मौर्य राज्य पर यूनानियों के विचारों का प्रभाव इसे उन्नत करने में पड़ा था। स्मिथ महाशय ने उचित ही लिखा है कि यह भ्रम ही भ्रम है। भारत में अनेक प्रकार के राजनैतिक विचार पहिले ही से उपस्थित थे। स्वयं यूनानी राजाओं ने युद्ध में हाथियों की उपयोगिता पर विश्वास करने में भारतीयों का अनुकरण किया था।

२४१ सं० पू० में चंद्रगुप्त का राजत्वकाल समाप्त हुआ। जैन ग्रन्थों में लिखा है कि भद्रबाहु नामक श्रुति केवलिन के उपदेश से आपने राज्य छोड़कर जैन साधु का पद ग्रहण किया और इस दशा में मैसोर के स्रवन बेल गोला में बारह वर्ष निवास करके अनशन वृत द्वारा शरीर छोड़ दिया। स्मिथ महाशय ने भी इस कथा पर विश्वास किया है। चंद्रगुप्त का जीवन प्रायः सभी बातों में बहुत सफल रहा। उन्होंने लगभग २५ वर्ष की अवस्था में भारत में अभूत

पूर्व साम्राज्य स्थिर किया। सेल्यूकस से पराक्रमी शत्रु को पराजित करके आपने अफ़ग़ानिस्तान में भी राज्य प्रथा की स्थापना की। यद्यपि वर्तमान विचारों के अनुसार इनके कुछ नियमों में कड़ाई उचित से अधिक थी, तथापि उनके देखने से तत्कालीन भारतीय सभ्यता ऊंची श्रेणी की समझ पड़ती है और मुक्तकंठ से उनकी प्रशंसा की जाती है। अतः हम देखते हैं कि संसार का सब से पहिला सम्राट न केवल युद्ध में अप्रतिम विजयी था वरन् शासन प्रणाली में भी पूरा उन्नायक था। संसारोपने में पड़कर आपने भारी साम्राज्य बनाकर दिखला दिया और फिर त्याग का ऐसा उदाहरण दिखाया कि ५० वर्ष की अवस्था के पहिले ही इस अतुल विभव को लात मार कर साधारण जैन भिक्षु का पद ग्रहण कर लिया। इस सम्राट श्रेष्ठ का शौर्य, प्रबन्ध और त्याग तीनों मुक्त कंठ से सराहनीय हैं।

चंद्रगुप्त के पीछे उसका पुत्र बिन्दुसार उपनाम अमित्रघात २४१ सं० पू० में मागध गद्दी पर बैठा। इनके समय मेगस्थनीज़ के स्थान पर डेईमाकोस यूनानी राजदूत नियुक्त हुआ। इसने भी भारत का वर्णन लिखा था किन्तु वह नष्ट प्राय हो गया। २१३ सं० पू० में सिल्यूकस मार डाला गया और उसका पुत्र ऐन्टिओकस सोटर गद्दी पर बैठा। बिन्दुसार ने इनसे कुछ अंगूर और किशमिशी शराब मँगा भेजी थी। इन्होंने नेलोर पर्यंत दक्षिण को भी जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया। इसके विषय केवल इतना ज्ञात है कि यह प्रदेश अशोक के राज्य में था और जब अशोक ने केवल कलिंग को जीता था और चंद्रगुप्त का राज्य केवल नर्मदा पर्यन्त ही होना युक्तियुक्त समझा जाता है, तब बिन्दुसार द्वारा ही

दक्षिण विजय माना जा सकता है। बिन्दुसार का शासन काल २८ वर्ष का माना जाता है। चंद्रगुप्त की शासन प्रणाली इनके समय में भी जैसी की तैसी बनी रही और किसी प्रान्त पर मागध साम्राज्य का प्रभुत्व ढीला न हो पाया।

रिज़डेविड्स ने लिखा है कि अशोकवर्धन बिन्दुसार की एक ब्राह्मणी रानी से उत्पन्न हुआ था। उस काल उज्जैन और तक्षशिला में प्रधान राज प्रतिनिधि रहते थे। ये दोनों पत्तन बड़े, प्राचीन और प्रसिद्ध थे। अशोक कुछ दिन वायव्य प्रान्त और फिर पश्चिमी भारत में प्रतिनिधि रहे। अनंतर इसी पद पर उज्जैन में विराजे। उनके बड़े भाई सुशीम उस काल तक्षशिला में राज प्रतिनिधि थे। २१६ या २१५ सं० पू० में महाराज बिन्दुसार का शरीरपात हुआ और अशोक ने उत्तरीय बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार ज्येष्ठ भ्राता सुशीम को जीत कर गद्दी प्राप्त की। उधर लंका के बौद्ध ग्रन्थ कहते हैं कि महाराज बिन्दुसार ने ही उन्हें उत्तराधिकारी नियत कर दिया था और गद्दी के लिए उन्हें कोई युद्ध न करना पड़ा। जो हो, महाराज अशोक ने अपना तिलकोत्सव ४ वर्ष न करके २१२ सं० पू० में किया यद्यपि इनका राजत्वकाल २१६ सं० पू० से माना जाता है। ये समय स्मिथ महाशय के अनुसार लिखे गये हैं। प्रसिद्ध ग्रन्थ महावंश में लिखा है कि महाराज अशोकवर्द्धन का तिलकोत्सव गौतम बुद्ध के निर्वाण से २१८ वर्ष पीछे हुआ। इस निर्वाण संवत में कुछ मतभेद है किन्तु दृढ़ मत सं० पू० ४२७ का समझा गया है। इस हिसाब से तिलकोत्सव का समय सं० पू० २०९ पड़ता है। १२ वर्ष तक आप राज्य प्रबन्ध दृढ़ करने में लगे रहे। अनंतर २०४ सं पू० में आपने कलिंग देश पर धावा करके उसे

अपने राज्य में मिला लिया। अपने राजत्वकाल में अशोक ने केवल यही एक युद्ध किया। यह राज्य बंगाल की खाड़ी से मिला हुआ महानदी और गोदावरी नदियों के बीच में था। कलिंग राज्य के बल का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। अशोक ने बड़े दुःख के साथ लिखा है कि इस युद्ध में १५०००० लोग बंदी हुए, १००००० मारे गये और इनसे कई गुना अधिक उस सूखा और महामारी आदि से मरे जिनका प्रादुर्भाव युद्ध ही के कारण हुआ। इन बातों से अशोक के धार्मिक चित्त पर इतनी वेदना पहुंची कि आपने दृढ़ निश्चय किया कि अब से इतने मनुष्यों के शतांश अथवा सहस्रांश का भी निधन मेरे लिए बड़े पश्चात्ताप का कारण होगा। इस काल से मरण पर्यंत अशोक ने कोई लड़ाई न लड़ी।

इसी समय से अशोक के धार्मिक विचार दिनों दिन बढ़ते ही गये और आपने अपने भारी राज्य में धर्म विस्तार का दृढ़ निश्चय किया। सं० पू० २०० और १९९ में अशोक ने पाषाणों पर खुदी हुई कई राजाज्ञायें निकालीं जिनमें धर्म सम्बन्धी नियम निश्चित किये गये। १९२ सं० पू० में आपने अनेक पुनीत बौद्ध स्थानों की यात्रा की। अशोक पर बौद्ध धर्म का प्रभाव मुख्यतया उपगुप्त द्वारा पड़ा। बुद्ध के जन्म स्थान पर आपने एक शिला स्तंभ स्थापित किया। उपगुप्त क्रमशः आपको कपिलवस्तु, सारनाथ, श्रावस्ती, गया के बोधि वृक्ष और कुशीनगर को ले गया। अशोक ने इन सब स्थानों पर प्रचुर दान दिया और पाषाण स्तम्भ स्थापित किये। महाराजा जनक की भांति अशोक भी साथ ही साथ संत और महाराज थे, और समय समय पर राज्य संचालन का उचित प्रबन्ध करके आप संतों की भांति रहने के

लिए मठों में चले जाते थे। अपने राजत्व काल के अंतिम २५ वर्षों में अशोक ने साथ ही साथ राज्य और मठों का प्रबन्ध किया। सं० पू० १८८ के लगभग आपने ७ स्तंभ लेखों द्वारा अपने आदिम धार्मिक विचारों और तदनुसार राज्य प्रबन्धों का मर्म लिखा है। आपके समय पाटलिपुत्र में जगद्विख्यात तृतीय बौद्ध सभा हुई। लंका के ग्रन्थो में लिखा है कि इसका समय १६४ सं० पू० में था, किन्तु स्मिथ महाशय लिखते हैं कि इसका १८५ सं० पू० में अथवा कुछ पीछे होना अनुमान सिद्ध है। इसका वर्णन बुद्ध संबंधी अध्याय में हो चुका है। हीन यान का वर्तमान त्रिपिटक इसी सभा में स्थिर हुआ।

महाराज अशोक के राज्य में हिन्दूकुश, अफ़ग़ानिस्तान बलोचिस्तान और सिन्ध भी शामिल थे। हिमाचल मे सुश्वात, वाजोर, कश्मीर, और नेपाल में आप ही का राज्य था। काश्मीर में श्रीनगर आप ही का वसाया हुआ है। वर्तमान श्रीनगर इसी के निकट है। पूरब में बंगाल और कलिंग, तथा दक्षिण में नेलोर से सत्यपुत्र पर्यन्त आपके राज्य सम्मिलित थे। नेलोर से सत्यपुत्र तक यदि एक रेखा खींची जावे तो उसके उत्तर सारे भारतवर्ष पर आपही का राज्य था। आंध्रराज्य इसी का अंग समझा जाता था यद्यपि वहां का राजा इनकी अधीनता में राज्य करता था। चोल, पाण्ड्य, केरलपुत्र और सत्यपुत्र नाम्नी रियासतें स्वतंत्र थीं। नेपाल में मंजुपाटन से हटाकर आपने ललित पाटन अथवा ललितपूर को उस प्रांत की राजधानी बनाया। यह वर्तमान राजधानी काठमंडू से २½ मील पर अब भी प्रस्तुत है। ललितपाटन में अशोक ने ५ स्तूप वनाये। आपके नेपाल से पलटने पर आपकी

पुत्री चारुमती बौद्ध भिक्षुनी होकर वहीं रह गई। माध्यमिक प्रदेशों का शासन भार स्वयं अशोक पर था, किन्तु बहिरंग प्रान्तों के लिए ४ राज प्रतिनिधि (वाइसराय) नियत थे। इनके मुख्य स्थान तक्षशिला, तोषली, उज्जैन और नर्मदा के दक्षिण एक नगर सुवर्णगिरि थे। इन स्थानों पर आपकी आज्ञायें पहुंचा करती थीं। कहते हैं कि अशोक ने ८४००० स्तूप बनवाये थे। जगतप्रसिद्ध सांची स्तूप का मुख्य भाग अशोक के समय में बना। इसकी शोभा दर्शनीय है। अशोक के प्रायः ३० चट्टानों के लेख अब भी प्रस्तुत हैं। ये हिमालय से मैसोर और बंगाल की खाडी से अरब समुद्र तक पाये जाते हैं। ये कई प्रकार के प्राकृतों में लिखे हुए हैं। स्मिथ महाशय ने आपके शिला लेखों को ८ भागों में विभाजित किया है। इनमें आपका नाम कहीं नहीं लिखा हुआ है। सभी स्थानों पर आप प्रियदर्शिन कहे गये हैं।

महाराजा अशोक ने गौतम बुद्ध के धार्मिक सिद्धान्तों से चुनकर गृहस्थों के योग्य कामकाजू धर्म निकाला। अहिंसा का आपने बड़ा मान किया तथा पुनर्जन्म और कार्मिक सिद्धान्तों पर अच्छी श्रद्धा दिखाई। बौद्ध होने के पहिले अशोक शैव थे। उस काल भोजनार्थ सहस्रों जन्तुओं का वध होता था। बौद्ध होने पर अशोक ने मृगया की रीति उठा दी और कुछ दिन के लिए महल में भोजनार्थ नित्य प्रति केवल दो मोर और मृग मारे जाने की आज्ञा दी। २०० सं० पू० में इन तीनों का मारा जाना भी बन्द हुआ। आपके ये विचार क्रमशः दृढ़ होते गये और १८८ सं० पू० में आज्ञा निकली कि कई प्रकार के जंतु किसी दशा में भी न मारे

जायं । मांसाशियों के लिए पूर्ण निषेध न था किन्तु कई प्रकार की अड़चनें थीं । वध योग्य अपराधियों को प्राणदंड अवश्य मिलता था किन्तु मरने के लिए तय्यार होने को उन्हें ३ दिन दिये जाते थे। अपराधी होने के कारण उनपर निरपराध जंतुओं की तरह दया न होती थी। अशोक ने माता, पिता, गुरु, और बड़ों का मान धर्म का मुख्यांग माना । आपका इस विषय में आज्ञापत्र दर्शनीय है ? वह यों है :—

"महाराज यों कहते हैं :—

"पिता और माता की आज्ञा मानी जावे, इसी भांति जीवधारियों का मान कराया जावे; सत्य बोला जावे। यह धर्म का माहात्म्य है और किया जावे। इसी भांति शिष्य गुरू का मान करे और लोग सम्बन्धियों के साथ सद् व्यवहार करें। यह सनातनधर्म है, इसीसे जीवन वृद्धि होती है और लोगों को इसी के अनुसार कार्य करना चाहिए।"

यद्यपि महाराज स्वयं बौद्ध थे तथापि दान देने मे आप ब्राह्मणों को नहीं भूलते थे और हिन्दुओ को बौद्ध बनने मे किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला जाता था। धर्म का प्रसार करने के लिए राजसेवक भी नियत किये गये थे। इनके कामों से कभी कभी धर्म फैलाने के स्थान पर अत्याचार भी होता होगा ऐसा समझ पड़ता है। पथिकों और पशुओं के लिए सड़कों पर वट वृक्ष और अमराइयां लगाई गई थीं और एक एक मील पर कुएं खोदे गये थे। उनके लिए सड़कों पर यत्र तत्र विश्राम भवन भी बनाये गये थे और पानी के लिए प्याऊओ का भी अच्छा प्रबन्ध था। मनुष्यों और पशुओ के लिए यत्र तत्र चिकित्सालय भी खोले गये थे। अशोक ने बौद्ध

मत फैलाने के लिए २०० सं० पू० के पहिले से यत्र तत्र धार्मिक पुरुषों और मंडलियों को भेजना आरंभ कर दिया था। ऐसे धर्म प्रचारक मौर्य साम्राज्य के अतिरिक्त, दक्षिणी भारत, लंका, मिश्र, सिरेन, मोसिडोनियां, और एपिरस को भेजे गये। इस प्रकार अशोक ने एशिया, आफ्रीका और युरोप में भी धर्म प्रचारक भेजे। लंका में आपके स्वयं पुत्र महेन्द्र और पुत्री संगमित्रा पधारी थीं। इस तरह कांबोज, गांधार, यवन, भोज, पुलिन्द, पितेनिक, आंध्र और हिमाचल के पहाड़ी लोगों पर बौद्ध धर्म का प्रभाव पड़ा। महेन्द्र ने तंजोर में भी एक मठ स्थापित किया था जो उस काल चोल राज्य में था। अशोक की संतानों ने लंका को बौद्ध बनाया और भारी मान पाया। लंका के राजा तिस्सा अपने दरबारियों समेत बौद्ध हो गये। कोई कोई महेन्द्र और संगमित्र को अशोक के भाई बहिन समझते हैं। ये दोनों यावज्जीवन लंका ही मे रहे। लंका के उपाख्यानों मे लिखा है कि ये दोनों संत उड़ते हुए लंका मे पहुंचे। लंका के महावंश में लिखा है कि अशोक ने एक धर्म-मंडली पीगू मे भी भेजी थी किन्तु स्मिथ महाशय लिखते हैं कि यह भूल है और पीगू में बौद्ध धर्म बहुत पीछे फैला था। पश्चिम को गये हुए धर्म प्रचारकों ने क्या किया और वे कौन थे इसका पता अब नहीं है, किन्तु इतना निश्चय है कि क्राइस्ट के पहिले पैलेस्टाइन में एक बौद्ध मठ था जहां बौद्ध उपदेशक धर्मोपदेश करते थे। यद्यपि अशोक ने जैन तथा हिन्दू धर्मों से कोई विरोध नहीं किया, न किसी पर बौद्ध होने के लिए दबाव डाला और यज्ञों में पशुहिंसा मात्र रोकी तथापि इस भारी सम्राट के प्रगाढ़ प्रोत्साहन से भारत और लंका मे बौद्ध धर्म की

प्रधानता हो गई और यह एक संसार मत हो गया। आपके गुरू उपगुप्त काशी अथवा मथुरा के गुप्त नामक अत्तार के पुत्र थे। इस अत्तार पुत्र से बौद्ध धर्म की सुगंध सारे संसार में महक उठी। मथुरा में बनाया हुआ उपगुप्त का मठ ७वीं शताब्दी तक प्रस्तुत था। ये धर्म प्रचारार्थ सिन्ध में भी जाया करते थे।

विद्वानों का विचार है कि अशोक सम्बन्धी शिला लेखों में स्वयं अशोक के विचार इन्हीं के शब्दों में लिखे हैं। उनके पढ़ने से आपके स्वभाव का भी पता लगता है। आपको काम करने का बड़ा चाव था और परिश्रम से आप कभी मुख न मोड़ते थे। आपने अपने में सन्त के धार्मिक स्वभावों में राजा की बुद्धि भी मिला रक्खी थी। दया, सहृदयता और सत्य आपके स्वभाव के मुख्य अंग थे। प्रायः देखा गया है कि दयावान पुरुष में दृढ़ता कम होती है परन्तु अशोक पूर्ण दृढ़ भी थे। एक बार युद्ध को बुरा समझने पर किसी अन्य प्रदेश छीनने के लिए आपने यावज्जीवन युद्ध का प्रयत्न ही न किया। असन्धिमित्रा आपकी पहली रानी थी और चारुवाकी दूसरी। दूसरी रानी का पुत्र तीवर था और अशोक उसे बहुत चाहते थे। असन्धिमित्रा के मरने पर अशोक ने बुढ़ापे में तिष्य रक्षिता के साथ विवाह किया। यह बड़ी कुलटा थी और अपने सौत के लड़के कुनाल से व्यभिचार करना चाहती थी। जब वह इस बात से इनकार करके उज्जैन चला गया तब इस दुष्टाने अशोक का झूंठा आज्ञा पत्र उसके पास उसकी आंखें निकलवा लेने को भेजा। यद्यपि कुनाल अपने पिता की ओर से उज्जैन का शासक था, तथापि उसने किसी प्रकार का राज विद्रोह न किया और

इस झूठी आज्ञा को सच्ची मानकर अपनी आंखें निकाल कर फेंक दीं। बौद्ध धर्म पुस्तकों में लिखा है कि अशोक के धर्म महात्म्य से कुनाल फिर नेत्रवान हो गया। इसी कथन के कारण यह सारी कथा संशयाकीर्ण हो गई है। जलौक भी अशोक का पुत्र था। उसे आपने काश्मीर का राजा बना दिया था। यह शैव एवं देवियों का पूजक तथा बौद्ध धर्म का विरोधी था। इसने तथा इसकी रानी ईशान देवी ने कई मंदिर बनवाये जिनका अब तक पता लगता है। कहते हैं कि जलौक ने समय पर बाहिरी शत्रु को खदेड़ कर कन्नौज तक जीता था। यह काश्मीरी कथा भी संशय से रहित नहीं है।

जिस काल अशोक वृद्ध हो गये, तब आपकी मति सठियाने के कारण कुछ मन्द पड़ गई। ऐसे समय में आपने बौद्ध भिक्षुओं को अपना सभी कुछ दे डालना चाहा। राजकोष खाली हो गया किन्तु महाराजा की दानेच्छा पूर्ण न हुई। विवश होकर मंत्रियों ने आपकी दान सम्बन्धिनी आज्ञायें टालनी आरंभ कीं यहां तक कि एक दिन दानार्थ कुछ न पाकर आपके नेत्रों से आंसू गिरने लगे। आपने उस काल एक फल उठाकर भिक्षुओं के पास यह कहकर भेज दिया कि भारत सम्राट की आज के दिन यही भेंट है। जब राज्य संचालन का काम पूर्णतया रुक गया और लोगों ने कोई अन्य उपाय न देखा तब विवश होकर मंत्रियों ने कुनाल के पुत्र संप्रति को गद्दी पर बैठा दिया। यह सं० पू० १७५ की घटना है। थोड़े ही दिनों मे महाराज अशोक का शरीरान्त हो गया। बुद्ध गया का पहिला मन्दिर आप ही ने बनवाया। कहते हैं कि जैन मत अशोक के समय में ही काश्मीर में फैला था। भारतीय कारीगरी का इतिहास प्रगट करता है कि

अशोक के समय शाक्यसिंह में ईश्वरत्व स्थापित होने लगा था और उनका पूजन हो चला था।

मौर्य साम्राज्य का वास्तविक ध्वंसन अशोक ही के साथ १७५ सं० पू० में हो गया; आपके समय में बौद्ध मत का इतना शीघ्र विस्तार हुआ था, ब्राह्मणों को इतनी हानियां हुई थीं और धर्म प्रचारक अफ़सरों द्वारा साधारण जीवन में इतना हस्तक्षेप होता था कि सर्व साधारण की रुचि मौर्य राज्य से हट गई थी। अशोक के धार्मिक विचारों तथा प्रचारों ने धीरे धीरे उनके साम्राज्य के वल को लुप्तप्राय कर दिया था। जब तक उनका शरीर वना रहा तब तक उनकी प्राचीन कार्य दक्षता और विभव के भय से उनके अंतिम काल की वल हीनता सर्व साधारण पर प्रगट नहीं हुई थी। उनके मरते मरते ही किसी प्रकार से सारा भेद खुल गया और उनके वल हीन उत्तराधिकारी उनके भारी साम्राज्य को विलकुल चला न सके। उनका वास्तविक उत्तराधिकारी कौन था, इस प्रश्न का निश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता है। उनके पौत्र दशरथ और संप्रति दोनों राजा समझ पड़ते हैं। दशरथ का एक शिलालेख मिलता है जिसमें लिखा है कि इन्होंने नागार्जुनी गुफ़ा आजीवकों को दान की थी। पुराणों में भी लिखा है कि दशरथ ने ८ वर्ष राज्य किया। उधर वौद्ध ग्रन्थों में अशोकावदान के आधार पर उनके सठियाने की उपरोक्त कथा और संप्रति का गद्दी पाना कहा गया है। इनमें यह नहीं लिखा है कि सम्प्रति के गद्दी पाने पर अशोक क्या हुए। इनके अनुसार सम्प्रति के पीछे क्रमशः वृहस्पति, वृपसेन, पुण्यधर्मन, और पुष्पमित्र मौर्य गद्दी पर वैठे। पुष्पमित्र वास्तव में

शुंग थे। पाश्चात्य जैन ग्रन्थों में भी लिखा है कि अशोक ही के पीछे संप्रति गद्दी पर बैठे। ये जैन कहे गये हैं और इनके बनवाये हुए जैन मन्दिर अनेकानेक मौर्येतर स्थानों में भी कहे जाते हैं। कहते हैं कि सुहस्तिन की अध्यक्षता में जैनों ने संप्रति से मान पाया था। जैन लेखों के अनुसार संप्रति ऐसे विभव शाली थे मानों जैन धर्म के लिए दूसरे अशोक ही थे। पाषाण लेखों से प्रगट है कि जैन धर्म ने उडीसा में दूसरी शताब्दी सं० पू० और मथुरा में पहिली शताब्दी सं० पू० में बल पाया। इन विपरीत वर्णनों से समझ पडता है कि संभवतः अशोक के पीछे उनके उत्तराधिकारियों में राज्यार्थ युद्ध हुआ, जिसके कारण सर्व साधारण पर तत्कालीन मौर्य साम्राज्य के बल की पोल खुल गयी। पुराणों में दशरथ मगधेश्वर कहे गये हैं और जैन ग्रन्थों के अनुसार संप्रति की महत्ता पाश्चात्य देशों में समझ पड़ती है। अवएव जान पड़ता है कि दशरथ मागध प्रान्तों के स्वामी रहे और राज्य का एक भारी पश्चिमी भाग संप्रति ने दबा लिया। उनके द्वारा अशोक को उतार कर गद्दी प्राप्त करने से यह भी ध्वनि निकलती है कि वे अपने पितामह के समय ही में पाश्चात्य राज्यों के स्वामी हो गये थे और दशरथ ने अशोक के अनंतर मगध का राज्य पाया। संभव है कि कभी अशोक वृद्ध वय मे पाश्चात्य प्रान्तों में गये हों और वहां फल वाली घटना संप्रति के कुप्रबन्ध में चरितार्थ हुई हो, तथा उस प्रान्त मे अपनी आज्ञा चलती न देख अशोक मगध को वापस आये हों। अशोक के वृद्ध वय में उनकी रानी द्वारा कुनाल की दुर्दशा से कुनाल पुत्र संप्रति का अपने पितामह की ओर विशेषतया श्रद्धालु न होना स्वाभाविक ही था।

दशरथ के समय में ही मौर्य साम्राज्य विध्वंस होने लगा था। संभवतः यह दशा अशोक के अंतिम काल ही में हो चली थी। दशरथ के पीछे संगत मौर्य राजा हुआ जिसका राजत्वकाल भी ८ वर्ष कहा जाता है। अनन्तर १५१ सं० पू० के लगभग सालिसूक मौर्य गद्दी पर बैठे। सब से पहिले आंध्रो ने मौर्य साम्राज्य का अधिकार न मान कर अपने को स्वतंत्र कर लिया। अनन्तर कलिंग का जैन राजा खारवेला स्वतंत्र हुआ। उसने सालिसूक को युद्ध में पराजित किया। १४६ सं० पू० में सोमशर्मन मौर्य उपनाम देववर्मन गद्दी पर बैठा और फिर १४२ सं० पू० में शतधन्वन राजा हुआ। मौर्यो का अन्तिम राजा वृहद्रथ १३४ सं० पू० में राज्य पाकर १२८ में अपने सेनापति पुष्पमित्र शुंग द्वारा मार डाला गया। इस प्रकार मगध में मौर्य राज्य का अन्त होकर शुंग का प्रारंभ हुआ। समझ पड़ता है कि काण्वों के पीछे जब दाक्षिणात्य आंध्रों ने भारत पर साम्राज्य जमाया, तब मगध को राज्यशून्य पाकर कोई मौर्यवंशी पुरुष वहां का शासक हो गया। इस मौर्य घराने ने अपना छोटा सा प्रान्तिक राज्य इस बुद्धिमता से चलाया कि ७वीं शताब्दी में महाराजा हर्ष के भी समय उसका अस्तित्व पाया जाता है। कोंकण, और कुछ अन्य पाश्चात्य प्रान्तों में कई छोटे छोटे मौर्य राज्य छठवीं, सातवीं और आठवीं शताब्दी में जीवित पाये गये हैं। हिमालय के उत्तर खोटान प्रांत में भी अशोक द्वारा निर्वासित कुछ लोगों ने अपने में से एक को स्वामी चुनकर राज्य जमाया था। कहीं कहीं यह भी लिखा है कि स्वयं कुनाल ही खोटान का पहिला राजा था। संसार में पहिला साम्राज्य मौर्य था जो २६४ सं० पू० में प्रारंभ हुआ।

दूसरा साम्राज्य सिन चीन में १६३ सं० पू० में स्थापित हुवा। संसार का तीसरा प्राचीन साम्राज्य रोमन था जो पहिली शताब्दी मे आरंभ हुआ। इन अंतिम साम्राज्यों को ध्वस्त करने वाले वही असभ्य हूण थे जिन्होंने समय पर भारत को भी जीता था।

शुंगों का राज्य १२८ सं० पू० में आरंभ होता है जैसा कि ऊपर कहा गया है। इनकी राजधानी भी पाटलिपुत्र थी और वर्तमान बिहार, तिरहुत, युक्त प्रान्त तथा दक्षिण में नर्मदा नदी तक इन का राज्य था। पुष्पमित्र शुंग के साथ ब्राह्मणों का अभ्युत्थान और याज्ञिक विधानों का समादर फिर से आरंभ हुआ। बैकट्रिया नरेश यूक्रेटाईडीज़ का एक सम्बन्धी मिनैन्डर उपनाम मिलिन्द उस काल काबुल का राजा हो गया था। यह यूनानी होने पर भी बौद्ध मतावलंबी था। 'मिलिन्द के प्रश्न' नामक प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ इस बात की महत्ता का साक्षी है। पुष्पमित्र द्वारा बौद्ध मत का ह्रास देख कर अथवा केवल विजय लालसा से मिनैन्डर ने सिकंदर का अनुकरण करके भारत जीतने का विचार किया। इसने एक भारी सेना लेकर पजाब, सौराष्ट्र तथा अन्य पाश्चात्य प्रान्तो को अपने राज्य में मिला लिया, मथुरा पर अधिकार जमाया, चित्तौर के निकट मध्यमिका वर्तमान नगरी को घेरा और दक्षिणी अवध में साकेत पर आक्रमण किया यह देख वीरवर पुष्पमित्र ने प्रचड सेना लेकर इसके साथ घोर युद्ध किया। मिनैन्डर को पराजित होकर सं० पू० ६६ मे भागना पड़ा। पुष्पमित्र ने मिनैन्डर से उसके द्वारा जीते हुए सारे प्रान्त छीन लिये और उसे अपने प्राचीन राज्य काबुल पर ही संतोष करना पड़ा। जिस काल पुष्पमित्र मिनैन्डर

से युद्ध कर रहा था, तब उसने अपने पुत्र युवराज अग्निमित्र को विदिशा (वर्तमान भेलसा) में स्थापित करके उसे दक्षिण का शासन भार सौंपा था। पुष्पमित्र ने मिनैन्डर से लड़ने को स्वयं न जाकर अग्निमित्रात्मज अपने पौत्र वसुमित्र को युद्धार्थ भेजा था। महाकवि कालिदास ने 'मालविकाग्नि मित्र' नाटक में अग्निमित्र की मालविका से विवाह की कथा लिखी है। विदर्भराज यज्ञसेन मौर्य्यों का पक्षी होने से शुंगों का सहज शत्रु था। इसी लिए अपने चचा की पुत्री मालविका का विवाह अग्निमित्र के साथ करना नहीं चाहता था यद्यपि मालविका का भाई माधवसेन इस सम्बन्ध को चाहता था। अतएव अग्निमित्र ने विदर्भ (वरार) राज को पराजित करके उसका आधा राज्य मालविका के भाई को दिला दिया। वरदा नदी इनके राज्यों की सीमा हुई। अब बूढ़े पुष्पमित्र ने अश्वमेध करने का विचार किया। कदाचित् इसी से प्रसन्न होकर महर्षि पतंजलि ने लिखा होगा कि "इह पुष्पमित्रं याजयामः" (पुष्पमित्र से हम लोग यज्ञ कराते हैं)। वसुमित्र की संरक्षकता में यज्ञ का घोडा विधि पूर्वक छोड़ा गया। बुन्देलखंड और राजपूताने के बीच में, सिंधु नदी के किनारे कुछ यवनों ने घोड़ा पकड़ा किन्तु वसुमित्र ने उन्हें पराजित करके घोड़ा छुड़ा लिया। समझ पड़ता है कि ये यवन उसी सेना के होंगे जो मिनैन्डर ने मध्यमिका जीतने को भेजी थी। यवनों तथा अन्य विपक्षियों को पराजित करके वसुमित्र नियम पूर्वक घोड़े को मगध में वापस लाये। वैदिक रीतियों का यह महा यज्ञ कई शताब्दियों के पीछे हुआ था, सो ब्राह्मणों तथा अन्य हिन्दुओं को इससे भारी आल्हाद प्राप्त हुआ। बौद्ध लेखकों ने लिखा है कि पुष्पमित्र ने मगध से जालंधर पर्य्यंत

बौद्ध मठों को सत्यानाश करके बौद्ध भिक्षुओं का वध किया। जो बौद्ध भिक्षु उसकी कृपाण से बच सके, वे दूसरे राज्यों में भाग गये। यह वर्णन बिलकुल निर्मूल नहीं कहा जा सकता यद्यपि अत्युक्ति पूर्ण है।

सं० पू० ६२ में पुष्यमित्र का शरीरान्त हुआ और अग्निमित्र गद्दी पर बैठा, जो थोड़े ही दिनों में स्वर्गवासी हुआ और उसका बड़ा पुत्र सुज्येष्ठ राजा बना जिसने भी केवल ७ वर्ष राज्य किया। अनंतर प्रसिद्ध विजयी वसुमित्र गद्दी पर बैठा। अग्निमित्र का सुमित्र नामक एक अन्य पुत्र नाटक का बड़ा प्रेमी था और उनके खेल में स्वयं योग देता था। इस बात से क्रुद्ध होकर मित्रदेव नामक किसी व्यक्ति ने नाट्य कर्म में प्रवृत्त सुमित्र का सिर काट लिया। वसुमित्र के पीछे केवल १७ वर्ष में ४ राजाओं का शासन काल समाप्त हो गया और तब ६वें राजा भागवत ने ३४ वर्ष राज्य किया। शुंग वंश का दशवां तथा अंतिम राजा देवभूति बड़ा ही व्यभिचारी था। यह देख उसके ब्राह्मण मंत्री वसुदेव ने उसका ऐसे समय मे वध किया जब वह व्यभिचार मे ही प्रवृत्त था। इस प्रकार ११२ वर्ष शासन करके शुंग वंश १६ सं० पू० में समाप्त हुआ। इसमे उत्कृष्ट राज्य केवल पुष्पमित्र का ही रहा। दुर्भाग्य वश अनुपम वीर वसुमित्र का शरीरान्त गद्दी पर बैठने के थोड़े ही वर्ष पीछे हो गया नहीं तो वह इस वंश की गरिमा को अपने राजत्व काल में अवश्यमेव बढ़ाता। भारत को मिलिन्द के आक्रमण से बचाने का यश इसी वंश को प्राप्त है। सं० पू० २३ में बौद्ध धर्म के कुछ मूल कथन पहिले पहिल लेखन मे आये। यह घटना लंका में हुई।

काण्वों का राज्य सं० पू० १६ में प्रारम्भ होकर केवल ४५

वर्ष चला। इस वंश में ४ नरेशों ने राज्य किया। हर्ष के समकालीन बाणभट्ट ने तथा कुछ पुराणो में लिखा है कि स्वयं वसुदेव ने देवभूतिका वध किया था। कहते हैं कि देवभूति के समय में भी वास्तविक शासक वसुदेव ही था। काण्वों के विषय में कोई विशेष घटना नहीं लिखी है। केवल इतना ज्ञात है कि संवत् २१ में अंतिम काण्व नरेश सुशर्मा को आंध्रों ने मार डाला।

काण्व वंश

१६ सं० पू०	(१)	वसुदेव
७ सं० पू०	(२)	भूमित्र
७ संवत	(३)	नारायण
१६ संवत	(४)	सुशर्मन

काण्वों के ही राजत्वकाल मे मालवा से प्रसिद्ध विक्रमाब्द संवत का प्रारंभ हुआ। किन्हीं कारणो से यह पहले मालवाब्द कहलाता था और विक्रमीय ८वीं शताब्दी से विक्रमीय संवत् कहलाने लगा।

विक्रमादित्य वास्तव में कौन महाराजा थे इस प्रश्न का उत्तर देना बड़ा कठिन है। गुप्त महाराज द्वितीय चन्द्रगुप्त भी विक्रमादित्य कहलाते थे और दाक्षिणात्य सोलंकी राज वंश में भी कई विक्रमादित्य हुए हैं। अंत में अकबर के समय में हेमू बक्काल ने भी विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी। प्रायः भारत भर में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि वास्तविक महाराजा विक्रमादित्य पँवार (प्रमर) ठाकुर थे और उनकी राजधानी उज्जैन थी। वहां अब भी पत्थर का भारी फाटक है जो विक्रमादित्य का

फाटक कहलाता है। कहते हैं कि शकुंतला नाटक के रचयिता प्रसिद्ध कवि कालिदास इन्हीं की सभा के भूषण थे। एक विक्रमादित्य शकारि भी कहे गये है। गुप्त महाराज चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य वास्तव में शकारि थे। मालवा के एक दूसरे शासक यशोधर्मन ने तत्कालीन गुप्त राजा से मिलकर हूणों को पराजित किया था। कुछ लेखकों ने इनको भी वास्तविक विक्रमादित्य माना है। ये विक्रमादित्य हूणारि थे। इन शकारि और हूणारि विक्रमादित्यों के वास्तविक नाम चंद्रगुप्त और यशोधर्मन थे। विक्रमादित्य की इन्होंने उपाधि मात्र धारण की थी। इससे व्यंजित होता है कि वास्तविक विक्रमादित्य कोई और ही था जिसकी महत्ता से रीझकर इन लोगों ने यह उपाधि ली। यदि स्मिथ महाशय का मत मानकर शकारि होने के कारण दूसरे चन्द्रगुप्त को ही वास्तविक विक्रमादित्य मानें तो उनके पँवार होने वाली बात असिद्ध हो जाती है। विक्रमादित्य का पँवार होना भारतीय ग्रन्थों में अधिकता से मिलता है और जनसमुदाय में भी यह बात भली भाँति प्रसिद्ध है। सभी लोग मानते हैं कि विक्रमादित्य और भोज पँवारों में सर्वश्रेष्ठ महाराज थे। यद्यपि कुछ प्राचीन लेखो से पूर्व काल में संवत् का मालवाब्द कहा जाना सिद्ध है, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि विक्रमो ८वीं शताब्दी के पूर्व यह संवत् कभी नही कहलाया। यदि इसके विक्रमीय संवत कहाये जाने के कोई दृढ़ कारण न होते, तो ८ वी शताब्दी वाले ही निष्कारण इसे संवत क्यो कहने लगते और उनका कथन जन समुदाय में सर्वसंमत कैसे होता? जान पड़ता है कि पहिले यह विक्रमीय संवत कहलाता था किन्तु विक्रम के मालव

नरेश होने के कारण कई शताब्दियों तक विक्रमाब्द के साथ मालवाब्द भी कहलाता रहा अथवा केवल मालवाब्द कहलाने लगा। ८ वीं शताब्दी के भारतीयों ने ऐसे प्रमाण पाये कि इसे फिर विक्रमीय संवत कहना प्रारम्भ किया। इससे जान पड़ता है कि शुंगों के समय उज्जैन में महाराजा विक्रमादित्य भारी सम्राट हो गये हैं। उनके पूर्व पुरुष तथा उत्तराधिकारी प्रतापी न हुए जिससे केवल उन्हीं का नाम संसार में विदित रहा। पीछे से गुप्त महाराज चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के शकारि होने से जन समुदाय के विचार में विक्रमादित्य के साथ शकारि की उपाधि लग गई और समय के साथ विक्रम नाम के कारण मुख्य विक्रमादित्य प्रमर महाराज के साथ समझी जाने लगी।

प्रमर विक्रमादित्य का समय मुख्यतया उन्हीं प्रमाणों से सिद्ध हो सकता है जिनसे कालिदास का समय निर्णीत हो। इन प्रमाणों पर कई भारतीय पंडितों ने बड़ी विद्वत्ता पूर्वक विचार किया है। अपने कुछ विचार तथा उनके कथनों का सारांश इसी अध्याय के परिशिष्ट में दे दिया जावेगा। उनसे दृढ़ता पूर्वक सिद्ध होता है कि कालिदास संवताब्द के आरंभ मे हुए हैं, अर्थात् ५७ बी० सी० में। संस्कृत साहित्य के इतिहास लेखक मेकडानल महाशय ने उन पाश्चात्य विद्वानों के विचारों का पूर्ण खण्डन कर दिया है कि जिन्हों ने कालिदास का होना खृष्टीय छठी शताब्दी मे माना था। फिर भी मेकडानल ने स्वयं बिना कोई कारण बतलाये कालिदास को ५वीं शताब्दी के आदि में मान लिया है। इन कथनों की अपेक्षा परिशिष्ट में लिखे हुए तर्क बहुत अधिक माननीय समझ पड़ते हैं। उनका समर्थन संवताब्द तथा

लोक प्रचलित कालिदास और विक्रम के विचारों से भी सुसंगत है। इसके प्रतिकूल कहा जा सकता है कि यदि इतना बडा राजा उस काल मालवा में हुआ होता तो अन्य ऐतिहासिक आधार उसके विषय में मौन क्यों होते? इतना मानना ही पडेगा कि संवताब्द के प्रचार के समय मालवों या मालवे में कोई भारी घटना अथवा व्यक्ति अवश्य हुआ होगा जिसके कारण ऐसा संवत् चलाया गया जो प्रायः २००० वर्ष चल कर आज भी भारत का मुख्य संवत् है। गुप्त वंशी अनेक भारी भारी महाराज हुए परन्तु इसके सामने गुप्त संवत भी गुप्त ही हो गया। इससे प्रगट है कि हमारे इतिहास के ज्ञात आधार किन्ही कारणों से मालवे के तत्कालीन किसी महापुरुष अथवा महती घटना का कथन नही करते। जब आधारों में यह दोष आरोपित ही है, तब विक्रम सम्बन्धी उनका मौन इस महाराज के अस्तित्व के प्रतिकूल कुछ भी प्रमाणित नही करता। अतएव हम यह सिद्ध मानते हैं कि संवताब्द का प्रचार उज्जैन नरेश प्रमर महाराज विक्रमादित्य ने प्रथम संवत एवं ५७ बी० सी० में किया। आजकल पुरातत्व विभाग वालों को इलाहाबाद के समीप भीटा ग्राम में एक मेडेलियन (धातु पत्र) मिला है जिसमें शकुन्तला नाटक के दो दृश्य खुदे हैं। इसका वर्णन परिशिष्ट मे होगा। पुरातत्व वेत्ताओं ने इसे शुंग समय का माना है। जैसा कि ऊपर दिखलाया जा चुका है शुंग काल सं० पू० १५ में समाप्त हुआ था। उस काल किसी बाह्य नरेश को शकुन्तला के दृश्य अंकित कराने का विचार काहे को होता? इससे अनुमान होता है कि गुण ग्राही विक्रमादित्य ने ही यह मेडेलियन बनवाया होगा।

अंतिम शुंग तथा पूर्ण काण्व काल में उज्जैन में प्रमर बंशियों का राज्य होना किसी ज्ञात ऐतिहासिक विचार के प्रतिकूल नहीं है । अंतिम शुंग तथा सारे काण्व नरेश बल-हीन तो थे ही, सो इनके समय में मालवा मे प्रमरों का प्रभुत्व जमाना असंभव नहीं है । कहते हैं कि विक्रम नरेश बड़े ही गुणज्ञ न्यायी और वीर थे । इनकी न्यायप्रियता तथा दानशीलता को आज तक ऐसी प्रशंसा होती है कि इनकी गणना वलि और हरिश्चन्द्र जैसे दानियों के साथ की जाती है । अन्य राजाओं की प्रशंसा करने में भी लोग बलि, विक्रम, राम, युद्धिष्ठिर आदि से वर्ण्य नरेश को उपमा देते हैं । विक्रम चरित साहित्य में बड़ा ही महत्व पूर्ण माना गया है । जगत्प्रसिद्ध राजर्षि भर्तृहरि आप के बड़े भाई कहे गये हैं । कहते हैं कि अपनी रानी के दुश्चरित्र से विरक्त होकर जब इन्होंने सन्यास ग्रहण किया था तब विक्रम गद्दी पर बैठे थे । भर्तृहरि का मस्तिष्क बड़ी ही उच्च श्रेणी का था । विक्रमादित्य के विषय मे कहा जाता है कि मंत्रियों पर राज्य भ र छोड़ कर आप गुप्त भाव से लोकानुभव प्राप्त करने के लिए बहुधा छद्म वेष मे निकल जाया करते थे । इस प्रकार अपने द्वारा नियोजित दूरस्थ शासकों तथा राज भक्त बने हुए वंचक राजसेवियो की वास्तविक कार्यवाही आप स्वयं देखते और तदनुसार उचित प्रबन्ध करते थे । ऐसी ही ऐसी अन्य युक्तियों से भी आप सदा प्रजा क्लेश निवारण में ही लगे रहते थे । कहते हैं कि सच्चरित्रता के उदाहरण होने पर भी छद्मवेष मे आपने स्त्री चरित्र तक का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था । वैताल पचीसी में लिखा है कि आपसे एक एक कर के २५ कथायें कही

गई थीं और प्रति काथा के अन्त में कोई न कोई जटिल धर्मशास्त्र का प्रश्न पूछा गया था। आपने इन सब का उचित उत्तर दिया था। सिंहासन बत्तीसी में भी विक्रम की उदात्त न्याय प्रियता एवं अलौकिक बुद्धि की मुक्त कंठ से प्रशंसा की गई है। विक्रमादित्य भारत के मानो किंग आर्थर हैं। भारतीय विचारानुसार राजोचित सभी गुणों का संग्रह आप में माना गया है। प्रसिद्ध विद्या प्रेमी राजा भोज आप ही के वंशधर हुए हैं। कोई कोई लोग विक्रमीय सभा में ६ रत्नों का होना मानते हैं, किन्तु आपकी सभावाले सोचे हुए कुछ पुरुषरत्न आपसे सैकड़ों वर्ष पीछे हुए हैं। कालिदास का भारी मान करने से विक्रम का अलौकिक साहित्य ज्ञान प्रगट होता है। कहते हैं कि आपने कालिदास को काश्मीर का राजा बना दिया था किन्तु जब उस कविरत्न ने आपके शरीरान्त का समाचार पाया तब विरक्त होकर सन्यास ग्रहण कर लिया। विक्रम के जन्म तथा मृत्यु के संवत ज्ञात नही हैं।

इसी स्थान पर सिल्यूकस के राज्य का भी कुछ वृत्तान्त लिख देना आवश्यक समझ पड़ता है। एक तो इन राज्यों का पंजाब से कुछ सम्बन्ध रहा है, दूसरे इनके वर्णन से तत्कालीन भारतीय इतिहास पर प्रभाव डालनेवाली जातियों का भी कुछ ज्ञान होकर उन प्रभावों के मूल कारणों का बोध होता है। २०५ संवत पूर्व में सिल्यूकस का राज्य ऐन्टिओकस ने पाया। यह बड़ा मद्यप और व्यभिचारी था। आक्सस नदी के निकट स्थित बैक्ट्रिया प्रान्त तथा कैस्पियन समुद्र के दक्षिण पूर्वीय देश मे स्थित पार्थिया प्रान्त ऐन्टिओकस के राज्य के बड़े सघन और उपजाऊ भाग थे। पहिले तो बैक्ट्रिया स्वतंत्र हो गया और वहां का शासक डिओडोटस

राजा बन बैठा। अनन्तर १६१ सं० पू० में अर्साकिस के आधिपत्य में पार्थिया भी स्वतंत्र हो गया। डिओडोटस के पीछे सं० पू० १८८ में उसका पुत्र डिओडोटस द्वितीय राजा हुआ। अनन्तर मैगनिशिया निवासी यूथीडेमस १७३ सं० पू० में डिओडोटस को हटाकर बैक्ट्रिया का राजा हो गया। सीरिया नरेश ऐन्टिओकस का राजत्वकाल सं० पू० १६६ से १३० तक चलता है। इसने बैक्ट्रिया छीनने के लिए बहुत युद्ध किया किन्तु १५१ सं० पू० मे इसे यूथीडेमस को स्वतंत्र मानना ही पड़ा। सन्धि होने पर ऐन्टिओकस ने यूथिडेमस के पुत्र डेमिट्रियस को अपनी लड़की भी व्याह दी। बैक्ट्रिया से विजय न पाकर इसने भारत की ओर ध्यान दिया और सं० पू० १४६ मे हिन्दू कुश पार कर के मौर्य पक्षावलम्बी काबुल नरेश सुभागसेन से बहुत से हाथी और कोश लिए। यद्यपि ऐन्टिओकस भारत मे नहीं आया था तथापि सिकन्दर और सिल्यूकस के पीछे वह भी भारत के आक्रमण कर्त्ताओं में समझा जाता है, क्योंकि काबुल उस काल भारत का अङ्ग था। जान पड़ता है कि अशोक के पीछे सुभागसेन अथवा उसके पूर्व पुरुष काबुल मे स्वतंत्रप्राय हो गये थे। ऐंटिओकस के कुछ पूर्व यूथिडेमस ने भी अशोक के पीछे कुछ भारतीय भूभाग पर अधिकार किया था। यूथीडेमस का पुत्र डेमिट्रिअस भारत पर आक्रमण करने वाले यूनानियो में पांचवां था। इसने सं० पू० १३३ में काबुल, पंजाब और सिन्ध पर अधिकार किया। आपने सागल का पुनर्निर्माण किया और उसका नाम यूथीडेमिया रक्खा। डेमिट्रियस को इधर व्यस्त देख, यूक्रेटाइडीज़ ने ११८ सं० पू० में इससे बैक्ट्रिया का राज्य छीन लिया। बैक्ट्रिया छिन जाने पर भी डेमिट्रियस

अपने भारतीय प्रान्तों का अधिकारी बना रहा, किन्तु यूक्रेटा-इडोज़ ने कई शत्रुओं से हारते जीतते हुए किसी प्रकार बैक्ट्रिया पर अधिकार स्थिर रक्खा और १०३ सं० पू० में डेमिट्रियस के भारतीय प्रान्तों पर भी आक्रण किया। इस उद्योगी शत्रु ने ४ वर्ष अनिवार्य युद्ध करके डेमिट्रियस से उसके भारतीय प्रान्त भी छीन लिए। यूक्रेटाइडीज़ को इतना परिश्रम करके भी राज्य सुख नहीं बदा था। किन्हीं कारणों से रुष्ट होकर इसके पुत्र अपालोडोटस ने इसी वर्ष इसका वध करके इसके शव पर अपने रथों के पहिये चलाये। इस कुपुत्र के इन पापों से इसका राज्य बक्ट्रिया पर से भी नष्ट हो गया। जान पड़ता है कि इसके भाई होलिओक्लीज़ ने इसका वध किया क्योंकि वह न्यायी और बैक्ट्रिया का राजा कहा गया है। यूक्रेटाइडीज़ झेलम और व्यास नदियों के बीच १०० नगरों का स्वामी कहा गया है। मेगस्थनीज़ ने लिखा है कि भारत में १२० जातियां हैं। अपालोडोरस का कथन है कि झेलम और व्यास के बीच १५०० नगर थे। प्रतीत होता है कि थोड़े ही दिनों मे यूनानियों का पंजाबी और सिन्धी शासन ध्वस्त हो गया था क्योंकि इसके दूसरे ही साल सं० पू० ९८ में काबुल नरेश यूनानी मिनैन्डर को पंजाब जीतने का फिर से प्रयत्न करना पड़ा। समझ पड़ता है कि डेमिट्रियस और यूक्रेटाइडीज़ का पंजाब पर कभी वास्तविक अधिकार न हुआ था और उनका शासन सिन्ध नदी के पश्चिम में ही रहा था। मिनैन्डर को हरा कर पुष्पमित्र ने पंजाब मे फिर से भारतीय अधिकार दृढ़ किया। फिर भी मिनैंडर का राज्य कुछ दिन तक सिन्ध, राजपूताने के कुछ भाग एवं वायव्य सीमा प्रान्त के

कुछ अंश पर स्थापित रहा। भारत पर आक्रमण करने वाले यूनानी नरेशों में सिकंदर, सिल्यूकस, यूथीडेमस, एेन्टिओकस, डेमिट्रियस, यूक्रेटाइडीज़, और मिनन्डर के नाम आते हैं। इनमें से पहिले को छोड़ और किसी ने वास्तविक विजय नहीं पाई और उसका भी परिश्रम निष्फल रहा। पंजाब में कई बार यूनानियों के आक्रमण हुए किन्तु वहां भी उनके आने का कोई प्रभाव नहीं देख पड़ता। मिनेन्डर के पीछे किसी यूनानी ने भारत पर आक्रमण नहीं किया।

पार्थिया के शासकों में पहिला मिथ्रडेटीज़ (सं० पू० ११४ से ७६ तक) भारी शासक हुआ है। कहते हैं कि ८१ सं० पू० में इसने सिंध और झेलम नदियों के बीच का देश अपने अधिकार मे कर लिया था। पार्थिया को एक प्रकार से फ़ारस ही का राज्य समझना चाहिये। ऐतिहासिकों का मत है कि पंजाब पर फ़ारस का कुछ प्रभाव पड़ा था नहीं तो तक्षशिला और मथुरा के शासक अपने को फ़ारसी उपाधि सट्रेय (क्षत्रय) से क्यों विभूषित समझते? जहां जहां कोई शासक क्षत्रय अथवा महा क्षत्रय कहलाया है, वहीं पाश्चात्य ऐतिहासिकों ने केवल इस नाम के कारण बिना किसी अन्य प्रमाण के भी उसकी फ़ारसी अथवा कुशान अधीनता के स्वप्न देखे हैं। जब फ़ारस में इस शब्द का प्रचार महत्ता सूचन में था तब समय पर इसकी महिमा चढ़ जाने में कोई आश्चर्य्य नहीं किया जा सकता। काठियावाड़ के क्षत्रय शकों ने वहां ४०० वर्षों से अधिक शासन किया था और उनके संधि, विग्रह, आदि सम्बन्धी किसी कर्म से भी यह नहीं प्रगट होता कि वे किसी बाह्य शक्ति के अधीन थे। फिर भी केवल क्षत्रय उपाधि से उन्हें

परतंत्र मानते जाना और जहां जहां यह नाम आये वहां वहां अधीनता का डोर सोचना केवल हठवाद समझ पड़ता है। कहते हैं कि मिथूडेटीज़ के पीछे सं० पू० ६३ में माऊअस पश्चिमी पंजाब का स्वामी हुआ। यह समय शुंगों का था। इस काल फारसी दो शासक इस प्रान्त में थे, अर्थात् एक अफ़ग़ानिस्तान के कुछ भाग और सीस्तान का और दूसरा तक्षशिला का जिसमें पश्चिमी-पंजाब सम्मिलित था। यह नहीं निश्चय है कि माऊअस फ़ारसी था अथवा शक नरेश। इसका शक होना अधिक प्रमाणनीय है। इसी स्थान से शकों तथा हूणों की कथा चलती है।

चीन के वायव्य (उत्तर पश्चिमी) प्रान्त में यूएची और हीउंगनू नाम्नी दो तुर्की जातियां रहती थीं। ये नटों कंजड़ों आदि की भांति एक स्थान पर न रह कर लड़के बालों, ढोर डंगरों समेत यत्र तत्र घूमा करती थीं। इन दोनो में प्रकट कारणों से युद्ध हो पड़ा और सं० पू० १०८ के इधर उधर हीउंगनू ने यूएची को पूर्ण पराजय दे दी। इसलिए यूएची को अपना कमसू प्रान्त छोड़ नये चरागाहों की खोज में पश्चिम की ओर जाना पड़ा। इस दल के साथ एक से दो लाख तक धनुर्धारी थे और लड़के बच्चे स्त्री पुरुष मिला कर इस दल में ५ से १० लाख तक व्यक्ति कूते जाते हैं। इस प्रकार चलते हुए इन लोगों की गोबी के निकट एक उस जाति से मुठभेड़ हुई जिसका अधिपति ऊसुन था यह जाति वहां पहिले ही से बसी थी। यूएची ने ऊसुन का वध करके आगे का रास्ता लिया, क्योंकि वहां के चरागाह उनके लिए अलम् न थे। यहीं से फूट कर इनकी एक शाखा तिब्बत के सिवाने पर बस गई। इसे लघु यूएची कहते हैं,

और मुख्य शाखा को बृहत् यूएची। बृहत् यूएची ने आगे बढ़कर शकों का सामना किया। शक लोग ऊसुन देश के पश्चिम और सीर नदी (जक्सारटीज़) के उत्तर रहते थे। इनकी कई जातियां थीं। यूएची ने इन्हें सं० पू० १०२ के लग भग हराकर इनके देश पर अधिकार जमाया। अतएव पराजित शक लोग भारत की ओर प्रस्थित हुए। १५।२० वर्ष पर्य्यन्त यूएची शकों के देश में प्रसन्नता पूर्वक रहे। अनन्तर ८२ सं० पू० में इनके प्राचीन शत्रु हीउंगनू ने मृत ऊसुन के पुत्र का पक्ष लेकर इन्हें शक देश में भी पराजित किया। अब प्राचीन शक देश भी छोड़ कर यूएची आगे बढ़े। इन्होंने आक्सस नदी के निकट पहुंच कर वहां के शांतिप्रिय निवासी टाहिया लोगों को पराजित किया और देश पर अधिकार जमाया। टाहिया आक्सस के उत्तर मे रहते-थे। बैक्ट्रिया राज्य इसी के दक्षिण था। यूएची ने उस पर भी अधिकार जमाया किन्तु अपनी राजधानी टाहिया लोगों के देश में ही रक्खी। दो एक पीढ़ियों में यूएची लोगों का भ्रमण करने का स्वभाव जाता रहा और वे पांच राज्यों में विभक्त होकर वहीं बस गये। इनके अधिकार में बैक्ट्रिया और सोक्डाइना (वर्तमान बोखारा राज्य) भी थे। यहां इनकी जनसंख्या बहुत बढ़ी। यह दशा संवत् ५० के लग भग की है।

यूएची जाति से पराजित होकर जब शकों को अपने देश से भागना पड़ा तब सं० पू० ८२ के लग भग ये लोग पार्थिया पहुंचे। १२ वर्ष के पीछे इनसे युद्ध में मिथ्रडेटीज़ के पुत्र पार्थिया नरेश दूसरे फ्राटीज़ का वध हुआ। कुछ दिनों के पीछे फ्राटीज़ का उत्तराधिकारी पहिला आर्टबानूज़ भी शकों

द्वारा मारा गया। इस प्रकार कुछ ही दिनों में यूएची और शकों द्वारा यूनानियो के वैक्ट्रिया और पार्थिया वाले राज्य लुप्त हो गये। शकों की कुछ धरायें भारत की ओर भी चली। इन्होंने तक्षशिला और मथुरा पर अधिकार जमाया, तथा क्षत्रप की उपाधि धारण कर के शासन आरंभ किया। यह समय संवतारंभ के लगभग का है। इसके कुछ पूर्व एक अन्य शक धारा ने भूमक की अध्यक्षता में सं० पू० ९५ के लगभग सौराष्ट्र पर शासन जमाया था। संभव है कि आदि में कुछ दिनों तक ये लोग अपने को पार्थिया के शक शासक का अधीन समझते हों. यद्यपि यह अधीनता नाम मात्र ही को होगी और अति शीघ्र नष्टप्राय होकर लुप्त हो गई होगी। उपरोक्त माऊअस ६३ सं० पू० में तक्षशिला का शासक था। इसलिए इसका फ़ारसी अथवा शक दोनों मे से कोई होना संभव है। विशेषतया यह शक ही समझ पड़ता है। माऊअस द्वारा स्थापित राज्य ७० वर्ष चला।

परिशिष्ट।

कालिदास का समय।

सं० १९६५-६६ में पुरातत्व विभाग ने प्रयाग के निकट भीटा ग्राम में एक मेडैलियन खोदकर निकाला। इसमें दो दृश्य खुदे हुए हैं, जिनके देखने से प्रतीत होता है कि ये शकुन्तला नाटक में से लिए गये हैं। इस मेडैलियन के बीच में दो पुरुष हैं जिनमें एक राजा तथा अन्य साथी है, एक तपस्वी दोनों हाथ उठाये उनको आश्रम का मृग न मारने के लिए प्रार्थना कर रहा है। दूसरे में कण्व ऋषि की कुटी दिखाई

देती है; एक लड़की वृक्ष सींच रही है। यह मेडैलियन शुङ्ग समय का निश्चित किया गया है। सर जान मार्शल का कथन है कि ये दृश्य किसी अन्य काव्य ग्रंथ के हैं जिनको कालिदास ने अपने नाटक में ले लिया होगा, परन्तु इस मत को हम ग्राह्य नहीं मानते क्योंकि इसके लिए कोई प्रामाणिक आधार नहीं दिये गये हैं। जब कोई ग्रंथ ऐसे दृश्यों वाला वस्तुतः अस्तित्व में है ही नहीं तब उसके अस्तित्व का आधारशून्य अनुमान कर के कविकुल-गुरु कालिदास पर स्तेय का दोषारोपण करना युक्तियुक्त नहीं समझ पड़ता। कल्पनाओं का रूपान्तर ग्रंथो मे अवश्य पाया जाता है जैसे भास की वल्कल पहिने हुए सीता को देखकर यह उक्ति कि "सर्व्वं सोहणीयं सुरूपंणाम" कालिदास के शाकुन्तल मे क्या ही चमत्कृत रूप मे दिखाई देती है—

"सरसिज मनु विद्धं शैवले नापि रम्यम्।
मलिन मपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति॥
इय मधिक मनोज्ञ वल्कले नापि तन्वी।
किमि व हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।"

शकुन्तला नाटक की कथा अपने मूल महाभारत से बहुत कुछ पृथक है। यह पार्थक्य कालिदास ने काव्य सौन्दर्य्य विवर्द्धनार्थ किया था। उपरोक्त मेडैलियन इसी का दृश्य दिखलाता है। इस कथा को इसी भांति वर्णन करने वाला प्राचीन ग्रंथो में शकुन्तला के अतिरिक्त पद्मपुराण ही पाया जाता है, किन्तु मेकडानल आदि विद्वानों ने सिद्ध कर दिया है कि पद्मपुराण ही कालिदास के आधार पर चलता है न कि कालिदास उसके आधार पर। पद्मपुराण

का रचनाकाल भी उन्होंने शुंग काल के पीछे माना है, अतः उपरोक्त मेडेलियन का आधार पद्मपुराण न होकर नाटक ही समझ पड़ता है। इस मेडेलियन से भी कालिदास का संवत पूर्व में होना सिद्ध है।

कालिदास के काव्यों में कृत्रिमता का पूर्ण अभाव है जिसका आरंभ गिरिनार तथा नाशिक के शिलालेखों से पाया जाता है। ये २री शताब्दी के हैं। अतः कालिदास का इनसे दो एक शताब्दी पूर्व होना अनुमान सिद्ध है।

रचना शैली, वर्णन पद्धति इत्यादि से ज्ञात होता है कि कालिदास अश्वघोष से प्राचीनतर हैं। अश्वघोष प्रथम शताब्दी विक्रमीय में हुए। कई महाशयों का कथन है कि कालिदास और अश्वघोष की वर्णन पद्धति मिलती है जिससे ज्ञात होता है कि कालिदास ने अश्वघोष के वर्णनों का अनुकरण किया। यदि ऐसा होता तो वे ही वर्णन कालिदास के कई ग्रन्थों में न आते क्योंकि चोर इतना धृष्ट नहीं हो सकता कि चोरी के माल का पुनः पुनः प्रदर्शन करे। जो वर्णन रघुवंश के बुद्ध चरित से मिलते हैं वे ही कालिदास ने मेघदूत में भी दिये हैं। अतः ज्ञात पड़ता है कि कालिदास का अश्वघोष ही ने अनुकरण किया। इससे भी कालिदास का सं० पू० में होना सिद्ध है।

इसी विषय पर रामचन्द्र विनायक पटवर्धन के विचारों का सार निम्नलिखित है:—

प्रो० आपटे का मत है कि कालिदास ईसा-मसीह की प्रथम शताब्दी में हुआ क्योंकि शाकुन्तल के छठें अंक में कवि ने एक पात्र के मुख से ये उद्गार निकलवाये हैं कि धन

मित्र नामक व्यापारी स्त्री और पुत्री को छोड़ कर मर गया और उसके अपुत्र होने के कारण उसकी सारी संपत्ति सरकार में जमा की जाय, ऐसी मंत्री ने व्यवस्था दी । अतः पुत्रहीन की संपत्ति पर उसकी स्त्री अथवा पुत्री का उत्तराधिकारी होना प्रचलित होने के पूर्व कालिदास हुआ । पुत्री आदि को यह अधिकार प्रथमतः बृहस्पति स्मृति से प्राप्त हुआ जिसका आधार स्वरूप श्लोक "पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा" है । यह ग्रंथ प्रथम शताब्दी ई० स० का है । यह मत निर्दोष तथा युक्तियुक्त है परन्तु निश्चयात्मतया यह ज्ञात न होने से कि यह अधिकार सम्बन्ध प्रथम शताब्दी ही का है, यह मत सन्देहाकीर्ण है ।

प्रो० पाठक कहते हैं कि सं० ५०० के लगभग कालिदास का काल आता है । इसका आधार रघु विजय में हूणों का उल्लेख है । वह यह है "तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्त विक्रमम्" अर्थात् वंक्षु (आक्सस) नदी के किनारे हूण लोगों पर रघु ने जय पाया । प्रो० पाठक ने सर चार्ल्स इलियट, कर्नल स्लाइक्स, डा० एडवर्ड मेयर, सर आरेल स्टेन, एम० शेवेनोज़ (M. Chavanoes) आदि विद्वानों के आधार पर यह दिखाया है कि हूण लोगों (श्वेत हूणों) ने वैक्ट्रिया पर सं० ४७७ के लगभग चढ़ाई करके उसे जीत लिया । प्रश्न यह है कि हेप्थालाइट (गोरे हूण) सं० ४७७ के लगभग ही आये अथवा उसके भी पूर्व में । दूसरे हूण शब्द से कालिदास ने हूणों की अन्तर जाति बनाई अथवा विशिष्ट जाति (गोरे हूण) । पहिला प्रश्न हूणों का क्रम बद्ध वृत्तान्त न मिलने से संदिग्ध रहता है कि हूण (गोरे) सं० ४७७ के पूर्व आये अथवा नहीं । प्रो० पाठक ने यह कहीं नहीं बताया कि हूणों

से गोरे ही हूणों का प्रयोजन है। हूणों का मूल स्थान मंगोलिया देश है और उनका वंश तुर्क अथवा तातार जाति का है। यूरोपियन तुर्कों का इनसे सम्बन्ध नहीं। चार्ल्स ईलियट महाशय का मत है कि गोरे हूणों का नाम 'होआ' अथवा 'हो अन्तुन' है। चीनी ऐतिहासिकों का भी यही विचार है। गोरे हूण यूएची जाति के हैं। आक्सस नदी पर जिन हैप्थालाइटों का राज्य था उन्हें ग्रीक ऐतिहासिकों ने "तोखारी" कहा है। यह जाति उसी की एक अंतर जाति से नष्ट हुई। इस अंतर जाति का नेता नोलो था। नोल्डके महाशय (Noldke on Persia) के मत से यूएची ही का नाम तोखारी था जिनका ईरानियों (फ़ारस वालों) से पांचवीं शताब्दी में युद्ध चल रहा था। अतः उपरोक्त कथन से हूणों में कई भेद सिद्ध हुए जैसे यूएची, तोखारी, हेप्थालाइट, हिउंगनू। फ़रांसीसी लेखक डिगाइन्स महाशय का मत है कि हिउंगनू से ही हूण अपभ्रंश हुआ। यह सभी हूण होने से यह कथन अशक्य है कि कालिदास का हूण लिखने में किससे प्रयोजन है। बैक्ट्रिया में गोरे हूणों के पूर्व कुशन अथवा तोखारी हूणों का राज्य था। बाल्हीक (बलख़) आक्सस नदी के किनारे है। यह सं० पू० ८३ के लगभग ग्रीक लोगों के अधीन था। संवत पूर्व ७२ में तोखारियों ने इसे ग्रीक लोगों से जीता। ये लोग यूएची नाम के हूण हैं यह नोल्डके नामक इतिहासज्ञ ने सप्रमाण सिद्ध कर दिया है। यूएची का राज्य बलख़ में स० पू० ७२ से सं० ८४ तक रहा। उनके पीछे कुशनों ने इसे जीता। कनिष्क इसी जाति का था। यूएची का राज्य सं० पू० ८३ में बलख़ में स्थापित हुआ। अतः कालिदास का काल सं० पू० ७३ के पीछे नहीं

जा सकता सो सं० पू० ७२ के आगे कालिदास कभी भी दो एक शताब्दी में हो जाना चाहिये।

"इतस्सदैत्यः" यह कालिदास का श्लोक पंचतंत्र में मिलता है। मूल प्रति में यह है, यह नहीं कहा जा सकता; परन्तु होगा ऐसा अनुमान होता है। कारण यह है कि बार्भुया ने जो नौशेरवां का (सं० ५८८ से ६३६) मंत्री था पंचतंत्र का पेल्हवी भाषा में उलथा किया। जिस कथा में यह श्लोक आया है वह भाषान्तर मे भी प्रस्तुत है। यह श्लोक सांप्रदायिक, आचार विषयक, विशिष्ट शास्त्र सम्बन्धी न होने से प्रक्षिप्त भी नहीं समझ पड़ता। पंचतंत्र तथा पेल्हवी भाषांतर जहां तक मिलते हैं वे अवश्य ही पांचवी शताब्दी के पूर्व के हैं। अतः कालिदास इससे दो तीन शताब्दी पूर्व अवश्य हुआ होगा।

आषाढ़ शुद्ध प्रतिपदा पीछे शीघ्र ही नभोमास प्रारंभ होता है ऐसा मेघदूत में कहा है। "आषाढस्य प्रथम दिवसे मेघ माश्लिष्टसानुं। प्रत्यासन्ने नभसि दयिता जीवितालंबनार्थी" ॥ इन दोनों आषाढ़ तथा नभोमास से प्रकट हुआ कि कालिदास के समय निरयन चान्द्रमास तथा सायन मास दोनों प्रचलित थे। प्रतिपदा के दिन यक्ष ने मेघ देखा। उस समय नभोमास प्रत्यासन्न था अर्थात लगा नहीं था। यह कब से प्रारंभ हुआ यह मेघदूत में नहीं बताया गया है परन्तु समाप्त होने का समय दिया है जिससे आरंभ काल का पता चल जाता है। "शापान्तो मे भुजग शयनादुत्थिते शार्ङ्ग पाणौ" अर्थात् वर्षा काल से प्रारंभ होने वाला चातुर्मास्य कार्तिक शुक्ला एकादशी को समाप्त हुआ। इससे स्पष्ट है कि वर्षा काल का अथवा नभोमास का आरंभ

होता है सो नभोमास २८ अंश पीछे आया। प्रत्येक अंश को ७२ वर्ष के परिमाण से देखें तो कालिदास का समय २८×७२=२०१६ वर्ष पूर्व निश्चित हुआ। आश्विनी का आरम्भ स्थान निश्चित नहीं है अतः दो एक अंश की भूल भी हो सकती है। तो भी कालिदास को हुए १६०० वर्ष से अधिक अवश्य हो गये।

डा० भाऊ दा जी ने अपनी पुस्तक लिटरेरी रिमेन्स आफ़ डा भाऊ में सप्रमाण सिद्ध कर दिया है कि कालिदास काश्मीर का रहने वाला था, अथवा वहां रहा था। कालिदास के ग्रन्थों में सृष्टि निरीक्षण के वर्णन यत्रतत्र मिलते हैं। "शरत्प्रसन्नैर्ज्योतिर्भि विभावर्य इव ध्रुवम्", ऐसी लोकोत्तर उपमा रघुवंश के १७वें सर्ग में मिलती है। सप्तर्षि मंडल अविराम राति से ध्रुव के चारों ओर घूमते हैं। इसका अनुभव पंजाव के उत्तर भाग एवं काश्मीर इन्हीं प्रान्तो के निवासियों को पूर्णतः प्राप्त होता है। काश्मीर के अक्षांश ३३–३५ उत्तर होने से उस देश में नक्षत्रों की प्रदक्षिणा उत्कृष्ट रीत्या दिखाई देती है। इस उपरोक्त वर्णन से कालिदास का कभी काश्मीर वासी होना नितांत तर्क नहीं वरन् सवल प्रमाणों के आधार पर किया हुआ अनुमान है। इस अनुमान के मान लेने पर रघुवंश के ४थे सर्ग मे ग्रथित ज्योतिप शास्त्र विपयक एक उल्लेख उत्तम रीत्या स्पष्ट हो जाता है। "प्रससादोदयादंभः कुम्भयोनेर्महौजसः। सरितः कुर्वतिगाधाः पथश्चाश्यान कर्दमात्॥ यात्रायै प्रेरयामास तं शक्तेः प्रथमं शरत्।" अगस्त्य नक्षत्र के उदय होते ही पानी निर्मल हो गया, नदियों का वेग घटा तथा रास्ते का कीचड़ घटा। इसमें अगस्त्य का उदय तथा शरद के आरम्भ का साहचर्य

बताया गया है। इससे स्पष्ट है कि, कालिदास के समय काश्मीर में अगस्त्योदय शरदारंभ में होता था। यह बड़े मार्के की बात है। प्रथम यह देखें कि यह उदय कैसा है? उदय तीन प्रकार के होते हैं। अभि मुखोदय वह है जब सूर्यास्त के समय ग्रह या नक्षत्र का पूर्व में उदय हुआ हो। इसे एक्रोनिकल राइज़िंग भी कहते हैं। सूर्य के साथ जब ग्रह या तारे का उदय हुआ हो उसे सहोदय (कासमिकल राइज़िङ्ग) कहते हैं। ये दोनों ही ऊपर विवक्षित नहीं। पहिला मार्च में होता है जब शरद न होकर वसंत काल होता है। दूसरा भी नही क्योंकि सूर्य के साथ उदय होने से ग्रह या तारे का दर्शन असंभव है। अतः दर्शनोदय ही विवक्षित है अर्थात् सूर्य तेज से मुक्त होकर जब ग्रह या नक्षत्र हम को दिखाई पड़ता है तब दर्शनोदय होता है। अमावस को चंद्रमा का उदय सूर्य के साथ होता है। दूसरे दिन से अंतर पड़ने लगता है। द्वितीया को सूरज के क्षितिज के नीचे होते ही चांद दृश्य होता है। इसी प्रकार अगस्त्योदय अर्थात् सूर्य की किरणों से मुक्त होने वाले अगस्त्य का दर्शन है। अगस्त्य तारा विशुवन रेखा के दक्षिण ५२°—३७° अंश पर है और उस का विशुवांश आजकल ६ घं० २२ मिनट है। अगस्त्य दर्शन तथा शरदारंभ कालिदास के समय एक ही दिन में होते थे। शरदारंभ अगस्त मास की २२वी तारीख को होता है। अगस्त्य दर्शन स्थिर है परन्तु अंगरेज़ी वर्ष सायन होने से अयन चलन के साथ उसकी तारीखें भी पीछे हटती जाती हैं। उनके पीछे हटने से कितना अंतर पडा सो देखना आवश्यक है।

काश्मीर का अक्षांश उत्तर ३४° लेकर अगस्त्य का सूर्य के साथ उदय कौन सी तारीख को होता है सो द्रष्टव्य है।

स्प० रे० काश्मीर के अक्षांश ३४° = ९·८२८९८७ +
स्प० रे० अगस्त्य की क्रांति ५२°—३७' = १०·११६८५२
=१९·९४५८३९=ज्या० ६१°—५८=४ घं०—८ मिनट । इनको ६ घंटे में से घटा देने से यह दिन गत्यर्द्ध हुआ । शेष रहे १ घं० ५२ मिनट । मध्यम सूर्योदय १८+ बजे होता है । इसमें १ घं० ५२ मि० जोड देने से १८+१—५२=१९ घं०—५२ मि० होते हैं । अगस्त्य के विषुवांश ६ घं० २२ मि० मे से इन्हें घटा देने से शेष १० घं० ३० मिनट मध्यम सूर्य के विषुवांश रहते हैं अर्थात् सितम्बर का आरंभ हो जाता है। सूर्य का स्पष्टोदय काश्मीर मे ५ बजकर ३८ मिनट के लगभग होता है । अतः जब अगस्त्य का सूर्य के साथ उदय होगा तब स्पष्ट सूर्य के विषुवांश १० घं० ५२ मि० होंगे अर्थात् उस दिन सितम्बर की चौथी तारीख़ आवेगी ।

जब सहोदय चौथी तारीख़ को हुआ तो दर्शनोदय ता० १५, अथवा उससे भी आगे होगा । काश्मीर मे अब भी यही स्थिति है परन्तु कालिदास के समय अगस्त मास की २२वीं तारीख़ होती थी। अंतर पड़ा २४ दिन का जिसका कारण संपात चलन है । पूर्वानुसार ७२ वर्ष का परिमाण लेने से २४+७२=१७२८ वर्ष होते हैं । अतः कालिदास का समय ७२ सं० पू० में जाता है क्योंकि उसी वर्ष शकों लोगों ने वंक्षू नदी के तीर अपना साम्राज्य स्थापित किया । आषाढ़ शुक्ला एकादशी को नभो मास का प्रारंभ होता है । इस भाव के मेघदूतान्तर्गत विवरण से कालिदास का काल १८०० से २००० वर्ष पर्यन्त जाता है तथा अगस्त्योदय के आधार पर वह १७०० वर्ष के बाहर जाता है । ये बातें सुसंगत हैं, अतः

कालिदास का समय ७३ सं पू० से २०० सं० के बीच में किसी समय जाता है।

प्रो० शिवराम महादेव परांजपे एम० ए० के विचारों का सार निम्नलिखित है :—

कालिदास का काल निर्णय करने के लिए इस कवि ने अपने ग्रन्थों में जो भूगोल विषयक उल्लेख किये हैं उनसे कई दृढ़ अनुमान निकल सकते हैं। यद्यपि भूगोल सम्बन्धी कथन थोड़े बहुत सब ग्रन्थों में पाये जाते हैं तथापि महत्व की दृष्टि से मेघदूत में कथित स्थान विशेष मार्के के हैं। मेघदूत की कथा प्रसिद्ध है। उसमें बताये हुए स्थान तथा उनके अर्वाचीन नामों का यहां उल्लेख किया जाता है। कालिदास ने मेघ को इस प्रकार मार्ग बताया।

संस्कृतनाम	श्लोक	अर्वाचीन नाम तथा पता
१ रामगिरि	(१)	रामगढ़ या रामटेक मध्य देश में।
२ माल	(१६)	
३ आम्रकूट	(१७)	अमर कंटक (नर्मदा का उद्गम स्थान)
४ रेवा	(१६)	नर्मदा नदी।
५ दशार्ण	(२३)	यह मालवा में होना चाहिये ऐसा अनुमान है।
६ विदिशा	(२४)	भेलसा, दशार्ण की राजधानी।
७ वेत्रवती	(२४)	वेतवा।
८ नीचैर्गिरि	(२५)	विदिशा और वेतवा के समीप कोई छोटा पहाड़।
९ उज्जयिनी	(२७)	उज्जैन उपनाम विशाला।

संस्कृत नाम	श्लोक	अर्वाचीन नाम तथा पता
१० निर्विन्ध्या	(२८)	उज्जैन और विदिशा के बीच की छोटी छोटी नदी।
सिन्धु	(२९)	कदाचित पार्वती और काली सिन्धु।
११ अवन्ति	(३०)	प्राप्यावंतीन् में बहुवचनांत प्रयोग होने से देशवाचक जान पड़ता है।
१२ सिप्रा	(३१)	इसीके तीर उज्जैन नगरी वसी है।
१३ गंधवती	(३५)	सिप्रा की छोटी २ सहायक नदियां।
गंभीरा	(४२)	
देवगिरि	(४४)	
१४ चर्मण्वती	(४७)	चंबल।
१५ दशपुर	(४९)	दशपुर मालवा में।
१६ ब्रह्मावर्त	(५०)	कुरुक्षेत्र क्योंकि मनु ने कहा है— "सरस्वती दृषद्वत्योर्देव नद्योर्यदन्तरम्। तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते॥"
१७ कनखल	(५२)	हरिद्वार के पास।
१८ क्रौंचरंध्र	(५८)	हिमालय में मानस सरोवर के इस पार एक पहाडी मार्ग जिसे परशुराम ने वाण द्वारा बनाया ऐसा कहते हैं।
१९ कैलास	(६०)	कैलास पर्वत, इसीके पास अलकापुरी है।

इस निर्दिष्ट मार्ग से जाने में मेघ को विलम्ब लगने का संभव था। यद्यपि सरल मार्ग प्रस्तुत था तथापि यह टेढ़ा रास्ता लगने को क्यों बताया गया? इसमें कोई व्यंग्यार्थ है वा नहीं? इसका उत्तर यही प्रतीत होता है कि कालिदास को विदिशा का रास्ता परिचित और पसन्द होना चाहिये।

यद्यपि वह जानता था कि मेघ को उत्तर की ओर जाता है, तथापि रास्ता बताता था पश्चिम का, क्योंकि मेघ से कहा गया है कि पहले माल को जाकर फिर उत्तर को मुड़ना। २४वें से लेकर ४२वें श्लोक तक विदिशा, अवन्ति, सिप्रा, नीचैर्गिरि, बननदी, निर्विन्ध्या, सिन्धु, गंधवती और गंभीरा का वर्णन है। इनमें से प्रथम दो शहर हैं, तीसरा पहाड़ और शेष पांच छोटी छोटी नदियां। कालिदास मेघ को शीघ्र न भेजकर यहां उपरोक्त स्थानों का वर्णन करने बैठा है। यद्यपि ये छोटे मोटे स्थान हैं तथापि कालिदास को ये बड़े महत्व के मालूम हुए। इसी प्रकार १६वें श्लोक में उत्तर में जाने वाले मेघ को घसीट कर कवि पश्चिम को ले जाता है तथा २७वें में "वक्रः पंथा यद्पि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशा" कह कर उसे उज्जैन घसीट ले जाने का आग्रह कर रहा है। इससे स्पष्ट है कि कवि का इस प्रदेश पर बहुत प्रेम था। इसी प्रकार अप्रसिद्ध स्थानों का वर्णन पाने से भी यही अनुमान दृढ़ होता है।

इसी विदिशा का उल्लेख मालविकाग्निमित्र में भी मिलता है। वहां का युवराज अग्निमित्र ऐतिहासिक पुरुष है। इसी अग्निमित्र को नायक बना कर यह नाटक रचा गया है। इसमें जो विशिष्ट ऐतिहासिक वर्णन हैं वे तो इतिहास प्रसिद्ध होने से कई शताब्दी पीछे भी मालूम हो सकते थे, परन्तु नाटक में जो छोटी मोटी अनुपयोगी बातें आ गई हैं, जो इतिहास प्रसिद्ध भी नहीं हो सकतीं, वे कई शताब्दी पीछे जन्म लेने वाले कालिदास को कैसे ज्ञात हो सकती थीं? जब वह उनको जानता है तब ऐसा निष्कर्ष निकला कि कालिदास अग्निमित्र का समकालीन अथवा उसके शीघ्र ही

पीछे हुआ होगा। मालविकाग्निमित्र के उल्लेख में प्रो० विलसन ने कहा है कि "अग्निमित्र के राज्य की घटनाओं का इस नाटक में ऐसा अच्छा वर्णन आया है जिससे यह अनुमान दृढ़ होता है कि वे कालिदास को भली भांति विदित थीं। ये घटनायें भी ऐसी थीं जो बहुत समय के पीछे लोगों की स्मरण शक्ति में नहीं रह सकती थीं।"

वे छोटी मोटी बातें इस प्रकार हैं:—

१ मालविकाग्निमित्र में मालविका मुख्य नायिका है। धारिणी तथा इरावती दो उपनायिकाएं हैं। न्यायिका के पात्र का उठाव होने के लिए नाटकों में उपनायिका का समावेश होता है परन्तु यह काम एक से होते हुए दो को संविविष्ट करना अच्छे कवि के लिए कल्पना गौरव का दोष है। अतः यह प्रतीत होता है कि राजा के धारिणी तथा इरावती दो रानियें वास्तव में थीं जिनके लिए कवि ने कल्पना गौरव का दोष भी सहन करके नाटक में दो उपनायिकाओं का समावेश किया।

२ धारिणी का भाई जाति में कुछ न्यून था। यह बात कथानक परिपोषक न होकर भी कालिदास ने इसका उल्लेख किया है।

३ अग्निमित्र ने विदर्भ देश के राजा को चिट्ठी लिखी थी कि माधवसेन की स्त्री तथा बहिन को छोड़ दो। इसमें मालविका का उल्लेख उपयुक्त होने से योग्य है परन्तु स्त्री का कथन प्रकृतानुपयोगी होने से अनावश्यक है। ऐसा होते हुए भी उसका विवरण है। यह बात इतनी छोटी है कि कालिदास यदि ५ वीं शताब्दी में हुआ होता तो ६०० वर्ष पीछे यह उसे मालूम होना असंभव था।

४ इसी तरह 'समाधवसेनः' इस वाक्य के पीछे ही "पूर्व संकलित समुन्मूलनाय" वाक्य है। इसमें 'पूर्व संकलित' पद मार्के का है। जब इसका आधार नाटक में नही मिलता तो यह अवश्य बाहर का होना चाहिये जो बिना तत्कालीन लोगों के औरों का ज्ञात नहीं हो सकता।

५ पांचवें अङ्क में "विगत रोष चेतसा" पद है। इससे मालूम होता है कि कालिदास को पिता पुत्र का वे बनाव विदित था क्योंकि नाटक में इसका उल्लेख कहीं नहीं मिलता। अतः उपरोक्त विदिशा वर्णन (मेघदूत) से तथा इन वास्तविक किन्तु अप्रासंगिक एवं प्रकृतानुपयोगी कथनों से सिद्ध हुआ कि कालिदास अग्निमित्र का समकालीन था अथवा उसके शीघ्र ही पीछे हुआ अर्थात् संवत पर्व अथवा संवत पहिली शताब्दी में।

२४वां अध्याय ।

शक, आंध्र तथा कुशान काल

(सम्वत् २९ से ३७७ तथा ४५८ पर्य्यन्त) ।

अबतक भारतीय इतिहास का मूलाधार बहुत कर के एक ही राज वंश रहा था और अन्य राज्यों का वर्णन प्रायः उसीके सम्बन्ध में होता था । इस काल में यह बात बदल गई और हम आंध्र तथा कुशनों को प्रायः साथ ही साथ भिन्न भिन्न देशों में महत्त्वापूर्ण पाते हैं । इनके अतिरिक्त मालवा और सौराष्ट्र के शक राज्य में भी कुछ प्राधान्य पाया जाता है, किन्तु इसकी महत्ता उन दोनों से कम है । कई इतिहास ग्रंथों में इस काल का वर्णन कुछ गड़बड़ाया हुआ मिलता है । इस लिए सरलता के विचार से हम इन तीनों राज्यों का कथन पृथक पृथक करते हैं जिसमें यह सुगमता पूर्वक समझ में आ सके । सब से पहिले मालवीय शकों का कथन होता है ।

शकों के भारतागमन का मूल कारण और उनका भारतीय फैलाव ऊपर आ चुका है । अब यहां हम उनके मालवीय तथा सौराष्ट्रीय सम्बन्ध ही को उठाते है । सम्वत् पूर्व ९६ में हम देख आये हैं कि मिनैण्डर ने सौराष्ट्र पर अधिकार जमाया था । यद्यपि पुष्पमित्र ने उससे भारतीय प्रान्तों को छीन लिया, तथापि इस काल के कुछ पीछे तक यूनानी सिक्के सौराष्ट्र में चलते रहे । इससे समझ पड़ता है कि मिनैण्डर

के अधिकार का कुछ अवशिष्टांश सं० पू० १६ के पीछे भी कुछ दिनों तक रहा। सं० पू० १५ में जब शुङ्ग राज्य समाप्त हो गया तब भूमक शक ने सौराष्ट्र पर प्रायः उसी वर्ष अधिकार जमाया। यह अपने को क्षत्रप अथवा सट्रेप कहता था। इसके कितने उत्तराधिकारियों ने सौराष्ट्र पर शासन किया सो ज्ञात नहीं है किन्तु इतना निश्चित है कि सम्वत् १८३ में इसके उत्तराधिकारी शक क्षत्रप नहापा ने अपने राज्य को आंध्रो की सीमा में फैलाने का प्रयत्न किया। यह अपने को क्षत्रप, महाक्षत्रप तथा राजा कहता था। इसके राज्य में सौराष्ट्र के अतिरिक्त पूर्वी राजपूताना से नाशिक और पूना पर्य्यन्त देश सम्मिलित था। नहापा की यह धृष्टता देखकर आंध्र नरेश गौतमी पुत्र उपनाम विलिवापहुर ने एक प्रचंड सेना द्वारा उसे पराजित कर के सौराष्ट्र पर भी अधिकार जमाया। नहापा के नाम का एक सिक्का सम्वत् १२७ का मिला है, जिससे जान पड़ता है कि इसका राजत्वकाल बहुत लम्बा था। गौतमी पुत्र के विजय से यह शक वंश राज्य पद से भ्रष्ट होगया, किन्तु आंध्र नरेश ने सौराष्ट्र का स्वयं शासन न करके चष्टन नामक एकशक को ही अपना राज-प्रतिनिधि बनाकर वहां का शासक बनाया। चष्टन का पुत्र जयदामन शासक न हुआ किन्तु इसके पुत्र रुद्रदामन ने पितामह के पीछे वाइसराय (राज्य प्रतिनिधि) नियत हो कर सम्वत् २०२ में अपने को आंध्रों से स्वतंत्र कर लिया और राना महाक्षत्रप की उपाधि धारण की। तत्कालीन आंध्र नरेश वशिष्ठी पुत्र श्रीपुलुमाई रुद्रदामन का दामाद था। फिर भी रुद्रदामन ने उसे पूर्ण पराजय देकर वे देश छीन लिए जिनपर किसी समय कोई शक वाइसराय अथवा

शासक था। रुद्रदामन ने सम्बन्ध के विचार से पुलुमाई का निजी राज्य न छुआ। इस भांति रुद्रदामन मालवा, सौराष्ट्र और पश्चिमीय घाट से समुद्रतट के देश का शासक हो गया। रुद्रदामन के उत्तराधिकारी इन प्रान्तों पर मोटे प्रकार से सम्वत् ४४७ पर्य्यन्त राज्य करते रहे। रुद्रदामन के समय में चन्द्रगुप्त की बनाई हुई सुदर्शन झील सम्वत् २०७ में एक प्रचंड आंधी से फूट गई। उसका पेंदा तक जल शून्य हो गया। यह देख रुद्रदामन ने प्रचुर धन व्यय द्वारा उसको फिर बनवाया। इस घटना के स्मरणार्थ शक नरेश ने जूनागढ़ के अशोक वाले लेखके नीचे संस्कृत भाषा की २० पंक्तियों द्वारा इसका वर्णन खुदवाया। इसमें आपकी बड़ी प्रशंसा लिखी है और यह भी लिखा है कि गो ब्राह्मण के हितार्थ आपने बहुत सा कर क्षमा कर दिया था। पुराने क्षत्रप क्षहरात नहापा के दामाद ऊषाव-दात थे। नाशिक का शिला लेख कहता है कि इन्होंने ३००००० गो दान दिये, बारणासाया नदी पर सीढ़ियां बनवाईं, १६ गांव देवताओं और ब्राह्मणों को दिये, १००००० ब्राह्मणों को हर वर्ष भोजन कराया, ८ ब्राह्मणों का विवाह कराया, सड़कों पर प्याऊ स्थापित किये और विश्राम स्थल बनवाये, कुएं और तालाब खुदावाये, नानमगोल में चारणों और ब्राह्मणों की परिषदों के लिए भूमि दान द्वारा व्यय स्थिर किया और पुष्करणी नदी में स्नान कर के एक गांव और ३००० गो ब्राह्मणों को दीं। इससे प्रगट है कि नहापा के समय में ही शकों ने हिन्दू सभ्यता ग्रहण कर ली थी। इन कथनों तथा संस्कृत के लेख से स्पष्ट है कि इन विदेशी शकों ने भारतीय सभ्यता को बहुत शीघ्रता से ग्रहण कर लिया। शक नरेशों की नामावली सिक्कों, शिलालेखों आदि

की सहायता से बनाई गई है सम्वत् १९७१ में सर्वनिया नामक स्थान में प्राचीन सिक्कों का एक समूह भाग्यवश साथ ही साथ मिल गया। उससे इन लोगों के समयों का ज्ञान बहुत बढ़ा है। इनकी ज्ञात नामावली हम नीचे देवेंगे। इतना ध्यान रखना चाहिये कि सौराष्ट्रीय शकों की दो शाखायें थीं। पहिली का पूर्व पुरुष भूमक था और दूसरी का चष्टन। भूमक वाला वंश नहापा तक चला। चष्टन उसी वंश का था अथवा किसी अन्य का, सो ज्ञात नहीं है। इतना प्रकट है कि आंध्र नरेश ने नहापा को राज्यच्युत कर के प्सामोतिक के पुत्र चष्टन को अपना प्रतिनिधि बनाया था। इन क्षत्रपों के नामों के सम्मुख कोष्टकों में इनके विषय में ज्ञात संवत् लिख दिये जावेंगे।

वंशावली।

क्षामोतिक, महाक्षत्रप चष्टन (सं० १८२), महाक्षत्रप रुद्रसेन प्रथम (१९२, १९६, १९९), महाक्षत्रप संघदामन (२०१), महाक्षत्रप दामसेन (२०७, २०९, २११, २१२, २१४), क्षत्रप दामजद श्री द्वितीय (२१२), क्षत्रप वीरदामन (२१५, २१६, २१७), क्षत्रप यशोदामन (२१७), महाक्षत्रप यशोदामन (२१७), क्षत्रप विजयसेन (२१७, २१८), महाक्षत्रप विजय सेन (२१८, २१९, २२०, २२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९), महाक्षत्रप दामजद श्री तीसरे (२२९ २३०, २३१, २३२, २३३. २३४), महाक्षत्रप रुद्रसेन द्वितीय (२३५, २३६, २३७, २३८, २३९, २४१, २४२, २४३, २४४, २४५, २४६, २४७. २४८, २५१), क्षात्रप विश्वसिंह (२५४, २५५, २५६, २५७), महाक्षात्रप विश्वसिंह (२५७), क्षत्रप भर्तृदामन (२५७, २५८, २५९, २६१), महाक्षत्रप भर्तृदामन (२६१, २६२,

२६३, २६४, २६६, २६७, २६८, २६९, २७०, २७१, २७२, २७४), क्षत्रप विश्वसेन (२६३, २७२, २७३, २७४, २७६, २७७, २७८, २७९, २८०, २८१, २८२, २८३), रुद्रसिंह द्वितीय (२८३, २८४, २८५, २८६, २८७, २८८, २८९, २९१, २९२, २९३, २९४, २९५), यशोदामन दूसरे (२९५, २९६, २९७, २९८, २९९, ३००, ३०१, ३०२, ३०४, ३११), महाक्षत्रप रुद्रसेन तीसरे (३२७, ३२९, ३३०)। पुरातत्व विभाग द्वारा दृढ़ की हुई इन क्षत्रपों की वंशावली भी अब यहां लिखी जाती है। ण्सामोतिक के पुत्र महाक्षत्रप चष्टन हुए, जिनके पुत्र जयदामन क्षत्रप और तत्पुत्र रुद्रदामन महाक्षत्रप हुए। आपका समय सं० १८७ से २०७ तक है। दामदसद पहले क्षत्रप तथा महाक्षत्रप एवं रुद्रसिंह पहले, (क्षत्रप २३७, २४५, से २४७, तक, महाक्षत्रप २३८ से २४४ तक, २४८ से २५३ तक), रुद्रदामन के पुत्र थे। दामदसद के सत्यदामन क्षत्रप तथा जीवदामन महाक्षत्रप (२५४, २५५) पुत्र हुए। प्रथम रुद्रसिंह के रुद्रसेन (क्षत्रप २५६, २५७, महाक्षत्रप २५७ से २७९ तक), सन्धदामन (महाक्षत्रप २७९, २८०) और दामसेन (महाक्षत्रप २८० से २९५ तक) बेटे हुए। रुद्रसेन के पृथ्वीसिंह (क्षत्रप २७९) तथा दामजद श्री दूसरे (क्षत्रप २८९ और २९०) पुत्र थे। दामसेन के, वीर दामन (क्षत्रप २९१ से २९५ तक), यशोदामन (क्षत्रप २९५, महाक्षत्रप २९५, २९६), विजयसेन (क्षत्रप २९५, २९६, महाक्षत्रप २९६ से ३०७ तक) और दामजद श्री तीसरे (महाक्षत्रप ३०७ से ३१२) नामक चार पुत्र हुए। वीरदामन के रुद्रसेन दूसरे (महाक्षत्रप ३१२ से ३३५ तक) पुत्र थे, जिनके विश्वसिंह (क्षत्रप ३३२ से ३३५ तक और महाक्षत्रप ३३५), भर्तृदामन (क्षत्रप ३३५ से ३३९ तक और महाक्षत्रप ३३९ से

३५२ तक) बेटे थे। भर्तृदामन के पुत्र विश्वसेन (क्षत्रप ३५० से ३६१ तक) हुए। रुद्रदामन दूसरे महाक्षत्रप थे किन्तु इनका इतरों से सम्बन्ध ज्ञात नहीं है। इनके एक कन्या तथा रुद्रसेन तृतीय (महाक्षत्रप ४०५ से ४३५ तक) पुत्र हुए। कन्या का पुत्र सिंहसेन ४३६ में महाक्षत्रप हुआ, जिसका पुत्र रुद्रसेन चतुर्थ था। किसी सत्यसिंह के पुत्र तीसरे रुद्रसेन का समय ४४५ दिया हुआ है। किसी स्वामी जीवदामन का पुत्र दूसरा रुद्रसिंह ३६१ से ३७२ पर्य्यन्त क्षत्रप रहा। इसका पुत्र यशोदामन दूसरा ३७३ से ३८६ तक क्षत्रप रहा। उपरोक्त समयों के मिलाने से प्रकट होता है कि दो महाक्षत्रपों का समय एक ही कभी न था किन्तु किसी किसी क्षत्रप का समय किसी किसी महाक्षत्रप से मिल जाता है। इससे जान पड़ता है कि बहुत से युवराज महाक्षत्रप होने के पूर्व क्षत्रप कहलाने लगे थे। चष्टन के पूर्व महाक्षत्रप रुद्रसिंह पहले (१५८, १६२, १७१) और क्षत्रप रुद्रसेन पहले (१७८) के नाम और आये हैं। संभव है कि ये भूमक वाले घराने के शासक हों। इन शक क्षत्रपों का राज्य गुप्त महाराज चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने छीन लिया जैसा कि आगे उचित स्थान पर दिखाया जावेगा। रुद्रसेन अथवा रुद्रसिंह अन्तिम शक नरेश था जिसका राज्य चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने सं० ४४५ से लेकर ४५८ तक किसी समय छीन लिया। इसी समय से शक राज्य भारत से सदा के लिए उठ गया।

अब हम आंध्र नरेशों का वर्णन उठाते हैं। इनके राजत्वकाल के विषय में, पुराणों में बड़ा गड़बड़ है, तथा आंध्र नरेशों की संख्या में भी पूरा मत भेद है। वायुपुराण ने १७६ आंध्र नरेश लिखे हैं, जिनका राजत्वकाल २७२½ वर्ष बताया

गया है। मत्स्यपुराण ३० राजाओं का नाम लिखकर उनका राजत्वकाल ४४८½ वर्ष बतलाता है। विष्णुपुराण में २४ नाम हैं और श्रीभागवत में २२। किन्हीं पुराणों में यही राजत्वकाल ४५६ या ४६० वर्ष दिया हुआ है जैसा कि स्मिथ ने लिखा है। इस गड़बड़ का कारण यह समझ पड़ता है कि आंध्र नरेशों की तीन पृथक पृथक दशायें रही हैं। वे कुछ दिन स्वतंत्र रह कर मौर्याधीन हो गये, फिर स्वतंत्र दाक्षिणात्य भूपाल होकर क्रमशः भारतीय नरेश भी हुए। इसी लिए जो ग्रंथ जिस दशा को प्रधानता देता है उसीका राजत्वकाल देता है। अशोक का शरीरान्त १७५ सं० पू० में हुआ। तब से लेकर २९ संवत में काण्व पराभव पर्य्यन्त आंध्र लोग स्वतंत्र दाक्षिणात्य नरेश रहे। अनन्तर सं० २९ से २८२ पर्य्यन्त २५३ वर्ष भारतीय साम्राट रहे। यह दोनों काल जोड़ने से इनका पूरा राजत्वकाल ४५७ वर्ष आता है, जो पौराणिक गणना से मिलता जुलता है। वायुपुराण वाला कथन भी इनके भारतीय साम्राज्य काल से बहुत मिलता है। इस लिए उपरोक्त कथनों में कोई विशेष अंतर नहीं है। यदि इनकी अधीनता तथा उससे भी पहले वाला समय इनके राजत्वकाल में जोड़ दिया जावे तो इस समय में प्रायः १५० वर्ष और बढ़ जायंगे। महर्षि वाल्मीकि ने भी आंध्रों का कथन किया है. किन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया है, उस कथन से यह निश्चय नहीं होता कि उस काल इनका राज्य भी था या नहीं। इन लोगों के वंशनाम भी एकाधिक हैं अर्थात आंध्र, आंध्रभृत्य, शालिवाहन, शातवाहन और शातकर्णी। जो व्यास इनकी मौर्याधीनता का विशेष विचार करते हैं वे अधीनता के कारण इन्हें आंध्र भृत्य

कहते हैं। आंध्र इनकी साधारण संज्ञा है। यही दशा शातवाहन की है। शालिवाहन इसी शब्द से मिलता जुलता होने से इसका अपभ्रंश है। शातकर्णी इनमें से कइयों के नाम थे।

भाण्डारकर महाशय ने शिला लेखों आदि में आंध्रो मे से कृष्णराजा शातकर्णी, गौतमी पुत्र शातकर्णी, वशिष्ठी पुत्र पुलुमाई, गौतमी पुत्र श्रीयज्ञ शातकर्णी, मांढ़री पुत्र शकसेन और शिमुक शातबाहन के नाम पाये हैं। पुराणों में इनके जो नाम लिखे हैं उन सबका यहां दुहराना अनावश्यक समझ पड़ता है, अतएव हम केवल वायुपुराण में दिये हुए नाम लिखते हैं। वे निम्नानुसार हैं:—सिंधुक (सिसुक, सिमुक, सिप्रक), कृष्ण शातकर्णी, अपीलव, पतिमावी, नेमिकृष्ण, हाल, सप्तक (मण्डलक), पुलीकसेन, शातकर्णी (सुन्दर शातकर्णी), चकोर शातकर्णी, शिवस्वाति, गौतमी पुत्र यज्ञश्री शातकर्णी, विजय, दण्डश्री शातकर्णी (चंडश्री शातकर्णी), पुलुमावी। स्मिथ महाशय ने पार्जिटर के आधार पर इससे कुछ पृथक नामावली दी है। उसमें १२ नाम हैं जिनमें से शिवश्री पुलुमावी, शिव स्कंध शातकर्णी, पुलुमावी चौथे, उपरोक्त नामावली से पृथक हैं। भाण्डारकर महाशय का मत है कि काणव नरेशों का राजत्वकाल शुंगो से पृथक न था वरन् पेशवाओ की भांति वे शुंगों के अन्तिमकाल मे ही उन्हें गद्दी से न उतार वास्तवि शासक बन गये थे। इसका आधारस्वरूप वे वायु और मत्स्यपुराण का यह कथन देते हैं कि आंध्र सिंधुक ने न केवल काण्वों का वरन् शुंगो का भी रहा सहा अधिकार उखाड़ दिया। आप लिखते हैं कि इन कारणों से आंध्रों का भार-

तीय साम्राज्य १६ संवत पूर्व से ही आरम्भ हो गया था। ये विचार ग्राह्य नहीं समझ पड़ते क्योंकि इनसे शुंगों और काण्वों के राजत्वकाल विषयक अन्य कथन टक्कर नहीं खाते। जान पड़ता है कि काण्वकाल में भी कुछ शुंग वंशियों का यत्र तत्र थोड़ा अधिकार अवशिष्ट रह गया था जिसे शिमुक ने उखाड़ दिया। स्मिथ महाशय का मत है कि अन्तिम काण्व महाराज सुशर्मन का मारने वाला शिमुक नहीं हो सकता था, क्योंकि पुराणों में वह आंध्रवंशी पहिला राजा माना गया है। ऐसी दशा में उसका समय अशोक के अन्तिम काल अर्थात् १७५ सं० पू० के लगभग पड़ता है। हमारी समझ में जब पुराण प्रकट रूप से काण्वों का जीतने वाला शिमुक बतलाते हैं तब इसमें सन्देह करना अनावश्यक है। समझ यह पड़ता है कि पुराणों में आंध्र वंशी सम्राटों की नामावली दी है, न कि माण्डलिक आंध्र नरेशों की। इस मत को मान लेने से वायुपुराण में कथित आंध्र साम्राज्य काल भी बहुत कुछ ठीक बैठ जाता है और प्रति नरेश का राजत्वकाल भी असंगत नहीं ठहरता। मत्स्यपुराण कार ने ४४८½ वर्ष राजत्वकाल मानने के कारण जान पड़ता है कि राज्य संख्या निराधार बढ़ा दी है और फिर भी शिमुक को ही पहिला राजा कहा है।

महाराजा चन्द्रगुप्त के समय भी आंध्रों की सेना भारी थी जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। उस काल इनकी राजधानी श्रीकाकुलम थी। बिन्दुसार ने इन्हें मौर्यों के अधीन कर दिया किन्तु अशोक के पीछे ये फिर स्वतंत्र हो गये। कुछ वर्षों के पीछे किसी आंध्र नरेश श्रीशातकर्णी का कलिंग पति खारवेला ने सामना किया। उपरोक्त नामाव-

लियों में श्रीशातकर्णी का नाम नहीं आता जिससे प्रकट है कि उसका समय शिमुक के पहिले का था। इस बात से स्मिथ महाशय के प्रतिकूल हमारे उपरोक्त मत को पुष्टि मिलती है। इसके पीछे आंध्रों का माण्डलिक राज्य संबन्धी कोई विशेष विवरण नहीं मिलता जब तक कि २६ सं० में उन्होंने सुशर्मा को मार कर उत्तरीय भारत के वृहदंश पर भी अधिकार जमाया। इन्होंने उत्तरीय भारत के वास्तविक कितने भाग पर अधिकार पाया तथा कितने पर कब तक उसे स्थिर रक्खा इसका निश्चय नहीं है। सं० १२५ में दस हज़ार यहूदी लोग कुटुम्ब समेत पैलेस्टाइन से उजड़ कर मलाबार प्रान्त में बस गये। सं० १४० में शिवभूति उपनाम सहस्र मल्ल के प्रान्तों से दिगंबर जन संप्रदाय निकला। आंध्रों में हाल नरेश प्राकृत भाषा के बड़े परिपोषक माने गये हैं। आप की रची हुई सप्तशती की बाणभट्ट ने बड़ी प्रशंसा की है। महाराजा हाल विक्रमीय दूसरी शताब्दी के इधर उधर हुआ है। इससे सम्बन्ध रखने वाली पुस्तक "गाथा सप्तशती" में लिखा है कि इसके पूर्व विक्रम नाम का प्रसिद्ध राजा हुआ था। यह बात पँवार महाराज विक्रमादित्य के अस्तित्व सम्बन्धी विचारों को पुष्ट करती है। कहते हैं कि पैशाची भाषा में गुणाढ्य ने एक वृहत्कथा लिखी थी। यह पैशाची ग्रन्थ मसि के स्थान पर रक्त से लिखा हुआ कहा गया है। गुणाढ्य सातवाहन महाराज के मंत्री थे। इस वृहत्कथा से कथा सरित्सागर के रचयिता सोमदेव तथा अन्य वृहत्कथा कार क्षेमेन्द्र ने कथाओं की सहायता ली है। कहते हैं कि गुणाढ्य कृत ग्रन्थ के ६ भाग लुप्त हो गये और केवल सातवां बचा। अन्य आन्ध्र नरेशों के विषय में भी प्राकृत ग्रन्थों के

नाम लिये जाते हैं। संवत २१७ के बौद्ध नागार्जुन का किसी शातवाहन राजा ने पालन किया था।

शकों के वर्णन में ऊपर कहा जा चुका है कि आंध्र नरेश गौतमी पुत्र ने नहापा को पराजित करके १८१ सम्वत के निकट सौराष्ट्र छीन लिया और चष्टन को राज प्रतिनिधि बनाया। शिला लेखों में लिखा है कि गौतमी पुत्र ने शक पहलव आदि जाति हीन विदेशियों को भारत से निकाल दिया और चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था स्थापित की। इस काल आपने ब्राह्मणों और बौद्धों को बहुत सा दान दिया। यद्यपि आंध्र नरेश ब्राह्मणों को मानने वाले हिन्दू थे, तथापि वे दान विशेषतया बौद्धों को देते थे। यह भी आश्चर्य की बात है कि गौतमी पुत्र ने जिन शकों को जातिहीन बतलाया, उन्हीं की कन्या के साथ इनके पुत्र का विवाह हुआ। थोड़े ही दिनों में शकों ने रुद्रदामन के आधिपत्य में आंध्रों को पूरी पराजय दी जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। वशिष्ठी पुत्र श्रीपुलुमाई का राज्यारंभ लगभग सं० १८२ के और शरीरान्त संवत २१२ के हुआ। इसके पीछे यज्ञश्री संवत २३० के लगभग प्रतापी राजा हुआ। इसने अपने २६ वर्ष के राजत्वकाल में शकों का पराजित कर के उनके द्वारा जीते हुए अपने कुछ प्रान्त वापस कर लिये। यज्ञश्री के कुछ सिक्कों में जहाज़ भी खुदा हुआ है जिससे जान पड़ता है कि संभवतः जल सेना द्वारा इन्होंने बाह्य प्रदेशों पर भी आतंक जमाया हो। आंध्र नरेश विजयचन्द्र श्री और चौथे पुलुमाई के भी कुछ सिक्के मिलते हैं। अंतिम नरेश यज्ञश्री ने किस प्रकार शासनाधिकार खो दिया सो ज्ञात नहीं है। २५० संवत से सो सवा सौ वर्ष का भारतीय इतिहास नितान्त अन्धकाराछन्न है। बड़ी बड़ी घटनाओं

तक का भी इस काल कुछ पता नहीं लगता है। इतना ज्ञात है कि आंध्र घराने के कई वंशधरों ने दक्षिण के प्रान्तों में कई छोटे छोटे राज्य जमाये। आंध्र पराभव संवत २८२ के लगभग हुआ।

आंध्रों के समय में बौद्ध मत उन्नति पर था। यवन, शक, पल्लव आदि ने इसी मत को ग्रहण किया। बहुत से मठ बने और गुफायें खोदी गईं। ब्राह्मणों का भी अच्छा मान था जैसा कि गौतमी पुत्र ऊषावदात, और रुद्रदामन के वर्णनों में देखा जा चुका है। धर्म सम्बन्धी विभ्राड देखने में नहीं आता। व्यापार की दशा अच्छी थी। पाश्चात्य प्रदेशों से जहाज़ भरोच को आते थे और पैठन आदि का माल ले जाते थे। व्याज का प्रमाण ५ सैकड़ा से ७½ तक सालाना था जैसा कि नाशिक के शिला लेखों से प्रकट है। सूद की इस कमी से प्रकट होता है कि देश में उस काल शांति की दशा अच्छी थी और न्यायालय अपना काम योग्यता पूर्वक करते थे जिससे लोगों को ऋण में दिये हुए धन की हानि का खटका नहीं था। व्यापारियों की समितियां और ग्रामीणों की पंचायतें अच्छा काम करती थीं। नाशिक के शिला लेख में एक निगम सभा (ग्राम पंचायती कमेटी) का कथन ऊषावदात ने किया है जिससे तत्कालीन उन्नति का परिचय मिलता है। उस काल दक्षिण में पैठन, तगर, नाशिक, जुनार अथवा जीर्ण नगर, नवनार, कारली, करहाटक (वर्त्तमान करहाद), कोल्हापूर आदि प्रसिद्ध नगर थे।

शकों के नाम पर एक शक सम्वत प्रचलित है जिसे शालिवाहनीय संवत अथवा शाके भी कहते हैं। यह ईस्वी से ७८ और सम्वत से १३५ वर्ष पीछे है। इसके नामों से

प्रकट होता है कि समय के साथ शाके सम्बन्धी विचारों में बड़ा गड़बड़ हो गया है क्योंकि यह साथ ही शकों और आंध्रों का सम्वत कहलाता है जो एक दूसरे के विरोधी थे। हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण में लिखा है कि शालि-वाहन शब्द शातवाहन का अपभ्रंश है। विक्रमीय ११हवीं शताब्दी पर्यंत यह शक नृपकाल अथवा शककाल कहलाता रहा और एक वादामीय शिला लेख में भी यह शक सम्वत कहा गया है। संभव है कि नहापा ने इसे चलाया हो क्योंकि यह उसी के राज्यारम्भ काल का समझ पड़ता है। शालिवाहन राजाओं का इससे कोई सम्बन्ध न था। कहते हैं कि उज्जैन के प्रसिद्ध महाराज विक्रमादित्य को शालिवाहन ने जीत कर यह शक सम्वत चलाया था। यह दोनों बातें अशुद्ध हैं। न तो शक सम्वत शालिवाहनों का चलाया हुआ है और न इसके चलने के समय विक्रम अथवा किसी पँवार का राज्य मालवा मे था। स्मिथ महाशय ने लिखा है कि नहापा का राज्यारंभ काल सम्वत ११७ से १४७ के बीच में कोई समय था। इससे यह काल उसी के समय मे पड़ता है। नहापा द्वारा १३५ सम्वत मे मालवा जीता जाना ज्ञात इतिहास के अनुसार असंभव नहीं है, किन्तु इसका कथन कहीं नहीं हुआ है। कुशान सम्राट कनिष्क का राज्यारंभ शकाब्दारंभ से ही हुआ है। अतएव इसका उस नरेश से भी सम्बन्ध हो सकता है। जैसलमेर के इतिहास में लिखा है कि यादव नरेश शालि-वाहन ने सं० १३५ में यह शकाब्द स्थापित किया तथा सियालकोट नगर बसाया।

अब कुशानों का वर्णन लिखना शेष है। इनका मूल जानने के लिए हमें मध्य एशियाई और चीनी इतिहास की ओर

भी दृष्टि डालनी पड़ी थी, जैसा कि, गत अध्याय के अन्त में दिखाया जा चुका है। वहीं हम देख आये हैं कि सं० ५० के लगभग यूएची लोगों की ५, स्वतंत्र रियासतें आक्सस नदी के दोनों किनारों पर स्थापित थीं। इनमें के एक का नाम कुशन था। इनके स्वामी प्रथम कडफ़ाइसेस ने सम्वत ७२ के लगभग शेष चारों राज्यों को भी पराजित करके पूर्ण यूएची जाति का स्वामित्व पाया। गत अध्याय में कहा जा चुका है कि इस काल इन लोगों की संख्या बहुत बढ़ चुकी थी। इस लिए कडफ़ाइसेस को हिन्दूकुश पार करना पड़ा। इसनें पूर्व को ओर आकर कीपिन (कश्मीर या काफ़िरस्तान) और काबुल स्ववश कर लिये और बेक्ट्रिया पर अपना अधिकार दृढ़ रखते हुए पार्थिया पर भी आक्रमण किया। इस प्रकार जिन लोगों के भारतीय क्षत्रप अधीन समझे जाते थे उनका राज्य इसी काल नष्ट हो गया। कडफ़ाइसेस के अधिकार में इस समय प्रायः समस्त अफ़ग़ानिस्तान आ गया। इसका समय सम्वत ८७ के लगभग समझना चाहिये। सं० ८२ के लग-भग गंड़ोफ़रेस ने अफ़ग़ानिस्तान और उत्तरी भारत के कुछ अंश पर पार्थिया वालों का शासन स्थापित किया। संवत १०२ के लगभग ८० वर्ष की अवस्था में प्रथम कडफ़ाइसेस का शरीर छूटा और इसका बेटा द्वितीय कडफ़ाइसेस वेमो गद्दी पर बैठा। इसने अफ़ग़ानिस्तान और पंजाब को भी जीत कर प्रायः बनारस पर्य्यन्त अपना अधिकार जमाया। इस काल प्राचीन फ़ारसी राज्य का कुछ अधिकार सिंध में शेष रह गया किन्तु रहा सहा पंजाबी अधिकार लुप्त हो गया। कुशन विजयों से भारतीय व्यापार की धारा थल मार्ग से भी पश्चिम की ओर बहने लगी और यहां का माल रोम राज्य में भी

पहुंचने लगा और वहां की सुवर्ण मुद्राओं का प्रचार भारत में होने लगा। द्वितीय कडफ़ाइसेस ने भी बहुतायत से सुवर्ण मुद्रायें ढलवाईं। इस काल जल मार्ग से दक्षिण का भी रोम राज्य से बड़ा व्यापारिक संबन्ध था। कडफ़ाइसेस द्वितीय का शासन काल संवत १३५ पर्य्यन्त रहा। इसी वर्ष वाभ्केष्क अथवा वाभेष्प का पुत्र कनिष्क कुशन गद्दी पर बैठा। इसका द्वितीय कडफ़ाइसेस से क्या संबंध था सो ज्ञात नहीं है। इन दोनों का वंश एक ही था और संभवतः कनिष्क द्वितीय कडफ़ाइसेस का भतीजा अथवा पौत्र था। यह एक विचित्र संयोग है कि कनिष्क ही के गद्दी पर बैठनेवाले साल से शक सम्वत का प्रारंभ होता है। अब तक्षशिला और मथुरा के शक राज्य ध्वस्त हो चुके थे। कनिष्क का समय कुछ संशयाकीर्ण है। इस विषय पर पुरातत्व विभाग के पदाधिकारी रखालदास बैनर्जी महाशय ने एक उपयोगी लेख लिख कर ऐतिहासिकों को बाधित किया है। स्मिथ महाशय ने लिखा है कि आपने कनिष्क का वर्णन इसी लेख के आधार पर किया है।

इस काल चीन राज्य के सेनापति पंचाऊ ने चीनी शक्ति की अच्छी उन्नति की और विजयों पर विजय प्राप्त करता हुआ समय पर वह रोम राज्य की सीमा पर्य्यन्त पहुंच गया। महाराज कनिष्क अपने को चीनी सम्राट् के बराबर समझते थे। इसलिए सम्वत १४७ में आपने पचाऊ से कहला भेजा कि चीनी सम्राट् इनके साथ अपनी कन्या का विवाह करें। इस संदेशे को चीन का अपमान सूचक मान कर पंचाऊ ने कनिष्क के दूत को पकड़ कर चीन भेज दिया। इससे क्रुद्ध होकर कनिष्क ने अपने राजप्रतिनिधि सो को अध्य

क्षता में ७०००० घुडसवारों का एक प्रचंड दल चीन विजयार्थ भेजा । इस दल का मार्ग दुर्गम पहाडों के ऊपर से था, जिन्हें पार करने में इन्हें भारी हानि पहुंची और जब ये घाटी के नीचे चीन में उतरे तब पंचाऊ ने बडी सुगमता पूर्वक इनको पराजित कर दिया । विवश होकर कनिष्क ने चीन को कर देना भी स्वीकृत किया । फिर भी आपका निजी राज्य दृढ़ रहा और भारतीय प्रान्तों पर भी शासन शिथिल न होने पाया । कनिष्क का राज्य विंध्याचल पर्य्यन्त देश पर था और उत्तर में वह पामीर के आगे तक फैलता चला गया था । सिन्ध देश भी इसने अपने राज्य में मिला लिया । यदि इस काल फ़ारसियों का कोई अधिकार वहा शेष होगा तो वह नष्ट हो गया होगा । कनिष्क ने १५६ सं० में रोमन सम्राट ट्रजन के पास दूत के हाथ पटौनी भेजी थी । कडफ़ाइसेस द्वितीय भारतीय प्रान्तों का शासन सेनापतियों द्वारा करता था । संभवतः कनिष्क की भारतीय शासन प्रणाली भी ऐसी ही रही हो । आपने काश्मीर पर पूरा अधिकार जमाया । यह देश आपको बहुत पसंद था । आपने यहां कई चैत्य बनवाये और कनिष्कपुर नामक एक शहर भी बसाया । उसे अब कानिसपूर कहते हैं । कहते हैं कि आपने पाटलिपुत्र पर आक्रमण करके वहां के किसी राजा को भी पराजित किया । वहां से अश्वघोष नामक बौद्ध संत को आप अपने साथ ले गये थे । कुछ लोगों का विचार है कि सौराष्ट्र के क्षत्रप लोग भी कनिष्क के अधीन थे । इस ध्यान का कोई भी प्रमाण नहीं है । कनिष्क की राजधानी पेशावर (पुरुषपुर) में थी । वहाँ आपने बौद्ध हो जाने पर ४०० फुट ऊँचा मीनार बनवाया । यह ऐसा सुन्दर चैत्य

था कि इसकी गणना संसार के आश्चर्यों में की जा सकती थी। कई शताब्दियों में यह चैत्य कई बार शत्रुओं द्वारा जलाया गया और सुप्रबन्धकों द्वारा फिर से बनाया गया। स्मिथ का मत है कि अन्त में मुसलमानों द्वारा यह ध्वस्त किया गया होगा। जान पड़ता है कि कडफ़ाइसेस ने पर्थिया को नहीं जीता था। वहां के राजा ने कनिष्क पर आक्रमण किया था। सं० १४७ में कनिष्क को चीन से दबकर कर देना स्वीकार करना पड़ा था। अब काश्मीर के भी शासक होने से आपको चीन पर आक्रमण करने की सुविधा हुई। इस काल चीनी प्रसिद्ध सेनापति पंचाऊ भी मर चुका था। यह घटना सं० १५१ के पीछे की है। कनिष्क ने भारी सेना लेकर चीन पर आक्रमण किया और काशगर, यारक़न्द और ख़ोतन नामक तीन चीनी तुर्किस्तान के भारी प्रान्तों पर अधिकार जमाया। यह प्रान्त पामीर के पूर्व और तिब्बत के उत्तर हैं। कहते हैं कि चीन के अधीन एक नरेश के घराने के कुछ राज पुरुष कनिष्क ने शरीर बन्धक की भांति लिए थे। यह लोग पूर्वी पञ्जाब में रक्खे गये जहां इन्होंने नाशपाती और शफ़ताळू का प्रचार किया।

समय पर महाराजा कनिष्क ने बौद्ध मत पर श्रद्धा की। यह मत महायान संप्रदाय का था। आपने अशोक की भांति पूर्ण उत्साह के साथ इस मत का प्रचार किया। राजकीय विभव में भी कनिष्क अशोक से कम न थे, क्योंकि यद्यपि इनका भारतीय साम्राज्य उनके बराबर न था तथापि बाहिरी प्रान्त इनके शासन में बहुत अधिक थे। ये दोनों महाराज प्राचीन भारतीय इतिहास में उचित ही बहुत प्रसिद्ध हैं। महाराज कनिष्क अवकाश के समय नित्य प्रति

पार्श्व नामक बौद्ध भिक्षु से धार्मिक ग्रंथ पढ़ते थे। आपके राज्यारंभ में ही चांगली के राजत्व काल में (सं० १३२ से १४१ पर्य्यन्त) चू राज्य का स्वामी बौद्ध हो गया। इसके १८० वर्ष पीछे पार्थिया से एक बौद्ध संत गया जिसने बौद्ध सूत्रों का अनुवाद चीन में किया। अनन्तर सं० २२५ के लग भग भारत से भी संत लोग पहुंचे जिन्होंने चीन में धर्म फैलाया। सं० २२४ में काश्यप उपनाम काश्य मातंग बौद्ध मत फैलाने को चीनी महाराज मिंगटी की इच्छानुसार वहां गया था। इसने कई बौद्ध सूत्रों का चीनी में अनुवाद किया था। कोरिया में बौद्ध मत का प्रचार सं० ४२६ में हुआ। प्रचलित बौद्ध सिद्धान्तों में प्रतिकूलतायें बहुत अधिकता से पाकर कनिष्क ने अपने गुरू से कहा कि एक प्रतिष्ठित सभा द्वारा उचित सिद्धान्तों का दृढ़ निश्चय हो जाना चाहिये। पार्श्व ने इस बात को बड़ी प्रसन्नता पूर्वक मान लिया और काश्मीर की राजधानी के निकट कुंडलवन मठ में ५०० सभ्यों की एक महती बौद्ध सभा हुई। स्मिथ ने इसका समय सम्वत् १५७ माना है। इसके सभापति वसुमित्र और उपसभापति अश्वघोष हुए। इसमें त्रिरत्न पर भारी टीकायें रची गईं और महा विभाष ग्रन्थ भी बना। इसका चीनी अनुवाद अब भी प्रस्तुत है। कहा जाता है कि बौद्ध दर्शनों का यह एक प्रकार का विश्वकोश है। महायान का त्रिपिटक भी इसी सभा में निश्चित हुआ। इस सभा की सब कार्य्यवाही संस्कृत भाषा में हुई। अन्त में सब टीकायें ताम्र पत्रों पर लिखी गईं जो वहीं पर कनिष्क द्वारा बनाये हुए एक स्तूप में रक्खी गईं। यह चैत्य श्रीनगर के निकट था। अब इसका पता नहीं है। सभा समाप्त होने पर

पुष्पपुर जाने के पूर्व कनिष्क ने भी अशोक की भांति काश्मीर राज्य को दान देकर बौद्ध मठ पर चढ़ा दिया। महाराजा कनिष्क का शरीरान्त सं० १८० के लगभग हुआ। कहते हैं कि माथर नामक आपका एक मंत्री बड़ा बुद्धिमान था। उसके मंत्रानुसार आपने दूर देशों तक मे विजयार्थ यात्रायें कीं। एक दिन महाराज का शरीर बहुत अस्वस्थ था और सेना के लोग बाहर रहते रहते आपकी विजय लालसाओं से बहुत खिन्न हो गये थे। इसलिए कुछ लोगों ने कुमंत्र करके आपके शरीर को लिहाफ़ से उढा दिया और फिर एक मनुष्य आपके ऊपर चढ़ बैठा, जिससे महाराज का शरीरान्त हो गया। यद्यपि महाराज कनिष्क भारतीय पुरुष न होकर तुर्क थे, तथापि किसी प्रकार की आना कानी न करके आपने भारतीय उचित सिद्धान्तों को मुक्त कंठ से स्वीकृत किया और अपनी भाषा को भुला कर संस्कृत का मान किया। आपका कोई भी व्यवहार ऐसा न था जिससे आप विजातीय महाराज समझ पड़ते। आपकी उदारता मुक्त कंठ से सराहनीय है।

महाराजा कनिष्क के पीछे आपके पुत्र हुविष्क गद्दी पर बैठे। कनिष्क पुत्र वशिष्क का भी मथुरा में कुछ शासन काल पाया जाता है जो कनिष्क ही के राजत्वकाल में पड़ता है। यही दशा हुविष्क की भी है। जान पड़ता है कि अपने पिता के राजत्वकाल में ये दोनों समय समय पर मथुरा के राजप्रतिनिधि रहे होंगे। हुविष्क के शासन में काबुल, काश्मीर और मथुरा अवश्य ही थे। आपने मथुरा में अपने नाम पर एक भारी बौद्ध मठ बनवाया था। काश्मीर में आपने हुष्कपूर नामक शहर भी बसाया था। इसे अब

उश्कूर कहते हैं । कनिष्क की भांति हुविष्क भी यूनानी, भारतीय और फ़ारसी देवताओं को साथ ही साथ मानते थे । कुशन काल में प्रतिमा पूजन का विस्तार बहुत हुआ था । आपकी भी श्रद्धा बौद्ध मत पर अधिक थी । आपका शरीरान्त सं० १६७ के लग भग हुआ । इस १७ वर्ष के राज्य में कुशन बल की किसी प्रकार से कमी नहीं हुई । आपके पीछे आपके पुत्र वसुदेव ने गद्दी पर बैठ कर प्रायः ३८ वर्ष राज्य किया । महाराज वसुदेव बौद्ध न होकर शैव हो गये । सं० २२४ में एक भारी महामारी का प्रकोप हुआ जिसने बैबिलोनिया से उठकर पश्चिम में रोम और पूर्व में फ़ारस पर्य्यन्त इतना प्रचंड जन विनाश किया कि नीबूर के अनुसार प्राचीन संसार इसके पीछे कभी न पनपा । इटली तथा अन्य प्रान्तों में अधिकांश मनुष्य और सैनिक इसके कारण कालकवलित हुए । कहते हैं यह महामारी भारत में अवश्य पहुंची होगी । वसुदेव अन्तिम कुशन महाराज थे जिनका शासन प्रायः समस्त उत्तरी भारत पर था । आपके अंतिम काल में अथवा थोड़े ही पीछे से कुशन तथा आन्ध्र राज्यों के दूरस्थ प्रान्त स्वतंत्र होने लगे । धीरे धीरे २८२ सम्वत् के लग भग यह दोनों साम्राज्य नष्ट हो गये । पुराणों में लिखा है कि आंध्रों के पीछे अभीर, गर्दभिल, यवन, बाल्हीक आदि शासक हुए । पंजाब और काबुल में इसके आगे प्रायः दो शताब्दी पर्य्यन्त कुशनों का शासन रहा, विशेषतया काबुल में । सं० ४८७ में किदाराशाही किटोलो कुशन ने गान्धार में लघु कुशन राज्य स्थापित किया । अनन्तर गोरे हूणों ने वहां भी उनका सं० ५३७ में विध्वंस किया । फिर भी किसी प्रकार ये काबुल में बने रहे

और हूण पराभव के पीछे प्रभाव बढ़ा सके। इन्हें तुरकी शाहिया कहते थे। ये बौद्ध रहे। इनका पतन सं० १०० के लग भग हुआ। सं० ४१७ में बूढ़े कुशन महाराज ग्रुम्बटेज़ ने फ़ारसी नरेश की सहायता की थी और उन्होंने रोमनों को पराजित किया था। उस दल में सीस्तान के शकों ने भी कुशन महाराज का साथ दिया था और इनकी पदवी सर्व श्रेष्ठ थी। सं० २८२ से ३७७ पर्य्यन्त, जबसे कि गुप्त राज्योदय हुआ, भारतीय इतिहास लुप्तप्राय है।

जान पड़ता है कि कुशन और आंध्रों के पराभव का कारण उनकी बलहीनता एवं प्रान्तीय निवासियों की महत्वाकांक्षा थी। धीरे धीरे उन्होंने अपने को स्वतंत्र बना लिया और भारत छोटी छोटी रियासतों में बँटा रहा। इन रियासतों में कोई भी ऐसा निकलता हुआ भूपाल न हुआ जो औरों पर आतंक जमाता अथवा अन्य प्रकार से अपने को इतिहास प्रसिद्ध होने के योग्य बनाता। दक्षिण में आंध्रो के पीछे मालवीय क्षत्रपों ने अपना कुछ अधिकार अवश्य बढ़ाया होगा। इनमें पहला नरेश विजयसेन (या शाह) था जिसका समय सं० २७१ है। इनके अन्तिम राजा विश्वसाह (या सेन) के सिक्के सं० ३४१ व सं० ३५१ के मिलते हैं। पुराणों में लिखा है कि आंध्रों के पीछे दस आमीर नरेशों का राज्य हुआ। वायुपुराण में लिखा है कि आभीरों का शासन काल ६७ वर्ष रहा। इनका अधिकार दक्षिण के एक भागमात्र पर था जो नाशिक और खानदेश की ओर होगा। जान पड़ता है कि आभीरों तथा क्षत्रपों का शासन काल प्रायः साथ ही साथ दक्षिण के भिन्न भिन्न भागों पर रहा। राष्ट्रकूट लोगों का शासन भी दक्षिण में बहुत काल रहा है। भांडारकर

महाशय का मत है कि आंध्रों के समय वे लोग दबे रहे होंगे किन्तु उनके पीछे इनका भी बल बढ़ा होगा । अतः इनका शासन काल आभीरों तथा क्षत्रपों के पीछे से चलता है, किन्तु दो शताब्दियों तक चला आता है । दक्षिण में चालुक्यों ने राष्ट्रकूटों का बल नष्ट किया । आंध्रों के पीछे कनारा और उत्तरी मैसूर में कदम्बों का राज्य प्रायः ३०० वर्ष रहा ।

गुप्त वंश का वर्णन आरम्भ करने के पूर्व ठेट दक्षिण (तामिल देश) का भी कुछ विवरण लिख देना आवश्यक समझ पड़ता है। कृष्णा और तुंगभद्रा नदियों से भी दक्षिण वाले देश को हम ठेट दक्षिण कहते हैं । यह वही प्रान्त है जिस पर अब मैसूर, कोचीन और ट्रवंकोर की रियासतों तथा विज़िगापट्टम और गंजाम छोड़ कर हाता मद्रास का फैलाव है । यह मुख्यतया तामिल देश है। इसकी सभ्यता उत्तर भारतीय सभ्यता से बहुत करके स्वतंत्र थी। पूर्व काल में यहां चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था न थी और पिशाच पूजन का चलन था। कहते हैं कि हिन्दू मत मे काली का विचार इन्हीं लोगों से आया। महर्षि वाल्मीकि ने चोलों और पाण्ड्यों का नाम रामायण में लिखा है। रामायण से प्रकट है कि चोल राज्य वाल्मीक के समय में भी प्रस्तुत था। तामिल साहित्य बड़ा प्राचीन और गौरव पूर्ण है । उसके अनुसार ठेट दक्षिण में तीन रियासतें थी अर्थात पांड्य, चोल और केरल उपनाम सत्यपुत्र। यही रियासतें अशोक के समय में भी प्रस्तुत थीं। प्राचीन तामिल ग्रन्थों के अनुसार पूर्व काल में यहां इन तीन राज्यों के अतिरिक्त प्रायः १२० छोटी छोटी और रियासतें थीं जो सदा एक दूसरी से लड़ा करती थीं। अशोक के समय तीन ही राज्य यहां थे । धीरे धीरे

जैन, बौद्ध और हिन्दू प्रचारकों के प्रयत्नों से यहां का प्राचीन विकराल मत लुप्त हो गया और हिन्दू मत की स्थापना हुई। आज कल तामिल देश के बराबर चातुर्वर्ण्य की कड़ाई और कहीं नहीं है। यह निश्चय करना कठिन है कि जैन, बौद्ध और हिन्दू मतों में से सबसे पहले यहां कौन पहुंचा। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि अशोक के पौत्र संप्रति ने जैन उपदेशकों को भेजकर यहां धर्म प्रचार किया। कहते हैं कि उस काल यहां जैन मत का अच्छा प्रभाव पड़ा। इससे भी पूर्व स्वयं चन्द्रगुप्त ने मैसूर में जैन होकर निवास किया था। उधर महाराज अशोक के समय उनके भाई अथवा पुत्र महेन्द्र और अन्य उपदेशकों ने तामिल देश में बौद्ध मत फैलाया। तामिल देश के आदिम बौद्ध मत ने चातुर्वर्ण्य को न माना किन्तु पीछे से ब्राह्मण प्रभाव विस्तार से बौद्ध लोग चातुर्वर्ण्य भी मानने लगे। मेगस्थनीज़ के समय तामिल में भी शेष भारत की भांति दास प्रथा न थी। साहित्य का अच्छा प्रचार था। मोती, काली मिर्च, और मूंगे का व्यापार यहां से विदेशों को अच्छा होता था। बलशाली यवन लोग तामिल राजाओं के शरीर रक्षक होते थे। ये मूक म्लेच्छ कहे गये हैं जिससे प्रकट होता है कि लोग इनकी भाषा नहीं जानते थे। रोम वालों के दो उपनिवेश इस देश में थे। वाद्य, नाटक, चित्रकारी और पत्थर की खुदाई का काम यहां अच्छा होता था। तामिल साहित्य कालिदास के समय अर्थात सम्वतारंभ के कुछ पूर्व से बड़ी अच्छी दशा में रहा। तामिल के तीन मुख्य राज्यों के फैलाव वर्तमान देशों के अनुसार इस प्रकार हैः—

पाण्ड्य देश मदुरा और तिनेवली ज़िले में था और कभी कभी दक्षिणी ट्रावंकोर में भी फैलता था। चोल राज्य का विस्तार रियासत मैसूर के वृहदंश और मद्रास तथा अन्य पूर्वी जिलों में था। चेर अथवा केरल राज्य कोचिन, ट्रावंकोर और ज़िला मलावार में था। समय समय पर यह सीमायें वहुत कुछ बदलती रहीं। चतुर्थ राज्य पल्लव को तोंडै मंडलम को छोड़ कोई विशिष्ट सीमा न थी। जहां कहीं पाया इन्होंने कुछ काल के लिए अपना राज्य जमाया। पल्लवों की राजधानी कांची थी और पांड्यों की मदुरा।

पांड्य राज्य साधारणतया पांच राज्यों में विभक्त रहता था। इन्हे पंच पांड्य कहा करते थे। इनकी सीमाओं के भेद अज्ञात हैं। कहते कि तीनों रियासतों को बनाने वाले पांड्य, चेर और चोल नामक तीनों भाई कुरुकाई में रहते थे। पांड्यो की राजधानी मदुरा ज़िले में दक्षिणी मदलूर थी। समय पर नदी के रेह जाने से कुरुकाई बन्दर बिगड़ गया और तब उसके स्थान पर व्यापारी केन्द्र कायल नगर हो गया। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कुछ लोगों का विचार है कि द्वारिका के बिगडने पर कुछ यादवों ने दक्षिण जाकर मदुरा को बसाया था। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ सम्बन्धी विजयों मे सहदेव ने पांड्य नरेश को भी जीता था। महा भारत के युद्ध में अश्वत्थामा द्वारा पांड्य नरेश का वध हुआ था। सं० पू० ४२१ के लग भग तत्कालीन लंकापति विजय पांड्य नरेश का दामाद था और उसको वार्षिक भेंटें भी भेजा करता था। पांड्य देश में विक्रमादित्य के प्रायः सौ वर्ष पीछे हज़ारों बौद्ध लोग थे। यह बौद्ध प्रचार लंका के उपदेशकों द्वारा हुआ था। रोम राज्य से दक्षिण का जो

व्यापारिक सम्बन्ध था उसका अधिक माल पांड्य देश से हो जाता था। कुमारी, कोरकाई, कायल और पांवन में मोती बहुतायत से निकाले जाते थे। कहते हैं कि राजा पांड्यन ने सं० ३७ में रोम नरेश आगस्टस सीज़र के पास पठौनी भेजी थी। पांड्यों का अधिक हाल इस अध्याय के समय पर्य्यन्त विशेषतया अज्ञात है।

चोल नरेश का कथन महाभारत में हुआ है कि ये कुरुक्षेत्र के प्रचंड युद्ध में सेनाओं के भोजन का प्रबन्ध करते थे। यही कथन पांड्य और केरल नरेशो के विषय में भी है। पाणिनि ने चोलों का कथन नहीं किया है किन्तु वाल्मीकि, कात्यायन और पतंजलि ने किया है। ऐतिहासिक काल में चोलों की जलसेना बड़ी प्रबल थी। इनके जहाज़ बंगाल की खाड़ी, गंगा, इरावदी (वर्मा की नदी), हिन्द महासागर, मलय द्वीप समूह और मिश्र देश तक जाते थे। महाराजा अशोक के दूसरे और तेरहवें शिला लेख में चोल राज्य का कथन है। उनमें यह राज्य स्वतंत्र माना गया है और यह कहा गया है कि यह लोग बौद्ध सिद्धांतो का आदर करते थे। कपोत के लिए प्राण देने वाले पुराण प्रसिद्ध शिवि नरेश चोल ही थे और कावेरी के पिता कवेर भी चोल थे। इसी कावेरी (नदी) का विवाह चन्द्रवंशी राजा से होना कहा गया है। यह भी लिखा है कि कावेरी का विवाह अगस्त्य ऋषि से हुआ। एक बार कावेरी ऋषि से रुष्ट होकर नदी होकर बह चली। ऋषि के विशेष क्षोभ से इसने कृपा की तथा अर्द्धभाग से नदी बनी रही और शेषार्द्ध से ऋषि पत्नी हुई। संभवतः यह ऋषि कावेरी तट के वासी थे। ऐतिहासिक समय के चोलों में पहले राजा का नाम मनु चोल था। इनके

समय में न्याय चाहनेवालों केलिए एक घंटा टँगा रहता था। इनके यहां इतना न्याय होता था कि स्वयं राजा के पास न्यायार्थ न्यायघंट कभी कोई नहीं बजाता था। एक बार एक गऊ ने उसे बजाया। अनुसन्धान करने पर ज्ञात हुआ कि उसका बछड़ा स्वयम् राजपुत्र के रथ के नीचे दब कर मर गया था। राजा ने राजपुत्र पर रथ चलवाने की आज्ञा दी किन्तु दैवेच्छा से उसका प्राण बच गया। मनु चोल का समय अज्ञात है। इनके पीछे कोच्चेंगणणान का नाम आता है। इनका भी समय अनिश्चित है किन्तु पांचवीं शताब्दी के लगभग हो सकता है। इस समय से पीछे के शैव सन्त ज्ञान सम्बन्ध के समय में इनकी कथायें प्रचलित थीं। कहते हैं कि आपने चेर नरेश इरुमयोरे को कलुमलम पर पराजित किया था। चेर तथा पांड्य नरेश पर आपका आतंक एव अधिकार था। आपने अपने देश में ७० शैव तथा वैष्णव मन्दिर बनवाये। आपकी गणना दक्षिण के ६३ शैव भक्तों में होती है। चोलो में इतिहास प्रसिद्ध पहला भूपाल करकाल था जिसका समय सं० ६०७ था। इनका वर्णन यथा स्थान होगा।

केरल, चेर अथवा केरल पुत्र का भी नाम महाभारत आदि में है। इसका भी पहला ऐतिहासिक वर्णन अशोक के शिला लेखो में है। इस देश से काली मिर्च का निकास होता था और रोम राज्य से व्यापारिक सम्बन्ध इससे भी बहुत था। अरब वाले भी व्यापारार्थ यहां आया जाया करते थे। केरलो के बन्दर मुजीरिस से अनुकूल वायु होने पर अरब तक ४० दिन में यात्रा होती थी। अरबी लोग अपने यहां से आषाढ़ में चलकर केरल देश से माघ में जाते थे।

इसकी राजधानी वंजी, वंची अथवा करूर थी । तिरुवंची पीछे से राजधानी हुई। कंगू देश पहिले केरल देश से पृथक था किन्तु फिर उसमे मिल गया। केरल देश पर मुसलमानों का प्रभाव बहुत कम पड़ा है, विशेषतया दक्षिणी केरल अथवा ट्रावंकोर पर। इस लिए पुरानी से पुरानी हिन्दू रीतियां यहां अब भी प्रचलित हैं। ऐतिहासिकों का मत है कि यह देश एक प्रकार का अजायब घर है जहां प्राचीनतम भारतीय लोगों, मतों, धर्मों, रीतियों और चलनों के सजीव उदाहरण अद्यावधि नवीन उदाहरणों के साथ ही साथ पाये जाते हैं। नवीनता और प्राचीनता का मिलान करके जैसा सुन्दर अध्ययन यहां हो सकता है वैसा भारत में अन्यत्र असम्भव है। केरलों का मुख्य चिन्ह धनुष है जो इनके सिक्कों पर पाया जाता है। सत्यपुत्र राज्य का कथन केवल अशोक के शिला लेखों में है। तामिल इतिहास की सामग्रियां दिनों दिन निकलती आती हैं किन्तु इनपर मनन करके पंडितों को दृढ़ता पूर्वक इस देश के पूर्ण इतिहास लिखने का समय अभी नहीं मिला है।

पल्लव राज कुल अपने को महाभारत वाले द्रोणपुत्र अश्वत्थामा का वंशधर कहता है। वर्तमान पदूकोटा के राजा अपने को पल्लवों का शिरमौर समझते हैं। इनकी राजधानी कांची थी और इनका राज्य विशेषतया तोंडेमंडलम प्रांत मे रहा जो कांची देश में था। वराहमिहर कांची को दक्षिणी भाग में रखते हैं। ह्यून्त्सांग का कथन है कि कांची में प्राचीन काल में बहुत से संघाराम थे जिनमें उच्च श्रेणी के बौद्ध सन्त रहते थे। तामिल ग्रंथ मणिमेगलै में लिखा है कि जब चोलों की राजधानी चिरुप्पुमपट्टिनम को समुद्र

ने नष्ट कर दिया तब वहां के निवासी कांची में बस गये तथा बौद्ध होगये। अब कांची पूरा हिन्दू स्थान है और पवित्रता में इसकी सप्त महापुरियों में संज्ञा है। इससे बौद्ध तथा जैन चिन्ह पूर्णतया लुप्त होगये हैं। कुछ लेखकों का विचार है कि पल्लव लोग उत्तर पश्चिम से भारत में आनेवाले विदेशी हैं तथा कुछ और लोग समझते हैं कि यह लोग दक्षिण के आदिम निवासियों में से हैं। के० वी० सुब्रह्मण्य ऐयर महाशय का मत है कि ये लोग पहले उत्तरी भारत में आंध्रो के राज्य में रहते थे। समय के साथ इनका प्रताप बढ़ा और इनमें से बहुतेरे लोग प्रधान पुरुष अथवा राजमंत्री हो गये। प्रसिद्ध शक नरेश रुद्रदामन के यहां सुविशाक नामक एक पल्लव पुरुष मंत्री था। सुविशाक अपने स्वामी की ओर से आनर्त्त एवं सौराष्ट्र प्रान्तों का शासक था। आंध्र नरेश गौतमी पुत्र शातकर्णी ने पल्लवों की बलवृद्धि अपने राज्य के लिए भयप्रद समझ कर इन्हें राज्य से बाहर निकाल दिया। आंध्रो द्वारा निकाले जाने पर पल्लव लोग कांची प्रान्त में जा बसे और इन्होंने कुछ दिनों में कांची बसाई। पल्लवों ने बहुत से बड़े बड़े मन्दिर आदि बनवाये। शिलाओं को काट तराश कर इन्होंने उनके भीतर बहुत से मन्दिर बनाये जो अब भी प्रस्तुत हैं। आदिम पल्लवों में से बहुत से बौद्ध भी थे। कांची के इधर उधर प्रदेशों पर पल्लवों का प्रभाव समय के साथ बढ़ता चला। इनके दक्षिण चोल राज्य था और उत्तर में कलिंग। पल्लवों का इन दोनों से बहुत काल पर्य्यन्त युद्ध होता रहा। विजय लक्ष्मी समय समय पर दोनों ओर मुस्कराती रही किन्तु अन्त में पल्लवों ने चोलों को दक्षिण और कलिंगों को उत्तर खदेड़ कर अपना

विशाल राज्य स्थिर किया जिसे प्रायः तोंडेमंडलम् कहते थे। इस प्रान्त के निकट पश्चिम की ओर अयोध्या नरेश विजयादित्य ने भी अपना दाक्षिणात्य उपनिवेश स्थिर किया। पल्लवों के कारण दक्षिण में उत्तरीय आर्य्य सभ्यता का प्रभाव बहुत अधिकता से पड़ा। गृहनिर्म्माण तथा दस्तकारी के कामों ने इनसे भारी प्रोत्साहन पाया तथा हज़ारों लोगों की जीविका का प्रबन्ध इन बातों से हुआ। इन्होंने सड़कें बनवाई, खेतो की उन्नति की, अधिक पृथ्वी को उपजाऊ बनाया और अनेकानेक अन्य प्रकार से अपने नये देश को उन्नत किया। पल्लवों की एक पृथक लिपि भी थी जिसे पल्लव ग्रन्थ कहते हैं। डाक्टर वर्नेल का मत है कि यह पूर्वी चेरा लिपि थी और पहले पहल चौथी शताब्दी ईस्वी में इसका व्यवहार तोंडेमंडलम् में हुआ। तामिल देश का आदिम इतिहास पांचवीं शताब्दी विक्रमी तक समझा जाता है। इसके आदिम काल में चोलों का प्राधान्य रहा और तब चेरों का महत्व हुआ। अनन्तर पांड्यों का प्रभाव चढ़ कर अन्त में पल्लवों की महत्ता स्थापित हुई, जो नवम् शताब्दी पर्य्यन्त रही।

२५वाँ अध्याय ।

गुप्त साम्राज्य और हर्षवर्धन

(सं० ३७६ से ७०४ पर्यन्त)

हम ऊपर देख आये हैं कि संवत् २५० से प्रायः १०० वर्ष तक ऐतिहासिक मसाला बहुत थोड़ा मिलता है। गुप्तों के समय से यह कमी भली भांति पूरी हो जाती है। पाटलिपुत्र में अथवा उसके समीप श्रीगुप्त का पौत्र और घटोत्कच का पुत्र चंद्रगुप्त नामक एक छोटा सा स्थानिक नरेश शासन करता था। यह उन सैकडों छोटे छोटे राजाओं में से एक था कि जिनमें तत्कालीन भारत बँटा हुआ था। इसके पिता और पितामह साधारण महाराज थे किन्तु उन्होंने अपने प्रयत्नों से कुछ महत्ता प्राप्त की थी। आदिम बौद्ध काल के इतिहास में कहा जा चुका है कि वैशाली के लिच्छवियों का दमन करके अजातशत्रु ने उस राज्य पर अधिकार जमाया था। इसके पीछे लिच्छवी घराने का पता नहीं लगता। जान पड़ता है कि बहुत से छोटे भारतीय राजाओं में यह राज्य भी एक था। लिच्छवी लोगों ने केवल नैपाल में एक राज्य स्थापन करके अपना संवत् चलाया था जो विक्रमाब्द १६८ से चलता है। गुप्त काल पर्यंत इससे इतर लिच्छवियों की कोई महत्ता नही देख पड़ती। जान पड़ता है कि उस काल चंद्रगुप्त तथा लिच्छवियों के राज्य तत्कालीन साधारण राज्यों से कुछ बड़े थे। भाग्य वश सं० ३६५ में चंद्रगुप्त

का विवाह लिच्छवी राजकुमारी कुमार देवी से हो गया। यह कुमारी लिच्छवी राज्य की एक मात्र उत्तराधिकारिणी समझ पड़ती है, और जान पड़ता है कि इस विवाह से चंद्रगुप्त स्वराज्य के अतिरिक्त लिच्छवी राज्य का भी शासक हो गया। अतएव उसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की और अपने, कुमार देवी, तथा लिच्छवियों के मिलित नामों पर सिक्के चलाये। चन्द्रगुप्त के उत्तराधिकारी तक चन्द्रगुप्त के अतिरिक्त बड़े अभिमान पूर्वक अपने को लिच्छवी माता का भी वंशधर कहते थे। चन्द्रगुप्त ने विजयों द्वारा अपना राज्य प्रयाग पर्य्यन्त फैलाया। इस प्रकार तिरहुत, दक्षिणी विहार, अवध, और अनेक अन्य प्रान्त इसके शासनाधीन हुए। चन्द्रगुप्त ने अपने सिंहासनासीन होने के समय से नया संवत् भी चलाया। इसका आरम्भ २६ फ़रवरी सं० ३७६ से होता है। जान पड़ता है कि चन्द्रगुप्त विवाह के पीछे राजा हुआ होगा। यह भी संभव है कि इसने महाराजाधिराज की पदवी ग्रहण करने के समय से गुप्त संवत् चलाया हो। आपका शरीरान्त संवत् ३९२ के लगभग हुआ। अपने जीवन काल में ही चन्द्रगुप्त ने अपने और कुमार देवी के पुत्र समुद्रगुप्त को युवराज बनाया था। हमारे यहां की प्राचीन प्रथा भी यही है। इस प्रकार जो गुप्त साम्राज्य सं० ३७६ में स्थिर हुआ, वह साम्राज्य के रूप में सं० ५३७ पर्य्यन्त चला। पीछे से यही वंश मांडलिक नरेश हो कर ५३७ से प्रायः सं० ६१० पर्य्यन्त तक छोटे से राज्य का शासक रहा। समुद्रगुप्त का शासन काल ३९२ सं० से लगभग ४३२ संवत पर्य्यन्त चलता है। यह गुप्त काल के तथा समस्त भारतीय सम्राटों में बड़े महत्व का शासक था। इसने राज्यारंभ

से ही विजयों का प्रारंभ किया। स्मिथ महाशय लिखते हैं कि भारत में यूरोप की भांति निष्कारण राज्य छीनने के प्रतिकूल जनता के विचारों का प्रभाव नहीं पड़ता था। हम ऊपर दिखला आये हैं कि महाभारत के समय पर्य्यन्त यह प्रभाव ऐसा बलशाली था कि भारतीय सम्राटों ने शक्ति रहते हुए भी दूसरों के राज्य नहीं छीने। स्वयं कालिदास राजाओं की प्रशंसा करने में कहते हैं कि उन्होंने केवल यश के लिए विजय की इच्छा की, अर्थात् राज्य छीनने को नहीं। यथा, "यशसे विजगीषूणाम् प्रजायै गृह मेधिनाम्"। यही दशा बहुत अंशों में आदिम कलिकाल भर में स्थिर रही। फल यह हुआ कि मौर्य चन्द्रगुप्त के पूर्व भारतीय ऐक्य का राजनैतिक व्यवहार कभी देखने में न आया और सिकंदर ने सुगमता पूर्वक भारतीय पाश्चात्य लघु नरेशों को पराजित कर दिया। चन्द्रगुप्त ने भारत में राजनैतिक ऐक्य का पहले पहल ज्वलंत उदाहरण दिखलाया। ऐसे ही उदाहरण कुछ अन्य मौर्य, आंध्र तथा कुशन सम्राटों के समय भी देखने में आये। समुद्रगुप्त के समयवाले भारतीय क्षुद्र नरेशों ने केवल सौ वर्षों से किसी सम्राट का मानना छोड़ दिया था और भारतीय ऐक्य नष्ट भ्रष्ट हो रहा था। समुद्रगुप्त के समय यह सम्राट सम्बन्धी विचार सैकड़ों वर्षों से चलते रहने के कारण नया न था। अतः भारतीय साम्राज्य के पुनः स्थापन वाले प्रयत्न में भारतीय जनता के विचारों का प्रभाव उनके प्रतिकूल क्यों पड़ता जब कि वे राजनैतिक ऐक्य स्थापन करके लोकहित साधन कर रहे थे। समुद्रगुप्त के विजयो से प्रत्येक देशहितैषी उन्हें पर राज्य छीनने वाला न कह साम्राज्य स्थापक मानकर धन्यवाद देगा। ऐसे ही ऐसे समयों पर

बिना विचारे भारतीय चलनों पर अनुचित कलंक स्थापित करने का प्रयत्न करके विदेशी ऐतिहासिक अपना विदेशीपन तथा सहृदयता की कमी प्रगट करते हैं।

समुद्रगुप्त के विजयों का वर्णन करने वाला इनका राज कवि इन्हें चार भागों मे विभाजित करता है। प्रथम भाग में आर्यावर्त (उत्तरी भारत) के ६ मुख्य और बहुत से असुख्य राजे आते हैं, दूसरे मे दक्षिण के १२ नरेश, तीसरे में असभ्य जंगली जातियों के सरदार और चौथेमें सीमाप्रान्तों के राज्य तथा प्रजातन्त्र रियासतें। इन सब के वर्तमान नाम अभी अज्ञात हैं। समुद्रगुप्त ने अनेकानेक विजयों द्वारा अपने राज्य को बहुत विस्तीर्ण किया। अनेक ऐतिहासिक इसे भारतीय नैपोलियन कह कर सम्मानित करते हैं, यद्यपि स्वयं नैपोलियन का जीवन ऐसा सफल न था। इस गुप्त महाराज ने सब से पहिले उत्तर भारतीय राजाओं का पराजित करके उनसे अन्याय द्वारा प्राप्त राज्यों को छीन लिया। इनमें पद्मावती वर्तमान नरवर (ग्वालियर रियासत) वाले गणपति नाग का राज्य एक था। इन राज्यों पर भली भांति अधिकार प्राप्त करके समुद्रगुप्त ने दक्षिण पर आक्रमण किया होगा। दक्षिण पर आक्रमण कोई साधारण बात न थी। इसमें असाधारण शौर्य, प्रबन्ध कारिणी शक्ति और कार्य कुशलता की आवश्यकता थी। समुद्रगुप्त ने अपनी राजधानी पाटलिपुत्र से सीधे दक्षिण चलकर छोटा नागपूर होते हुए महानदी के किनारे दक्षिणी कोसल पर धावा करके वह राज्य छीन लिया। अनन्तर उड़ीसा और मध्य देश के अन्यान्य राज्य छीनते हुए समुद्रगुप्त ने अधिकाधिक दक्षिण जाने का विचार किया। मध्य भारतीय विजित राजाओं में व्याघ्रराज

मुख्य था। अनन्तर कलिंग देश की प्राचीन राजधानी पिष्टपुर के स्वामी को जीत कर आपने महेन्द्रगिरि और कुट्टर दुर्गों को जीता। फिर कृष्णा और गोदावरी के बीच वंगीच (पल्लव) नरेश तथा कांचीराज विष्णुगोप पल्लव जीते गये। अनन्तर पश्चिम की ओर मुडकर आपने पालक्क नरेश उग्रसेन को जीता। अब समुद्रगुप्त पाटलिपुत्र की ओर पलट पड़े किन्तु ऐसा करने मे आप पश्चिम दक्षिण होते हुए आये जिसमें जीतने को अन्य राज्य मार्ग मे मिले। मार्ग में देवराष्ट्र (महाराष्ट्र देश) और परंडपल्ल (खानदेश) राज्यों को जीत कर आप घर पहुंचे। इस प्रकार प्रायः दो वर्ष बाहर रह कर और ३००० मील की यात्रा करके समुद्रगुप्त पाटलिपुत्र वापस आये। दाक्षिणात्य राज्यों पर अधिकार न करके आपने उनसे कर लेने पर ही संतोष किया। आप दक्षिण से बहुत अधिक लूट का धन लाये। आपके अनेक करद राज्य थे पूर्व में समतट (गंगा और ब्रह्मपुत्र के समीप), कामरूप (आसाम) दवाक (बोग्रा, दीनाजपुर तथा राजशाही ज़िले) ऐसी ही रियासतें थीं। नैपाल और कर्तृपुर (कुमाऊं, अलमोड़ा, गढ़वाल और कांगड़ा) स्वतंत्र थे। उस काल पंजाब, पूर्वी राजपूताना और अधिकांश मालवा मे प्रजातंत्र राज्य थे। सतलज के दोनों किनारों पर यौधेयों का प्रभुत्व था और मध्य पंजाब मे माद्रकों का सिकंदर के समय इन्हीं स्थानों पर, मलोई, आदि प्रजासत्तात्मक राज्य चलाते थे। पूर्वी राजपूताना और मालवा मे अर्जुनाइनों, मालवियों और आभीरों की बस्ती थी। जमुना और चंबल गुप्त राज्य की सीमायें समझ पड़ती हैं। दक्षिणी सीमा नर्मदा थी और उत्तरी हिमाचल पूरब मे हुगली पर्यंत समुद्रगुप्त का राज्य

था। ये सब स्वतंत्र रियासतें भी आपसे दब कर संधि कर चुकी थीं। इस प्रकार शक राज्य को छोड़ समुद्रगुप्त ने प्रायः समस्त भारत पर आतंक जमा लिया था। मौर्य राज्य के पीछे समुद्रगुप्त का भारतीय राज्य सब से बड़ा था। आपका गांधार के कुशनों तथा लंका और आक्सस के नरेशों से राजनैतिक सम्बन्ध था।

विजयों के पीछे समुद्रगुप्त ने अयोध्या को मुख्य निवास-स्थान बनाया और अपने राजकवि द्वारा गद्यपद्यात्मक स्वचरित लिखवा कर उसे अलाहाबद दुर्ग के अन्तर्गत अशोकस्तम्भ पर खुदवा दिया। इसका समय नहीं दिया हुआ है किन्तु संवत् ४१७ के लगभग समझ पड़ता है। साहित्यिक दृष्टि से भी यह संस्कृत भाषा का लेख बड़ा मनोहर है और निश्चय पूर्वक तत्कालीन साहित्य का अच्छा उदाहरण हमारे सन्मुख उपस्थित करता है। लंका नरेश श्रीमेघवर्ण बौद्ध का राजत्व काल सं० ४०९ से ४३८ पर्य्यन्त है। इसने सं० ४१७ में दो संत बुद्ध गया में अशोक वाले मठ के दर्शनार्थ भेजे। इनमें से एक लंकराज का भाई था। इन लोगों का मठ निवासियों ने अच्छा मान न किया। अतएव लंकपति ने गया में अपने यात्रियों के लिए उचित मठ बनाने के विचार से समुद्रगुप्त के पास प्रचुर मणि मुक्ता एवं अन्य बहुमूल्य पदार्थयुक्त पठौनी भेजकर मठ निर्माण की आज्ञा मांगी। समुद्रगुप्त ने इस पठौनी को कर माना और मठ बनाने की सहर्ष आज्ञा दे दी। मेघवर्ण ने बोधि वृक्ष के उत्तर विशाल मठ बनवाया। यह तिमहला था और लंकराज की महत्ता के सब प्रकार से योग्य था। ७वीं शताब्दी में भी ह्यूयनत्सांग ने इसमें महायान मत के १००० संतों को देखा था। लंका के यात्री यहीं ठहरा

करते थे । अपने विजयों के पीछे समुद्रगुप्त ने विधि पूर्वक अश्वमेध यज्ञ करके ब्राह्मणों को करोड़ों रुपये दान में दिये । इस अवसर के लिए आपने नये सिक्के भी ढलवाये थे जिनमें यज्ञाश्व की मूर्ति थी । इस मखाश्व के बराबर डीलडौल की इसकी एक पाषाण प्रतिमा लखनऊ अजायब घर में रक्खी है । इसमें चित्रकारी का अच्छा काम नही है परन्तु मूर्ति किसी प्रकार भद्दी भी नहीं है । प्रसिद्ध ज्योतिषी आर्य्यभट्ट के शिष्य ज्योतिषी लल्ल समुद्रगुप्त के समय में हुए थे। इनका समय सं० ४३१ है । समुद्रगुप्त वीर होने के अतिरिक्त गान, तथा वाद्य मे निपुण एवं कवि भी थे। विद्वानों के साथ बैठना आपको बहुत प्रिय था । आप वेदाध्यायी भी थे और तर्कों से उनकी महत्ता की रक्षा किया करते थे । बाल्यकाल में समुद्रगुप्त पर वसुबन्धु ने बौद्ध धर्म का भी कुछ प्रभाव डाला था । आपके जीवन काल में इसका कोई फल न देख पड़ा । सिक्को पर आपकी प्रतिमायें कई प्रकार की बनी हुई हैं । एक में आप वीणा बजाते हुए दिखाये गये हैं। हिन्दू मत में पूर्ण श्रद्धा रखते हुए भी आपने अन्य धर्मों से किसी भांति का विद्वेष कभी नही दिखाया । ईश्वर ने जैसे इस पुरुष रत्न को अनेकानेक सद्गुणों से अलंकृत किया था, वैसे ही इसी के योग्य पुत्र रत्न देकर और भी सुशोभित किया । समुद्र के पिता और पुत्र का नाम चन्द्रगुप्त था और दोनो इसी महा पुरुष के योग्य थे। ऐसे तीन महापुरुषो का राज्य साथ ही साथ संसार इतिहास मे बहुत कम आया होगा । समुद्रगुप्त के शरीरान्त का समय निश्चित रूपेण ज्ञात नहीं है । परन्तु अनुमान से ४३२ सं० माना जाता है । शरीरान्त के पूर्व समुद्रगुप्त ने अपने अनेक संतानों में से रानी दत्त देवी के पुत्र

को उत्तराधिकारी नियत कर दिया । आपके अन्य सुपुत्रों ने अपने भाई चन्द्रगुप्त से किसी प्रकार का विगाड़ न किया।

चंद्रगुप्त दूसरे का राजत्व काल सं० ४३२ से ४७० पर्यंत चलता है । आपका प्रताप इतना बढ़ा कि मालवीय विक्रम के नाम पर आपने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की । भारत में शकों को छोड़ शेष सभी नरेश समुद्रगुप्त से दबते थे । यह प्रभुत्व विक्रमादित्य को भी प्राप्त रहा और आपने उन्हें पराजित कर के इनना अपवाद भी निकाल डालना चाहा । इसके लिए आपको भारी प्रबन्ध करना पड़ा । आपने सं० ४५५ से ४५८ पर्यन्त युद्ध करके मालवा, सौराष्ट्र और गुजरात भी अपने राज्य मे मिला लिए । इस प्रकार गुजरात के बन्दरों द्वारा आया हुआ मिश्र और यूरोप का माल भारत में फैलने लगा । कहते हैं कि चन्द्रगुप्त ने अपने पुत्र कुमारगुप्त को भेजकर सौराष्ट्र जीता था । यह घटना सौराष्ट्र के भाटों में प्रसिद्ध है । शक महाक्षत्रपों को जीतने के कारण चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य आज भी शकारि कहलाते हैं । क्षत्रप रुद्रसेन ने समुद्रगुप्त के पास पठौनी भेजी थी, किन्तु वे लोग उनके वश नहीं हुये थे । विक्रमादित्य ने सत्यसिंह के पुत्र रुद्रसिंह को मारकर भारत में शकों के शासन को सदा के लिए निर्मूल कर दिया । सिक्कों में विक्रमादित्य ने अपनी प्रतिमा सिंह को पराजित करते हुए बनवाई है । आप अधिकतर अयोध्या में रहते थे । गुप्त काल में अयोध्या ही वास्तविक भारतीय राजधानी रही ।

विक्रमादित्य के समय चीनी यात्री फाहियेन सं० ४६२ से ४६८ पर्यन्त भारत में रहा । यह बौद्ध पुस्तकें, कथायें, और आश्चर्यों का हाल जानने के लिए यहां आया था और

सांसारिक पदार्थों को ओर तादृश दृष्टि नहीं डालता था। फिर भी इसके ग्रन्थ से बहुमूल्य ऐतिहासिक घटनायें मिलती हैं। फ़ाहियेन के समय में भी अशोक का महल पाटलिपुत्र में बना था। इस यात्री को मौर्य महल ऐसा महत्ता युक्त देख पड़ा कि इसने उसके निर्माण कर्ताओं को मनुष्य न मान-कर अशोक के वशवर्ती भूत माना। वहीं एक स्तूप के निकट अशोक के दो मठ भी थे जिनमें महायान और हीनयान सम्प्रदायों के छः सात सौ सन्त रहते थे। इनकी विद्वत्ता ऐसी प्रसिद्ध थी कि भारत के प्रत्येक भाग से इनसे लोग ज्ञान लाभ करने आया करते थे। फ़ाहियेन ने तीन वर्ष यहीं रह कर संस्कृत का अध्ययन किया। आपने लिखा है कि यहां प्रतिवर्ष २० रथों पर प्रतिमाओं का जलूस निकला करता था जिनके सामने नाचने गाने वाले अपना कौतुक दिखाया करते थे। फ़ाहियेन के अनुसार ऐसे जलूस भारत के अन्य भागों मे भी निकला करते थे। फ़ाहियेन गांगेय प्रान्तों को भारतीय मध्य देश कहता है और मागधों के विषय मे लिखता है कि ये लोग सधन तथा प्रसन्न थे और एक दूसरे से वढ़ चढ़ कर दान दिया करते थे। कतिपय दयावान लोगों ने पाटलिपुत्र मे एक चिकित्सालय बनवा रक्खा था जिसमें विना मूल्य दवा दी जाती थी और मार्ग में विश्रामालय भी थे। सिंधु नदी से मथुरा पर्यन्त फ़ाहियेन ने बहुत से मठ पाये जिनमे हज़ारों भिक्षु रहते थे। मथुरा के निकट ऐसे २० मठ थे जिनमे ३००० भिक्षुओं का निवास था। मालवा के विषय मे फ़ाहि-येन का कथन है कि यहां के लोग बहुत अच्छे हैं तथा राज-प्रथा बहुत मृदु है जिससे किसी को कष्ट नहीं पहुंचता। चीन पर ध्यान कर यात्री कहता है कि भारतीय धन्य हैं

जिनको नियमों के मारे नाक में दम नहीं है और जिन्हें मैजिस्ट्रेटों के यहां दौड़ना नहीं पड़ता। चीन के सामने तत्कालीन भारतीय दण्ड प्रथा बहुत मृदु थी। प्राणदण्ड किसी को मिलता ही न था और बहुत से अपराधों के लिए धन दंड दिया जाता था। राजविद्रोहियों का बारबार विद्रोह करने पर दाहिना हाथ काट लिया जाता था किन्तु यह बहुत ही कम होता था। अपराध स्वीकार कराने में किसी को भी शारीरिक कष्ट नहीं दिया जाता था। सरकारी आय ख़ालसा भूमि के लगान से उत्पन्न होती थी। राजकर्मचारियों को उचित स्थिर वेतन दिया जाता था और वे प्रजा से किसी भाँति आर्थिक लाभ नहीं करते थे। फ़ाहियेन कहता है कि भारत भर में कोई किसी जीवधारी को नहीं मारता है, न मद्यपान करता अथवा लहसुन प्याज़ खाता है। भारतीय लोग मुर्गा अथवा शूकर नहीं पालते थे न वधार्थ पशु वेचते थे। मद्य की भट्टियां अथवा बधिक बाज़ारों में न थे और चाण्डाल लोग ही शिकारी, मछली मारने वाले तथा बधिक थे। वे कोढ़ियों की भांति बस्ती के बाहर रहते थे और जब बस्ती में आते थे तो एक लकड़ी खड़खाकर चलते थे जिससे कोई उनको छूकर अशुद्ध न हो जावे। सिक्कों की भांति कौड़ियों का साधारण चलन था। गुप्त महाराजा की ओर से बौद्ध मठों को भी उदार आर्थिक सहायता दी जाती थी। देश भर में चाहे जहाँ जावें, भिक्षुओं को लोगों की उदारता के कारण किसी प्रकार का कष्ट नहीं उठाना पड़ता था।

एक हिन्दू भारतीय राज्य का विदेशी बौद्ध द्वारा ऐसा सुन्दर वर्णन देखकर गुप्त राज्य की कौन मुक्त कंठ से प्रशंसा

न करेगा? हिन्दुओं के लिए यह भारी अभिमान की बात है कि उन्होंने ऐसे प्राचीन काल में इस उच्च सभ्यता और सहिष्णुता का परिचय दिया। फ़ाहियेन ने तीन वर्ष पाटलिपुत्र और २½ वर्ष ताम्रलिप्ती (तमलूर) में संस्कृताध्ययन किया परन्तु उसे कभी किसी ने कष्ट न दिया। सड़कों पर भी कभी किसी प्रकार की लूटपाट न होती थी। स्मिथ महाशय कहते हैं कि पूर्वीय प्रकार की शासन पद्धति में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के पीछे ऐसा सुन्दर राज्यशासन कभी न हुआ। बौद्ध धर्म की दया का विस्तार सर्वत्र था किन्तु हिन्दू के शासक होने से बौद्ध एवं जैन राज्यों के समान लोगों की स्वतंत्रता पर अहिंसा आदि विषयों में हस्तक्षेप नहीं होता था जिससे प्रजा सुखी थी और स्वेच्छानुसार मत ग्रहण करने में स्वच्छन्द थी। फ़ाहियेन के कथनों से समझ पड़ता है कि यज्ञ सम्बन्धी हिंसा का भी चलन कम था। हिन्दू राज्यों के ऐसे अनमोल गुणों के कारण भारत में हिन्दू धर्म का प्रचार बढ़ रहा था और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के विरोधी बौद्ध और जैन मतों के विचारों तथा अनुयायियों की संख्या में दिन। दिन स्वाभाविक क्षति हो रही थी। भारत से इन मतों के निर्मूलप्राय होने के कारण हिन्दुओं की गुप्तकालीन उच्च शासन प्रणाली तथा उनके सुन्दर स्वभाव थे। व्यक्तिगत स्वतंत्रता में यथा साध्य कुछ भी बाधा न डालने के कारण गुप्त साम्राज्य और तत्कालीन हिन्दू लोकमत बहुत हो प्रिय हुए। कई शताब्दियों के पीछे हिन्दुओं की मानसिक, साहित्यिक एवं अन्य प्रकार की उन्नति इसी समय में हुई। भारतवर्ष के एक एक कोने और एक एक टपरे तक में जो आज हिन्दू मत प्राचीन भारतीयों में शोभायमान है उसके

लिए यह सनातन आर्य धर्म तथा भारतवर्ष गुप्त सम्राटों का सदा के लिए ऋणी रहेगा। फ़ाहियेन के समय गया, कपिलवस्तु और कुशीनगर बिलकुल उजाड़ हो गये थे और श्रावस्ती में केवल २०० घर थे। सं० ४६२ में फ़ाहियेन कन्नौज को गया। उस काल यहाँ हीनयान संप्रदाय के केवल दो मठ और एक स्तूप थे। इससे प्रगट है कि कौशिकों की यह राजधानी, जो महर्षि पतंजलि के समय तक अच्छी दशा में थी, अब उन्नति पर न थी। गुप्त राज्य में इसने कुछ उन्नति अवश्य की होगी। गुप्त राज्य में संस्कृत के प्रायः सभी विभागों ने उन्नति पाई।

महाराज चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का शरीरान्त सं० ४७० में हुआ और आपका पुत्र कुमारगुप्त प्रथम गद्दी पर बैठा। इनकी माता का नाम ध्रुव देवी था। कुमारगुप्त का राजत्व काल सं० ४७० से ५१२ पर्य्यन्त चलता है। आप के भारी शासन काल में गुप्त राज्य को किसी प्रकार की क्षति न पहुँची, वरन् उसकी सीमा ने कुछ विस्तार पाया। आपने भी अश्वमेध यज्ञ किया। सं० ५०७ के लगभग आपकी पुष्यमित्र नाम्नी किसी बलवती जाति से लड़ाई छिड़ गई। फ़्लीट महाशय का मत है कि यह जाति नर्मदा के निकट रहती थी। कोई कोई इसे उत्तर निवासिनी भी मानते हैं। पहिले तो राजकीय दल की पराजय हो गई और समझ पड़ने लगा कि विशाल गुप्त साम्राज्य टूटने ही पर है, किन्तु कुमार स्कंदगुप्त ने बड़ी ही वीरता तथा कौशल से इस जाति को पराजित कर के अपने पिता का साम्राज्य बचाया। उनके पीछे आप सं० ५१२ में गद्दी पर बैठे। आपका शासन काल सं० ५२७ तक चलता है। आपके गद्दी पर बैठते ही मध्य एशिया के जंगली हूणों

का आक्रमण आरंभ हुआ। इनकी सेना टीडी दल के समान ऐसी असंख्य थी और इन असभ्यों का शारीरिक बल इतना बढ़ा हुआ था कि एक हूण के सम्मुख कोई सभ्य जाति का एक पुरुष नहीं खड़ा हो सकता था। यद्यपि स्कंदगुप्त बड़े ही पराक्रम शाली, अनुभवी और प्रवीण थे, तथापि इन असभ्य हूणों से भारत का छुटकारा कठिन देख पड़ने लगा। फिर भी आपने अनुपम शौर्य तथा प्रबन्ध कारिणी शक्ति दिखला कर हूणों को वह करारी पराजय दी कि इन लोगों से भारत का पीछा कई वर्षों के लिए छूट गया। आपने स्वयं इस विजय के विषय में लिखा है कि विजय समाचार लेकर आप अपनी माता के पास वैसे ही गये जैसे श्रीकृष्ण अपने शत्रुओं को मारकर माता देवकी के पास गये थे। अनन्तर वर्तमान ज़िला-गोरखपुर के भोनरी नामक स्थान में आप ने एक विजय स्तंभ बनवाया जिस पर विष्णु भगवान की मूर्त्ति रक्खी गई। इस स्तंभ में आपने हूण पराजय का वर्णन लिखवाया। यह स्तंभ अब भी प्रस्तुत है किन्तु विष्णु की मूर्ति अब उस पर नहीं है। सं० ५१५ का एक द्वितीय लेख मिलता है जिसमें भी इस विजय का कथन है और सौराष्ट्र (काठियावाड) का गुप्त साम्राज्य में सम्मिलित होना वर्णित है। सौराष्ट्र को चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ही जीत चुके थे, किन्तु समझ पड़ता है कि इधर की लड़ाइयों में किसी समय यह प्रान्त गुप्त राज्य से निकल गया था। वही अब फिर जीता गया। महाराज ने पर्णदत्त को सौराष्ट्र का राजप्रतिनिधि नियत किया, जिन्होंने अपने पुत्र चक्रपालित को जूनागढ़ में रखकर वामनस्थली का स्थानिक शासक बनाया। चन्द्रगुप्त मौर्य की बनाई तथा रुद्रदामन शक द्वारा मरम्मत की हुई

सुदर्शन झील संवत् ५१२ में फूट गई। पर्णदत्त के पुत्र ने सं० ५१६ में उसकी फिर से मरम्मत की और दूसरे साल वहां प्रचुर व्यय करके एक विष्णु मंदिर बनवाया। अब सुदर्शन झील के स्थान तक का पता नहीं है। इसी वर्ष ज़िला गोरखपूर के एक जैन ने एक अच्छा स्तंभ बनाया जिसके लेख से प्रगट होता है कि उस काल पर्यंत गुप्त राज्य के पूर्वीय तथा पाश्चात्य प्रान्त यथावत् स्थिर थे। सं० ५२२ में किसी ब्राह्मण ने ज़िला बुलंदशहर में सूर्यमन्दिर बनवाया। उसमें भी स्कंदगुप्त राज्य विवर्धक और विजयी कहे गये हैं। इन बातों से प्रगट है कि हूणों का धावा स्कंदगुप्त के राज्यारंभ ही में हुआ था तथा सं० ५२२ पर्यंत इस विशाल राज्य को कोई कथनीय क्षति न पहुंची थी। इस वर्ष सदनहीन घूमने वाले असभ्य हूणों का धावा गांधार (वायव्य पंजाब) पर फिर से हुआ। इस स्थान पर किसी अत्याचारी हूण राजा ने कुशनों की गद्दी छीन कर बड़ा अत्याचार मचाया। सं० ५२७ के लगभग लूट की चोप से हूणों ने भारत के भीतर फिर घुस कर गुप्तराज्य पर अनिवार्य आक्रमण किये। इन असभ्यों के दल के दल बराबर आते जाते थे, यहां तक कि विजयी स्कंदगुप्त की भी महती सेना थकित पराक्रम हो गई। लड़ते लड़ते आपका कोश ख़ाली हो गया किन्तु हूणों की दलपंगुल सेना न घटी। आपके राज्यारंभ काल वाली स्वर्ण मुद्रा पूर्वकालीन गुप्त महाराज वाले सिक्कों के समान ही थीं किन्तु पीछे से महाराज स्कंदगुप्त को स्वर्ण मुद्रा की तौल वही रखते हुए उसमें सोना १०८ के स्थान पर केवल ७३ रत्ती रखना पड़ा यद्यपि आप की भी उपाधि विक्रमादित्य थी तथापि असंख्य हूणों के सम्मुख आपके विक्रम का भी सूर्य अस्त हो गया

और सं० ५३७ के लगभग आप के शरीरान्त के साथ भारत के दुर्भाग्य वश गुप्त साम्राज्य भी मर गया, किन्तु उसके स्थान पर गुप्त राज्य वर्तमान रहा।

भारतीय लेखकों ने हूणों के अत्याचारों का पूरा वर्णन नहीं किया है किन्तु इन लोगों के यूरोपीय अत्याचारों का यथावत् वर्णन गिबन के इतिहास में मिलता है। उसका एक अवतरण यहां दिया जाता है। जाति संबन्धी नियमों के कारण हिन्दुओं को जाति हीन हूणों के अत्याचार यूरोप वालों से भी अधिक असह्य हुए होंगे। अवतरण इस प्रकार है—"हूणों की संख्या, शक्ति, त्वरगमन और निर्दयता को आश्चर्य-पूर्ण गाथ लोगों ने सहन किया, उससे भय खाया और इन कारणों के विचार ने उन्हें और भो बढ़ी हुई माना। इनके खेत और गाँव इन्ही के देखते हुए जलाकर भस्म कर दिये गये और ये लोग बिना विचारे जहां मिले मारे गये। इन वास्तविक भय पूर्ण विपत्तियों के अतिरिक्त, हूणों की असाधारण कुरूपता भद्दी चेष्टायें और तीक्ष्ण स्वर से और भी आश्चर्य और घृणा उत्पन्न होती थी। ये लोग अन्य मनुष्यों से अपने चौड़े कंधों, चपटो नाक और घुसी हुई काली छोटी आंखों से पहिचाने जाते थे। इनके डाढ़ी मानों थी ही नहीं सो इनमे न तो जवानी की सुन्दरता समझ पड़ती थी न बुढ़ापे का महत्व।" ये किसी वस्तु को भी पवित्र नहीं मानते थे। इन निर्दयी वन्यजन्तुओं द्वारा आक्रांत और पराजित होने से तत्कालीन असहाय हिन्दुओं की जो दुर्दशा हुई होगी सो अब पूर्णतया ध्यान में भी नहीं आ सकती। वर्तमान जर्मन लोगों ने इनकी दशमांश भी क्रूरता न की होगी, फिर भी उनके अत्याचारों से सभ्य संसार आज कैसा ऊब रहा

था । अतएव समझना चाहिये कि हूणों का आक्रमण भारत के लिए बड़ी ही कुदशा का फल था ।

महाराजा-स्कंदगुप्त के अपुत्र मरने से उनके पिता कुमारगुप्त प्रथम की महारानी अनंद से उत्पन्न पुरुगुप्त राजा हुए । आप मगध की गद्दी पर बैठे. और आपके अधीन केवल उसी प्रान्त के कुछ ज़िले रह गये । आपने ५ वर्ष राज्य किया । इसी छोटे काल में आपने उपरोक्त स्वर्णमुद्रा में १२१ रत्ती सोना रक्खा । सिक्कों में आपका नाम प्रकाशादित्य लिखा है । महाराज पुरुगुप्त के पीछे इनके पुत्र नरसिंह गुप्त बालादित्य ने सं० ५४२ से ५६२ पर्यन्त राज्य किया । आपने नालंद में (जो मगध में है) ३०० फ़ीट ऊंचा पक्का बौद्ध मन्दिर बनवाया । इसके साथ सामान में सोना और मणियों का प्रचुर व्यवहार था । गुप्त साम्राज्य टूटने पर सं० ५५१ से ५६७ पर्यंत मालवा में बुधगुप्त और भानुगुप्त का राज्य रहा । संभवतः ये लोगभी गुप्त घराने ही के थे जैसा कि इनके नामों से प्रगट होता है । भानुगुप्त हूणों के अधीन था । सं० ६१० में कोरिया से बढ़कर बौद्धमत जापान में फैला । थोड़े दिनों के पीछे वाराणसी का उपासक गौतम धर्मज्ञान चीन में वहीं के नरेश द्वारा यांगचुवान ज़िले का शासक नियत हुआ । सं० ६३६ में यह पद छोड़ कर इन्होंने एक बौद्ध ग्रन्थ का चीनी भाषा में अनुवाद किया । महाराजा स्कंदगुप्त के शरीरान्त के समय से ही मैत्रकवंशी सेनापति भट्टार्क काठियावाड़ में जाकर स्वतंत्र शासक हो गया था । इसने वामनस्थली में अपने अधीन एक शासक नियत करके वल्लभी नगर बनाया जहां यह सौराष्ट्र का राज करने लगा । वल्लभी नगर वर्तमान वल के समीप एक टीलों का ढेर है । यह राजघराना प्रायः ३०० वर्ष तक

चला। इसे वल्लभी घराना कहते हैं। इसका वर्णन यथा स्थान किया जावेगा।

इस स्थान पर हूणों का भी कुछ वर्णन आवश्यक समझ पड़ता है। ये लोग जन संख्या की वृद्धि के कारण नये स्थानों की खोज में-मध्य एशिया से निकले थे। इनकी दो प्रधान धारायें हुईं जिनमें से एक आक्सस नदी के पास पहुंची और दूसरी वाल्गा नदी को जाकर सं० ४३२ में यूरोप को निकल गई। इन्होंने गाथ लोगों की वह दुर्दशा की थी जिसका वर्णन ऊपर दिया गया है। जो लोग आक्सस नदी के निकट बसे उन्हींको हेप्थालाइट, अथवा श्वेतहूण कहते हैं। इस शब्द की उत्पत्ति हिऊंगनू से समझी जाती है जिसने पूर्व-काल में यूएची जाति को हराकर मध्य एशिया से खदेड़ा था। श्वेतहूणों ने काबुल के कुशन नरेश का राज्य ध्वस्त करके स० ५१२ मे भारत पर आक्रमण करने में स्कंदगुप्त से हार खाई थी। अनन्तर सं० ५२७ के आगे इन्होंने गुप्त साम्राज्य को ध्वस्त करके सं० ५४१ में फ़ारस नरेश फ़ीरोज़ को मारकर उसका भी राज्य छीन लिया। भारत मे आये हुए हूणों का मुखिया त्वरमाण था। इसने महाराजा की उपाधि धारण करके मालवा में राज्य जमाया। वहां के शासक भानुगुप्त तथा वल्लभी नरेश ने इसकी अधीनता स्वीकार की होगी, ऐसा अनुमान से माना जाता है। त्वरमाण का शरीरान्त सं० ५६७ मे हुआ और इसका पुत्र मिहिरगुल अथवा मिहिरकुल इसके स्थान पर शासक हुआ। मिहिरगुल की राजधानी पंजाब के स्यालकोट वाले जिले मे सागल नगर थी। महाभारत के समय इसी सागल उपनाम साकल नगर मे शल्य की राजधानी थी। कर्ण पर्व में लिखा हुआ है कि

साकल नगर और अजल सरिता ये दोनों बड़े अपवित्र हैं। हूणों का राज्य इस काल एशिया के कई प्रान्तों में था। इनका मुख्य नरेश हिरान के निकट रहता था। मिहिरकुल बड़ा ही निर्दय एवं रुधिरपिपासू अन्यायी कहा गया है। इसका अन्याय साधारण हूणों की निर्दयता से भी बढ़ा हुआ था।

हम ऊपर कह आये हैं कि गुप्त नरेश नरसिहगुप्त बालादित्य सं० ५६२ पर्यंत गद्दी पर रहे। मिहिरगुल की क्रूरताओं से ऊबकर आपने मध्य भारतीय नरेश यशोधर्मन से मेल करके तथा अन्य भारतीय राजाओं की भी सहायता लेकर हूणराज मिहिरगुल पर आक्रमण किया और सं० ५८५ में इसे पूर्ण पराजय देकर बंदी कर लिया। भारतीय सभ्यता की प्रचुर उन्नति करने के अतिरिक्त हूणों से भारत का छुटकारा करके गुप्त नरेशों ने उसे चिरबाधित बना रक्खा है। चीनी यात्री ह्यूयन्त्सांग भारत में इस घटना से प्रायः १०० वर्ष पीछे आया था। उसने हूण पराजय सम्बन्धी पूरा यश बालादित्य ही को दिया है। उधर यशोधर्मन ने दो विजय स्तंभ बनवा कर हूण पराजय का मुख्य यश स्वयं लिया है। इनके पूर्व पुरुषों तथा उत्तराधिकारियों के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। कुल बातों पर विचार करने से समझ पड़ता है कि बालादित्य के सहायक राजाओं में इनका पद कुछ ऊंचा था, किन्तु मुख्यता पूर्णतया बालादित्य ही की थी। गुप्त महाराज ने मिहिरगुल पर भी कृपा की और उसे बन्धन मुक्त करके हूण देश की ओर भेज दिया। मिहिरगुल की अनुपस्थिति में उसके छोटे भाई ने सागल नगर पर अधिकार जमाया था। जब मिहिरगुल ने उसे नगर छोड़ते न देखा तब छिप कर काश्मीर नरेश की शरण ली जिन्होंने कृपा

करके उसे एक छोटा सा राज्य दे दिया। कुछ वर्षों में मिहिरगुल ने युक्ति पूर्वक विद्रोह करके अपने उदार आश्रय दाता का सब राज्य छीन लिया और फिर यह यकायक गांधार के हूण नरेश पर जा पड़ा। गांधार नरेश धोखे से मारा गया तथा राजघराना निर्मूल हुआ। इस काल सिंधु नदी के किनारे मिहिरगुल ने हज़ारों मनुष्यों का वध किया और बौद्ध स्तूपों तथा मठों को खोदकर उनकी सारी संपत्ति लूट ली।" कहते हैं कि मिहिरगुल केवल प्रसन्नतार्थ काश्मीर में पहाड़ों की चोटियों पर से हाथियों को ढकेलवा कर मज़ा देखा करता था। यह नर पिशाच अपने को शैव कहता था। गांधार विजय लगभग ५६७ की घटना है। इसी वर्ष मिहिरगुल का शरीरान्त हो गया। जैसे बालादित्य ने भारतीय नरेशों को मिला कर हूणों से अपने देश का छुटकारा किया, वैसे ही तुर्कों ने फ़ीरोज़ के पौत्र फ़ारस नरेश खुसरू अनुशेरवां की अध्यक्षता में सं० ६२० से ६२४ पर्यंत लड़कर उन प्रान्तों से भी हूणों की अध्यक्षता नष्ट कर दी। यद्यपि गुप्त नरेश ने हूणों को पराजित करके देश में अपना अधिकार थोड़ा बहुत अवश्य बढ़ाया होगा, तथापि भारत मुख्यतया छोटे ही छोटे नरेशों में बँटा रहा। बालादित्य का शरीरान्त सं० ५६२ में हुआ और आपका पुत्र द्वितीय कुमारगुप्त गद्दी पर बैठा। इनका राज्य भी छोटे छोटे पूर्वीय प्रान्तों भर में ही था। अपने घराने के यह महाराज अंतिम शासक थे। इनका शरीरान्त अथवा राज्यान्त सं० ६१० के लग भग हुआ। गुप्त पराभव से नालंद की विद्या सम्बन्धिनी उन्नति में कोई बट्टा न लगा। सं० ५६६ में चीन के पहिले लियांग नरेश ऊटी ने कुमारगुप्त के पास एक पठौनी भेजी। उनकी इच्छा-

थी कि महायान धर्म के मूल ग्रन्थ प्राप्त हों तथा कोई ऐसा विद्वान भी मिले जो उनका अनुवाद कर सके। कुमारगुप्त ने ग्रंथों की खोज में योग दिया और परमार्थ नामक पंडित को चीन भेजा, इन्होंने वहां जाकर बहुत से बहुमूल्य ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। आप सं० ५०३ में केण्टन पहुंचे, सं० ५०५ में चीनी महाराज से मिले और आपने सं० ५२६ में वहीं शरीर छोड़ा। महाराज ऊटी के ही समय सं० ५७७ में दक्षिणी भारत का राजकुमार बौद्ध धर्म प्रचारार्थ चीन में जाकर लोयांग में बस गया। यह बौद्ध धर्म का भारी महंत था। महंतों में यह दक्षिणी भारत में २८वाँ समझा जाता है और चीन में पहिला। कोई कोई कहते हैं कि महाराज द्वितीय कुमारगुप्त के पीछे प्रथम जीवितगुप्त भी मगध में नरेश हुए थे। अनन्तर इस भारी वंश का राज्य नष्ट हो गया। महाराज हर्ष के पीछे गुप्तों ने एक राज्य फिर से जमाया था जिसमें कई नरेश हुए थे। इनके साथ वर्मन् कहलाने वाले कुछ मौखरि वंश के भूपाल भी शासक थे। इनका वर्णन यथास्थान आवेगा। यहां केवल इतना कहना शेष है कि गुप्त साम्राज्य का अन्त सं० ५३७ में हुआ और गुप्त राज्य का सं० ६१० के लगभग।

गुप्त काल की भारतीय उन्नति का सार्वजनिक वर्णन करने के पूर्व इस काल के वल्लभी राजाओं का भी कुछ कथन करना आवश्यक समझ पड़ता है। ऊपर कहा जा चुका है कि सं० ५३७ के लगभग भट्टार्क ने वल्लभी राज्य स्थापित किया। आपके ज्येष्ठ पुत्र पहले धरसेन आपके पीछे गद्दी पर बैठे। आपके पीछे भट्टार्क के दूसरे पुत्र द्रोणसिंह राजा हुए। इनकी प्रशंसा में लिखा हुआ है कि आप मूर्तिमान धर्म, मानवशास्त्र

नियमों के पालक, शंकर के भक्त और नम्र तथा कर्तव्य परायण थे। चौथे और पांचवें वल्लभी नरेश ध्रुवसेन प्रथम और धरपुत्र भट्टार्क के तीसरे और चौथे पुत्र थे। धरपुत्र के राजा होने मे कुछ संदेह है। आपके पुत्र गुहसेन अवश्य राजा थे जिनके विषय में सं० ६१७ और ६२५ के दानपत्र मिले हैं। गुहसेन के पुत्र दूसरे धरसेन का राजत्वकाल सं० ६२६ से ६४६ पर्यन्त समझा जाता है। धरसेन द्वितीय का दानपत्र सं० ६२८ का मिला है जिसमें लिखा है कि आप शंकर के भक्त और महाराज गुहसेन के पुत्र थे। सं० ६४४ में प्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर का शरीरान्त हुआ। गुहसेन के पुत्र प्रथम शिलादित्य के दानपत्र का समय सं० ६५२ है। अनन्तर शिलादित्य के भाई खरग्रह और तत्पुत्र तीसरे धरसेन तथा दूसरे ध्रुवसेन क्रमशः राजा हुए। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यूयन्त्सांग ध्रुवसेन ही के समय सं० ६८७ मे वला को आये थे। ध्रुवसेन का दूसरा नाम बालादित्य था। आपका राजत्वकाल सं० ६८६ से चलता है। आपके पुत्र चौथे धरसेन ने सं० ६९८ में ब्राह्मणों को कुछ भूमिदान दिया था। चौथे धरसेन की उपाधि महाराजाधिराज थी। आपने कुछ दिन के लिए भरोच पर अधिकार जमाया था। यह घटना भरोच नरेश चौथे दद्द के समय सं० ७०५ मे हुई। शेष वल्लभी कुल का वर्णन आगे यथा स्थान किया जावेगा।

चीनी यात्री ने वल्लभी राज्य का कुछ वर्णन छोड़ा है जिसका सारांश यहां लिखा जाता है। वल्लभी राज्य की परिधि प्रायः १२०० मील है और उसकी राजधानी की ६ मील। यहां की पृथ्वी, उपज, तथा जलवायु मालवा के समान हैं। जन संख्या बहुत अधिक और सघन है। यहाँ

सौ के ऊपर दसपती हैं (जिसकी संपत्ति दश लाख से कम न हो उसे दसपती कहते हैं) । १०० बौद्ध मठ हैं जिनमे प्रायः ६००० बौद्ध रहते हैं । वर्तमान नरेश क्षत्रिय हैं । ये मालवा नरेश शिलादित्य के भतीजे हैं । वल्लभी नरेश बौद्ध हैं ।

चीनी यात्री के समय इनका बौद्ध होना सिद्ध है । ताम्र-पत्रों से विदित है कि वल्लभी राज्य से अधिक बौद्ध धर्म का मान और कहीं नहीं होता था । धार्मिकपन की अनुचित वृद्धि ने ही इस राज्य को डुबो दिया । लोगों को लड़ने की रुचि न रही थी । बौद्ध धर्म पर इतनी श्रद्धा रखते हुए भी वल्लभी नरेश ब्राह्मणों को प्रचुरता से दान देते थे । ऐसे दान पत्र बहुतायत से मिलते हैं । इन लोगों ने शैव मत छोड़ कर कब बौद्ध धर्म स्वीकृत किया इसका पता नहीं है ।

महाराज स्कंदगुप्त के पीछे से महाराज हर्ष के अभ्युदय पर्यन्त भारत में फिर छोटे छोटे नरेशों का समय रहा । जैसे गुप्तों के पहिले प्रायः १०० वर्ष का ऐतिहासिक ज्ञान बहुत संकुचित है, वैसे ही महाराज बालादित्य के पीछे ६० वर्ष पर्यन्त ऐतिहासिक मूलों का शोषण हो जाता है । इस काल जो कुछ मिलता भी है, वह बहुत करके नामों और संवतों का कथन मात्र है । अब हम गुप्त कालीन भारतीय उन्नति का कुछ हाल कहकर हर्ष चरित्र के विषय में कथन करेंगे ।

भारत में मौर्य साम्राज्य पहली संसार शक्ति थी । दूसरी संसार शक्ति कुशानों की हुई और तीसरी गुप्तों की । प्रथम और तृतीय दीर्घकाल पर्यन्त संसार शक्तियां रहीं

किन्तु कुशनों की संसार शक्ति चिरस्थायी न हुई। मौर्यों ने पाश्चात्य एशिया से सम्बन्ध खोला कुशनों ने मध्य एशिया से और गुप्तों ने पूर्वी एशिया से। कुशनों और आंध्रों के समय दाक्षिणात्य भारत का व्यापार पाश्चात्य एशिया, यूनान, रोम, मिश्र, चीन और पूर्वीय एशिया से जल और थल दोनों मार्गों से था। उत्तरीय भारत का भी थल मार्ग से रोम और पाश्चात्य एशिया से सम्बन्ध था। रोम के अनेक पदार्थ दक्षिणी भारत में आते थे। भारतीय हाथी रोम के युद्धों में काम करते थे। सं० १२५ में बहुत से यहूदी रूमी अत्याचारों से भागकर मलावार प्रान्त में आ बसे थे। गुप्त राज्य के समय भी जल मार्ग द्वारा रोम, मिश्र, आदि देशों से व्यापारिक सम्बन्ध था। इन्हीं के समय में भारत का व्यापारिक एवं सभ्यता का सम्बन्ध जापान से मैडेगास्कर पर्यन्त फैला। मुकर्जी महाशय ने अपने ग्रन्थ प्राचीन जहाज़ों के वर्णन में इन बातों के अच्छे प्रमाण दिये हैं। पहली शताब्दी अजन्ता की प्रसिद्ध चित्रकारी का समय है। कुशन काल मे तिब्बत और चीन में भी बौद्ध धर्म फैला। उस काल से हर्ष के समय पर्यन्त बहुत से भारतवासी धर्म प्रचारार्थ एव अन्य प्रकार से चीन गये। उनमें से कुछ के नाम नीचे लिखे जाते हैं। धर्मकल, सोंसाङ्ग कै, पीएन, वेई चिलन, चूल्यू एन, ची क्यांग, धर्मरक्षहूण, क्यागल्यांगलूची, चूशूलान (उपरोक्त महाशय सं० २७७ से ३७० पर्यंत चीन गये), फोटो पोटोलो (बुधभद्र), कपिलवस्तु निवासी अमृतोद (बुध के चचा का वंशधर), नंद, टनमोइंग, धर्मानन्द तुर्क, कुमार जीव, धर्माक्ष्य, बुद्ध वर्म (सं० ५०७), बुध जीव, कलयसस, गुण वर्म, गुणभद्र (मध्य भारतीय), धर्मवीर (सं० ४७७ से ५१०),

चूका चूयम (सं० ५२२), संघभद्र (५४६), धर्मगति (सं० ५४८) गुणवति (सं० ५५०), धर्मरुचि (दक्षिण भारतीय), बोधिरुचि (५६५ उत्तर भारतीय), लेना मोती (रत्न मति), बुद्धसन्द (सं० ५८२ उत्तर भारतीय), मंडल्ल (सं० ५६१ कंबोडिया निवासी), संघवर्म (सं० ५५६ कम्बोडिया निवासी), परिमित (सं० ५०६ उज्जैन निवासी), गौतम प्रज्ञारुचि (सं० ५६६, दक्षिण भारतीय उत्पत्ति बनारस की), नालंद यसस (सं० ६२६ उत्तर भारतीय), उपसेन (उज्जैन पतिका पुत्र), ज्ञानभद्र (सं० ६१७), ज्ञानयशस (सं० ६२१ मागध), यशकूट (सं० ६३५ उद्यान का), ज्ञानकूट (सं० ६३५ गांधार का), धर्मप्रज्ञ (सं० ६४०), जिननरुचि (सं० ६४० उद्यान का), धर्मगुप्त (सं० ६४८ उत्तर भारतीय)। उपरोक्त नाम, हिन्दू आंखों में चीनी, धर्म नामक ग्रन्थ से लिए गये हैं। धर्म फैलाने वालों के अतिरिक्त नाविकों, व्यापारियों आदि का भी यातायात बहुत था। चोल नरेशों की प्रजा उस काल जल यात्रा बहुतायत से करती थी। फाहियेन गंगा के मुहाने से लंका पर्यन्त जल मार्ग से गया। इसके सहयात्री ब्राह्मण लोग थे। इससे सिद्ध है कि ब्राह्मणों में भी उस काल जल यात्रा होती थी। चीनी यात्री ने लंका में साबो (अरब) व्यापारियों की धनाढ्यता देखी। यहां से वह सुमात्रा गया। लंका में छठी शताब्दी के समय भारत, फ़ारस और एथोपिया के बहुत से जल यात्री आते जाते थे। महाराज हर्ष के थोड़ा पीछे सं० ७२८ में चीनी बौद्ध यात्री इत्सिंग भारत में आया। इसके रोज़नामे से प्रगट होता है कि इस समय के इधर उधर कम से कम ६० चीनी बौद्ध यात्री भारत में आये। इनमें से २२ जल मार्ग से आये

और ३७ थल मार्ग से। चीनी जल यात्रा का बाहुल्य अरब और भारत के पीछे आरंभ हुआ। यात्री लोग कैण्टन में सवार होकर सुमात्रा या जावा आते थे। वहां से जहाज़ बदल कर नीकोबार लंका पहुंचते थे। जहां से दूसरे जहाज़ पर तमलूख होते हुए गंगा के मुहाने को जाते थे। यहां से थल मार्ग द्वारा भारत भ्रमण होता था। जल-यात्रा तीन मास में पूर्ण होती थी। लोग जाड़े में चीन से चलकर गर्मी में जाते थे। टांग घराने का सम्राट टाईत् सुग मानों चीनी नेपोलियन था। इसीने ह्यूयन्त्सांग को भारत भेजा था। संवत् ७१० में जापानी विद्वान डरेशों ने ह्यूयन्त्सांग से चीन में भारतीय धर्म सीखा। महाराज हर्ष के समय चीनी राज्य पामीर में बढ जाने से चीनी याता-यात भारत में बहुत बढ़ गया था। तिब्बत द्वारा एक चौथा मार्ग खुला। एक समय चीनी प्रान्त लोयाङ्ग ही में तीन हज़ार भारतीय संत बसते थे। चीनी कसरत को भारतीयों ने उन्नत किया। चीनी नाटक पर भी भारत का अच्छा प्रभाव पड़ा और उसकी भी उन्नति भारत द्वारा ही हुई। हिन्दू विचारों का चीन में जाना केवल धार्मिक सुधारों ही का कारण नहीं हुआ, वरन् इनसे वहां बहुत सी बातों में हिन्दूपन आया। शुंग घराने के समय हिन्दुओं के धार्मिक विचार चीन में बहुत गये। ध्यान की भी प्रधानता चीन में भारत ही द्वारा हुई। वाह्य प्रदेशों में हिन्दूपन के साथ किसी प्रकार का राजनैतिक दबाव नहीं डाला गया। बाहर जाने-वाले हिन्दू धार्मिक लोग राज्य, व्यापार, आदि से पृथक रहकर केवल धर्मार्थ गये, और जिन देशों में पहुंचे वहां के निवासियों में हिलमिल कर स्वयं भी वहीं के हो गये। न

केवल भौगोलिक तथा ऐतिहासिक विचारों से वरन दार्श-निक उन्नतियों में भी जापान चीनी और भारतीय सभ्यता का परिशिष्ट रहा है। चौथी शताब्दी के पूर्व, चीनी लोग बौद्ध भिक्षु नहीं किये जाते थे अतः चीनी बौद्ध इतिहास की पहली ढाई शताब्दियों तक धार्मिक विचारों की मुख्यता वहां भारतीयों ही के हाथ रही। सं० ३६२ में भारतीय संत बुधचिंग की प्रेरणों से चीनी लोग पहले पहल बौद्ध भिक्षु किये गये। सं० ४४२ में प्रसिद्ध भारतीय कुमारजीव चीन में पहुंचा। इसके प्रयत्नों से चीन मे बौद्ध मत की भारी ख्याति हुई। इसने कई वर्ष बौद्ध ग्रंथों का चीनी में अनुवाद किया तथा ८०० सन्तों को इन ग्रन्थो पर भाष्य लिखाये। इनका शरीरान्त सं० ४७४ में हुआ। जिस काल आप चीन में विरा-जते थे, तभी चीनी यात्री फ़ाहियेन भारत में आया। इसने भी यहां से बहुत से बौद्ध ग्रन्थ लेजाकर उनका चीनी मे अनुवाद किया। कुमारजीव तथा फ़ाहियेन के कारण भार-तीय विचारों का चीन में बड़ा विस्तार हुआ।

उत्तरी भारत मे बौद्ध मत अशोक के समय से फैला और पुष्पमित्र के आदिम काल पर्यन्त यहां उसकी अच्छी उन्नति रही। यही दशा काश्मीर, अफ़ग़ानिस्तान और सुवान की थी। मथुरा आदि दो चार स्थानों को छोड़ उत्तर में जैन मत की कभी प्रधानता न रही। फिर भी हिन्दू मत की हीनता न हुई और वह बराबर चलता रहा। कुशनों के समय कई नरेश हिन्दू थे और कई बौद्ध। द्वितीय कडफ़ाइसेस शैव था। वाह्य जातियों में शकों तथा हूणों ने ब्राह्मणों का विशेष मान किया और कुशनों ने दोनों मतों को प्रायः बराबर माना। शकों में रुद्रदामन आदि ने संस्कृत को भी महत्ता दी।

इसके प्रायः १०० वर्ष पूर्व से भी यही दशा थी। गुप्तों के समय संस्कृत की पूर्ण उन्नति हुई। गुप्तों ने यद्यपि बौद्धों तथा जैनों को किसी प्रकार की क्षति न पहुंचाई और उनकी आर्थिक सहायता भी की, तथापि इन सम्राटों से हिन्दू मत को प्रचुर लाभ हुआ। आंध्रों के समय प्राकृत की जो महत्ता बढ़ी थी वह गुप्त काल में सदा के लिए गुप्त हो गई। कुछ ऐतिहासकों ने कविकुल मुकुट कालिदास को भी गुप्त समय में रक्खा है। इसका कारण मुख्यतया रघुवंश मे हूणों का वर्णन है। हमने ऊपर दिखलाया है कि हूणों का ज्ञान कालिदास को शुंग अथवा काण्व काल मे भी हो सकता था। हम इन्हें गुप्त काल में नहीं मानते जैसा कि ऊपर परिशिष्ट में दिखलाया जा चुका है। फिर भी कालिदास के निकल जाने तक से गुप्त कालीन शेष साहित्य किसी प्रकार से शिथिल नही कहा जा सकता और उसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा करनी पड़ती है। प्रसिद्ध ज्योतिष ज्ञाता आर्यभट्ट और वराहमिहिर भी इसी समय के थे। इस उन्नति काल में साहित्य, गणित, ज्योतिष, गृहनिर्माण, पाषाण का काम, गान, वाद्य, चित्रकारी आदि सभी कलाओं की अच्छी उन्नति हुई। मिस्टर केयी का मत है कि भारत में गणित की उन्नति सं० ४५७ से ७०७ पर्यन्त रही और पीछे से अवनति होने लगी। वाह्य प्रदेशों से यातायात की वृद्धि ने भी इस मानसिक उन्नति पर प्रभाव डाला था। हम ऊपर देख आये हैं कि इस काल हिन्दुओं का एशिया, यूरोप और अफ्रीका से बहुत कुछ सम्बन्ध था।

सब से पहिले भारत में आर्य लोग आये। इन्होंने भारत का सभी कुछ अपनी उन्नत और दिनो दिन बढ़ने वाली

सभ्यता के रंग में रंजित कर दिया। कई सहस्र वर्ष इसी प्रकार की उन्नति होती रही। अनन्तर बौद्ध विचारों से भारत में भारी धार्मिक हलचल मची। सिकन्दर के समय दक्षिणी यूरोप, पश्चिमी एशिया तथा भारत परमोन्नत थे। सिकन्दर ने इन तीनों की सभ्यता को एक प्रकार से मिलाया। सिकन्दरी कसौटी पर कसे जाने से पश्चिमी एशिया की सभ्यता ने अपनी द्युति खो दी किन्तु भारतीय तथा यूनानी सभ्यतायें पूर्ववत् जगमगाती रहीं। अन्तर भारत ने घरू उन्नति तो बहुत अच्छी की किन्तु शक्ति रखते हुए भी विदेशों की ओर लक्ष्य न किया। उधर यूनानियों ने बढ़कर पश्चिमी एशिया को अपना लिया। जब निकट वर्तिनी होने से इन दोनों सभ्यताओं का विशेष संघट्ट हुआ, तब युद्ध प्रथा धार्मिक शिक्षा आदि को कुछ कुछ ग्रहण करके यूनानी सभ्यता ने भी भारतीय सभ्यता के आगे सिर झुकाया। वहां की युद्ध प्रणाली का प्रयोग भारत में कुछ भी न हुआ, किन्तु भारतीय धनुर्धरों और हाथियों का व्यवहार यूरोप बेखटके करने लगा। इसी भांति मिलिन्द आदि ने बौद्ध मत तो स्वीकृत किया किन्तु यूनानी मत को किसी ने यहां पूछा तक नहीं। तदनन्तर दो चार शताब्दियों के भीतर शक, यूएची और हूण नाम्नी तीन जातियां मध्य एशिया से चल-कर पश्चिमी एशिया तथा भारत में आईं। इनके प्रभाव से पश्चिमी एशिया में यूनानी प्रभुत्व नष्ट हो गया। भारत में इन्होंने कुछ आतंक जमाया किन्तु आते ही आते इन तीनों पर भारतीय सभ्यता ने धर्म, विचार, रहन सहन आदि विषयों में अपना सिक्का जमाया और क्रमशः इनके प्रभुत्व को भी निर्मूल करके गुप्त साम्राज्य द्वारा बढ़ी हुई भारत की

सभ्यता का जगमगाता हुआ रूप ससार के सामने उपस्थित किया। भारतीय विचार यूनानियों, शकों, कुशनों और हूणों के कारण कुछ भी न बदले। यूनानी लोग तो यहाँ से बाहर ही रहे और अन्तिम तीन जातियाँ भारतीयों से मिलकर उनसे अभिन्न हो गईं, तथा हिन्दू सभ्यता से लाभ उठाकर ऊंची बनीं। भारत जैसा का तैसा बना रहा और भारतीयता में कोई क्षति न पहुंची, वरन् उसकी संमिश्रण शक्ति को इतनी ज्योति मिली कि सभी को मिलाकर उसने एकीकरण का अभूतपूर्व उदाहरण दिखलाया। सजीव शरीर का यह एक बडा गुण है कि भोजनादि में कोई पदार्थ ग्रहण करके वह उसे अपना बना लेता है। हम दाल, भात, गेहूं, भाजी, मांस, आदि असंख्य पदार्थों मे से चाहे जो कुछ खावें, किन्तु उन सब को अपनाकर अन्त में रुधिर, मांस आदि ही बनाते हैं। उनकी भिन्नता से रुधिर मांसादि की मात्रा मे चाहे जो कुछ भेद हो परन्तु उसमें भिन्नता नहीं होती। इस प्रकार इन सब नवागन्तुक जातियों को अपने में मिलाकर हिन्दू सभ्यता और समाज ने अपनी सजीवता प्रमाणित कर दी।

यद्यपि शक, हूण, आदि के राज्य इन नामों से उठ गये, तथापि ये जातियां भारतीय समाज से लुप्त न हुईं। छत्तीस क्षत्रियों में से एक की अब भी हूण संज्ञा है। गुर्जर क्षत्रियों में शकों का भी रुधिर कुछ मिल गया, इसमें संदेह नहीं रहता। इनमे हूण रुधिर भी माना गया है। शकों के राजत्वकाल में भी उनका आंध्र क्षत्रियों से बेटी 'व्यावहार होने लगा था। गूजरों मे इस काल दो शाखायें हैं जिनमें से एक क्षत्रिय है, दूसरी शूद्र। समझ पडता है कि राजन्य घराने के लोग क्षत्रिय हो गये और साधारण मनुष्य सामाजिक

श्रेणी में उनसे नीचे रहे। वर्तमान जाटों में भी हिन्दुओं तथा इन तीन जातियों के रुधिर मिले हुए समझ पड़ते हैं। आज कल भी बुन्देलखंडी क्षत्रियों में एक शाखा गोंड़ कहलाती है, उनका गोंड़ों से कुछ सम्बन्ध प्रत्यक्ष ही प्रगट होता है। यूरोपीय विद्वान बहुत सी क्षत्रिय जातियों में बाह्य रुधिर होने का विचार करते हैं। उनकी ये शंकायें उचित से अधिक बढ़ी हुई समझ पड़ती हैं। फिर भी अग्निकुल के चार क्षत्रिय होने से प्रत्यक्ष ही समझ पड़ता है कि ये जातियां समय समय पर यज्ञ द्वारा अहिन्दू से हिन्दू बनाई जाकर सामाजिक उन्नति के कारण क्षत्रिय मानी गईं। इन सब का हिन्दू बनाया जाना एक ही समय में एक ही यज्ञ द्वारा न समझना चाहिये, वरन् समय समय पर ये शुद्धि संस्कार कई शताब्दियों में होते रहे होंगे।

आंध्र और कुशन राज्य वंशों के समान गुप्त घराने के विषय में भी यह नहीं ज्ञात है कि इसका अंतिम राजा कब और कैसे उतारा गया। केवल इतना ज्ञात है कि भारत इस काल भी छोटे छोटे राज्यों में बट गया, जिसका इतिहास अंकित करने की किसी ने परवाह भी न की। जब प्रायः ६० वर्ष वाले अंधकार के पीछे संवत् ६६१ में पर्दा उठता है, तब हम प्रभाकर वर्धन बैस (क्षत्रियों की एक शाखा) को थानेश्वर (स्थानेश्वर अथवा कुरुक्षेत्र) के राजसिंहासन पर बैठे पाते हैं। आपने मालवों, वायव्य पंजाब के हूणों, गुर्जरों (पंजाब अथवा राजपूताना के) तथा अन्य पड़ोसी राजाओं को पराजित करके अपना प्रताप बहुत बढ़ा लिया था। आप की माता महासेना गुप्ता गुप्त घराने की राज कन्या थीं। जान पड़ता है कि जैसे लिच्छवी राजकन्या के प्रभाव से प्रथम

गुप्त नरेश चन्द्रगुप्त का प्रताप बढ़ा था, वैसे ही इस गुप्त राजकुमारी से सम्बन्ध होने पर प्रभाकर वर्धन के पिता की प्रभा देदीप्यमान हुई होगी। यह भी समझ पड़ता है कि गुप्त घराने का राज्य वास्तव में लुप्त नहीं हुआ था, वरन् उसकी अंतिम उत्तराधिकारी यही राजकन्या थी, जिसके प्रभाव से इन बैसों की कला जगमगाई। अतएव बैस साम्राज्य एक प्रकार से गुप्त साम्राज्य ही का विस्तृत परिशिष्ट समझ पड़ता है।

संवत् ६६१ में प्रभाकर वर्धन ने अपने युवराज राज्यवर्धन को उत्तर पश्चिम की ओर हूणों को आक्रांत करने के लिए भेजा। उनके कुछ पीछे राजकुमार हर्षवर्धन रिसाले की सेना लेकर प्रस्थित हुए। इनकी अवस्था उस काल केवल १५ वर्ष की थी और युवराज से ये ४ वर्ष छोटे थे। राज्यवर्धन पहाड़ पर चढ़ गये किन्तु हर्ष तराई के जंगलों में शिकार खेलने लगे। इसी दशा में आपने संवत् ५६२ में पिता की भारी अस्वस्थता का समाचार पाया। हर्ष तत्काल थानेश्वर पलट आया। अनन्तर प्रभाकर वर्धन का शरीरान्त हो गया। प्रभाकर हर्ष ही को अधिक चाहते थे, सो कुछ राजसेवियों ने इन्हीं को गद्दी पर बिठलाना चाहा। इस विचार में हर्ष की सम्मति नहीं समझ पड़ती है। इसी बीच राज्यवर्धन भी वापस आये और समुचित रीति से गद्दी पर बैठे। इनकी बहिन राज्यश्री मौखरि वंश के राजा कन्नौज पति गृहवर्मन को ब्याही थी। इस राजा को मालवीय नरेश ने मार कर राज्यश्री को बन्दी कर लिया। यह समाचार मिलते ही राज्यवर्धन १०००० घुड़सवार लेकर कन्नौज चढ़ दौड़ा और मालवीय नरेश को पराजित करके राज्यश्री

की खोज में लगा। मध्य बंगाल का शासक शशांक मालवीय नरेश का मित्र था। इसने वहीं पहुंच कर धोखे से राज्य वर्धन को मार डाला। यह समाचार हर्ष को मिलते समय यह भी ज्ञात हुआ कि राज्यश्री बन्धन मुक्त होकर कहीं विन्ध्याटवी को भाग गई है। पहिले तो कुछ राज कर्मचारी राज्यवर्धन के होते हुए भी हर्षवर्धन को ही राजा बनाना चाहते थे किन्तु अब उनके बालवयस्क होने के कारण आशा काली होने लगी। किसी कारण से स्वयं हर्ष भी गद्दीपर बैठना नहीं चाहते थे। संभव है कि राज्यवर्धन का कोई छोटा लड़का हो अथवा कोई और बात हो। इस अवसर पर हर्षवर्धन के मातुलपुत्र भांडी ने हर्ष ही को राजा बनाने की संमति दी। आपको वयस्क राजकुमार समझ कर सभों ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। अतः सं० ६६३ में अपने भाई के पीछे महाराज हर्ष गद्दी पर तो बैठे. किन्तु इन्होंने अपना राज्याभिषेक ६ वर्ष पर्यन्त न किया। यह उत्सव सं० ६६९ में हुआ। फिर भी आपने अपना संवत् अक्तूबर ६६३ ही से चलाया। गद्दी पर बैठने ही हर्ष ने बहिन खोजने के लिए अति शीघ्र स्वयं प्रस्थान किया और विन्ध्या के वन में उसे ऐसे समय ढूंढ़ निकाला जब वह बचाव की सब आशा छोड़ कर अनुयायियों समेत जल कर मर जाने ही को थी। हर्ष ने बहिन का तो मोचन किया किन्तु आपके इस खोज में व्यस्त रहने से उधर भ्रातृहंता शशांक बचकर निकल गया।

महाराज हर्ष ने अपनी मातामही के कुटुम्बी गुप्तों के समान साम्राज्य स्थापन का सबसे पहिला विचार किया। इस काल आपके पास पांच हज़ार हाथी, बीस हज़ार घुड़-

सवार और पचास हज़ार पैदल थे। आपकी सेना में रथ नहीं रक्खे गये थे। इस सेना को लेकर हर्ष ने साढ़े पांच वर्षों में भारत के उत्तर पश्चिमी भाग तथा, वंग का बृहदंश जीत लिया। इस समय के पीछे आपके पास ६०००० हाथी और एक लाख घुड़सवार हो गये थे। यह विजय सं० ६६१ में समाप्त हुई और महाराज हर्ष प्रायः समग्र उत्तरी भारत के नरेश हो गये। उधर दक्षिण में चालुक्य महाराज दूसरे पुलकेशिन ने हर्ष के ही समान युद्ध करके अन्य राजाओं को पराजित किया था और अपनी रियासत बढ़ाकर उसे साम्राज्य बना लिया था। तामिल देश में इसी काल नरसिंह वर्मन प्रथम पल्लव भी बड़ा प्रतापी महाराज था। यही दशा पांड्य नरेश ने डुंजेलियन एवं तत्पुत्र अरिकेसरि मार वर्म्मन की थी। अतएव इस समय भारत के तीनों प्रधान भागों में भारी महाराज थे। सब से बड़ा प्रभाव हर्ष का था, फिर पुलकेशिन का, तीसरा नम्बर नरसिंह वर्म्मन का और चौथा अरिकेसरि का कहा जा सकता है। फिर भी विचित्रता यह हुई कि हर्ष पुलकेशिन से हारा, यह नरसिंह वर्म्मन से, और नरसिंह वर्म्मन अरिकेसरि से। इसका ब्योरा यों हुआ कि महाराज हर्ष ने पुलकेशिन को भारी प्रभाव युक्त समझ कर उसका न जीता जाना अपने साम्राज्य के लिए संशय की बात समझी। अतएव सं० ६७७ में अपने चुने हुए सेनापति तथा भरोसे की सेना लेकर हर्ष ने स्वयं पुलकेशिन के राज्य पर धावा करना चाहा। यह देख पुलकेशिन ने नर्मदा पार करने वाले मार्गों को इस दक्षता से रुद्ध किया कि महाराज हर्ष को विफल मनोरथ होकर वापस आना पड़ा। सं० ६९० के पीछे हर्ष ने वल्लभी

राज्य पर धावा करके वहां के राजा दूसरे ध्रुवसेन को पूर्ण पराजय दे दी। वल्लभी नरेश पुलकेशिन के मित्र भरोच्च महाराज के यहाँ भाग गया। थोड़े ही दिनों में संधि हो गई जिसके द्वारा ध्रुवसेन ने अधीनता स्वीकार की, और हर्ष ने अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर दिया। इसी युद्ध से वल्लभी नरेश के अधीन अनन्दपुर, कच्छ, दक्षिणी कांठियावाड़ आदि के नरेश भी हर्ष के अधीन हुए। सं० ७०० में हर्ष ने बंगाल की खाड़ी के निकट गंजाम के उद्दत नरेशों पर आक्रमण किया। इस प्रकार हर्ष के साम्राज्य में नैपाल, उत्तरी भारत, मालवा, गुजरात, और सौराष्ट्र थे। पंजाब तथा राजपूताना का बृहदंश आपकी सीमा के बाहर था। अशोक का साम्राज्य सबसे बड़ा था, गुप्तों का उससे छोटा था और हर्ष का गुप्तों वाले से भी कुछ छोटा था। आपकी दक्षिणी सीमा नर्मदा नदी थी और उत्तरी हिमाचल। पूर्व में आसाम नरेश तक आपके अधीन थे। स्थानीय राजाओं तथा शासकों को बहुत कुछ अधिकार था, किन्तु वर्षा ऋतु को छोड़ महाराज हर्ष भी बराबर दौरा किया करते थे। प्रत्येक ठहरने के स्थान पर घेतों और डालियों के निवास स्थान बनाये जाते थे और वहाँ से चलने पर जला दिये जाते थे।

महाराज हर्ष ने कन्नौज को राजधानी बनाया। कौशिकों के समय यह नगर पांचाल देश का राज्य स्थान था। अनन्तर महाभारत के समय पांचाल के दो भाग हो गये जिनमें उत्तरी पाँचाल द्रोण के अधीन हुआ और दक्षिणी द्रुपद के। द्रोणाचार्य्य की राजधानी अहिछत्र में थी और द्रुपद की काम्पिल्य में। अहिछत्र को अब रामनगर कहते हैं। यह ज़िला बरेली

में है। हर्ष के समय भी यह अच्छा स्थान था और ह्यूयन्त्सांग यहां गया था। काम्पिल्य ज़िला फ़रुख़ाबाद में है। ह्यूयन्तसांग ने कन्नौज में (सं० ६६३ और ७०० में) सौ से ऊपर दोनों बौद्ध सम्प्रदायों के मठ पाये जिनमे १०००० से अधिक भिक्षु रहते थे। हिन्दुओं के भी २०० से अधिक मंदिर और हज़ारों पुजारी थे। उस काल कन्नोज पुष्ट दुर्ग से रक्षित था और गंगा जी के पूर्वी किनारे पर चार मील तक बसा था। इसमें सुन्दर फूल बाग़ और स्वच्छ सरोवर प्रचुरता से थे। निवासी सधन, पाटंबरधारी, कृतविद्य तथा कारीगर थे। उनमें कई कुटुम्ब बड़े ही धनी थे। हर्ष का शासन दयायुक्त सिद्धांतों पर अवलंबित था। महाराज हर्ष के समय तिब्बत नरेश स्गम्पो ने तोगमी सम्बोता को संस्कृत भाषा तथा बौद्ध ग्रंथ पढ़ने को भारत भेजा। पलटने पर सम्बोता ने उत्तरी भारत की वर्णमाला को तिब्बत में फैलाया। सं० ६६६ में श्याम नरेश क्रेक के समय बौद्ध मत उस देश में फैला। मुख्य आय ख़ालसा भूमि से होती थी। ऐसी भूमि से उपज का पष्ठांश करस्व रूप लिया जाता था। बड़े राजसेवियों को वेतन स्वरूप माफ़ी दी जाती थी। बेगार वाले काम के लिए मज़दूरी दी जाती थी। राज कर मृदु था। धार्मिक संस्थाओं के लिए उदार दान दिया जाता था। भारी अपराध कम होते थे किन्तु सडकों पर कुछ लूट चलती थी। चीनी यात्री ह्यूयन्त्सांग को मार्ग मे कई बार डाकुओं ने लूटा था। राजदंड में जेल की सज़ा प्रायः दी जाती थी। क़ैदी मानों मनुष्य ही न थे। उनके मरने जीने की कोई विशेष पर्वाह न करता था। भारी अभियोगों के दंड में राजाज्ञा द्वारा नाक, कान, पैर, हाथ आदि काट लिये

जाते थे। पितृभक्ति न करने वाले को भी कभी कभी ऐसे दंड मिलते थे और कभी देश निकाला दे दिया जाता था। छोटे अपराधों के लिए धनदण्ड भी होता था। जल, अग्नि, विष, आदि के प्रयोगों से भी अपराधी होने वा न होने का निर्णय किया जाता था। इन बातों से समझ पड़ता है कि हर्षीय समाज गुप्तकालिक समाज से बहुत नीचे चला गया था। प्रत्येक प्रान्त में घटना लेखक नियुक्त थे किन्तु उनके लेखों के उदाहरण अब नहीं मिलते। विद्वत्ता का मान राजा और प्रजा दोनों करते थे तथा ब्राह्मणों एवं बौद्ध भिक्षुओं में इसका प्रचार भी बहुत अच्छा था। सर्व साधारण में भी विद्याध्ययन भली भांति होता था। स्वयं हर्ष बहुत सुन्दर अक्षर लिखते थे। आपके बनाये हुए तीन संस्कृत नाटक, एक व्याकरण और कुछ स्फुट छंद अब भी मिलते हैं। नागानन्द, रत्नावली, और प्रियदर्शिका आपके नाटक हैं। आपके राजकवि बाण भट्ट भारी पंडित तथा कवि थे, जिनका गद्य ग्रन्थ कादंबरी उपन्यास बड़े ही ऊंचे दर्जे की रचना है। आपकी प्रशंसा में किसी कवि ने यहां तक लिखा है कि "बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्" आपका दूसरा ग्रन्थ हर्ष चरित्र बड़े मार्के का है। इसमें महाराज हर्ष का मरण पर्यन्त वर्णन है। इस ग्रन्थ का ऐतिहासिक मूल्य भारी है। महाराज हर्ष अपनी बहिन राज्यश्री के प्रभाव तथा अन्य कारणों से कुछ वर्ष राज्य करने के पीछे बौद्ध धर्म की ओर अधिक झुकने लगे। आप को विविध धर्मों के पंडितों के शास्त्रार्थ तथा तर्क सुनने की बड़ी रुचि थी। इन शास्त्रार्थों के समय विधवा राज्यश्री भी महाराज के साथ बैठती थी। महाराज पहिले तो हीनयान धर्म की ओर झुके, किन्तु चीनी यात्री ह्यूयन्त्सांग के तर्क सुनकर

अति शीघ्र महायानीय बौद्ध हो गये। उस काल प्रत्येक मनुष्य को इच्छानुसार धार्मिक विश्वास रखने का पूर्ण अधिकार था। राज्य घराने की ओर दृष्टि डालने से ही इसका अच्छा चित्र मिलता है। हर्ष के प्राचीन पूर्व पुरुष पुष्पभूति शैव थे। प्रभाकर वर्धन सूर्योपासक थे। राज्यश्री तथा राज्यवर्धन बौद्ध थे। स्वयं हर्ष बहुत काल तक शिव, सूर्य और बुद्ध तीनों को मानते रहे। अंत में, पहिले हीनयान संप्रदाय के बौद्ध होकर पीछे से महायान संप्रदाय को मानने लगे। आपने तीनों देवताओं के नामों पर अच्छे मंदिर बनवाये। आपके समय में पौराणिक हिन्दू मत का अच्छा प्रचार था और प्राचीन पुराणों का पूजन भी होने लगा था। जैन मत का प्राधान्य उत्तरी भारत में बिलकुल न था और बौद्ध मत की भी लोकप्रियता बहुत घट चुकी थी। विविध मतों के अनुयायियों में विग्राड् बहुत कम होता था और वे सब हिलमिल कर बहुत करके प्रसन्नता पूर्वक रहते थे। फिर भी यदा कदा धार्मिक विद्वेष भी दिखलाई पड़ जाता था। मध्य बंगाल के शासक शशांक ने शैव होने के कारण सं० ६६० के लगभग बौद्ध धर्म पर बड़े ही क्रूर आघात किये थे। इसने बुद्ध गया में बोधि वृक्ष को जड से खोदकर फूंक दिया और तथागत के पादांकित पाषाण को फोड़ डाला। इसने नैपाल की तराई तक मठों को नष्ट करके बौद्ध भिक्षुओं को खदेड़ दिया। मगध के अंतिम स्थानिक मौर्य नरेश ने बोधि वृक्ष को फिर से उस स्थान पर लगवाया। ह्यूयन्त्सांग ने लिखा है कि यदा कदा हीनयान और महायान के अनुयायियों में भी घोर विग्राड् हुआ करता था। बौद्धों का राज सम्मान देखकर पौराणिक हिन्दुओं के हृदय में भी कभी कभी ईर्षा एवं दाह उत्पन्न होता था,

अपने अंतिम समय के कुछ वर्ष पूर्व हर्ष के चित्त में धार्मिकता बहुत बढ़ गई थी। वह स्वयं संतों की भांति रहते थे और जीव हिंसा को अत्यन्त कठोरता से रोकते थे। उनका धर्म सम्बन्धी कार्य इतना बढ़ा कि वह खाना और सोना भूल गये। राजाज्ञा निकाली गई कि समस्त राज्य में कोई भी जीवधारी किसी दशा में न मारा जावे और कोई भी मांस भक्षण न करे। इसके उल्लंघन कर्ता को वध दंड का विधान था और वह किसी दशा में क्षमा का अधिकारी नहीं हो सकता था। समझ पड़ता है कि इस काल हर्ष का राज्य बड़ा ही अप्रिय हो गया होगा। इन कठोरताओं के साथ बहुत सी लोकहित कारिणी संस्थायें में भी थीं। पथिकों, धन हीनों, रोगियों आदि के लिए अच्छा प्रबन्ध था। शहरों तथा देहात में धर्मशालायें थीं जहां भोजनादि के अतिरिक्त वैद्य भी थे। हिन्दू और बौद्ध धर्मों के लिए सैकड़ों संस्थायें थीं विशेषतया बौद्धों के लिए। गंगा के तट पर सौ सौ फुट ऊंचे हज़ारों स्तूप बने तथा बौद्ध मठ निर्माण किये गये। भारत में इस काल २००० बौद्ध भिक्षु थे, ऐसा ह्यूनत्सांग का विचार था। सं० ६११ में आपने कन्नौज में गंगा तट पर एक भारी धर्म सभा की। इसमें आसाम नरेश कुमार तथा वल्लभी नरेश एवं १८ अन्य करद भूपाल एकत्रित हुए थे। ४००० बौद्ध भिक्षु और ३००० जैन और ब्राह्मण दान लेने के लिए एकत्रित किये गये थे। बुद्ध की एक स्वर्ण मूर्ति हर्ष के बराबर बनाई गई थी और दूसरी एक गज़ ऊंची। यह दूसरी प्रतिमा नित्य प्रति स्नानार्थ गंगा जी को ले जाई जाती थी। स्वयं हर्ष इन्द्र की भांति वस्त्र धारण किया करते थे और आसाम नरेश कुमार की भांति। मार्ग में महाराज स्वर्ण, पुष्प, मोती, तथा

अन्य बहुमूल्य पदार्थ लुटाते हुए चलते थे। यह कार्यवाही कई दिन तक चली। बौद्धों के प्रति भारी सहृदयता देखकर किसी ने वहां का मठ फूंक दिया तथा कोई घातक खांडा लेकर महाराज पर बार करने दौड़ा। वह पकड़ लिया गया और आग भी बड़ी कठिनता से बुझाई गई। समझा गया कि ये उत्पात ब्राह्मणो की ओर से कराये गये थे। अतएव मुख्य अपराधियों को प्राण दण्ड मिला और ५०० ब्राह्मण देश से निकाले गये। उपरोक्त घटनायें माघ या फाल्गन की हैं। थोड़े ही दिनों में प्रयाग पर पंच वार्षिक महती सभा की गई। ऐसी सभाओ में तत्काल पर्यंत संचित राजकोश धनहीनों, संतों आदि को बांट दिया जाता था। सं० ७०० वाली सभा हर्ष के समय की छठवीं पंचवार्षिक सभा थी। इसमें भी सब करद भूपाल एकत्रित हुए थे और कुल मिला कर ५००००० मनुष्य थे। बहुत से ग़रीब मनुष्य, अनाथ बच्चे और संत, भिक्षुक आदि उपस्थित हुए थे। दान ग्रहणार्थ बहुत से बौद्ध भिक्षु और ब्राह्मण भी बुलाये गये थे। यह कार्यवाही ७५ दिन तक चली। पहिले दिन बुद्ध प्रतिमा पर न्योछावर करके बहुत से बहुमूल्य पदार्थ तथा वस्त्र बांटे गये। दूसरे तथा तीसरे दिन सूर्य तथा अन्य प्रतिमाओं पर वैसा ही किया गया। भेद केवल इतना था कि एक बौद्ध प्रतिमा पर जितने मूल्य के वस्त्रादि को न्योछावर की गई उतनी सब हिन्दू देवताओ पर मिला कर हुई। चौथा दिन बौद्ध धार्मिक पुरुषों को दान वितरणार्थ था। ऐसे प्रत्येक पुरुष को सौ सुवर्ण मुद्रा, एक मोती और सूती पोशाक मिली तथा भक्ष्य, पेय पदार्थ, फूल, इत्र, आदि भी दिये गये, अनन्तर बीस दिन तक ब्राह्मणो को दान दिया

गया और फिर जैन तथा अन्य मतावलंबियों ने दश दिन तक दक्षिणा पाई । इसके पीछे धनहीनों, अनाथों आदि की बारी आई । अंत में सेना को छोड़ राजकोश तथा निज धन वस्त्रालंकार आदि में से महाराज के पास कुछ भी न रहा । अनन्तर आपने राज्यश्री से मांग कर उनका उतरा कपड़ा पहिना और सब पदार्थ दान देकर बहुत प्रसन्नता मनाई ।

ह्यूयन्त्सांग से पंडित लोग वाद भी किया करते थे । समझ पड़ता है इन वादों में कभी कभी झगड़ा भी हो पड़ता था, क्योंकि एक राजाज्ञा निकाली गई थी कि यदि कोई इस धर्मोपदेशक को छुवेगा अथवा इस पर हाथ उठावेगा, उसको प्राणदण्ड मिलेगा और जो इनके विरुद्ध कुछ कहेगा उसकी जिह्वा निकाल ली जावेगी, किन्तु जो इनके उपदेशों से लाभ उठाना चाहेगा उसे इस आज्ञा से कोई भय न होगा । यात्री का कथन है कि इसके पीछे कोई उससे वाद करने वाला न आया । ह्यूयन्त्सांग ने हर्ष के गुरु मित्रसेन से सं० ६८९ के लग भग बौद्ध धर्म सीखा था । मित्रसेन उस काल ९० वर्ष के थे । आप गुणप्रभ और वसुबन्धु के शिष्य थे । प्रयागीय संमेलन से दशवें दिन ह्यूयन्त्सांग को देश जाने की आज्ञा मिली । महाराज तथा अन्य राजा गण उन्हें बहुत दक्षिणा मार्ग व्यय के लिए देते थे, किन्तु उन्होंने कुछ न लिया । उदित नामक राजा आपको सीमा प्रान्त पर्य्यन्त पहुंचा आने पर नियुक्त किये गये । ह्यूयन्त्सांग की यात्रा सं० ६८६ में आरंभ हुई और सं० ७०२ में वे पलट कर चीन चले गये । इन्होंने १६ वर्ष की भारतीय स्थिति में बहुत से प्रान्त देखे और उनका वर्णन अपने ग्रन्थ में लिखा । इसी ग्रन्थ के कारण उनकी यात्रा इतिहास प्रसिद्ध है । हर्ष के समय का

विवरण इस यात्रा ग्रन्थ तथा बाणकृत हर्ष चरित्र से बहुत अच्छा मिलता है। ह्यूयन्त्सांग अपने साथ चन्दन, चांदी और सोने की कई बौद्ध प्रतिमायें, २० घोड़ों पर लदे हुए धर्म ग्रन्थ, और भगवान बुद्ध से सम्बन्ध रखने वाले १५० प्राचीन पदार्थ अपने साथ ले गया। अनन्तर १६ वर्ष फिर परिश्रम करके उसने ७४ भारतीय ग्रन्थों का चीनी में अनुवाद किया। तदनन्तर सं० ७१८ से ७२१ तक शांति पूर्वक जीवन व्यतीत करके ह्यूयन्त्सांग परलोक वासी हुआ। आपके अन्य भारतीय वर्णनों का कथन यथा स्थान किया जावेगा। महाराज हर्ष का शरीरान्त सं० ७०४ या ७०३ में हुआ। आपके जीवन काल में चीन से यातायात बहुत रहता था और दोनों राजाओं के बीच भेंट भी आया जाया करती थी। एक भेंट सं० ७०२ में चीन से आई थी। दो वर्ष के भीतर चीनी भूपाल ने वंगहीवेन्त्से के साथ ३० घुड़सवार देकर फिर भेंट भेजी। महाराज के मरने तथा भारी दुर्भिक्ष से उस काल भारत में बड़ा गड़बड़ था। इस दशा में हर्ष का एक अमात्य ब्राह्मण अर्जुन राजा बन बैठा था। इसने उपरोक्त चीनियों का बड़ा अपमान किया तथा उनके सब पदार्थ लूट लिये। इसका कारण धार्मिक विरोध था। वंगहीवेन्त्से अपने अनुयायियों समेत रात को भाग कर छिपता हुआ किसी प्रकार नैपाल पहुंचा। यह सुनकर तिब्बत का विख्यात शासक स्रांगत्सा-गंपो बड़ा क्रुद्ध हुआ। वह बौद्ध होने के अतिरिक्त चीनी महाराज का सम्बन्धी भी था। अतएव उसने चुने हुए तिब्बती १२०० घुड़सवार तथा ७००० नैपाली घुड़सवारों का रिसाला भारत पर आक्रमण करने के लिए भेजा। नैपाल राज्य उस काल गंपो ही के अधीन था। इस रिसाले ने तीन दिन घेरा डाल

कर तिरहुत की राजधानी छीन ली । ३००० भारतीय सैनिक मारे गये और १०००० नदी में डूब गये । अर्जुन भागा और फिर से सेना एकत्रित करके युद्धोन्मुख हुआ । इस युद्ध में हार कर वह समस्त राज परिवार समेत बंदी कर लिया गया । १२००० सैनिक भी बंदी हुए जिनमें से १००० मार भी डाले गये । विजयी दल ने ३०००० बैल और घोड़े पाये । ५०० गढ़ियों ने इनके सामने सर झुकाया तथा आसाम नरेश कुमार ने बहुत सा सामान भेजा । वंग अर्जुन समेत चीन पहुंचा जहां उसका इस विजय के कारण भारी मान हुआ । महाराज हर्ष के पीछे भारत में जो अराजकता फैली वह हिन्दू नरेशों ने ५५० वर्षों में भी दूर न कर पाई । अंत में हिन्दू शासन विनाश द्वारा मुसलमानों ने ५५० वर्ष से खोये हुए साम्राज्य को भारत में फिर से स्थापित किया ।

अब हम महाराज हर्ष के समय पर्यन्त भारत के अन्य प्रान्तों का कुछ हाल कहेंगे । ह्यूयन्त्सांग ने लिखा है कि उस काल काश्मीर का बल अच्छा था । कश्मीरी नरेशों ने तक्षशिला तथा सिंगपुर आदि सुलेमान पहाड़ के राज्यों को जीत कर अपने अधीन बना रक्खा था । सिंध और व्यास नदी के बीच वाले देश में वह राज्य था जिसकी राजधानी साकल थी । मुल्तान और पोफाटो इस राज्य के अधीन थे । सिंध में शूद्र जाति का एक बौद्ध राजा था जो १०००० बौद्ध भिक्षुओं का पालन करता था, ये भिक्षु निन्द्य कर्मों में प्रवृत्त कहे गये हैं । इस वंश की राजधानी अलोर थी । इस घराने का पहिला राजा दीवाइज था । जिसके पीछे तत्पुत्र राय सिहरस (सहर्षण) प्रथम राजा हुआ । अनन्तर राय साहसी प्रथम, राय सिहरस द्वितीय तथा राय साहसी द्वितीय क्रम

से एक दूसरे के पीछे राजा हुए। ये एक दूसरे के पुत्र कहे गये हैं। डफ़ महाशय के अनुसार इस घराने ने १३७ वर्ष राज्य किया। स्मिथ महाशय ने लिखा है कि इस कुल का अंतिम नरेश साहसी प्रायः सं० ७०३ में अरबों द्वारा युद्ध में मारा गया। अतएव दीवाईज का राज्य सं० ५६५ के लगभग प्रारंभ हुआ होगा। हर्ष के समय सिंध में राय सिहरस द्वितीय का राज्य समझ पड़ता है। इस काल बलूचिस्तान और दक्षिणी पंजाब भी सिंध के अधीन थे। सिंध की उत्तरी सीमा हकरा अथवा ओहिन्दा नदी थी जो अब लुप्त हो गई है। सं० ७०१ में अरब वालों ने बलूचिस्तान पर आक्रमण करके युद्ध में दूसरे सिहरस को मार डाला और मकरान पर अधिकार जमाया। सिहरस का पुत्र साहसी द्वितीय इन्हीं लोगों से लड़कर प्रायः ७०३ सं० में मारा गया।

भारतीय ऐतिहासिक मुंशी देवीप्रसाद ने मुसलमानों के इतिहास ग्रन्थों के आधार पर स्मिथ महाशय के उपरोक्त समय से कुछ प्रतिकूलता की है। आपका कथन है कि साहसी का शरीरान्त स० ७०० अथवा सं० ६७८ में हुआ। साहसी के उत्तराधिकारी चाच अथवा जच्च का शरीरान्त आप सं० ७४० में बतलाते हैं और यह भी कहते हैं कि इसका राजत्व-काल ६२ अथवा ४० वर्ष था। कुछ ग्रन्थों में यह काल ६२ वर्ष लिखा है और कुछ में चालीस। हम अन्तिम संख्या को ही ठीक मानते हैं क्योंकि ऐसा करने से स्मिथ आदि के कथन भी मुंशी जी के कथनो से बहुत कुछ मिल जाते हैं। कहते हैं कि राय साहसी की अस्वस्थता वाली दशा में एक बार मन्त्री ने एक ब्राह्मण जच्च को किसी कार्य्य के लिए साहसी के पास भेजा। रानो सोहन्दी तथा राजा इस ब्राह्मण के वाणी चमत्कार

से बहुत प्रसन्न हुए। अब इसे प्रतिहारी का काम मिला और यह भीतर बाहर बेखटके आने जाने लगा। समय पर सोहन्दी की कृपा इसपर विशेष बढ़ी। पहले यह इनकार करता रहा किन्तु रानी ने न माना और इन दोनों में अनुचित व्यवहार स्थापित हो गया। राजा के मरने पर सोहन्दी रानी के प्रयत्नों से जच्च राजा हो गया और लोगों की सलाह से इसने रानी के साथ खुल्लमखुल्ला विवाह कर लिया। यह देख चित्तौर अथवा जेपूर का राना महरत बहुत अप्रसन्न हुआ। वह साहसी का दामाद कहा गया है और इसीसे जच्च को गद्दी मिलते देख वह बहुत क्रुद्ध। अब सेना लेकर महरत चढ़ आया। जच्च बहुत घबड़ा कर रानी के पास गया। उसने कहा कि यदि तुम्हें युद्ध का साहस न हो तो चूड़ी पहन कर रनिवास में बैठो और मैं ही बाहर जाकर लड़ूं। इसपर जच्च बहुत शरमाया और लड़ने के लिए तैयारी करने लगा। रानी की सलाह से इसने प्रचुर धन व्यय द्वारा बिगड़ी हुई राज सेना को स्वाधीन किया। युद्धस्थल मे राना द्वन्द युद्ध कर के जच्च के हाथ से मारा गया। अनन्तर किरमान पर धावा कर के जच्च ने अपने राज की पश्चिमी सीमा नियत की। सिवस्तान का राजा मत्ता, अगम लोहाना, सोयस दुर्ग (वर्त्तमान सेवो) पति काका आदि ने जच्च की अधीनता स्वीकार की। अरबों ने इसके राज्य पर तीन बार आक्रमण किये किन्तु इसने उन्हें हर बार पराजित किया। इस प्रकार अपने राज्य की समुचित रक्षा करके और उसे बढ़ा कर जच्च ने चालीस वर्ष राजसुख भोगा और तब सं० ७४० में वह परलोकगामी हुआ।

जच्च के पीछे इसका भाई चन्द्रराज सिंहासन पर बैठा। इसके समय सिवस्तान के राजा मत्ता की सलाह से कन्नौज

नरेश ने सिन्ध पर आक्रमण किया किन्तु जीत चन्द्र ही की हुई। इसका शरीरान्त सं० ७५७ में हुआ और जच्च का बेटा दाहिर (धीर) राजा हुआ। इसने अपने भाई धरसेन को ब्राह्मणाबाद का शासक नियत किया। अनन्तर इन भाइयों में लड़ाई हो गई और धरसेन मर भी गया। जच्च ने अलोर का दुर्ग आरंभ कराया था। दाहिर ने उसे पूरा किया। कुछ दिनों में कन्नौजपति ने सिन्ध पर फिर चढ़ाई की। अरबों की सहायता लेकर दाहिर ने उसे हराया। अनन्तर कई कारणों से दाहिर का अरबवालों से बिगाड़ हो गया और उन्होंने वज़ील की अध्यक्षता में सिन्ध विजय करने को सेना भेजी, किन्तु दाहिर के पुत्र हसेसिया ने उसे पराजित कर के वज़ील का युद्ध में वध किया। कुछ दिनो में ख़लीफ़ा अरब ने क़ासिम के बेटे मोहम्मद को सिन्ध पर भेजा। इसने सं० ७६६ में दाहिर को युद्ध में मारा तथा सिन्ध और मुलतान, पर अधिकार जमाया। इस प्रकार यह ब्राह्मण राजकुल मुलतान सिन्ध और बलूचिस्तान के भाग पर प्रायः ७० वर्ष अधिकृत रहा।

महाराजा हर्ष के समय मध्यभारत में जुझौतिया ब्राह्मणों का राज्य था। उज्जैन तथा अन्य कई रियासतों पर इन्हीं का अधिकार था। आसाम नरेश कुमार भी ब्राह्मण कहा गया है। यह स्वयं हिन्दू था किन्तु बौद्धों से घृणा नही करता था। कहते हैं कि किसी संत के शाप से उस काल कलिंग देश जंगल हो गया था। अब इतिहास प्रसिद्ध गुप्त एवं हर्ष काल पर्य्यन्त भारत के अन्य प्रान्तों का इतिहास कहना शेषहै। उत्तरी भारत का इतिहास ऊपर के वर्णन में आ गया है और कई अन्य प्रान्तों का भी कथन हो गया है। सौराष्ट्र एवं गुजरात का इतिहास विदित कराया जा चुका है। यद्यपि

काश्मीर, तिब्बत, नैपाल, आसाम, बुन्देलखंड, मालवा, विहार और बंगाल भी इतिहास प्रसिद्ध देश हैं. तथापि इस काल इनमें मुख्य भारतीय सम्राट का इतिहास छोड़ देने से कोई कथन योग्य विस्तृत वर्णन नहीं मिलते, जो मिलते हैं वे हर्ष काल के पीछे वाले इतिहास के साथ मुखबन्ध की भांति कहने के योग्य हैं, पृथक प्रकार से नहीं। इस स्थान पर अब केवल दक्षिण तथा तामिल देशों का इतिहास लिखना शेष है।

दक्षिण ।

पिछले अध्याय में कहा जा चुका है कि दक्षिण में प्रायः सं० ३६० पर्य्यन्त क्षत्रियों तथा आभीरों का राज्य आंध्रों के पीछे रहा। इनके पीछे राष्ट्रकूटों ने अपना शासन जमाया, जो लगभग सं० ५७७ पर्य्यन्त चलता रहा। राष्ट्रकूटों को ही भोज, रथी, अथवा राष्ट्रक भी कहते थे। इसीसे महाराष्ट्र शब्द की उत्पत्ति हुई। राष्ट्रकूटों का राज्य कब प्रारंभ हुआ सो निश्चित प्रकारेण ज्ञात नहीं है। संभव है कि इनका राज्य आभीरों के साथ आरंभ हुआ हो अथवा उनके पीछे। इतना निश्चित है कि चालुक्यों ने सं० ५७७ के लगभग इन्हीं को जीतकर दक्षिण का राज्य प्राप्त किया था।

बादामी का चालुक्य वंश ।

राष्ट्रकूटों के पीछे सं० ५७७ से ८०५ पर्य्यन्त दक्षिण में चालुक्यों उपनाम सोलंकियों का राज्य रहा। प्रसिद्ध चालुक्य नरेश विक्रमांक देव के राजकवि विल्हण ने लिखा है कि चालुक्यों की उत्पत्ति ब्रह्मा के चुलक (चुल्लू) से हुई। उधर यह भी किम्वदन्ती है कि प्रमार चौहान और परिहार के

साथ सोलंकी उपनाम चालुक्य भी यज्ञ से उत्पन्न हुए। इसीलिए ये लोग भी अग्नि-कुलोद्भव क्षत्रियों में हैं। इनके वंश में हारीत और मानव्य बड़े पराक्रमी हुए। कहते हैं कि सोलंकी मानव्य गोत्रभव हारीत के वंशधर हैं। इनकी पहिली राजधानी अयोध्या कही जाती थी। पीछे से इन लोगों ने दक्षिण में अधिकार जमाया। इनके दाक्षिणात्य दल का नेता जयसिंह था। इसने राष्ट्रकूटों तथा अन्य राजघरानों से कई युद्धों में विजय प्राप्त कर के सं० ५७७ के लगभग दक्षिण का राज्य प्राप्त किया। जयसिंह के पीछे रणराग राजा हुआ। यह बड़ा पराक्रमी तथा डीलडौल में भारी था। इसके पीछे इसका पुत्र प्रथम पुलकेशी गद्दी पर बैठा। पुलकेशी ने अश्वमेध यज्ञ किया और संसारी तथा दैवी दोनों विषयों पर बराबर ध्यान दिया। आपने वातापीपुर को राजधानी बनाया। पंडितों का मत है कि कलाद्गी ज़िले का बादामी शहर ही उस काल वातापीपुर कहलाता था। सोलंकी वंश का यह पहिला भारी भूपाल था। पीछे की राजवंशावलियों में यही पूर्व पुरुष लिखा जाता था। आपका पूरा नाम सत्याश्रय श्री पुलकेशी वल्लभ महाराज था।

आपके पीछे आपके पुत्र कीर्तिवर्म्मन ने सं० ६२४ से ६४८ तक राज्य किया। इन्होंने कहीं के नरेश नलों को जीता तथा उत्तरी कोंकण के मौर्य्य नरेश एवं बनवासी के कदम्बों को भी पराजित किया। बनवासी उत्तरी कनारा में था। मृत्यु के समय कीर्तिवर्म्मन के तीन पुत्र ज्ञात हैं जो सब छोटे थे। इसीसे इनके भाई मंगलेश (६४८-६५) राजा हुए। मंगलेश ने चेदिराज कलचुरी नरेश को हराया। इन कलचुरियों की राजधानी तृपुर थी जो वर्तमान जबलपूर के

निकट है। कहते हैं कि मंगलेश ने पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्र के तटों तक विजय यात्रा की थी। पश्चिम में आपने रेवती द्वीप भी जीता। बादामी के निकट एक गुहा मन्दिर में लिखा है कि उसे मंगलेश ने खोदवाया। इन्हीं शिलालेखों तथा अन्य आधारों पर भांडारकर महाशय ने कीर्तिवर्म्मन और मङ्गलेश के समय स्थिर किये हैं। अपने शासन काल के अन्त में मङ्गलेश ने कीर्त्तिवर्म्मन के पुत्रों को सदा के लिए गद्दी से भिन्न रखकर अपने पुत्र को राजा बनाना चहा। उधर इनका भतीजा पुलकेशी बड़ा कार्य्य कुशल पुरुष हुआ। अतः उत्तराधिकार के झगडों में मंगलेश पराजित होकर अपना प्राण भी खो बैठा और सं० ६६५ में द्वितीय पुलकेशी राजा हुआ। आप सत्याश्रय श्री पृथ्वी वल्लभ महाराज कहलाये। इनका राजत्व काल सं० ६९१ तक है। यहां पुलकेशी का समय भांडारकर महाशय के मतानुसार नहीं दिया गया है क्योंकि अन्य ऐतिहासिकों का विचार इनके प्रतिकूल है। मंगलेश के पराक्रम से जो शत्रु मंडल दबा रहता था उसने अब समय समझ कर सर उठाया। इनमें अप्यायिक और गोविन्द प्रधान थे। यह राष्ट्रकूट समझे गये हैं। पुलकेशी ने अप्यायिक को मार भगाया और गोविन्द उसके वशवर्त्ती होकर कृपापात्र हो गया। अनन्तर पुलकेशी ने वनवासी के कदम्बों पर धावा करके उनके राज्य पर अधिकार जमाया। यह देख चेर नरेश गंगा और मलाबार के अलुपा वंशवाले नरेश पुलकेशी के सहायक हो गये। अनन्तर आपने सैकड़ों जहाज़ों की जलसेना लेकर मौर्य्यों की राजधानी पुरी को जीत कर कोंकण स्ववश किया। लाट (दक्षिणी तथा मध्य गुजरात), मालवा और गुर्जर नरेश भी हारकर पुलकेशी के वशवर्त्ती हुए।

इस काल कन्नौज के प्रसिद्ध सम्राट् हर्षवर्द्धन ने दक्षिण पर धावा किया, किन्तु पुलकेशी ने ऐसी दक्षता से उनका सामना किया कि वे नर्मदा के पार न जा सके। उनके बहुत से हाथी मारे गये और सेना ने जय न पाई। यह देख हर्षवर्द्धन उत्तर की ओर वापस गये। अब पुलकेशी पूरे दक्षिण का निर्विवाद शासक हुआ। इनके राज्य में ६६००० गाँव थे। जब आपने दक्षिणी कोसल और कलिंग राज्यों पर आक्रमण किया तब वे राज्य इनकी सेना पहुंचते ही इनके वशवर्त्ती हो गये। पुलकेशी ने इसपर कावेरी पार करके चोल, पांड्य और केरलों के राज्य पर धावा किया, किन्तु इनसे युद्ध न हुआ और ये पुलकेशी के सहायक हो गये। पल्लव नरेश महेन्द्र वर्म्मन को भी जीत कर पुलकेशी ने सं० ६७२ में उससे वेंगी छीन लिया। सं० ६६६ पर्य्यन्त उपरोक्त विजयों के पीछे पुलकेशी शांति पूर्वक अपनी राजधानी में सुख से रहने लगे थे।

सं० ६६६ में प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यूयन्त्सांग पुलकेशी के यहां गया। इस यात्री ने पुलकेशी को महाशय कहा है और यह भी लिखा है कि यह नरेश सभों पर सहृदयता तथा उदारता का विस्तार करता है। उस काल पुलकेशी की प्रजा उससे पूर्णतया अनुरक्त थी। चीनी यात्री ने लिखा है कि वहां के लोग ऊंचे और अभिमानी हैं। जो इनके साथ भलाई करे उसके ये अनुग्रहीत अवश्य होंगे और जो इन्हें क्रुद्ध करे वह इनके बदला लेने से न बचेगा। अपमानित होने पर ये लोग जान जोखिम करके भी बदला चुकाते हैं। युद्ध करने के समय यहां के वीर लोग मद्यपान करते थे। जो सेनापति युद्ध में हार खा जावे उसे दंड देने के स्थान पर स्त्री के वस्त्र

पहना दिये जाते थे। इससे वह इतना लज्जित होता था कि प्रायः जान होम देता था।

पुलकेशी के समय इनका भाई विष्णुवर्द्धन सं० ६७२ में गवर्नर की भाँति गोदावरी और कृष्णा के बीच में वेंगी प्रान्त पाकर सं० ६८७ में वहां का राजा हो गया। इसी समय चालुक्य वंश की पूर्वी तथा पश्चिमी नाम्नी दो शाखायें हो गईं। पश्चिमी शाखा महाराष्ट्र देश की शासिका रही तथा पूर्वी वेंगी में प्रतिष्ठित हुई। पूर्वी चालुक्यों का राज्य वेंगी में पहले राजेन्द्र चोल (सं० १०७० ११०१) के समय तक रहा। पीछे भी ये चोलों की ओर से वेंगी के राज प्रतिनिधि रहे और सं० ११२७ में सारे चोल राज्य के स्वामी हुए। पुलकेशी का दूसरा भाई जयसिंह नासिक प्रान्त में इनका सेनापति था। पुलकेशी का ज्येष्ठ पुत्र चन्द्रादित्य किन्हीं कारणों से इनका उत्तराधिकारी न होकर उस प्रान्त का शासक हुआ जिसमें सावन्त वाड़ी ज़िला है। पुलकेशी के एक अन्य पुत्र आदित्य वर्म्मन ने कृष्णा और तुंगभद्रा के संगम स्थल पर राज्य जमाया। इतना प्रताप बढ़ाने पर भी अपने राज्यान्त काल में पुलकेशी की मुठभेड़ महेन्द्रवर्म्मन पल्लव के पुत्र नरसिंह वर्म्मन से हुई जिसने सं० ७११ में परियल के युद्ध में पुलकेशी को हराकर वातापीपुर को भी विमर्दित किया। इस महती विजय के उपहार में उसे वातापी कोंड की उपाधि मिली। जान पड़ता है कि इस युद्ध में पुलकेशी का शरीरपात हो गया। अनन्तर १३ वर्ष पर्य्यन्त देश में अराजकता रही। इस अराजकता के पीछे पुलकेशी का पुत्र पहिला विक्रमादित्य सं० ७१२ में राजा हुआ। यह पुलकेशी का प्रिय तनय कहा गया है। पल्लव नरेश तो चालुक्यों को

हरा ही चुका था। उपरोक्त पराजय से चोल, पांड्य और केरल नरेशों ने भी अपने को चालुक्यों से स्वतंत्र बना लिया था। विक्रमादित्य बड़ा पराक्रमी भूपाल था। इसने पल्लवों से अपने राज्य का किसी प्रकार छुटकारा किया और पाँड्यों, केरलों तथा चोल्यों को भी पराजित करके अपने पिता के पूरे राज्य पर फिर से अधिकार जमाया। तामिल इतिहास में इनके द्वारा पांड्यराज का जीता जाना नहीं लिखा है। केरल देश इस काल पांड्यों के अधिकार में था और चोल देश पांड्यों तथा पल्लवों के अधीन था। भाँडारकर ने विक्रमादित्य द्वारा पल्लवों का भी जीता जाना लिखा है किन्तु टेट-दक्षिण के इतिहास में कहा गया है कि पल्लव नरेश परमेश्वर वर्म्मन ने विक्रमादित्य को पराजित किया। जान पड़ता है कि इन दोनों में कई युद्ध हुए जिनमे समय समय पर दोनों पक्षों की विजय हुई, किन्तु चालुक्य राज्य पल्लवों के अधिकार से निकल गया। विक्रमादित्य ने समय पर बल बढ़ाकर अपने छोटे भाई जयसिंह वर्म्मन को लाट देश का राजा बनाया। विक्रमादित्य ने ऐसे समय में राज्य पाया था जब उसका पूरा ह्रास था, किन्तु अपने अनुपम शौर्य्य से इन्होंने न केवल उसका पुनस्थापन किया, वरन् बर्द्धमान करके लाट देश भी प्राप्त किया। इसलिए पुलकेशी द्वारा इनका युवराज बनाया जाना उस भूपाल की गुणग्राहकता प्रगट करना है।

विक्रमादित्य के पीछे इनका पुत्र विनयादित्य राजा हुआ जिसने सं० ७३७ से ७५३ पर्य्यन्त राज्य किया। सं० ७४६ से ७५२ तक विनयादित्य ने पल्लव, कलभ्र, केरल, हैहय, विल, मालव, चोल, पाँड्य, तथा कई अन्य नरेशों को अपना

साथी बनाया। आपने किसी उत्तरी भूपाल को पराजित भी किया था किन्तु उसका नाम नहीं दिया हुआ है। आपके पीछे पुत्र विजयालय ने गद्दी पाकर ३६ वर्ष राज्य किया। आपको शत्रुओं ने एक बार बन्दी कर लिया था किन्तु फिर भी आप निकल आये और अपना राज्य दृढ़ करने में समर्थ हुए। इनके पीछे इनके पुत्र दूसरे विक्रमादित्य ने सं० ७६० से ८०४ तक राज्य किया। इन्होंने पल्लव नरेश नन्दिवर्मन पल्लव मल्ल को हराकर उनकी राजधानी कांची पर अधिकार जमाया, किन्तु मन्दिरों को लूटने के स्थान पर उनमें बहुत सा धन चढ़ाया और कई प्रकार से मंदिरों तथा ब्राह्मणों का सत्कार किया। किन्तु पल्लवों की तत्कालीन शक्ति इस कांची धर्षण से घटने के स्थान पर कुछ काल के लिए और भी बढ़ी। अनन्तर चालुक्य नरेश ने चोल, पांड्य, केरल, और कलभ्रों को हराया। पांड्यों के इतिहास में इस पराजय का कथन नहीं है। विक्रमादित्य के पीछे उनका पुत्र दूसरा कीर्त्तिवर्म्मन राजा हुआ, किन्तु इसका राज्य दूसरे ही वर्ष समाप्त हो गया और राष्ट्रकूटों ने दन्ति दुर्ग की अध्यक्षता में चालुक्यों का बल चूर्ण करके दक्षिण का राज्य प्राप्त किया।

इन आदिम चालुक्यों के समय में प्राचीन वैदिक मत के साथ पौराणिक तथा जैन मतों की भी प्रधानता हुई। दूसरे पुलकेशी ने जैन कवि रविकीर्ति का मान किया और दूसरे विक्रमादित्य के समय में विजय पंडित जैन भारी वाद करने वाले थे। जैन मति की गरिमा दक्षिण महाराष्ट्र देश में थी। पौराणिक देवताओं के मन्दिर सभी कहीं थे। मंगलेश ने एक गुफा, काट कर वैष्णव मन्दिर बनवाया था। इसी प्रकार

अन्य देवताओं के भी मन्दिर बने थे। ब्राह्मणों को दान बहुतायत से दिया जाता था। ह्यूयन्त्सॉग ने लिखा है कि इस काल दक्षिण में बोद्ध धर्म का भी प्रचार था किन्तु यह गिराव की दशा में समझ पड़ता है। चालुक्य नरेश किसी मत के प्रतिकूल न थे और सब का उचित सन्मान करते थे। प्रधानतया ये लोग पौराणिक हिन्दू थे।

ठेठ दक्षिण अथवा तामिल देश।

ऊपर के अध्याय में हम तामिल नरेश पांड्य, चोल, केरल और पल्लवों का कथन कर आये हैं। यहां भी इसी क्रम से इनका कथन होगा। आदिम पांड्य नरेशों की वंशावली दाक्षिणात्य पंडित ऐयर महाशय ने प्राचीन आधारों के अनुसार इस प्रकार लिखी है:—

पल्याग साले, कडुगों, मार वर्म्मन, सेलियन स्यूंडन, अरि केशरि मार वर्म्मन, साड़ैयन रणधीरन, तेर मारन, नेडुअड़ैयन, राजसिंह, वरगुण महाराज, श्रीमार श्रीवल्लभ, परान्तक वीर नारायण सड़ैयन (वरगुण वर्म्मन भाई), राजसिंह। तामिल ग्रन्थो से ऐयर महाशय ने १३ पांड्य नरेशों के और नाम लिखे हैं जिनमें से कुछ उपरोक्त वंशावली से भी मिलते हैं।

इनमें सब से प्राचीन पांड्य नरेश वडिम्बलम्बनित पांड्य था। कहते हैं कि इसने पहरूली नदी बनाई और समुद्रदेव का एक भारी त्योहार मनाया। पांडियन करुंगौ ओल वाल पेरुम्बेयर वलुदी का नाम इसके पीछे आता है। इसका समय सं० ५८० के लगभग माना गया है। कहते हैं कि इसकी स्त्री आदर्श पतिव्रता थी। वलुदी नरेश के पीछे पांडियन अरिबुड़ैनम्बि

का नाम आता है, तब पल्य.ग सा ै मुदुकुडुमि पेरवलुदि का। पेरवलुदि की न्यायप्रियता की उपमा तराज़ू से भी गई है। अपने गजदल के प्रभाव से यह नरपाल शत्रुओं को पराजित करके बहुत से मणिगण लाया जिनसे इसने याचकों को तृप्त किया। इसने वैरियों के दुर्गों को नष्ट किया। यह भी कहा गया है कि इस नरेन्द्र ने अपने शत्रुओं के बोये हुए खेतों को उजाड़ा और जल पूर्ण तड़ागों को नष्ट किया। इसने इतने यज्ञ किये कि इसी कारण इसके नाम के साथ पल्याग सालै की उपाधि लग गई। वेदज्ञ ब्राह्मण इसके मुकुट की प्रशंसा करते थे। यह अच्छा राजा था किन्तु फिर भी शत्रुओं को हानि पहुंचाने में इसने अयुद्ध कर्त्ताओं को भी सताया। इससे जान पड़ता है कि उस काल पांड्य देश में युद्ध सम्बन्धी उग्र एवं मृदुल नियमों के विचार दृढ़ नहीं हुए थे। इस भूपाल का समय सं० ६१२ के लगभग कहा गया है। चोल नरेश करिकाल ने इसके पूर्व किसी पांड्य नरेश को हराया था। पेरवलुदि ने इस अपमान का बदला चुकाया। इस राजा के पीछे कलभ्रों ने कुछ दिन के लिए पांड्य देश में अराजकता फैला दी किन्तु इसका दमन शीघ्र ही हो गया।

पांड्य नरेश कडुंगों का राजत्व काल सं ६१७ से ६४७ तक के लगभग समझा जाता है। आपने कलभ्रों कृत अराजकता का दमन किया। ये लोग कनारा देश के होंगे। कडुंगों के पुत्र अधिराज मार वर्मन अवनि शूलमणि का राजत्व काल सं० ६४७ से ६७७ तक समझा जा सकता है। शेन्दियन शेंडन उपनाम नेडुंजेलियन का शासन काल सं० ६७७ से ७०७ तक है। इसके समय मदुरा में एक साहित्यिक संगम् था, जिसके

सभ्य लोगों ने बहुत सा शिष्ट साहित्य रचा। यह बड़ा वीर भी था। इसने पांच नरेशों को हराया और चेर तथा चोल राजाओं को भी जीतकर उनके देशों पर अधिकार जमाया। इस प्रकार ये तीनों प्राचीन राज्य नेडुंजेलियन पांड्य के समय से एक ही हो गये और इन पर पांड्यों का अधिकार हुआ। चोल नरेश का राज्य दो भागों में बट गया, जिसमें पांड्यों के अधिकार में दक्षिणी भाग आया और पल्लवों के उत्तरी। इसके पीछे बहुत काल पर्य्यन्त चोल लोग कुड्डपा, करनूल और बेलरी ज़िलों ही में रहे। अब पल्लवों के राज्य का दक्षिणी भाग पांड्यों के उत्तरी भाग से मिल गया और इन दोनों जातियों में कई पीढ़ियों पर्यन्त युद्ध होता रहा। वाता-पीपुर के विजेता नरसिंह वर्म्मन ही ने पांड्यों से संग्राम आरंभ कर दिया और पराजय पाई। पांड्यों का शेष इतिहास आगे के अध्याय में उचित स्थान पर कहा जावेगा। चीनी यात्री ह्यूयन्त्सांग ने मलकूट का वर्णन किया है। ऐयर महाशय का मत है कि यह पांड्य देश का मिललै कुर्रम प्रान्त था। चीनी यात्री के दक्षिण जाने के समय पांड्य देश में द्वादश वार्षिक अकाल पड़ा हुआ था। ह्यूयन्त्सांग से प्रगट है कि मलकूट में उस काल बौद्ध मत लुप्तप्राय था और प्राचीन मठ उजाड़ थे। हिन्दू देवताओं के मंदिर सैकड़ों थे और दिगम्बर जैनों के हज़ारों। यहां के निवासी विद्या रसिक न थे और व्यापार ही में पूर्णतया लगे थे, विशेषतया मुक्ता के व्यापार में। नेडुंजेलियन के पीछे इसके पुत्र अरि केसरि मार वर्म्मन ने ३० वर्ष राज्य किया। इसी ने पल्लव नरेश नरसिंह वर्म्मन को नेलवेलि मे हराया था। इस काल पल्लव-भूपाल पांड्य देश में बहुत घुस आया था।

अब इस काल का चोल इतिहास उठाया जाता है। प्राचीन चोल नरेश मनु चोल तथा कोच्चेंगणणान का वर्णन ऊपर के अध्याय में हो चुका है। अब करिकाल का समय आता है। ऐयर महाशय ने इनका समय सं० ६०७ के लगभग माना है। इसका निर्णय करिकाल के चालुक्य नरेश विजयादित्य उपनाम रणराग के समकालीन होने से हुआ है। करिकाल चोल राज्य का साधारण उत्तराधिकारी न था। कहते हैं कि जब चोल वंश के तत्कालीन राजा के अपुत्र मरने से गद्दी का कोई दृढ़ उत्तराधिकारी न रहा, तब राजा चुनने का भार एक हाथी के कर्मों पर निर्भर किया गया। उस हाथी ने अपनी सूंड़ से एक माला करिकाल के गले मे डाल दी और तब ये उसकी पीठ पर बैठ कर चोल गद्दी पर बैठे। यह बड़ा ही पराक्रमी, न्यायप्रिय और देशोपकारी राजा था। इसने प्राचीन राजधानी उरैयूर को छोड़ कर काविरिप्पुंपट्टनं को राजस्थान बनाया। यह स्थान समुद्र तट पर होने से चुना गया था। करिकाल ने घाट आदि बनाकर इसको बड़ी उन्नति की। इनके विषय में निम्न लिखित महती घटनायें लिखी हुई हैं —

आपने तृलोचन उपनाम त्रिनयन पल्लव को हराया, कांची में बैठ कर राज्य किया, अवन्ति नरेश का साथ दिया और वज्र (बुन्देलखंड) एव मगधराज को स्ववश किया, गांग प्रदेशों से बहुत से शूद्र घरानों को लाकर तोंडमंडलम् में बसाया और वेण्णिल के युद्ध मे चेर तथा पांड्य नरेशों को हराया।

करिकाल के विरोधी किस पल्लव नरेश की तृलोचन उपाधि थी सो अज्ञात है किन्तु इतना लिखा है कि वही

त्रिलोचन चालुक्य राज विजयादित्य उपनाम रणराग से भी हारा था। रणराग का समय सं० ६०७ के लगभग है। करिकाल ने पल्लव राज को हराकर कांची पर अधिकार जमाया था। इससे जान पड़ता है कि यह पल्लव दूसरा स्कन्द वर्म्मन होगा, क्योंकि इसके पुत्र प्रथम कुमार विष्णु के विषय में लिखा है कि उसने कांची फिर प्राप्त की। अतः करिकाल ही ने कांची जीती और खोई। करिकाल ने चेर नरेश शेरमान पेरुंचेरल अथन को पराजय दी। इस चोलराज के समय तक कावेरी नदी हरसाल उमड़ कर देश को भारी हानि पहुंचाती थी। अतएव आपने १५ से १८ फ़ीट ऊंचे, ४० से ६० फ़ीट चौड़े और १०८० फ़ीट लंबे वन्धा वधवा दिये जिससे नदी द्वारा यह उत्पात सदा के लिये शान्त हो गया। करिकाल के समय व्यापार को भारी उन्नति हुई। ऊख, केला, नारियल, सुपारी, आम, ताड़ आदि की देश में अच्छी उन्नति हुई। फुलवारियां वहुत लगाई गईं और तालावों में ऊंचे वांध बँधे। गलियों मे घोड़े, रथादि सदा चला करते थे। हवा से चलने वाले जहाज़ों द्वारा घोड़े बाहर से लाये जाते थे। मेरु पर्वत से हीरे और सोना आते थे, कुर्ग से चन्दन, दक्षिणी समुद्र से मोती, गांगेय प्रान्तों से धन, लंका से धान्य और वर्म्मा से भोज्य पदार्थ। इन बातों से प्रगट है कि करिकाल के समय दक्षिण में सभ्यता को अच्छी उन्नती हुई और उत्तरीय लोगों के वहां वसने से दोनों सभ्यताओं के मेल का लाभ भी चोल देश को प्राप्त हुआ।

करिकाल के पीछे किल्लि नामधारी कई नरेश चोल राज्य में हुए। शोलन किल्लि वलवन ने तत्कालीन चेर नरेश को जीता। नेडु मुडि किल्लि के समय समुद्र ने काविरि

पद्दिनम को नष्ट कर दिया। पेरुना किल्लि ने राजसूय यज्ञ किया। वेरिवेर किल्लि ने एक नागसुता से विवाह किया जिससे उत्पन्न पुत्र पल्लव नरेशो का पूर्व पुरुष हुआ। अनन्तर थोड़े ही दिनों में पांड्य तथा पल्लव नरेशों ने चोल देश पर अधिकार जमाया जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। इसके पीछे बहुत काल पर्य्यंत चोलों का महत्व न बढ़ा। इनका शेष वर्णन यथास्थान किया जावेगा।

केरल राज्य का इस काल वाला इतिहास अद्यावधि अंधकाराच्छन्न है। जो कुछ ज्ञात है वह अन्य दाक्षिणात्य राज्यों के सम्बन्ध में आया है और उसका कथन उन राज्यों के सम्बन्ध में हुआ है तथा होगा।

पल्लवों का राज्य बहुत प्राचीन काल से कांची मे स्थापित हुआ था, किन्तु पल्लव नरेशों का ऐतिहासिक विवरण बहुत पीछे से मिलता है। पहिला पल्लव नरेश जिसका नाम मिलता है, विष्णु गोप है। यह उस काल सिंहासन पर था जब प्रसिद्ध गुप्त महाराज समुद्रगुप्त ने दक्षिण पर आक्रमण किया था। समुद्रगुप्त का शासन काल ऊपर सं० ३९२ से ४३२ तक माना गया है। विष्णुगोप भारी राजा था। यह समुद्रगुप्त से तो अवश्य हारा, किन्तु इसने भी एक अश्वमेध किया था। इसका राज्य भी भारी था, क्योंकि दूरस्थ धन्य कटक का राजा इसका अनुगामी था। ऐयर महाशय ने पल्लव राजाओं का वंशवृक्ष प्राचीन आधारों से बनाया है। उसमे विष्णुगोप का नाम नहीं आता। संभवतः यह उन राजाओं से पृथक् हो अथवा उन्हीं में से किसी का उपनाम विष्णुगोय हो। वंशावली इस प्रकार है:—

कालभर्तृ उपनाम काणगोप, पहिला स्कन्दवर्म्मन उपनाम चूतपल्लव, वीर कूर्च या वीर वर्म्मन, दूसरा स्कन्द वर्म्मन, कुमार विष्णु पहिला (भाई सिंह विष्णु पहिला तथा युव महाराज विष्णुगोप), बुद्ध वर्म्मन, दूसरा कुमार विष्णु। उपरोक्त युव महाराज विष्णुगोप का पुत्र दूसरा सिंह वर्म्मन था। सिंह वर्म्मन पहिला (पहिले कुमार विष्णु का भाई), तीसरा-स्कंद वर्म्मन, नन्दि वर्म्मन पहिला, सिंह वर्म्मन तीसरा, सिंह विष्णु (भीम वर्म्मन भाई), महेन्द्र वर्म्मन पहिला, नरसिंह वर्म्मन पहिला, महेन्द्र वर्म्मन दूसरा, परमेश्वर वर्म्मन पहिला, नरसिंह वर्म्मन दूसरा, परमेश्वर वर्म्मन दूसरा (भाई महेन्द्र वर्म्मन तीसरा), भीम वर्म्मन (सिंह विष्णु का भाई), बुद्ध वर्म्मन, आदित्य वर्म्मन, गोविन्द वर्म्मन, हिरण्य वर्म्मन, नन्दि वर्म्मन दूसरा उपनाम पल्लव मल्ल, दन्ति वर्म्मन, नन्दि वर्म्मन तीसरा।

उपरोक्त प्राचीनतम पल्लव राजाओं के विषय कोई विशेष घटनायें प्राप्त नही हैं। विष्णुगोप को समुद्र गुप्त ने हराया था। इसके पीछ भो पल्लव राजकुल अच्छी उन्नति करता रहा, जिसका कुछ कथन पिछले अध्याय में आ चुका है। अनन्तर चोल इतिहास में हम अभी देख आये है कि करिकाल चोल ने तत्कालीन पल्लव नरेश को हराकर उससे पल्लव राजधानी कांची छीन ली थी और फिर प्रथम कुमार विष्णु ने स्वयं करिकाल को हराकर कांची पर फिर से पल्लव अधिकार स्थापित किया। यह भी विचार किया गया था कि करिकाल ने स्कन्द वर्म्मन दूसरे को हराया होगा। करिकाल का समय सं० ६०४ के लगभग माना गया था। इसीसे कुमार

विष्णु पहिले का भी काल इसी के आस पास निकलता है। इस घटना के पीछे इतिहास तीन पीढ़ी छोड़ कर सिंह विष्णु का हाल लिखता है। इस पल्लव नरेश के विषय कहा जाता है कि इसने मलय, कलभ्र, मालव, चोल, पांड्य, सिंहल और केरल के नरेशों को हराया। यह कथन कुछ सन्दिग्ध है। सिंह विष्णु उपनाम अवनिसिंह के द्वारा चोल देश का जीता जाना निश्चित है। यह विष्णु भक्त था। इसके पुत्र महेन्द्र वर्म्मन पहिले के ललितांकुर, शत्रुमल्ल, गुणभर आदि कई उपनाम थे। दक्षिण के बहुत से गुफा मन्दिर इसी के बनवाये हुए हैं। इस काल के चैत्य चिंगलपुत उत्तरी आर्काट, दक्षिणी आर्काट और तृचिनोपल्ली के ज़िलों में पाये जाते हैं। इन बातों से अनुमान होता है कि महेन्द्र वर्म्मन पहले का राजत्व काल बड़ा था। यह एक युद्ध में प्रसिद्ध चालुक्य नरेश दूसरे पुलकेशी से हारा था। इससे यह भूपाल भी प्रसिद्ध महाराज हर्ष वर्द्धन का समकालीन सिद्ध होता है। महेन्द्र वर्म्मन पहले शैव मत के प्रतिकूल था किन्तु पीछे से स्वयं शैव हो गया। पल्लव नरेश पहले विशेषतया बौद्ध थे और फिर वैष्णव होकर अंत मे शैव हो गये। महेन्द्र वर्म्मन के पीछे इसका पुत्र नरसिंह वर्म्मन पहला गद्दी पर बैठा। कहते हैं लंका का बालक नरेश मानवम्म अपने राज्य से निर्वासित होकर नरसिंह वर्म्मन के यहां आकर नौकर हो गया। पल्लवपति ने इसके गुणों से प्रसन्न होकर इसका अच्छा मान किया। समय पर पुलकेशी दूसरे ने पल्लव राज्य पर आक्रमण किया। इस अवसर पर नरसिंह वर्म्मन तथा मानवम्म ने युद्ध मे उपस्थित होकर उसे पूर्ण पराजय दे दी। अनन्तर नरसिंह ने चालुक्यों की राजधानी वातापी में घुस

कर उसे भी पददलित किया। इसीसे उसको वातापी कोंड़ की उपाधि मिली। संभवतः महाराज पुलकेशी इसी युद्ध में मारा गया। चालुक्यों को जीतकर नरसिंह ने मानवर्म्म की अध्यक्षता में एक भारी दल भेजकर लंका पर आक्रमण कराया किन्तु इस बार मानवर्म्म को पराजित होना पड़ा। यह देख नरसिंह ने अपने मित्र मानवर्म्म को लंका का राज्य अवश्य देने के विचार से स्वयं उस टापू पर आक्रमण करके विपक्षियों को पराजित किया। अब मानवर्म्म फिर से लंकराज हुआ। ऊपर कहा जा चुका है कि चोलों के पराजित होने से पल्लव राज्य सीमा पांड्यराज्य से मिल गई थी। अतएव नरसिंह ने अपना राज्य दक्षिण की ओर और भी बढ़ाने के विचार से पांड्य राज्य के भीतर घुसकर उसपर आक्रमण किया, किन्तु नेलवेली (वर्तमान तिन्नेवेल्ली) के युद्ध में इस लंकविजयी को भी पराजय का दुःख भोगना पड़ा। लंका के प्रसिद्ध ग्रन्थ महावंश में लिखा है कि मानवर्म्म नरसिंह के यहां ४५ वर्ष रहा। इससे प्रगट है कि नरसिंह का शासन काल बड़ा था। चालुक्य नरेश दूसरे पुलकेशी का राजत्व काल सं० ६६५ से ६६६ तक है और तत्पुत्र पहिले विक्रमादित्य का सं० ७१२ से ७३७ तक। पुलकेशी का युद्ध नरसिंह के पिता से हुआ और नरसिंह से भी। उधर विक्रमादित्य का युद्ध नरसिंह के पौत्र पहले परमेश्वर वर्म्मन से हुआ। नरसिंह के पीछे इसका पुत्र दूसरा महेन्द्र वर्म्मन राजा हुआ और तब इसका पुत्र पहला परमेश्वर वर्म्मन। महेन्द्र के विषय केवल इतना लिखा है कि उसने ब्राह्मणों तथा मंदिरों के हितार्थ पुण्य कार्य्य किये और परमेश्वर के विषय में भी केवल चालुक्यों से युद्ध लिखा है। उधर

चालुक्य इतिहास से जान पड़ता है कि विक्रमादित्य ने वातापी प्राप्त किया था। इन सब बातों से प्रगट है कि नरसिंह वर्म्मन का राज्य काल सं० ६८० के लगभग से आरंभ होकर सं० ७०१ के लगभग समाप्त हुआ होगा। ऐतिहासिकों ने नरसिंह का राजत्व काल सं० ६८२ से ७०७ पर्य्यन्त माना है। इससे महावंश में लिखित समय घटता है। जान पड़ता है कि मानवम्म नरसिंह के पिता के समय कांची आया होगा। संभव है कि विक्रमादित्य ने वातापी महेन्द्र के ही समय में छीना हो और परमेश्वर से उसका पीछे से युद्ध हुआ हो। तामिल इतिहास कहता है कि परमेश्वर ने विक्रमादित्य को हराया था। उपरोक्त समय सम्बन्धी विचारों से प्रगट है कि चीनी यात्री ह्यूयन्त्सांग कांची में नरसिंह वर्म्मन ही के समय में आया था। यात्री ने लिखा है कि कांची के लोग बड़े वीर और धर्म्म एवं सत्यनिष्ठ थे तथा विद्या का बड़ा भारी मान करते थे। तत्कालीन शैव सन्त अय्यर ने भी लिखा है कि कांची निवासियों की विद्या असीम थी। नलवेंबा के लेखक पुगलेंडि ने लिखा है कि यहां के लोग कोई साम्राज्य पाने के लिए तक एक भी मिथ्या शब्द मुख से न निकालेंगे। इन बातों से प्रगट है कि नरसिंह न केवल अनुपम वीर था, वरन् विद्या का प्रोत्साहक तथा सत्यनिष्ठ भी था। पल्लवों का शेष इतिहास आगे के अध्यायों में यथा स्थान लिखा जावेगा।

२६वाँ अध्याय।

उत्तरी पूर्वी तथा पहाड़ी भारत (संवत् ७०४ से १२५० पर्य्यन्त)।

महाराज हर्षवर्द्धन के पीछे उत्तरी भारत में कुछ काल के लिए अराजकता हो गई और भारतीय साम्राज्य पांच सौ वर्षों के लिए ध्वस्त हो गया। इनके पीछे सब से पहला निर्विघ्न साम्राज्य मुसलमानों का ही कहा जा सकता है, क्योंकि यद्यपि कुछ काल के लिए परिहार नरेश भी सम्राट् हुए, तथापि वे समग्र उत्तरी भारत के ही स्वामी न हो पाये। अब तक भारतीय इतिहास की डोर बहुत अंशों में एक भारी राज घराने के सहारे चलती थी और तत्कालीन अन्य देशी नरेशों का कथन उसी के पीछे कर दिया जाता था। यह परिपाटी सं० ७०४ से १२५० पर्य्यन्त समय के लिए लागू नही हो सकती, क्योंकि इस काल पूरे भारत पर कुछ भी प्रभाव डालने वाला कोई राजकुल नहीं हुआ। इसलिए इस भारी समय का ऐतिहासिक केन्द्र एक न होकर छः भागों में बँट जाता है, अर्थात् इस काल में हम ऐतिहासिक केन्द्र साथ ही साथ उत्तरी, पूर्वी, मध्य, पच्छिमी, दाक्षिणात्य और तामिल भारत में देखते हैं। यदि इस लम्बे समय के उप-विभाग करके हम इन छओं भागों के पृथक इतिहास लिखें, तो पाठकों के ध्यान में वह यथावत प्रकारेण नहीं

आवेगा । इस विचार से प्रत्येक भाग का पांच सौ वर्ष सम्बन्धी पूरा इतिहास एक ही एक स्थान पर लिख देना हमें युक्तियुक्त समझ पड़ता है । सब से पहले उत्तरी भारत का इतिहास उठाया जाता हैं ।

उत्तरी भारत ।

हम ऊपर देख आये है कि सं० ७०४ के समीप जब हर्ष का शरीरान्त हुआ था तब किसी उचित उत्तराधिकारी के अभाव तथा दुर्भिक्ष के गड़बड़ में ब्राह्मण अमात्य अर्जुन राजा बन बैठा था, किन्तु साल ही दो साल के भीतर चीनियों के कोपानल में वह सकुटुम्ब स्वाहा हो गया था । इस दशा में कन्नौज में कोई भी शासक न रह गया । समझ पड़ता है वहुत से लोग प्रभुत्व प्राप्ति के प्रयत्नो मे गड़बड़ मचाने लगे होंगे । इसलिए दूरस्थ प्रान्तों पर कोई भी दवाव न रहा । सब से पहले मगध देश पर एक गुप्त नरेश ने राज्य जमाया । इनका कुछ प्रभाव हर्ष के समय भी था और अराजकता के कारण इन्हें स्वतंत्र होने का पूरा अवसर मिला । इस नवीन राज्य का कथन उचित स्थान पर पूर्वीय भारत के इतिहास वर्णन में होगा । अजुन का पूरा प्रभुत्व स० ७०७ तक उठ गया था । इसके पीछे कौन सा शासक हुआ सो ज्ञात नहीं है किन्तु इतना देखा जाता है कि महाराज हर्ष के मातुल पुत्र कुमार भांडी का वंशधर कन्नौज नरेश यशोवर्मन उपनाम महोदय सं० ७५७ से ७७७ पर्य्यन्त मगध और बंगाल प्राप्त करने का सफल प्रयत्न करता है । इससे समझ पड़ता है कि कम से कम सं० ७५० पर्य्यन्त इसका प्रभुत्व कन्नौज पर पूर्णतया बैठ चुका था, नहीं तो दूरस्थ बंगाल

जीतने का विचार भी इसके मन में क्यो उठता। फिर भी इनका प्रभाव भारी न था क्योंकि थोड़े ही दिनों में आसाम नरेश हर्षदेव ने बंगाल, उड़ीसा, और उत्तरी सरकार जीते तथा यह भी कहा गया है कि गुजर नरेश वत्स राज ने गौड़ बंगाल का समुज्वल छत्र भांडी के वंशधर से छीन लिया। इन बातों से प्रकट होता है कि कन्नौज में अराजकता हर्ष के पीछे चालीस पचास वर्ष रही और तब भांडी का वंशधर यशोवर्मन वहां का प्रभावशाली शासक हुआ। आपने अमात्य अर्जुन का कलंक मेटने को सं० ७८८ मे चीन को एक पठौनी भेजी। गुजराती इतिहास में लिखा है कि सं० ७५२ में कन्नौज के कल्याण कटक स्थान के भूरज, भूपड़ अथवा भूवड़ ने गुजरात पर अधिकार किया और पंचासर के जयशेखर को मारा। कल्याण में उसके उत्तराधिकारी एक दूसरे के पीछे कर्णादित्य, चन्द्रादित्य, सोमादित्य औ भुवनादित्य कहे गये हैं। इसी भुवनादित्य का पुत्र मूलराज सोलंकी था जिसने सं० ६६२ मे गुजरात में सोलकी राज्य स्थापित किया। यह वंश यशोवर्मन की शाखा से पृथक समझ पड़ता है। राज राज भी मूल राज के पिता कहे गये हैं। सं० ७६७ के लगभग काश्मीर नरेश ललितादित्य मुक्तापीड ने यशोवर्मन को राज्यच्युत कर दिया। प्रसिद्ध संस्कृत नाटककार भवभूति यशोवर्मन के ही राजकवि थे। ये वही भवभूति हैं जिन्होने महावीर चरित्र, उत्तर रामचरित्र, और मालती माधव नाटकों को रचा। प्राकृत कवि, वाक्पतिराज भी इसी गुणग्राही राजा के आश्रित थे। यशोवर्मन के पीछे कन्नौज में वज्रायुध शासक हुए किन्तु इन्हें भी काश्मीर नरेश जयापीड ने राज्यच्युत कर

दिया। वज्रायुध के उत्तराधिकारी इन्द्रायुध सं० ८४० में शासक थे। इनको बंगाल राज धर्मपाल ने सं० ८५७ में राज्य-च्युत किया और चक्रायुध को गद्दी पर बिठलाया। कहते हैं कि चक्रायुध के राजा होने से पांचाल प्रजा बहुत प्रसन्न हुई थी। इससे तथा नामों के साम्य से ये महाराज इन्द्रायुध के पुत्र अथवा कुटुम्बी समझ पड़ते हैं। खलिमपुर वाले दान पत्र से प्रकट है कि चक्रायुध के अधिकार को कुरु, यदु, यवन, अवन्ती, गांधार, कीर, भोज, मत्स्य, और भद्र, नरेशों को मानना पड़ा। इतने राजाओं द्वारा मान जाने पर भी चक्रायुध का राज्य निरापद न रहा और गुर्जर प्रतिहार नरेश नाग भट्ट ने सं० ८७३ के लगभग कन्नौज को आक्रान्त करके चक्रायुध को राज्यच्युत कर दिया। इन्हीं गुर्जर प्रतिहार क्षत्रियों को परिहार भी कहते हैं। यह दशा देख चक्रायुध ने अपने आश्रय दाता बंगाल नरेश धर्मपाल की शरणता की किन्तु नाग भट्ट ने उनका भी मान मर्दित किया। यह देख चक्रायुध और धर्मपाल ने परिहारों के प्राचीन शत्रु दाक्षिणात्य राष्ट्रकूटों का सहारा लिया और उनके नरेश तृतीय गोविन्द ने नाग भट्ट को पराजित करके चक्रायुध को फिर से महोदय (कन्नौज) राज्य पर प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार परिहारों की कन्नौज राजधानी बनाने की उद्दाम आकांक्षा उस काल कुछ वर्षों के लिए दब गई और राष्ट्रकूटों ने उन्हें ऐसा दबाये रक्खा कि वे गुजरात के बाहर डग न रख सके।

चक्रायुध के पीछे कन्नौज का स्वामी कौन हुआ सो ज्ञात नहीं है, किन्तु इतना ज्ञात है कि नाग भट्ट के पुत्र रामभद्र का शासन काल सं० ८८२ से ८९७ तक चलता है

और इन्होंने बंगाल नरेश देवपाल से पराजय पाई। इससे ज्ञान पड़ता है कि इन्होंने भी कन्नौज जीतने का प्रयत्न किया होगा और तब देवपाल से इनकी मुठभेड़ हुई होगी। आपने ग्वालियर जीत कर वहां तक अपना राज्य फैलाया। रामभद्र का पुत्र प्रसिद्ध सम्राट् मिहिरभोज हुआ जिसकी राजधानी निश्चित प्रकार से कन्नौज में थी। मिहिरभोज ही ने कन्नौज जीता। अतः भांडी के वंशधरों का राज्य कन्नौज पर सं० ७५० से ८६७ पर्य्यन्त मानना चाहिये। इस १४७ वर्षों के लम्बे समय में किसी भी ऐसे कन्नौज नरेश का नाम ज्ञात नहीं है जो राज्यच्युत न हुआ हो। सुतराम कन्नौज का महोदय पन इस काल में नाम मात्र को हो रहा और महाराज हर्ष का विशाल साम्राज्य भांडी वंश के हाथ मे मांडलिक राज्य के पद से आगे न बढ़ सका। महाराज हर्ष के पाछे सौ डेढ़ सौ वर्षों के भीतर थारु लोग पहाड़ों से उतर कर औध प्रान्त मे आये। तराई मे ये अब भी पाये जाते हैं। इस काल पूर्वी औध बनारस के अधीन था। और पच्छिमी कन्नोज के पीछे से कन्नौज का राज्य पूरे औध पर फैला।

परिहारों का कन्नोज राज्य सं० ८६७ के लगभग से प्रारंभ होकर प्रायः ११३७ पर्य्यन्त, अर्थात् क़रीब २५० वर्ष चला। स्मिथ महाशय ने नागभट्ट और रामभद्र को भी कन्नौज नरेश माना है किन्तु बैनर्जी (बाबू रखालदास बैनर्जी) महाशय ने मिहिरभोज को ही पहला परिहार कन्नौजराज कहा है। यही मत गज़ेटियर से भी निकलता है। इनका राजत्व काल सं० ८६७ से ५५७ पर्य्यन्त चलता है। महाराज हर्ष के पीछे आप भारत के पहले सम्राट कहे जा सकते हैं। आप के राज्य में सतलज के निकट का पंजाब, अधिकांश

राजपूताना, वर्तमान युक्तप्रान्त (प्रायः पूरा), ग्वालियर, सौराष्ट्र (काठियावाड़), गुजरात और मालवा सम्मिलित थे। इनके पूरब बिहार और बँगालपति देवपाल का राज्य था, पच्छिम में सिन्ध का मुसलमानी राज्य और ओहिन्दा तथा सतलज नदियाँ, दक्खिन पच्छिम राष्ट्रकूटों का राज्य, और दक्षिण में चन्देलो का। देवपाल से मिहिरभोज ने विजय पाई थी। मुसल्मान तथा राष्ट्रकूट मिलकर भी इनसे लड़ा करते थे। बुन्देलखंड के चन्देलो से भोज का कोई युद्ध नहीं लिखा है। इतना बिशाल साम्राज्य मिहिरभोज ने किन किन विजयों द्वारा और कैसे कैसे प्राप्त किया, इसका कोई वर्णन नहीं मिलता। वास्तव में यह महाराज बड़ा ही प्रभावशाली था किन्तु तत्कालीन ऐतिहासकों के अभाव से इसका यश लुप्तप्राय है। यह अपने को विष्णु का अवतार मानता था, इसलिए इसने आदि वराह की पदवी ली। इसके बहुत से सिक्के मिलते हैं।

भोज के पीछे इनका पुत्र महेन्द्रपाल उपनाम महेन्द्रायुद्ध सं० ९४७ से ९६४ पर्य्यन्त शासक रहा। इसने अपने पिता का राज्य न केवल स्थापित रक्खा वरन उसे वर्द्धमान भी किया। पच्छिम में अरब समुद्र तक इसका राज्य था और पूरब में इसने मगध भी जीत कर उसमें मिला लिया। समझ पड़ता है कि मगध विजय के साथ महेन्द्रपाल ने अपना राज्य बंगाल में भी भागीरथी नदी तथा सागर द्वीप पर्य्यन्त फैलाया क्योंकि इसके एक उत्तराधिकारी का हार कर वहां तक भागना लिखा है। करपूर मंजरी नाटक के रचयिता राजशेखर कवि आपके अध्यापक थे। आपके सहायक बाहुक धवल ने धर्म नामक किसी राजा को हराया

तथा राष्ट्रकूटों को भी पराजित किया। यह राष्ट्रकूट महाराष्ट्र देश के शासक थे। महेन्द्रपाल के पीछे आपके बड़े पुत्र दूसरे भोज ने दो तीन वर्ष तक शासन किया। अनन्तर या तो भोज मौत से अथवा अपने सौतेले भाई महीपाल के झगड़ों से मरे और महीपाल राजा हुआ। इनका राजत्व काल सं० ६६७ से ६६७ पर्य्यन्त चलता है। इनके समय में परिहारों का बल पतनोन्मुख हो गया और इनके राज्य से दूरस्थ प्रान्त निकल गये। महाराष्ट्र पति राष्ट्रकूट तीसरे इन्द्र ने सं० ६७३ मे महीपाल को भारी पराजय देकर कन्नौज भी जीत लिया और महीपाल पूरब के प्रान्तों को भाग गया। इस प्रचंड हार से परिहारों के राज्य से सौराष्ट्र प्रान्त निकल गया और अन्य दूरस्थ प्रान्त भी जाते रहे। सं० ६७१ तक सौराष्ट्र पर इनका अधिकार था। अनन्तर बुन्देलखंड के चन्देल राज की सहायता से महीपाल ने कन्नौज फिर से प्राप्त किया किन्तु खोये हुए प्रान्त फिर न पलटे। महीपाल के पीछे देवपाल सं० ६६७ से १०१२ पर्य्यन्त कन्नौज के राजा रहे। इस काल चन्देल नरेश यशोवर्मन कन्नौज से बिलकुल स्वतन्त्र हो गये और उन्होंने एक सुन्दर विष्णुमूर्ति को कन्नौजपति से छीन कर खजराहे के एक सुविशाल पाषाण मन्दिर मे प्रतिष्ठित किया। यह तीन मुहों की मूर्ति है जिनमे एक वराह का है, एक सिंह का और बीच वाला मनुष्य का। इससे जान पड़ता है कि यह वराह, नृसिंह तथा वामन अवतारो की मिलित मूर्ति है। यह मूर्ति कुछ खंडित हो गई है किन्तु मन्दिर में अभी प्रतिष्ठित है। अब इसे लछिमन जी का मन्दिर कहते हैं। यशोवर्मन के पुत्र धंग के समय कन्नौज और चन्देल राज्यों के बीच जमुना जी सीमा थी।

देवपाल के पीछे इनके भाई विजयपाल राजा हुए जिन का राजत्व काल सं० १०१२ से १०४७ पर्य्यन्त चलता है । समझ पड़ता है कि सौराष्ट्र प्रान्त के साथ परिहारों के प्रभाव से गुजरात भी निकल गया था क्योंकि जब देवपाल अथवा विजयपाल के समय गुजरात में अन्हिलवाड़े का राज्य मूल-राज सोलंकी ने स्थापित किया, तब इन लोगों से कोई झगड़ा भी न हुआ । थोड़े ही दिनों मे वज्रदामन कछवाहे ने कन्नौज पति से ग्वालियरप्रान्त भी छीन लिया । इन कछ-वाहों का अधिकार दुर्ग ग्वालियर पर सं० ११८५ पर्य्यन्त रहा । ये लोग चन्देलों को कर देते थे । अब तक भारत में बहुत करके हिन्दुओ का ही राज्य था । सिन्ध जीतने वाले अरबी मुसलमान राष्ट्रकूटों के मित्र रहे । ये दोनो मिलकर परिहारों से समय समय पर अवश्य लड़ते रहे किन्तु मुसल-मानों ने कोई कहने योग्य विजय परिहारो पर भी नहीं पाई । केवल इतना कहा जा सकता है कि इन्ही मुसल्मानों के प्रभाव से सौराष्ट्र का वल्लभी राज्य ध्वस्त हुआ । फिर भी उस काल सौराष्ट्र पर भी मुसल्मानो का अधिकार स्थाई न हुआ । इस लिए सिन्ध के मार्ग से मुसलमानी धावा निष्फल कहा जा सकता है । विजयपाल के समय मे ग़ज़नी के मुसलमानों ने ख़ैबर घाटी होकर भारत पर आक्रमण किया । उस काल सिन्ध के उत्तर से प्रायः समस्त उत्तरी पंजाब ब्राह्मण नरेश जैपाल के आधिपत्य मे था । इनका राज्य स्थान लाहौर था । सं० १०४२ मे ग़ज़नीपति सबुक्तगीन ने जैपाल के राज्य पर आक्रमण किया । यह धावा प्रायः निष्फल रहा और इस विजय से प्रोत्साहित होकर जैपाल ने सं० १०४५ में सबुक्तगीन के देश पर धावा किया, किन्तु

पराजित होकर सन्धि करनी पड़ी जिसमें इन्होंने बहुत सा कर देना स्वीकार किया। जब जैपाल ने कर न दिया तब अमीर ने उनसे लमघान (जलालाबाद) छीन लिया। इसी समय कन्नौज नरेश विजैपाल का शरीरान्त हो गया।

अब इनके पुत्र राज्यपाल गद्दी पर बैठे। इनका शासन काल सं० १०३७ से १०७६ तक रहा। सं० १०४८ में जैपाल ने मुसलमानों से देश की रक्षा करने के विचार से कई नरेशों को अपना साथ देने के लिए सन्नद्ध किया। इनमें कन्नोजपति राज्यपाल तथा बुन्देलखंड के स्वामी धंगपुत्र गंड भी थे। यह महती सेना भी कुरमा घाटी के निकट मुसलमानों से पराजित हुई और उन्होंने पेशावर पर भी अधिकार जमाया। कुछ दिनों में सबुक्तगीन के पुत्र महमूद ने कई हिन्दू नरेशों को हराकर जनवरी सं० १०७५ में कन्नोज पर आक्रमण किया। राज्यपाल को उचित ही इससे जीतने की आशा न थी, सो इन्होंने अधीनता स्वीकार कर ली और एक ही दिन में कन्नौज के सातों दुर्ग महमूद के हाथ आये। महमूद से राज्यपाल की सन्धि हो गई। उसने कन्नौज को विध्वंस न किया और मन्दिर भर तोड़ कर तथा लूट का धन लेकर वह ग़ज़नी वापस गया। अब राज्यपाल कन्नोज छोड़ कर गंगाजी के उस पार बारी को चले गये और वहीं रहने लगे। राज्यपाल की इस कादरता से क्रुद्ध हो कर चन्देल नरेश गंड ने उन पर हिन्दू प्रभाव ध्वंसन का दोष लगाया। इसलिए उनकी आज्ञा से चन्देल युवराज विद्याधर ने ग्वालियर नरेश को साथ लेकर कन्नौज पर धावा किया और सं० १०७६ मे बेचारे राज्यपाल को मार डाला।

चन्देलों ने केवल कादरता का दंड देकर अपना रास्ता लिया और तब राज्यपाल का पुत्र तृलोचनपाल गद्दी पर बैठा। अब इनकी राजधानी बारी हो गई और प्रतिहारों का विशाल कन्नौज राज्य ध्वस्त होकर उनका छोटा सा राज्य मांडलिक रह गया। यह गिराव महीपाल के समय से धीरे धीरे चला आता था एवं राज्यपाल के समय पूर्ण हुआ। राज्यपाल की विपत्ति का हाल सुनकर महमूद क्रुद्ध हुआ। जान पड़ता है कि तृलोचनपाल चन्देलों के मत पर चलते थे। इसी लिए सं० १०७७ में महमूद ने बारी को जीता और फिर गंड पर आक्रमण किया, जिसने भी राज्यपाल ही की भाँति बिना लड़े संग्राम स्थल से भागना ही ठहराया। तृलोचनपाल ने महमूद को जमुना पार करने से रोका। सं० १०८४ में इनका होना सिद्ध है क्योंकि उस वर्ष आपने प्रयाग में एक ग्राम दान में दिया था। सं० १०६० में सालार मसऊद गाज़ी ने औध प्रान्त के गोंड़ा या बहरायच पर आक्रमण किया। यह देख सोमवंशी नरेश सुहितदेव ने युद्ध करके साथियों समेत ग़ाज़ी का बध किया। कहते हैं कि इस वंश के कई नरेश यहां राज्य करते आये थे जिनमें सुहितदेव अन्तिम था। इस वंश से किसने राज्य छीना सो अज्ञात है। त्रिलोचनपाल के उत्तराधिकारी यशःपाल का नाम एक लेख में आया है। यह सं० १०६३ की बात है। इसके पीछे किसी परिहार नरेश का नाम नहीं आया है यद्यपि इनका शासन काल लगभग सं० ११३७ तक चलता है। जौनपुर के निकट ज़फ़राबाद निवासी कुछ मुसल्मानों के अधीनस्थ राजाओं का शासन कन्नौज तक था, किन्तु यह परिहारों से पृथक थे। कन्नौज का परिहार राजकुल बिलकुल लुप्त

हो गया। महाराजा हर्ष के पीछे उत्तरी भारत में यदि कोई प्रभावशाली सम्राट् हुआ, तो वे मिहिरभोज और तत्पुत्र महेन्द्रपाल ही थे। इन लोगों के समय से कुछ ही पूर्व प्रसिद्ध उपदेशक शंकराचार्य्य का समय था। उनके प्रभाव से सारे भारत से बौद्ध मत सदा को उठ गया और हिन्दू मत का प्रचार हुआ यद्यपि बौद्ध मत बहुत काल से पतनोन्मुख रहा आया था, और इस बात के कारण भी अनेक थे, तथापि उसका अन्तिम अधःपतन परिहारों ही के समय में हुआ। अब वह कुछ काल के लिए पालों की संरक्षकता में मगध में रह कर मुसलमानों के अत्याचारों से सदा के लिए वहां से भी लुप्त हो गया। परिहारों के समय की सब से बड़ी घटना हिन्दू मत का पूर्ण पुनर्स्थापन ही थी।

सं० ११३७ के लगभग कन्नौज पर गहरवार वंशोद्भव राजा चन्द्रदेव ने अधिकार जमाया। इसी वंश को राठूर भी कहते हैं। इनका राजत्वकाल लगभग सं० ११३७ से सं० १२-५१ पर्य्यन्त है। चन्द्रदेव, मदनपाल, गोविन्दचन्द्र, विजैचन्द्र, जयचन्द्र, और हरिश्चन्द्र, नामक छः राठूर नरेश समय समय पर कन्नौज के शासक हुए। इनमें से अन्तिम का शासन नाम मात्र को था। राज्यारंभ के पीछे कुछ दिनों में इस घराने ने कन्नौज छोड़ बनारस को राजधानी बनाया था। कन्नौज राज्य से भ्रष्ट होकर यह वंश घूमता घामता जोधपूर में प्रतिष्ठित हुआ, जहां अब तक यह एक भारी राज्य का शासन करता है। फिर भी इनका उत्तरी भारत वाला राज्य केवल ११४ वर्ष के लगभग रह कर सं० १२५१ में निर्मूल हो गया। चन्द्रदेव ने अपना अधिकार अयोध्या और बनारस पर फैलाया। संभवतः दिल्ली प्रान्त में भी इनका कुछ

प्रभुत्व था। इस नरेश के तीन ताम्रपत्र मिले हैं जिनके समय सं० ११४७, ११४६ और १२१३ हैं। तीसरा समय कुछ सन्दिग्ध है क्योंकि इनके पौत्र गोबिन्दचन्द्र का समय सं० ११६१ से चलता है। इस नरेश के सिक्के दानपत्र आदि सं० १२१२ तक के मिले हैं। समय पर कन्नौज का राज्य फिर प्रभावशाली हुआ और उसकी सीमाओं का उत्तर में हिमालय पहाड़ और दक्षिण में मालवा पर्य्यन्त फैलना कहा गया है, यद्यपि यह अत्युक्ति समझ पड़ती है, क्योंकि बुन्देलखंड का चन्देल राज्य अब भी स्थिर था। संभव है कि चन्देलराज राठूरों को कर देने लगे हों और इस प्रकार राठूर राज्य सीमा मालवा पर्य्यन्त समझी गई हो। यह वर्णन गोविन्द चन्द्र के पौत्र जयचन्द्र के राज्य का है। पूरब मे इनके राज्य की सीमा समुद्र कही गई है और पश्चिम मे लाहौर से दस दिन का मार्ग। इस कथन में कुछ अत्युक्ति अवश्य समझ पड़ती है। जयचन्द्र को मुसलमानों ने बनारस का राजा कहा है जिससे समझ पड़ता है कि इनकी राजधानी बनारस ही थी। किस समय राठूरो ने कन्नौज छोड़कर बनारस को राज्य स्थान बनाया सो ज्ञात नहीं है। इतना ज्ञात है कि जयचन्द्र की बंगाला के पाल नरेश से भी कुछ मुटभेड़ हुई थी। पालों के वर्णनों में भी ये राठूर बनारस के राजा कहे गये है।

जयचन्द्र को दिल्ली नरेश प्रसिद्ध महाराज पृथ्वीराज से कई कारणो से घोर शत्रुता थी। कहते हैं कि दिल्ली के तोमर नरेश अनंगपाल के दौहित्र जयचन्द्र और पृथ्वीराज दोनों थे। फिर भी उन्होंने अपुत्र होने के कारण जयचन्द्र की अवहेलना करके पृथ्वीराज को उत्तराधिकारी बनाया। इसी

बात से इन दोनों में विग्रह पड़ा । पीछे से जयचन्द्र ने एक यज्ञ किया जिसमें अन्य राजाओं को तो निमन्त्रण भेजा किन्तु पृथ्वीराज का न केवल नेवता नहीं किया वरन् उनकी प्रतिमा अनुचित स्थान पर रखवा कर उनका और भी अपमान किया । इससे क्रुद्ध होकर पृथ्वीराज ने जयचन्द्र का अपमान करने को इनकी पुत्री के स्वयम्वर में कुछ चुने हुए सामन्तों सहित आकर उसका अपहरण किया । कहते हैं कि वह पुत्री भी पृथ्वीराज को चाहती थी । इन बातों के कारण जब भारत विजयी शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण से पृथ्वीराज को संकट पड़ा तब मुसलमान विजय से अपने अनिष्ट की संभावना भी होते हुए जयचन्द्र ने उनका साथ न दिया जिससे सं० १२५० में कगर की लड़ाई पर वे तुरकों द्वारा वन्दी होकर मारे गये । जयचन्द्र ने दूसरे ही साल अपनी क्षुद्रता का फल पाया । शहाबुद्दीन ने सं० १२५१ में इनके राज्य पर भी आक्रमण किया । ज़िला इटावा में चन्द्रावर पर घोर युद्ध हुआ जिसमें राठूरो की पूर्ण पराजय हुई और स्वयं जयचन्द्र मारा गया । अपनी सेना बाहुल्य के कारण इन्हें दलपंगुल की उपाधि थी । यह भारी दल भी तुरकों के सुशिक्षित दल का सामना न कर सका । कहते हैं कि जयचन्द्र ने ऐसे उत्साह के साथ युद्ध किया कि सर कट जाने पर भी इनका कबन्ध कुछ काल तक लडता रहा, जिससे इनके वंशधरों की अबतक कबन्धज उपाधि है । फिर भी अनैक्य के कारण इनका पुरुषार्थ कुछ काम न आया और शहाबुद्दीन ने इनके पूरे राज्य पर अधिकार जमाया । चन्दावर पर विजय पाकर शहाबुद्दीन कन्नौज को गया भी नहीं और सीधा बनारस पहुंचा, जिसे लूट कर वह १४०० ऊंटों

पर लूट का धन ले गया। इस प्रकर हर्षवर्द्धन के समय से स्थिर कन्नौज का स्वतंत्र राज्य सदा के लिए नष्ट हो गया। ज़िला गोंडा के सेत माहेत स्थान पर एक शिला लेख मिला है जिससे प्रकट होता है कि इस काल या इससे कुछ पीछे भी यहां बौद्ध मत का कुछ अवशिष्टांश था। उधर फ़ाहियेन तथा ह्यूयन्त्सांग कहते हैं कि उस काल भी औध मे बौद्ध लोग बहुत कम थे। राठूर ध्वंसन के पीछे महोबे के एक चन्देल नरेश ने अवनत कन्नौज पर अधिकार जमाकर एक छोटा सा मांडलिक राज्य उपार्जित किया, जिस पर उसके वंशधर आठ पुश्तो तक शासक रहे। इनका कोई भारी प्रभाव कभी नहीं हुआ। दिल्ली के राज्य का कथन पाश्चात्य भारत के वर्णन में होगा, क्योंकि यद्यपि स्वयं दिल्ली उत्तरी भारत में है, तथापि उस राज्य का फैलाव तथा प्रभाव विशेपतया पश्चिमी भारत से ही सम्बन्ध रखता है।

कनौज का गहरवार या राठूर वंश।

संवत	संख्या	नाम	किसका पुत्र
	१	यशोविग्रह	
	२	महीचन्द्र या महीतल	नं० १
११४२	३	चन्द्रदेव	नं० २
११६०	४	मदनपाल	नं० ३
११६१	५	गोविन्दचन्द्र	नं० ४
१२००	६	राज्यपालदेव	नं० ५
१२२५	७	विजयचन्द्र	नं० ५
१२२७	८	जयचन्द्र	नं० ७

पूर्वी भारत।

पूर्वी भारत में बिहार, बंगाल, आसाम और उड़ीसा की गणना की जा सकती है। बिहार प्रान्त प्राचीन काल में कई भागों में विभक्त था। मगध में वर्त्तमान ज़िले पटना, गया और शाहाबाद थे, मिथिला में दर्भंगा, चम्पारन और उत्तरी मुज़फ्फ़रपूर, वैशाली में दक्षिणी मुज़फ्फ़रपूर तथा अंग में मुंगेर, भागलपूर और महानन्दा नदी तक पुर्निया। वर्त्तमान बंगाल के भी कई भाग थे। गौड़ उत्तर पश्चिमी बंगाल को कहते थे; बंगाल उपनाम समनन वर्त्तमान पूर्वी बंगाल के दक्षिणी भाग को, वरेन्द्र पूर्वी बंगाल के उस उत्तरी भाग को जो महानन्दा और करतोया नदियों के बीच में था, तथा और ज़िला सिलहट के उत्तर पश्चिमी भाग को, पुण्ड्र अथवा पौंड्र वर्द्धन में वर्त्तमान रंगपूर, दिनाजपूर, पुर्निया, माल्दा, राजशाही, बोगरा और पबना के भाग लगते थे। पश्चिमी बंगाल को राढ़ कहते थे। इन भागों के अतिरिक्त महाभारत के समय आसाम तथा पूर्वी और उत्तरी बंगाल मिलाकर प्राग्ज्योतिष देश था जहाँ भगदत्त राज्य करते थे। यह राज्य नरकासुर का स्थिर किया हुआ था। कर्णसुवर्ण में वर्त्तमान वर्द्वान, बानकुड़ा, मुर्शिदाबाद और हुगली के ज़िले थे। ताम्रलिप्त उपनाम सुम्ह में मिदनापूर और हौडा के ज़िले थे। यहाँ कैवर्त्तों का अधिकार था।

मुख्य इतिहास उठाने के पूर्व छोटे छोटे भागों का सूक्ष्म इतिहास कह देना ठीक समझ पड़ता है। प्राग्ज्योतिष पति नरकासुर को श्रीकृष्णचन्द्र ने प्रजा पीडन तथा अबला अपमान के कारण मारा। तत्पुत्र भगदत्त राजा दुर्योधन

की ओर से लड़ कर कुरुक्षेत्र के युद्ध में अर्जुन द्वारा मारा गया। महाराज हर्षवर्द्धन के समय यह राज्य सजीव था। पौंड्रवर्द्धन राज्य अशोक के समय वर्त्तमान था। अशोक का भाई बौद्ध भिक्षु होकर यहां छिपा था। हर्षवर्द्धन के समय यह भारी राज्य था और उनके पीछे तक सबल रहा है। पांडुवाया महास्थान इसकी राजधानी थी। बल्लालसेन ने इसका नाम वरेन्द्र रक्खा। ११वीं शताब्दी में यहां धार्मिक यात्रायें होती थीं। रघुवंश के समय बंग के लोगों के पास नौका समूह था। कर्णसुवर्ण में हर्षवर्द्धन के भाई राज्यवर्द्धन को मारने वाला शशांक नरेश राज्य करता था। इसकी राजधानी मुर्शिदाबाद के निकट रांगामाति समझी जाती है। हर्ष के समय पर्य्यन्त बंगाल और बिहार का वर्णन शेष इतिहास के साथ ऊपर के अध्यायों में आ चुका है। हम ऊपर देख आये हैं कि गुप्त साम्राज्य सं० ३७६ से ५३७ पर्य्यन्त चला और मांडलिक गुप्त राज्य सं० ५३७ से लगभग ६१० पर्य्यन्त। महाराज हर्षवर्द्धन का शरीरान्त सं० ७०४ में हुआ। कहते हैं कि इनका समकालीन मगध में गुप्त घराने का माधवगुप्त नरेश था। यह कन्नौजपति का वशवर्त्ती था। किन्तु उनके पीछे जो अराजकता फैली उसमें माधवगुप्त के उत्तराधिकारी आदित्यसेन ने अपने को स्वतंत्र बना लिया। इनका केवल एक समय ज्ञात है, अर्थात् सं० ७२८ का। दूसरे जीवित गुप्त के एक शिला लेख में इन दोनो नरेशों के अतिरिक्त गुप्त घराने के देवगुप्त, विष्णुगुप्त और दूसरे जीवितगुप्त के नाम लिखे है। ये नरेश अपने को राजा कहते रहे यद्यपि इनके राज्य बहुत ही संकुचित थे। यह पीछे का गुप्त वंश द्वितीय जीवित गुप्त के साथ लुप्त हो गया। स्मिथ महाशय

ने लिखा है कि इन पीछे के गुप्त नरेशों की संख्या ११ थी। यदि यह मान लें कि जब सं० ६१० में मांडलिक गुप्त राज्य नष्ट हुआ, तब भी यह वंश किसी न किसी रूप में कुछ भूमि का शासक रहा, तो सं० ७०० पर्य्यन्त उनके छः नरेशों का होना साधारणतया असंभव नहीं है। इधर पांच राजाओं के नाम ही आये हैं, सो ११ राजा हो सकते थे। उपरोक्त गुप्त राजाओं के पहले वाले गुप्तों के नाम डफ़ महाशय ने यों लिखा है:— कृष्णगुप्त, हर्षगुप्त, प्रथम जीवितगुप्त, कुमारगुप्त, दमोदरगुप्त और महासेनगुप्त ये एक दूसरे के पुत्र थे। माधवगुप्त महासेन का पुत्र था। कहते हैं कि महासेन ने सुस्थित वर्मन को जीता था। इन्हीं के साथ मगध में मौखरि नरेशों का भी राज्य रहा था।

मगध का मौखरि वर्मन वंश।

संवत्	नाम	किसका पुत्र	विवरण
	हरिवर्म्मन		जय स्वामिनी का पति।
	आदित्य वर्म्मन	नं० १	हर्षगुप्त का पति।
	ईश्वर वर्म्मन	नं० २	उपगुप्त का पति।
६०७	ईशान वर्म्मन	नं० ३	
	शर्व वर्म्मन	नं० ४	मागध दामोदरगुप्त का समकालीन।
	सुस्थित वर्म्मन		मागध महासेन गुप्त का समकालीन।
	अवन्ति वर्म्मन		
६५७	ग्रह वर्म्मन	नं० ७	
	भोग वर्म्मन		
	यशो वर्म्मन		

नाट—इन मौखरिनरेशों का शासन काल दूसरे मागध गुप्त नरेशों के साथ रहा।

कहते हैं कि सं० ७११ के लगभग किसी बंगाली गौड़ नरेश आदि सूर ने कन्नौज से पांच ब्राह्मण और पांच कायस्थ इसलिए बुलाये कि उनके कारण बौद्धों द्वारा भ्रष्ट किये हुए हिन्दू आचार फिर से प्रचलित हों।

सं० ७११ के लगभग कन्नौज नरेश ने मगध पर धावा कर के उसे तथा बंगाल को स्ववश किया। इसीके पीछे आसाम नरेश हर्षदेव ने उधर से आक्रमण करके पूर्वी बंगाल, उड़ीसा और उत्तरी सरकार जीते। इन्हीं आक्रमणो के साथ गुप्त नरेशों का अन्त हो गया ऐसा समझ पड़ता है। अनन्तर गुर्जर नरेश वत्सराज ने गौड बंगाल को भांडी के कन्नोजी राजकुल से छीन लिया। प्राचीन कथा, कहानियो, नाटकों, आदि में गौड़ बंगाल का कथन प्रायः आता है। इस प्रकार थोड़े ही दिनों मे बंगाल पर कन्नोज, आसाम तथा गुजरात के तीन पृथक आक्रमण हुए। अनन्तर एक चौथा धावा भी हुआ, अर्थात् राष्ट्रकूटों का। इन लोगों ने पहले आक्रमण कर्ताओं को खदेड़ कर बंगाल पर अधिकार जमाया, किन्तु यह अधिकार थोड़े ही दिनों में जाता रहा। ये घटनायें किस प्रकार से हुई सो विधिवत ज्ञात नहीं है, किन्तु इतना निश्चित है कि सं० ८०७ के लगभग बंगाल में घोर अराजकता से प्रजा बहुत पीड़ित हुई। सं० ७११ से ८०७ पर्य्यन्त बंगाल पर उपरोक्त चार सफल आक्रमण हुए, और उनके प्रभाव नष्ट भी हो गये। ऐसी दशा में अराजकता से प्रजा का विकल होना स्वभाविक ही था। अब उन्हें समझ पड़ा कि बिना किसी सबल शासक के बाहरी लुटेरों से उनका पीछा न

छूटेगा। इस लिए प्रजाओं में से प्रधान पुरुषों ने मिलकर राजा निर्वाचन का मन्त्र किया। यह कार्य किस प्रकार से हुआ। सो ज्ञात नहीं है, किन्तु फल यह हुआ कि सं० ८०७ के लगभग वंग प्रजा ने दयितविष्णु के पौत्र तथा वप्यट के पुत्र एक पराक्रमी योधा गोपालदेव को अपना शासक चुना। पितामह से आगे इनके वंश वृक्ष का उस काल के भी किसी लेखक ने कथन नहीं किया है। इससे जान पड़ता है कि ये किसी राजकुल के पुरुष न होकर साधारण मनुष्य थे और इनकी वीरता ही इनकी उन्नति का कारण थी। वंग प्रजाकी निर्वाचन शक्ति की मुक्त कंठ से प्रशंसा करनी पड़ती है जिन्हों ने ऐसा प्रवीण पुरुष चुना जिसने तथा जिसके वंशधरों ने अपने वंश मे राजशक्ति साढ़े चार सौ वर्ष क़ायम रक्खी।

गोपालदेव के वंश को "पाल घराना कहते" हैं। इस नामकरण का कारण यही है कि इन सब नरेशों के नामों में पाल शब्द आया है। बंगाल और बिहार पर इनका शासन मोटे प्रकार से सं० ८०७ से १२५५ पर्य्यन्त रहा। पहला नरेश गोपाल प्रथम ८०७ मे गद्दी पर बैठा। इनका विवाह भद्रदेश की राजकुमारी देद्द देवी से हुआ। गोपालदेव बड़ा ही सुयोग्य शासक हुआ और इसने बंगाल की बाहरी आक्रमणों से पूरी रक्षा की तथा प्रजा को सुखी रक्खा। गोपालदेव ने मगध (दक्षिणी बिहार) पर शासन फैलाया। यह श्रद्धालु बौद्ध था और इसने उद्दण्डपूर (वर्त्तमान बिहार शहर) मे एक भारी मठ बनवाया। सब पाल नरेश बौद्ध थे किन्तु इन्होंने हिन्दू धर्म के साथ कुव्यहार कभी नही किया और उसका भी कुछ आदर ये लोग करते ही रहे। इसी स्थान पर पालों की वंशावली लिख देना ठीक समझ पड़ता है। कोष्टकों मे राजा का नम्बर लिखा है।

पहला गोपाल (१) के पुत्र धर्मपाल (२) और वाक्यपाल; धर्मपाल के पुत्र देवपाल (३), वाक्यपाल के पुत्र जयपाल और उनके सूरपाल उपनाम विग्रहपाल प्रथम (४), जिनके पुत्र नारायण पाल (५) थे; नारायणपाल के राज्यपाल (६), उनके गोपाल दूसरे (७), उनके बिग्रहपाल दूसरे (८), उनके महीपाल पहले (९), उनके नयपाल (१०), उनके बिग्रहपाल तीसरे (११), उनके महीपाल दूसरे (१२), सूरपाल दूसरे (१३) और रामपाल (१४), उनके राज्यपाल, कुमार पाल (१५) और मदनपाल (१७), कुमारपाल के पुत्र गोपाल तीसरे (१६) थे। अन्तिम नरेश गोविन्दपाल (१८) का पितृत्व अज्ञात है।

प्रथम पाल नरेश गोपाल के पिछे सं० ८३७ के लगभग उनके पुत्र धर्मपाल देव गद्दी पर बैठे। आपने सं० ८६७ के लगभग पाटलिपुत्र में चार उन ग्रामों का दान किया जो पौंड्रवर्द्धन प्रान्त में थे। आपने विक्रमसील का मठ बनवाया, जिसमें १०७ मन्दिर और छः विहार थे। यह गंगातट पर था। धर्मपाल ने अपना पैतृक राज्य और भी विस्तृत किया। आपने कन्नौज नरेश इन्द्रराज उपनाम इन्द्रायुध को राज्यच्युत कर के चक्रायुध को गद्दीपर बिठलाया। चक्रायुध के अभिषेक को कुरु, यदु, यवन, अवन्ती, गान्धार, कीर भोज, मत्स्य और मद्र नरेशों को मानना पड़ा था। इससे प्रकट है कि इनमें से बहुत यह बात यों ही मान गये होंगे किन्तु कुछ से धर्मपाल को युद्ध करना पड़ा होगा। अनन्तर गुर्जर नरेश नागभट्ट ने चक्रायुध को पराजित किया। उनका पक्ष लेकर धर्मपाल भी लड़कर नागभट्ट से हारे। अनन्तर राष्ट्रकूट तृतीय गोविन्द की सहायता लेकर इन दोनों ने नागभट्ट को हराया तथा कन्नौज को गद्दी कुछ काल के लिए

भांडी के कुल में स्थापित रक्खी। बैनर्जी महाशय का विचार है कि इन्द्रयुध को राज्यच्युत करने वाला युद्ध धर्मपाल ने सं० ८२० के लगभग प्रारंभ किया होगा। धर्मपाल का एक दान पत्र इनके बत्तीसवें राज्य वर्ष में निकला था।

इनके पीछे इनका दूसरा पुत्र देवपाल देव राजा हुआ। पाल राजाओं में यह सब से अधिक प्रतापी था। किन्हीं ग्रंथों में इनका राजत्वकाल ४८ वर्ष का लिखा है, किन्तु अन्य समयो को मिलाकर वह लगभग सं० ८६६ से ९०७ पर्य्यन्त समझ पड़ता है। प्राचीन लेखों मे लिखा है कि अपने मंत्री दर्भपाणि मिश्र के मंत्रों पर अनुगमन करके देवपाल ने उत्तर में हिमांचल से लेकर दक्षिण मे विंध्यपर्य्यन्त देशों को जीता। कहते हैं कि इनके सेनापति लवसेन ने आसाम और कलिंग देश जीते। देवपाल ने गुर्जरनरेश रामभद्र को पराजित किया तथा राष्ट्रकूटों से भी इनका युद्ध हुआ। देवपाल के राज्य में अंग, वंग, और मगध सम्मिलित थे। आपने अपने राज्य के ३३वें वर्ष मुद्गगिरि (मुंगेर) से एक ताम्रपत्र जारी किया जिससे यह भी विदित है कि आपने अपने पुत्र राज्य-पाल को युवराज बनाया था। फिर भी आपके पीछे चचा के पौत्र प्रथम विग्रहपाल उपनाम प्रथम सूरपाल राजा हुए थे। इससे प्रकट है कि राज्यपाल की मृत्यु पिता के सामने हो गई थी। विग्रहपाल का राज्य थोड़े ही दिन चला। इनके मरने पर पुत्र नारायणपाल गद्दी पर बैठा। इनका राजत्व-काल लगभग सं० ९१२ से ९२९ पर्य्यन्त समझ पड़ता है। इस काल मिहिरभोज की अध्यक्षता में कन्नौज का प्रभाव बहुत चढा हुआ था। भोज ने मगध और बंगाल पर आक्रमण किया। इसका हाल जोधपुर के मंडौर स्थान में प्राप्त एक

प्राचीन प्राकृत लेख में मिलता है। यह लेख सं० ९१८ के बीच का लिखाया हुआ है। उसमें कहा गया है कि इनके पिता कक्का ने मुद्गगिरि में एक युद्ध में गौड़ों के सम्मुख यश पाया था। इससे समझ पड़ता है कि कक्का भी भोज के साथ गये होंगे और यह धावा सं० ९१८ से कुछ पहले हुआ होगा। भोज अथवा महेन्द्र पाल के समय परिहारो ने कुछ दिनो के लिए मगध छीन लिया था। फिर भी नारायणपाल ने अपने राजत्व के सत्रहवें वर्ष मुद्गगिरि से एक दान पत्र जारी किया था जिससे प्रकट है कि मिथिला का कुछ भाग उनके अधिकार में था। सं० ९२६ के पीछे नारायण पाल के कोई लेखादि नहीं मिलते। इनका राज्य बहुत संकुचित हो गया था और इनके पीछे बहुत काल के लिए पालों का बल मन्द पड़ गया तथा काम्बोजों (मंगोलियन लोगो) का प्रभाव उत्तरी बंगाल मे बढ़ा।

काम्बोजों का आक्रमण बंगाल में कब हुआ इसका ठीक संवत ज्ञात नहीं है। इतना निश्चित है कि मंगोलों ने सं० १०२३ मे एक स्तंभ दीनाजपूर मे बनाया। नारायणपाल के पीछे से महीपाल प्रथम (सं० १०३१—१०८३) के आरंभ काल पर्यन्त पालो का कोई महत्ता युक्त वर्णन नहीं आता। इससे समझ पड़ता है कि नारायणपाल के पीछे से महीपाल पर्य्यन्त काम्बोजो का प्राधान्य रहा। इसलिए इनका प्राधान्य प्रायः १०० वर्षों तक समझ पड़ता है। ये पहाड़ी लोग बंगाल में हिमालय पार करके आये होंगे। इस मार्ग से भारत पर यही एक धावा हुआ। यदि उत्तरीय देशों के लोग भी मुसलमानों की भांति विजय प्रिय होते तो भारतीय

इतिहास में खैबर घाटी के समान इस मार्ग का भी बहुत वर्णन होता। मंगोलों का शासक उत्तरीय बंगाल मे रहा।

अब हम पाल इतिहास के डोर को फिर से उठाते हैं। नारायण पाल के पीछे उनका पुत्र राज्यपाल राजा हुआ जिस के पीछे उसका पुत्र दूसरा गोपाल गद्दी पर बैठा। इस नरेश के दो लेख मिले हैं जिनसे विदित है कि इसने कुछ दिनों के लिए मगध फिर से प्राप्त किया। अनन्तर गोपाल का पुत्र विग्रहपाल दूसरा सिंहासनासीन हुआ। राज्यपाल, गोपाल, तथा विग्रहपाल का राजत्व काल कुल मिलाकर सं० ६२६ से १०३१ पर्य्यन्त समझ पड़ता है। जान पड़ता है कि इन के समय में परिहारों ने भागीरथी पर्य्यन्त बंगाल पर अधिकार कर लिया था। इसी समय प्रायः ५० वर्षों के लिए सं० १००७ पर्य्यन्त खड्गोद्यम, जातखड्ग और देवखड्ग ने पूर्वी बंगाल में एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया था। इस प्रकार पालों का राज्य बहुत ही संकुचित हो गया था। संभवतः विग्रहपाल के राज्य का पूर्ण अथवा वृहदंश निकल गया था, क्योंकि इनके पुत्र महीपाल के विषय में लिखा है कि उन्होंने पैतृक राज्य प्राप्त किया।

विग्रहपाल के पीछे इनके पुत्र पहिले महीपाल सं० १०३१ के लगभग पाल वंश के नेता हुए। इनका राजत्व काल ५२ वर्ष का लिखा हुआ है अर्थात् लगभग सं० १०८३ पर्य्यन्त। अभी कहा जा चुका है कि आपने अपने पैतृक राज्य का पुनरुद्धार किया। इन्होंने मंगोलों को निकाल कर उत्तरी बंगाल पर अधिकार जमाया। आपके यश के गीत बंगाल में बहुत दिन गाये गये और उड़ीसा तथा कूचविहार में उनका अब भी प्रचार है। इनके राज्य के छटे वर्ष नालन्द

सम्मिलित हुआ था और मगध पर इनका बहुत काल पर्य्यन्त आधिपत्य रहा। आपके ग्यारहवें राज्य वर्ष मे बुद्ध गया में महाबोध पर एक बुद्ध मूर्त्ति प्रतिष्ठित हुई और उसी साल नालन्द के जले हुए मन्दिर का पुनर्निर्माण हुआ। इस प्रकार लंगदर्म की क्रूरताओं से अर्दित बौद्ध धर्म का फिर प्रचार चढ़ा। सं० १०७० में तिब्बत से बौद्ध पंडितों का बोलौआ आया और पंडित धर्मपाल आदि ने वहाँ पहुंच कर बौद्ध मत का माहात्म्य बढ़ाया तथा सुन्दर उपदेशों का प्रचार किया। सं० १०९७ तथा १०९९ में नयपाल के समय मगध से अतिस की अध्यक्षता में एक और पंडित समाज ने तिब्बत में जाकर बौद्ध मत को वहां उन्नति दी। मगध जीत कर महीपाल ने तीर भुक्ति (मिथिला) पर आक्रमण करके इसे भी स्ववश किया। इनके ४८वें राज्य वर्ष पर्य्यन्त इनके मिथिला पर शासक होने का पता मिला है। आपके राज्य मे वनारस भी सं० १०७७ पर्य्यन्त रहा। इतने विजय प्राप्त करने पर भी महीपाल ने चेदि राज गांगेयदेव तथा तत्पुत्र कर्णदेव से पराजय पाई और चोल नरेश राजेन्द्र चोल ने भी इन्हें हराया। चोलराज का आक्रमण सं० १०८२ के पूर्व हुआ था। चोल नरेश ने कोशलेनाडु (उड़ीसा), दंडक भुक्ति (उड़ीसा और बंगाल के बीच के देश) अर्थात् मिदनापूर और बालासोर, तक्कमलाडम (दक्षिणी राढ़) और पूर्वी बंगाल को जीता। उस काल दक्षिणी राढ़ का राजा रणसूर था। इस वंश के लक्ष्मीसूर तथा दमसूर नामक अन्य दो राजाओं के नाम मिले हैं। उपरोक्त चोल विजय का कथन बेनर्जी महाशय के आधार पर किया गया है। वहां से भी आगे बढ़ कर राजेन्द्र चोल ने उत्तर राढ़ में महीपल को हराया। पराजय पाकर भी

महीपाल ने चोल राज को गंगा पार न करने दिया। चोल नरेश ने केवल विजय प्राप्त की किन्तु जीते हुए देशों पर राज्य न जमाया। इस काल उत्तर बंगाल पर कुछ ऐसी ग्रह दशा थी कि बनारस पर्य्यन्त उसे महमूद ने विमर्दित किया और उससे छूटे हुए पूर्वी भाग ने चोल के दुःखपद विजय से क्लेश उठाया। भारतीयता का उस काल उत्तर और दक्षिण में इतना ह्रास था कि इन दोनो प्रान्तों के नरेश एक दूसरे में संवन्ध ही न समझते थे, नहीं तो यदि चोल राज अपनी भारी शक्ति बंगाल जीतने के स्थान पर महमूद को दबाने मे लगा कर स्वदेश प्रेम दिखलाता, तो भारत के प्राचीन तथा पुनीत नगरों की दुर्दशा न होती। चोल धावे से महीपाल के राज्य को इतनी कम क्षति पहुंची कि सं० १०८३ में हम उसे अपने भाइयों द्वारा बनारस में गंधकुटि का मन्दिर बनवाते देखते हैं। इन भाइयों के नाम स्थिरपाल और वसन्तपाल थे। सं० १०७७ में मिथिला प्रान्त गांगेय देव के अधिकार मे आया और सं० १०९९ मे कर्ण देव नें बनारस पर अधिकार जमाया। यह हार महीपाल के पीछे की समझ पड़ती है। पालों ने मिथिला को फिर पीछे कभी न पाया।

महीपाल के पीछे सं० १०८३ के लगभग उनका पुत्र नय-पाल उपनाम न्यायपाल गद्दी पर बैठा। इस काल चेदिपति कर्णदेव का इतना प्रभाव था कि उसने दक्षिणियों का सहाय लेकर प्रायः पूर्ण उत्तरी भारत को पराजित किया। आपने सवत १०९२ के पूर्व मगध पर आक्रमण किया किन्तु नयपाल से हार खाई। इनका राजत्व काल कम से कम १५ वर्ष का था। नयपाल के पीछे इनका पुत्र तीसरा विग्रहपाल सं० १०१८ के लगभग राजा हुआ। स्मिथ महाशय ने इनका समय सं०

११३७ पर्य्यन्त माना है किन्तु बैनर्जी महाशय इनके पुत्र रामपाल का समय सं० ११०८ से ११५४ पर्य्यन्त मानते हैं। इस स्थान पर बैनर्जी महाशय के कथन स्वयं एक दूसरे के प्रतिकूल हैं, इसलिए उनका लिखा हुआ रामपाल का राजत्वकाल अशुद्ध समझ पड़ता है। आप तीसरे विग्रहपाल का राजत्वकाल १३ वर्ष से अधिक नहीं मानते, सो वह सं० १०१८ से १११७ पर्य्यन्त आता है। नयपाल और विग्रहपाल के समय मान्य दान पत्रों आदि पर अवलंबित हैं। अपने राज्यारंभ ही में विग्रहपाल का चेदिपति कर्णदेव से युद्ध हुआ। जिस कर्णदेव ने आदिम काल में सारे उत्तरी भारत पर आतंक जमाया था वही वृद्धावस्था मे चन्देल कीर्ति वर्मन, मालवीय उदयादित्य, अनहिलवाड़पति भीमदेव तथा पहले सोमेश्वर से हारा। कर्णदेव का राजत्वकाल बड़ा लम्बा था, सो यह विविध समयों में पूरा विजेता और पूरा हारने वाला हुआ। विग्रहपाल ने भी कर्णदेव को पराजित करके उसकी पुत्री यौवन श्री के साथ विवाह किया।

विग्रहपाल के पीछे आपका बड़ा पुत्र दूसरा महीपाल गद्दी पर बैठा। यह बड़ा मूर्ख और अन्यायी राजा था और प्रजा को इसने भांति भांति के क्लेश दिये। यह सुहृद मंत्रियो के मत पर नहीं चलता था और भाइयों से अपना अनिष्ट चिन्तवन करके उनसे भी कुढ़ता था। अन्त में इसने अपने दोनों भाइयों सूरपाल तथा रामपाल को कारागार में डाल दिया। इसके अन्यायों से तंग आकर इसकी प्रजा और सेना इससे प्रतिकूल हो गई और कैवर्त (केवट) कुलोद्भव दिव्योक नामक एक राज्य कर्मचारी ने उत्तरी बंगाल को स्ववश करके विद्रोह का झंडा खड़ा किया। महीपाल अपनी लघुकाय

सेना लेकर उससे लड़ने गया किन्तु युद्ध मे मारा गया। अब सूरपाल तथा रामपाल कारागार से निकले और बड़ा भाई सूरपाल राजा हुआ। रामपाल, स्वयं राज्य चाहता था सो इस बात से अप्रसन्न होकर दल संगठन के विचार में लगा। कुछ काल में सूरपाल गद्दी से उतार दिया गया और रामपाल राजा हुए। सूरपाल का इन्हीं के इशारे से वध होना भी संभव है। फिर भी केवटो से सामना करने का साहस रामपाल को न होता था। यह देख इनके बड़े पुत्र राज्यपाल तथा मन्त्रियों ने इन्हें उत्साह दिलाया और तब यह केवटों से लड़ने का प्रबन्ध करने लगे। दूसरे महीपाल का राज्य समय सं० ११११ के लगभग से आरम्भ होता है। स्मिथ ने रामपाल का राज्यारंभ काल सं० ११४१ से माना है तथा वैनार्जी ने सं० ११०८ से। वैनर्जी महाशय के दिये हुए अन्य समयों से उनका यह समय टक्कर नही खाता। उनके अनुसार प्रथम महीपाल का समय सं० १०८३ तक आता ही है और नयपाल तथा विग्रहपाल ने कम से कम २८ वर्ष राज्य किया ही, सो दूसरे महीपाल वा दूसरे सूरपाल को मिलाकर छः साल तक देने से रामपाल का राज्यारम्भ सं० १११७ के पूर्व नही हो सकता। रामपाल का राज्य कम से कम ४२ वर्ष चला, अर्थात् सं० ११५९ तक। फिर इनके पीछे दो वर्षों में मदनपाल और गोपाल का राज्यान्त मानने से ही हमें मदनपाल का सहायक सं० ११६१ में मरने वाला कन्नौजपति राठूर चन्द्रदेव मिलता है अन्यथा नही। अतएव रामपाल का राज्यकाल सं० १११७ से ११५९ पर्यन्त वैठता है। महीपाल का विजेता दिव्योक केवट शीघ्र ही मर गया। उसके पीछे उसका भाई रुद्रक राजा हुआ और रुद्रक के मरने पर उसका पुत्र भीम केवट गद्दी पर वैठा।

इस काल केवट नरेश भीमपालों की अन्य प्रजाओं पर भी अत्याचार करने लगा। यह देख रामपाल ने और भी प्रयत्न किया। अब पालों के अधीन राजाओं ने इनकी सहायता की और इनके सम्बन्धी शिवराज, पिथीकेदेव रक्षित तथा मगध के मथनदेव भी सहायतार्थ आये। इन लोगों ने गंगा पार करके भीम को युद्ध में पकड़ लिया। यह देख उसके मित्र हरी ने बिखरे हुए केवट दल को फिर से एकत्र किया किन्तु रामपाल के पुत्र ने उसे हराया। हरी पकड़ लिया गया और भीम के साथ उसे भी बध दंड मिला। केवटों की राजधानी दमर थी। अब उत्तरी बंगाल पर भी पालों का अधिकार हुआ। तब करटोया और गंगा के संगम पर रामपाल ने रामावती शहर बसा कर उसमें जगद्दल महाविहार नामक एक बौद्ध विहार भी बनवाया। अनन्तर इस प्रतापी पाल नरेश ने उत्कल पर धावा किया और कलिंग का शासन हाथ में लिया, किन्तु उत्कल राज्य नागवंशियों को वापस कर दिया। अब आप के अधीन मायन राजा ने आपके लिए कामरूप (आसाम) जीता। यह देख पूर्वी बंगाल के एक राजा ने अपने बहुत से अच्छे से अच्छे हाथी देकर रामपाल की शरण ली। यह पूर्वी बंगाल का यादव नरेश समझा गया है। पूर्वी बंगाल मे वज्रवर्मन, जात वर्मन सामल वर्मन, और भोज वर्मन नामक चार नरेश लिखे हैं। ये एक दूसरे के पुत्र थे। जात वर्मन को कर्णदेव की पुत्री वीरश्री व्याही थी। अपने अन्त समय में रामपाल पुत्र राज्यपाल को राज्य भार सौंप कर रामवती में रहने लगे थे। कुछ दिनों में आपने अपने प्राचीन सहायक मामा मथनपाल का मरण संवाद सुना। इस काल आप

मुंगेर मे थे। यह अशुभ संवाद सुनकर आप बहुत ही व्यग्र हुए। जान पड़ता है कि इसी समय आपका पुत्र राज्यपाल भी देवलोक वासी हुआ होगा। अब जीवन में कोई स्वाद न समझ कर रामपाल ने ब्राह्मणों को बहुत सा धन देकर श्री गंगाजी में पैठकर अपना शरीर छोड दिया। यह पालों मे प्रतापी राजाओं में अन्तिम नरेश था।

रामपाल के पीछे इनका दूसरा पुत्र कुमारपाल सं० ११५६ के लगभग सिंहासनासीन हुआ। इनके राजा होते ही आसाम में तिंग्य देव ने विद्रोह खड़ा किया। कुमारपाल ने अपने पिता के प्राचीन मंत्री योगदेव के पुत्र वैद्य देव को यह वचन देकर आसाम भेजा कि विपक्षियो का दमन करने पर वह आसाम का राज्य लेवैं। वैद्यदेव ने अति शीघ्रता से आसाम जाकर विद्रोहियों का दमन किया। अनन्तर बहुत थोड़े दिनों मे उड़ीसा नरेश अनन्त वर्मन चोडगंग ने दक्षिणी और पश्चिमी बंगाल पर आक्रमण करके अपना अधिकार जमाया। वैद्यदेव ने एक जल युद्ध जीता था ऐसा लिखा है। संभवतः यह पराजय अनन्तवर्मन की ही हुई थी। इसी बीच साल ही डेढ़ साल राज्य करके कुमारपाल स्वर्गवासी हुए और इनका बच्चा पुत्र तीसरा गोपाल राजा हुआ। थोड़े ही दिनों में इस बच्चे को राज्य लोभ से इसके चचा मदनपाल ने मार कर स्वयं शासनारंभ किया। इसमें कुछ झगडा भी हुआ किन्तु अन्त में मदनपाल सफल मनोरथ हुआ। वैद्यदेव इन्हें राजा नही मानते थे। इससे समझ पडता है कि वह आसाम मे बिलकुल स्वतंत्र हो गये थे। मदनपाल के राज्यारभ पर्यंत पूर्वी मगध और उत्तरी बंगाल पाल राज्य मे थे। पालों की ऐसी निर्बलता

देख कर सेन भूपाल विजयसेन ने पूर्वी तथा पश्चिमी बंगाल में अपना बल दृढ़ करके मदनपाल के समय उत्तरी बंगाल पर भी धावा किया, तथा उसका दक्षिणी भाग छीन लिया। उत्तरी बरेन्द्र मदनपाल के आधीन रहा। कुछ दिनों में विजयसेन ने पूरा उत्तरी बंगाल स्ववश करके मिथिला पर भी आक्रमण किया। इस प्रकार पाल राज्य मगध में ही रह गया। कन्नौज के राठूर नरेश चन्द्रदेव ने सेनों से लड़ने में मदनपाल की सहायता की थी। चन्द्रदेव का समय सम्वत् ११६१ के पीछे नहीं चला है। अतएव मदनपाल सं० ११६० या ११६१ मे गद्दी पर बैठे होंगे। मदनपाल को चंद्रदेव से सहायता मिलने का हाल पालों के ऐतिहासिक ग्रंथ रामचरित्र मे लिखा है। मदनपाल के विषय केवल इतना और ज्ञात है कि विजयसेन द्वारा इनकी अंतिम पराजय सं० ११६५ के लगभग हुई होगी और इनका शरीरांत सं० ११७६ के लगभग हुआ होगा।

मदनपाल के पीछे पाल नरेश ऐसे शक्तिहीन हो गये थे कि उनकी शासक श्रेणी भी नहीं मिलती, केवल इतना ज्ञात है कि अंतिम पालराज गोविन्दपाल के राज्यारंभ का चौदहवां साल एक गया के पाषाण लेख में सं० १२३२ लिखा हुआ है जिससे उनका शासनारंभ सं० १२१८ मे आता है। यह भी ज्ञात है कि गोविन्दपाल मगध के एक भाग के शासक थे, बहुत करके पूर्वी भाग के। सं० १२५४ में मुहम्मद खिलजी ने आक्रमण करके मृतक प्राय पाल राज्य को ध्वस्त कर दिया। गोविन्दपाल ने किसी प्रकार दो साल और शासन किया और तब यह साढ़े चार सौ वर्षों का प्राचीन

बौद्ध राज्य बढते हुए मुसलमान बल के कारण सदा के लिए लुप्त हो गया।

बंगाल और मगध का यह पाल वंश कई प्रकार से स्मरणीय है। एक तो कई नरेशों के समय इनका राज्य बहुत बड़ा था। इनका शासन काल भी बहुत ही लम्बा था। भारत में आँध्रों को छोड़ और कोई भी भारी राज्य वंश पालों के बराबर इतने लम्बे समय तक नहीं चला है। पाल राज्य को मंगोलों, केवटों और सेनों द्वारा समय समय पर भारी धक्के लगे, किन्तु फिर भी यह वंश मुसलमान विजय पर्यंत किसी न किसी रूप में स्थिर ही रहा। धर्मपाल तथा देवपाल के समय मानसिक तथा कारीगरी की उन्नति बहुत अच्छी हुई। इनके समय के धीमान और तत्पुत्र बितपाल (वितपालो) बड़े अच्छे चित्रकार थे। पाल राजे बड़े ही श्रद्धालु बौद्ध थे और पडितों के साथ बडी उदारता का व्योहार करते थे। ग्यारहवीं शताब्दी में पालों के बौद्ध मत ने तांत्रिक रूप धारण किया। इस काल भी बहुत से धर्मवान बौद्ध लोग इनकी संरक्षकता में थे। बौद्धों ने बहुत से अच्छे सरोवर बनवाए तथा अन्य प्रकार से भी लोकहित में पूरा ध्यान दिया।

अब हम बंगाल के सेन राजवंश का हाल उठाते हैं। संवत् ११११ के लगभग उडीसा नरेश अनन्तवर्मन, चोड़गंग ने दक्षिणी और पश्चिमी बंगाल जीते थे ऐसा ऊपर कहा जा चुका है। उसी समय सामंतदेव अथवा उसके पुत्र हेमंतसेन ने कासोपुरी वर्तमान कसियारी में एक छोटी सी रियासत पैदा की। यह कसियारी मयूरभंज राज्य में है। यह सामंतदेव या तो चोड़गंग नरेश का कोई सरदार

था अथवा राजेन्द्र चोल से इसका कोई सम्बन्ध हो । वैनर्जी महाशय का मत है कि सेनों का अभ्युदय चोलों के आक्रमण के ही कारण हुआ । आपका मत है कि सेन लोग कर्नाट क्षत्री थे । स्मिथ महाशय ने इन्हें ब्रह्मक्षत्री माना है । कासीपुरी की रियासत हेमंतसेन के समय पर्यन्त प्रभाव शालिनी न हुई, किन्तु इसके पुत्र विजयसेन ने उसकी अच्छी उन्नति की । फिर भी इन्होंने अपने कुल के प्राचीन स्वामी चोड़गंग से मित्रभाव रक्खा । विजयसेन का राजत्व काल ४० वर्ष चलता है, अर्थात् संवत् ११२५ से ११६५ पर्यंत । इनके राज्यकाल के ३७वें वर्ष का एक ताम्र पत्र भी मिला है । विजयसेन की पहली मुठभेड़ पाल नरेश से हुई, जिनसे आपने दक्षिणी वरेन्द्र अर्थात् उत्तरीय बंगाल का दक्षिणी भाग छीन लिया । अनन्तर अपने नाम पर विजयपुर बसाकर आपने उसी को राजधानी बनाया । इसे अब विजय-पूर मिलिक कहते हैं, और यह रामपूर वो अलिया से १० मील ठीक पूर्व गंगा जी के किनारे बसा हुआ है । आपने एक बड़े तड़ाग के किनारे शिव मन्दिर बनवा कर उसमें प्रद्युम्ने-श्वर मूर्त्ति की स्थापना की । यह विजयपूर से छै मील की दूरी पर देवपारा ग्राम मे है । सारे सेन भूपाल बड़े ही श्रद्धालु हिन्दू थे । गौड़ नरेश मदनपाल को इस प्रकार हरा कर विजयसेन ने मिथिला पर आक्रमण करके राघव, वर्द्धन तथा वीर नामक तीन भूपालों को जीता । अनंतर कामरूप (आसाम) पर धावा करके वैद्यदेव तथा उसके उत्तराधिकारी को पराजित किया । इस प्रकार विजयसेन पूर्वी, पश्चिमी और उत्तरी बंगाल के स्वामी हुए । इनका ऐसा विभव देख कर इनके वंश के प्राचीन स्वामी कलिंग

नरेश ने इनपर आक्रमण किया, किंतु पराजित होकर उसे अपने देश पलट जाना पड़ा।

विजयसेन के पीछे इनके पुत्र बल्लालसेन का शासनकाल संवत् ११६५ से ११७६ पर्यन्त रहा। आपने बंगाल में कुलीनता का प्रचार किया। यह प्रचार ब्राह्मणो, वैद्यों और कायस्थों में हुआ। वल्लाल तांत्रिक हिन्दू थे। आपने बहुत से ब्राह्मणों को धर्म प्रचारार्थ मगध, भोटान, चिटागावँ, अराकान, उड़ीसा और नैपाल भेजा। कुछ ग्रंथों में लिखा है कि गौड़ अथवा लखनौती शहर आप ही ने बसाया। जिस काल विजयसेन का युद्ध मदनपाल से हुआ था तब कन्नौज के राठौर नरेश चन्द्रदेव भी पाल नरेश का पक्ष लेकर विजयसेन से हारा था। इसी लिए अथवा राज्य लोभार्थ राठूर नरेश पूर्व में विजय के सदैव कांक्षी रहे। सं० ११७१ के लगभग गोविन्दचन्द्र ने पूरे पश्चिमी मगध पर अधिकार जमाया। सं० ११८३ का उनका पटना ज़िले के एक गांव का दान पत्र मिला है। गोविन्द चन्द्र ने बंगाल पर भी धावा किया, किन्तु सेनो द्वारा वह पराजित हुआ। इस प्रकार राठूर आक्रमण होते हुए भी पूर्वी मगध पर सेनों का अधिकार बना रहा। बल्लालसेन ने बंगाल के चार भाग किये, अर्थात् राढ़ (भागीरथी के पश्चिम, प्राचीन कर्ण सुवर्ण), वरेन्द्र (प्राचीन पौंड्रवर्द्धन), बागरी या बागदी (दक्षिणी बंगाल) और बग (पूर्वी बंगाल)।

वल्लालसेन के पीछे उनका पुत्र लक्ष्मण सेन सं० ११७६ में गद्दी पर बैठा। इसे मुसलमान ऐतिहासिकों ने राय लखमनियां कहा है। जब सं० १२५६ में सेन राज्य मुसलमानों द्वारा नष्ट हुआ, तब भी यही महाराज गद्दी पर थे।

इससे इनका शासनकाल ८० वर्ष का बैठता है । आदिम काल मे लक्ष्मणसेन अपने पितामह की भांत बड़े पुरुषार्थी एवं प्रबन्धपटु थे । आपने अपने पिता के समय ही कलिग पर आक्रमण किया था । राजा होने के पीछे आपने बनारस के नरेश गोविन्दचंद्र को पराजित किया, तथा कामरूप (आसाम) पर अधिकार जमाया । गोविन्दचन्द्र की राजधानी बनारस थी और इनका राज्य कन्नौज पर्यन्त था । आपके पुत्र केशव सेन और विश्वरूपसेन के ताम्र पत्रो में लिखा है कि आपने दक्षिणी समुद्र के किनारे विजय स्तम्भ स्थापित किया इससे समझ पड़ता है कि आपने किसी दक्षिणी नरेश को जीता होगा । आपका शासन पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी बंगाल और पूर्वी मगध पर था । स १२१५ में जामिल का महानायक प्रताप धवल स्वतंत्र हो गया । इसी प्रकार सेनों के अधीन कुछ अन्य पदाधिकारी भी स्वतंत्र हुए. जिससे समझ पड़ता है कि प्रायः ४० वर्ष राज्य करने के पीछे लक्ष्मणसेन का शासन ढीला हो गया था । इनके पीछे इनके पुत्र माधवसेन, विश्वरूपसेन और केशवसेन ने एक दूसरे के अनन्तर राज्य किया । इन तीनों शासकों के ताम्रपत्र मिले हैं । मुसलमान ऐतिहासिकों ने लिखा है कि उनके द्वारा वंग विजय के समय लक्ष्मण सेन ही राजा थे । वे लिखते हैं कि सेन पराभाव के समय महाराज लक्ष्मण सेन ८० वर्ष से गद्दी पर थे । उस काल सभी भारतीय नरेश इस वंश को पूज्य दृष्टि से देखते थे और यह महाराज धार्मिक दृष्टि से एक प्रकार हिन्दुओं का मानो ख़लीफा था । मुसलमान ऐतिहासिकों का कथन है कि विश्वासनीय लोग कहते थे कि लक्ष्मण सेन की उदारता बहुत चढ़ी बढ़ी थी और उन्होंने कभी

किसी छोटे अथवा बड़े मनुष्य के साथ अन्याय नहीं किया। इस लोकमान्य नराधिप की राजधानी नदिया थी। कुतबुद्दीन ऐबक के सेनापति मुहम्मद बख्द बख़ियार ने संवत् १२५४ में यकायक धावा करके बिहार पर अधिकार जमाया। इस दुर्ग पर केवल दो सौ मुसलमानों ने यकायक धावा करके अधिकार जमा लिया और सिर घुटे हुए ब्राह्मणों अर्थात् बौद्ध भिक्षुओं का ऐसा प्रचण्ड वध हुआ कि सैकड़ों विद्वानों मे से उस स्थान के ग्रंथों को पढ़कर विजेता को समझाने वाला एक भी मनुष्य न मिला, यद्यपि वह एक बिहार अर्थात् कालेज था। इसी प्रकार के और भी बहुतेरे अत्याचार हुए जिससे बौद्ध धर्म अपने अंतिम भारतीय केन्द्र बिहार से भी लुप्त प्राय हो गया। जो बौद्ध भिक्षु मुसलमानी तलवार से बचे, वे तिब्बत नेपाल और दक्षिणी भारत को भाग गये। तिब्बत में जाकर इन पंडितों ने बहुत से संस्कृत ग्रन्थों का तिब्बती भाषा मे अनुवाद किया, जिससे उस भाषा की बहुत उन्नति हुई। तिब्बत में ग्रंथ छापने की कला चीन से सातवीं शताब्दी में आ गई थी। इसके कारण भारतीय पंडितों और तिब्बती लामाओं के ग्रन्थ भली भाँति सुरक्षित रहे।

पाल राज्य की ऐसी भारी दुर्गति होने पर भी उस काल सेन राज्य अपने स्वामी की भांति अति वृद्ध होकर ऐसा मृतक प्राय होगया था कि शान्ति प्रियता के कारण उसकी रक्षा पर किसी ने ध्यान भी नही दिया और दो ही वर्ष के भीतर संवत् १२५६ मे पालों का संहार कर्ता बख्तियार पुत्र मुहम्मद केवल १८ सवार लेकर नदिया मे घुस पड़ा। इन सवारों के पीछे सेना भी थी। लोगों ने इन्हें घोड़ा बेचने

वाले समझा। जब यह सवार महल के सामने पहुंचे तब इन्हों-ने यकायक धावा बोल दिया। लक्ष्मण सेन उस काल भोजन कर रहे थे और किसी विपत्ति की उन्हें तिल मात्र आशङ्का न थी। अतः यह बेचारा बूढ़ा भुआल महल की खिड़की से नंगे पैर भागा और रनिवास तथा सारा कोष मुसलमानों के हाथ लगा। मुसलमानों का कथन है कि इस लूट में उन्हें असंख्य धन मिला। इतने ही में मुसलमानी दल भी पहुंचा और नदिया पर उनका अधिकार हो गया। भागने में बेचारे लक्ष्मण सेन को इतना कष्ट हुआ कि ढाका ज़िले के विक्रमपूर स्थान पर इनका शरीर ही छूट गया। मुसलमानों ने नदिया को नष्ट करके सेनों की प्राचीन राजधानी लखनौती उपनाम गौड़ को अपना राजस्थान बनाया। विनाश काल में सेन राज्य ऐसा अकर्मण्य तथा निर्जीव हो गया था कि शत्रु सेना घुसती हुई राजधानी तक चली आई किन्तु किसी को ख़बर तक नहीं हुई। लक्ष्मण सेन के यहां प्रसिद्ध कवि धाविक रहते थे और गीत गोविन्द कार जयदेव भी इन्हीं के राज्य में थे। लक्ष्मण सेन और इनके पिता वल्लाल सेन दोनों कवि भी थे। सैकड़ों सद्गुणो से अलंकृत राजर्षि लक्ष्मण सेन के इस पोच अन्त से प्रकट है कि संसार की होड़ में कोई भी जाति अथवा मनुष्य बिना सब ओर देख कर चले हुए सद्गुणान्वेषण से भी उच्च नही हो सकता। इस अंतिम सेन भूपाल में इसके शत्रु भी बहुत से सद्गुणों का होना मानते हैं किन्तु फिर भी राज्य रक्षा की ओर ध्यान न देने के कारण इसकी पूरी दुर्गति हो गई। हम भारतीयों की दशा बहुत करके राजा लक्ष्मण सेन के ही समान है। भद्रत्व संबन्धी बहुत से सद्गुण रहते हुए भी हम लोगों ने बहुत दिनों से सांसरिक

उन्नति की ओर तादृश ध्यान नहीं दिया जिसके फल आज सभी आंख वाले देख रहे हैं। लक्ष्मणसेन के वंशधरों ने मुसलमान विजय के पीछे भी बंग में अपना छोटा सा राज्य किसी प्रकार १२० वर्ष और जीवित रक्खा। इस काल इनकी राजधानी ढाका ज़िले के विक्रमपूर स्थान में थी।

पूर्वी भारत में अब आसाम का कथन होता है। यद्यपि इसकी गणना पहाड़ी भारत में भी हो सकती है तथापि पूर्वी बंगाल से अधिक सम्पर्क होने के कारण उसका कथन हम यहीं करते हैं। कामरूप वर्त्तमान आसाम से कुछ बड़ा था और करतोय नदी तक फैला था जिसमें रियासत कूच-बिहार और ज़िला रंगपूर भी सम्मिलित थे। कालिका पुराण तथा योगिनी तंत्र में आसाम के ऐसे कई राजाओं का हाल है जिनकी दानव और असुर उपाधियां थीं। अनन्तर पुराण प्रसिद्ध भूमि का पुत्र नरकासुर प्राग्ज्योतिष का राजा हुआ जिसे श्रीकृष्ण ने मारा। इसके पुत्र भगदत्त को महाभारत के युद्ध में अर्जुन ने मारा। भगदत्त के पास चीनियों तथा किरातों का भारी दल था। आसाम में अब मगोल रुधिर प्रधान है। समुद्रगुप्त के समय कामरूप गुप्त राज्य से स्वतंत्र कहा गया है किन्तु करद था। महाराज हर्षवर्द्धन के समय यहां भास्कर वर्म्मन उपनाम कुमार शासक था। कहते हैं कि उस काल भास्कर वर्मन के पहले इस कुटुम्ब के हजार शासक हो गये थे। इससे इतना प्रकट है कि उस काल यह एक प्राचीन राज्य कुल था। ह्यूयन्तसांग इन्हें ब्राह्मण कहते हैं किन्तु नाम से यह क्षत्री समझ पड़ते हैं। कुमार इस चीनी यात्री को सं० ७०० में आसाम ले गये थे। आसाम में उस काल बौद्ध मत का पूर्ण अभाव था।

इसलिए चीनी यात्री वहां जाना नहीं चाहता था किन्तु कुमार के हठ करने पर विवश होकर उसे वहां जाना पड़ा था। कुमार हर्षवर्द्धन के अधीन थे। सेन तथा पाल नरेशों के समय कामरूप की क्या दशा थी सो उनके इतिहासों में ऊपर दिखलाया जा चुका है। पच्छिमी चीन के मंगोल उत्तरी बंगाल में आसाम होकर ही आये थे।

महाराज हर्षवर्द्धन के पीछे थोड़े ही दिनों में यहां एक आदिम निवासी वंश का शासन हुआ। यह लोग पीछे से हिन्दू हो गये। अनन्तर प्रलम्भ ने एक नया राज्यवंश चलाया जिसने उपरोक्त आदिम निवासी राज्यवंश के प्रत्येक मनुष्य को देश से निकाल दिया। प्रलम्भ के पीछे छठा राजा वलवर्मन था जिसका एक ताम्रपत्र मिलता है। सं० १०६० के लगभग नरकासुर वंशी एक और राज्यकुल यहां का शासक हुआ। इस वंश का तीसरा राजा रत्नपाल था जिसने शत्रुओं को नष्ट किया तथा पृथ्वी को मन्दिरों एवं आकाश को यज्ञधूम से सुशोभित किया। इसको भूटान की ताम्र खानों से बहुत धन प्राप्त हुआ। वहां भी इसका राज्य था। इसने नई राजधानी बनवाई जिसमें सधन व्यापारी, पंडित, पुरोहित और कविगण प्रचुरता से रहते थे। बाहरी नरेशों में आसाम को पहले पालों ने जीता। पाल के स्थानिक अधीनस्थ शासक तिष्यदेव ने विद्रोह किया, जिसे जीत कर वैद्यदेव पालों की ओर से यहां का शासक हुआ। इसे गद्दी से उतार कर लक्ष्मणसेन ने सं० ११६० के पीछे यहां शासन जमाया। सुरमा की घाटी शेष आसाम से प्रायः स्वतंत्र रहा करती थी। सं० १२६० के पीछे यहां गोविन्द व देका राज्य था जिनके पीछे पुत्र ईशानदेव का हुआ।

अपनी पहाड़ी स्थिति के कारण आसाम ने मुसल्मानी विजेताओं का सदैव मान मर्दन किया। बिहार और बंगाल के विजेता बख़्तियार पुत्र मोहम्मद ने सं० १२६१ में आसाम पर आक्रमण किया। यह करतोय नदी पार करके दारजिलिंग तक घुसता चला गया, किन्तु आसामी लोगों ने उसका सामना न करके अन्य प्रकार से उसे कष्ट देना उचित समझा तब मोहम्मद ने कोई मतलब बनते न देखा। उस काल करतोय नदी पर कई डाटों वाला एक भारी पत्थर का पुल था, जिसे मोहम्मदी दल पलटने के पहले ही आसाम वालों ने ध्वस्त कर डाला। नदी पार करने का यही एक मार्ग था और यह नदी ऐसी भारी तथा तीव्रगामिनी थी कि मोहम्मद का सारा दल इसे पार करने में डूब मरा, केवल सेनापति १०० सवारों समेत बचा। अब पराजय की मार्मिक पीडा तथा यात्रा की वेदना ने ऐसा कष्ट पहुंचाया कि मोहम्मद बीमार होकर दूसरे साल ही मार डाला गया। सं० १२८५ में चीनी शानकुल के अहोम लोगों ने आसाम पर धावा करके धीरे धीरे वहां आधिपत्य जमाया।

धार्मिक दृष्टि से आसाम में तांत्रिक मत की प्रधानता है। इसे साधारण जनसमूह टोनाटनमन, जादू आदि का देश कहते हैं। यहां गौहाटी के निकट कामाक्षा देवी का प्रसिद्ध मन्दिर है जिसमे शाक्त मत से पूजन होता है। बंगाली बौद्ध तथा हिन्दू मतों में जो तान्त्रिक विचारों का प्रधान्य हुआ उसका एक भारी कारण आसामी हिन्दू धर्म भी था। पहले आसाम के लोग हिन्दू न थे किन्तु धीरे धीरे इन्हें भी ब्राह्मणों ने हिन्दू मत की भारी सीमाओं के अन्तर्गत कर लिया। पूर्वी भारत

में बौद्धमत की सबसे अधिक प्रधानता रही और तान्त्रिक विचारों का पूर्वी हिन्दू मत में आज भी प्रभाव है।

उड़ीसा देश समुद्र के किनारे गोदावरी नदी के इधर उधर है। प्राचीन काल में यह कलिग देश के अन्तर्गत था। महाभारत के समय चेदिपति शिशुपाल का मित्र शाल्व राजा कलिंग का स्वामी था। इसने शिशुपाल वध से क्रुद्ध होकर पश्चिम जा श्रीकृष्णचन्द्र की द्वारिकापुरी का उनकी अनुपस्थिति में विध्वंश किया। जब भगवान इन्द्रप्रस्थ से वापस आये तब द्वारिका की दुर्दशा देख कर आपने सेना लेकर शाल्व का पीछा किया। समुद्रतट पर युद्ध हुआ और कलिंग राज का नभचारी यान सौभ तोड़ डाला गया तथा उसका वध हुआ। कलिग वालो ने उस प्राचीन काल में नभचारी यान बनाया जिससे समझ पड़ता है कि वहां कारीगर और विज्ञान बहुत उन्नत दशा में थे। मौर्य अशोक ने कलिंग जीता, किन्तु संवत पूर्व ६३ में यह फिर कलिंग नरेशों के अधीन हो गया। यहां का जैन राजा खारवेला बहुत प्रसिद्ध हो गया है। इसका वर्णन भारतीय मुख्य इतिहास में आ गया है। समय पर यहां बौद्ध मत का प्रचार हो गया। हर्षवर्द्धन के समय बौद्ध मत का प्रचार यहां अच्छा था। सं० ६६७ के एक लेख मे लिखा है कि उस काल यहां गुप्त राजा शशांक का राज्य था। सं० ६९७ में इसे हर्षवर्द्धन ने जीता। दसवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दीयों में यहां केशरी नरेशो का राज्य था जिन्होने भुवनेश्वर के शैव मन्दिर तथा अलती पहाड़ो के मन्दिर बनवाये। इन राजाओ का वर्णन जगन्नाथ जी के मन्दिर वाली मादल पंजिका तथा कुछ शिला लेखों आदि में है। अनन्तर कलिग नगर के चोडगंग राजाओं का शासन काल

आया। यह राजे वैष्णव थे और इन्होंने जगन्नाथ पुरी का जगत्प्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर बनवाया। कोनारक का मन्दिर भी इन्ही का है। मुसलमानों के आगमन से उन लोगो के युद्ध उड़ीसा नरेशों से प्रायः होते रहे। इनका कथन यथा स्थान होगा।

पहाड़ी भारत।

हम उत्तरी और पूर्वी भारत का इतिहास लिख चुके हैं और अब इस अध्याय के लिए केवल पहाड़ी भारत का वृत्तान्त लिखना शेष है। इसमें काश्मीर, नैपाल और तिब्बत की प्रधानता है।

कहते हैं कि काश्मीर के स्थान पर एक बड़ी झील थी जिसमें पार्वती जी नौकारोहण करके सैर किया करती थी, जिससे वह सतीसर कहलाती थी; विष्णु और पार्वती द्वारा राक्षस जलदेव के मारने मे यह झील फोड़ दी गई। काश्मीर का इतिहास राजतरंगिणी में बहुत प्राचीन काल से चला है। उसमें श्रीकृष्णचन्द्र का समकालीन आदि गोनंद पहला राजा माना गया है, जिसने बलरामजी से युद्ध करके स्वर्ग लोक प्राप्त किया। इसके पीछे राजतरंगिणी ने प्रत्येक नरेश का शासन काल तथा उसके समय की घटनाएँ लिखी हैं किन्तु बीच की कई शताब्दियों का एक अज्ञात काल भी है। यह कुल समय पांच हज़ार वर्ष का माना गया है। राज-तरंगिणी के कथन आधार शून्यता के कारण इतिहास कोटि में नही आते हैं। मौर्य्य, अशोक तथा कुशन, कनिष्क और हुविष्क के समयों मे काश्मीर भारतीय सम्राट के अधीन था। पीछे सं० ५८५ मे श्वेतहूण मिहिरकुल यहां का राजा

हुआ जिसकी क्रूरताओं का कथन ऊपर हो चुका है। अनन्तर राजा गोपादित्य ने काश्मीर में ब्राह्मणों की बड़ी महत्ता बढ़ाई। आपके पीछे प्रवरसेन राजा हुआ। पहला भारी काश्मीरी राजवंश करकोट हुआ, जिसका चलाने वाला दुर्लभ वर्द्धन महाराजा हर्ष के समय काश्मीर का शासक था। यहां चीनी यात्री ह्यूयन्त्सांग संवत ६८८ से ६९० पर्य्यन्त दो वर्ष रहा और दुर्लभ वर्द्धन अथवा तत्पुत्र दुर्लभक ने उसका अच्छा सन्मान किया। महाराज हर्ष का अधिकार काश्मीर में न था, किन्तु आपने काश्मीर नरेश को दबाकर बुद्ध का एक दाँत काश्मीर से कन्नौज मँगा लिया था। दुर्लभ वर्द्धन एवं दुर्लभक के राजत्व काल लम्बे थे। इस काल काश्मीरी प्रजा प्रायः हिन्दू थी और बौद्ध मठ देश में बहुत कम थे। लोग विशेषतया शैव थे। दुर्लभक के पीछे उसका पुत्र चन्द्रापीड़ राजा हुआ जिसने संवत ७७७ में चीन के सम्राट से तिलक पाया। इस काल उत्तरी भारत में अराजकता थी तथा चीन का बल भारी था, जिससे काश्मीर नरेश को उधर ही झुकना पड़ा। चन्द्रापीड़ के पीछे उनके तीसरे भाई मुक्तापीड़ उपनाम ललितादित्य को भी सं० ७९० में चीन से तिलक मिला। इनके मुसलमानों के साथ मेल न करने के कारण चीन सम्राट ने इन दोनों काश्मीर नरेशों का ऐसा सत्कार किया था। इनका राजत्व काल सं० ८२६ पर्य्यन्त चलता है। इन्होंने सं० ७९७ में कन्नौज नरेश यशोवर्मन को पराजित करके उसे राज्यच्युत कर दिया। ललितादित्य ने सिन्धु नदी के किनारे तुर्कों को हराया तथा तिब्बतियों और भूटों को भी पराजित किया। आपका बनवाया हुआ प्रसिद्ध मार्तण्ड मन्दिर अब भी भग्नावशेष दशा में

स्थिर है। ललितादित्य ने मध्य एशिया को भी पराजित किया। दूसरे बार मध्य एशिया विजयार्थ जाने के समय आपने ग्रामीणों के प्रतिकूल कुछ विचार प्रकट किये थे जिनका पालन अब भी होता है। इस बार मध्य एशिया से उनका फिर काश्मीर पलटना न हुआ। इनके पौत्र जयापीड़ उपनाम विनयादित्य का राजत्व काल ३१ वर्ष का है। आपने कन्नौजपति वज्रायुध को राज्यच्युत किया। कहते हैं कि उस काल बंगाल के राजशाही ज़िले में जयन्त नामक एक राजा था जिसके यहां भेष बदल कर जयापीड गया था। राजशाही को उस काल पौंड्रवर्द्धन कहते थे। उस राज्य के तत्कालीन राजा का नाम जयन्त संभव है। जयापीड़ वाली नैपाल की भी एक यात्रा कही जाती है जिसमें इनका बंधन में पड़कर छूट जाना कहा गया है। इन्होंने बहुत से अत्याचार किये। राजतरङ्गिणी-कार लिखते हैं कि जयापीड़ अपनी इच्छा नहीं रोक सकता था और अन्त में धनलोलुपता के कारण इसकी मृत्यु हुई। जयापीड़ के बहुत से सिक्के मिलते हैं।

उत्पलवंश का पहला राजा अवन्तिवर्मन था। आपका राजत्वकाल सं० ६१२ से ४० पर्य्यन्त है। आप बड़े ही विद्या-रसिक थे और विद्वानों का बहुत सन्मान करते थे। इनके मंत्री सुईया ने नहरों द्वारा सिंचाई का अच्छा प्रबन्ध किया था शंकर वर्मन ने इनके पीछे सं० ६४० से ६५६ पर्य्यन्त शासन किया। आपने धनसम्बन्धी बहुत से अत्याचार किये यहां तक कि मन्दिरों तक के कोष को लूटा। एक युद्ध में भी आपने विजय पाई थी। आपके दल मे नौ लाख पदाती, एक लाख घुड़सवार तथा तीन सौ हाथी कहे गये हैं, जो

संख्या अत्युक्ति पूर्ण समझ पड़ती है। आपके पीछे समय पर पार्थ राजा हुआ जो बच्चा था और जिसका पिता पंगुपालक था। इस काल सं० ६७४ और ७५ में एक भारी अकाल पड़ा जिसका वर्णन राजतरङ्गिणी कार ने निम्नलिखित किया है— "झेलम में इतनी फूली हुई लाशें बहुत दिनतक पड़ी रहती थीं कि नदी का पानी नहीं देख पड़ता था। पृथ्वी पर सब ओर इतनी हड्डियां बिछी हुई थीं कि श्मशान भूमि समझ पड़ती थी जिसे देख कर डर लगता था। राजा के मंत्री और तंत्री लोगो ने बहुत सा चावल इकट्ठा कर के उसे महंगे भाव में बेचा जिससे वे अमीर हो गये। राजा के गरम स्नानागार से जंगलों मे हवा के झोकों तथा मूसलाधार पानी से सताये हुए लोग देखे जाते थे। इस प्रकार बहुत काल पर्य्यन्त महल में बैठा हुआ दुष्ट पंगु लोगों का संकट देखते हुए भी अपने आराम की प्रशंसा करता था"। पार्थ के पीछे इसका पुत्र उन्मत्तवन्ति सं० ६६४ से दो वर्ष पर्यन्त राजा रहा। इसने पार्थ से भी बढ़कर क्रूरतायें कीं और अपने पिता को मारकर यह राजा भी हुआ था। दो ही वर्ष के भीतर कठिन रोग से पीड़ित होकर यह मर गया।

सं० १००७ से १०६० तक काश्मीर में दिद्दा का शासन रहा। पहले यह महारानी की दशा में वास्तविक शासक रहीं और फिर किसी न किसी बालक राजा की पालिका होकर इन्होंने वास्तविक शासन किया। अन्त में २३ वर्ष इनका शासन अपने ही नाम से रहा। यह काबुल के किसी हिन्दू शाहिया राजा की पौत्री थीं। इनका शासन सबल तथा क्रूर था। यह उचितानुचित का बहुत विवेक नहीं करती थीं। इनके भतीजे संग्राम का शासन काल सं० १०६० से

१०८५ पर्य्यन्त रहा। इनके समय ग़ज़नी के महमूद ने काश्मीर पर धावा किया। राजा पराजित होकर भी पहाड़ी बचाव के कारण अपनी स्वतंत्रता क़ायम रख सका। अनन्तर काश्मीर में लोहर वंश शासक हुआ। इनके राजा कलश ने सं० ११२० से ११४६ पर्य्यन्त राज्य किया तथा हर्ष ने सं० ११४६ से ११५८ पर्य्यन्त। इन दोनों अन्याचारियों ने प्रजा को अकथनीय कष्ट दिए। शंकर वर्मन की भांति हर्ष ने भी मन्दिरों का कोप लूटा और बुरी गति से मौत पाई। लोहर वंश का अन्तिम राजा जयसिंह उपनाम सिंहदेव सं० ११८५ में हुआ। इसके समय खान दल्च तातार नें काश्मीर पर धावा करके श्रीनगर को फूंक दिया तथा लोगों का भयप्रद वध किया। पलटने में यह दुष्ट भी काश्मीर की वर्फीली घाटियों मे पड़कर मर गया। सिंहदेव के मरने पर उनका भाई उदयनदेव किश्तवार को भाग गया था। इधर और कोई उपाय न देखकर सेनापति रामचन्द्र ने काश्मीर पर अधिकार जमाया और किश्तवार की गद्दियों को पराजित किया। रामचद्र के साथ दो पधान योधा थे, अर्थात् तिब्वत के रैचनशाह और स्वात का शाह मिरजा। किन्ही कारणों से रामचन्द्र का रैचनशाह से विगाड होगया। रैचन ने लदाखियों की सहायता से रामचन्द्र पर धावा करके उसका वध कर डाला तथा उसकी पुत्री कुतरानी से विवाह किया। अब रैचन मुसलमान होकर कश्मीर का शासन करने लगा किन्तु केवल ढाई वर्ष में मर गया। यह देख उदयनदेव ने किश्तवार से आकर तथा विधवा कुतरानी से विवाह कर के कश्मीर पर शासन जमाया। पन्द्रह वर्ष राज्य करके उदयन परलोक गामी हुए और कुतरानी शासन करने लगी, किन्तु शाहमिरजा के

आगे इनका कोई बल न चला और वह शासक हो गया। शाह मिरजा ने विवाहार्थ कुतरानी को दबाया किन्तु उसने सतीत्व रक्षणार्थ आत्महत्या कर डाली। काश्मीरी सुलतानों में शाहमिरजा पहला था। काश्मीर का शेष इतिहास यथा स्थान लिखा जायगा।

काश्मीर का करकोट या नाग वंश।

संवत्	नम्बर	नाम	किसका पुत्र	विवरण
				नं० १ व २ हर्ष के सम· कालीन थे।
	(१)	दुर्लभवर्द्धन प्रज्ञादित्य		
	(२)	दुर्लभक प्रतापादित्य		
७७०	(३)	चन्द्रापीड़	नं० २	
	(४)	तारापीड़		
७८३	(५)	ललितादित्य प्रथम	नं० २	
	(६)	कुवलया पीड़		
	(७)	ललितादित्य दूसरे		
	(८)	पृथिव्या पीड़		
	(९)	संग्रामा पीड़		
	(१०)	जयापीड़		
८७०	(११)	अजितापीड़		
९०७	(१२)	अनंगापीड़		
९१०	(१३)	उत्पला पीड		

(विशेषतया डफ़ के आधार पर)

काश्मीर का उत्पलवंश।

संवत्	नम्बर	नाम	किसका पुत्र	विवरण
९१२	(१)	अवन्तिवर्मन		
९४०	(२)	शंकरवर्मन		
९५९	(३)	गोपालवर्मन		
९६१	(४)	संकट		
९६१	(५)	सुगन्धा		नं० ३ की माता।
९६३	(६)	पार्थ		राज्यच्युत हुआ।
९७८	(७)	निर्जितवर्मन उपनाम पंगु		नं० ६ का पिता।
९८०	(८)	चक्रवर्मन		राज्यच्युत हुआ।
९९[illegible]	(९)	सूरवर्मन		राज्यच्युत हुआ।
९९१	(६)	पार्थवर्मन		पुनः राज्यच्युत हुआ
९९२	(८)	चक्रवर्मन		पुनः राज्यच्युत हुआ
९९३	(१०)	शंभुवर्द्धन		राज्य छीनता है।
९९३	(८)	चक्रवर्मन		पुनः राज्य पाया।
[illegible]	(११)	उन्मत्तावन्ति	नं० ६	पितृ हन्ता।
[illegible]	(१२)	सूरवर्मन दूसरा		उत्पलवंश का अन्तिम राजा।

(विशेषतया डफ़ के आधार पर)

काश्मीर के अन्य राजवंश।

नंबर	नाम	किसका पुत्र	विवरण
(१)	यशस्करदेव		
(२)	संग्रामदेव	नं० १	

१००६	(३)	पर्वगुप्त		
१००७	(४)	क्षेमगुप्त	नं० ३	दिद्दा का पति।
१०१५	(५)	अभिमन्यु	नं० ४	
१०२६	(६)	नन्दगुप्त	नं० ५	
१०३०	(७)	त्रिभुवन		दिद्दा का पौत्र।
१०३२	(८)	भीमगुप्त		दिद्दा का पौत्र।
१०३७	(६)	दिद्दा		
१०६०	(१०)	संग्रामराज	नं० ६	दत्त का पुत्र।
१०८५	(११)	हरिराज	नं० १०	
१०८५	(१२)	अनन्तदेव	नं० १०	
११३८	(१३)	कलश	नं० १२	लोहर वंश का राजा
११४६	(१४)	उत्कर्ष	नं० १३	
११४६	(१५)	हर्षदेव	नं० १३	
११५८	(१६)	उच्छल		लघु लोहर कुल का प्रथम राजा।
११६८	(१७)	रड्डु		एक ही रात राजा रहा
११६८	(१८)	सलहण		नं० १६ का विमात्र भाई।
११६६	(१६)	सुस्सल		नं० १६ का भाई।
११७७	(२०)	भिक्षाचर		
११८५	(२१)	जयसिंह	नं० १६	इसका तिलक सुस्सल के समय हुआ किन्तु उसके मरने पर वास्तविक राजा हुआ।

(विशेषतया डफ़ के आधार पर)

नैपाल अवध के उत्तर हिमाचल के प्रायः मध्य देश में है। इसकी सीमा सिकिम से कुमाऊं पर्य्यन्त प्रायः ५०० मील की है। यह प्रायः सारा देश पहाड़ी है। प्राचीन काल में इसको एक छोटी सी घाटी ही का नाम नैपाल था जो २० मील लम्बी और १५ मील चौड़ी थी। इसी में राजधानी काठमण्डू तथा कई अन्य स्थान हैं। कहते हैं कि प्राचीन काल में गौड़ (उत्तर पश्चिमी बंगाल) या काञ्ची के नरेश नैपाल के शासक थे। अनन्तर गुजरात के आठ अहीर नरेशों का नैपाल में समय आया और तब हिन्दुस्थान के तीन अहीर वहां शासक हुए। पूर्वीय किरातों ने अहीरों को जीत कर नैपाल में शासन जमाया। कहते हैं कि सातवां किरात नरेश पांडवों की ओर से लड़कर महाभारत के युद्ध में मारा गया था। महाराज अशोक ने नैपाल को जीता था और उनकी पुत्री वहीं रह गई थी। किसी क्षत्री के साथ अशोक की कन्या का विवाह होना कहा जाता है, जिसने देवपाटन बसाया। अन्तिम किरात नरेश को किसी सोमवंशी क्षत्री नरेश ने जीत कर नैपाल में अपना शासन जमाया। इसके चौथे वंशधर ने अपुत्र होने के कारण किसी सूर्यवंशी को गोद लिया। सं० पू० ४४ में इस वंश का दामाद अंशुवर्मन क्षत्री नैपाल का शासक हुआ। गुप्त नरेश समुद्रगुप्त के समय नैपाल आपको कर देता था। महाराज हर्षवर्द्धन के समय नैपाल में किसी अंशुवर्मन का राज्य था। इनसे पहले वाले राजाओं के कथन ऐतिहासिक नहीं कहे जा सकते। सं० ६८२ से ७०१ तक के अंशुवर्मन के कई लेख मिले हैं। पहला शिवदेव भी अंशुवर्मन के साथ ही साथ नैपाल का राजा था। यह लिच्छवी क्षत्री थे। ह्यन्त्सांग ने लिच्छवी पहाड़ी नरेशों को बड़े ही पंडित तथा बौद्ध कहा

है। यह महाराज हर्ष के अधीन थे। अंशुवर्मन की कन्या प्रसिद्ध तिब्बती शासक स्रांगत्सान गम्पो को ब्याही थी। हर्ष के पीछे अंशुवर्मन का स्वतंत्र हो जाना संभव है। यह भी संभव है कि नैपाल पर उसकाल हर्ष का कुछ भी अधिकार न हो और तिब्बत ही का हो। इतना निश्चित है कि उस काल के तिब्बतीय और नैपाली नरेशों ने हर्ष के मंत्री अर्जुन के प्रतिकूल चीनी एलची की सेना से सहायता की थी। इसका वर्णन कन्नौज के इतिहास में आ चुका है। अंशुवर्मन के किसी उत्तराधिकारी ने मौखरि नरेश की कन्या से विवाह किया था। अनन्तर नैपाल मे नयाकोट के ठाकुर नरेशों का समय आया। इस वंश के पांचवें राजा को अंशुवर्मन के किसी वंशधर ने खदेड़ दिया। सं० ६३६ से नैपाल का नवीन संवत चलता है। जान पड़ता है कि इस काल से नैपाल तिब्बत से स्वतंत्र हो गया। संवत ६४५ में नान्यदेव ने कर्नाटक से भागकर कुल नैपाल पर अधिकार जमाया। यह समय कुछ संदिग्ध है। सं० ११५४ के एक लेख में लिखा है कि नान्यदेव उस काल नैपाल का राजा था। बंगाल के विजयसेन ने भी इन्हें हराया था। नान्यदेव के छठवें उत्तराधिकारी को पच्छिमी नरेश मुकुन्दसेन ने खसुओं तथा मगरों की सहायता से राज्यच्युत कर दिया, और नैपाल पर अधिकार जमाया, किन्तु इसी समय एक प्रचंड महामारी के प्रकोप से देश छोड़ कर इसे भागना पड़ा। अब प्रायः दो सौ वर्षों पर्य्यन्त नैपाल मे अराजकता अथवा छोटे छोटे नरेशों का समय रहा।

तिब्बत नैपाल से भी उत्तर हिमाचल मे एक भारी देश है। सं० ६८७ के लगभग यहां स्रांगत्सान गम्पो नामक प्रसिद्ध

शासक का राजत्वकाल था । इसने सं० ६९६ में ल्हासा बसाया जो अब तिब्बत की राजधानी है । गम्पो की दो रानियाँ थीं, अर्थात् नैपाल नरेश की पुत्री भृकुटी और चीनी सम्राट ताइत्सुङ्ग की कन्या वेनचंग । भृकुटी का विवाह सं० ६९६ में हुआ और वेनचंग का ६९८ में । यह दोनो स्त्रियां बौद्ध थीं, सो इनके कारण गम्पो भी बौद्ध हो गया । बौद्धों ने इस उपकार के कारण गम्पो को बुद्ध अवलोकितेश्वर का अवतार माना है तथा भृकुटी को हरी तारा और वेनचंग को श्वेत तारा का । गम्पो के कारण तिब्बत में बौद्ध मत की बड़ी ही उन्नति हुई । आपने भारतीय पंडितो को बुलाकर तिब्बती वर्णमाला भी बनायी ।

चीनी सम्राट का तुर्कों से बहुत काल से युद्ध होता आया था । सं० ६९७ से ७०५ पर्यन्त चीनियों ने कई तुर्की प्रान्तों पर अधिकार जमाया । ताइत्सुङ्ग के उत्तराधिकारी काउत्सुङ्ग ने सं० ७१६ में पूरे पछिमी तुर्किस्तान पर अधिकार जमाया और चीन का दबदबा बहुत बढ़ा । किन्ही कारणों से चीनी सम्राट से गम्पो की तकरार हो गयी और सं० ७२७ मे इसने चीनियों को करारी पराजय दी और उनसे काशगरिया छीन ली जो सम्वत् ७४९ पर्यन्त इसी के पास रही । इस अन्तिम सम्वत् में चीनियों ने काशगरिया फिर छीन ली और सं० ७५५ में गम्पो का शरीरान्त हो गया । सं० ७७२ पर्यन्त अर्बी सेनापति कुतैबा मध्य एशिया में मुसलमानी मत फैलाने के भारी प्रयत्न करता रहा । सं० ७७६ में समरक़न्द ने मुसलमानों के प्रतिकूल चीन की सहायता मांगी । सुभात, पछिमी बदख़शां, चित्राल, यासिन, ग़ज़नी, कपिस और काश्मीर के नरेशों ने मुसलमानी मत न माना । इसीसे चीन ने इनमें

से हर एक को राजा की उपाधि दी । यही कारण है कि चीन ने काश्मीर नरेश चन्द्रापीड़ और मुक्तापीड़ का तिलक किया था । सं० ८०८ में काग़ज़ बनाने की रीति चीन से समरक़न्द गयी जहां से वह समय पर यूरोप पहुंची ।

तिब्बत में सं० ८०० से ८४६ पर्यन्त थिस्नांगड़ेस्तन का राजत्वकाल रहा । इसने प्राचीन वोन मत को बल प्रयोग तथा समझाने बुझाने द्वारा नष्ट प्राय करके तिब्बत में बौद्ध मत फैलाया । भारत से शान्तरक्षित और पद्मसंभव को बुलवाकर आपने बौद्ध मत का प्रचार किया । इन्हीं लोगों ने राज्य को धर्म से मिलाकर तिब्बत में लामा प्रणाली चलाई जो वहां अब तक प्रचलित है । थिस्रांग के पीछे स० ८७२ से ८९५ पर्यन्त शासन करने वाले राजा रलपचन ने भी बौद्ध मत को उन्नत किया, किन्तु इनके पीछे राजा लंगदर्म ने उसे निर्मूल करने का डौल डाला । यह देख एक लामा ने सं० ८९९ में उनका वध कर डाला । सं० १०७० और १०९९ में मगध से बौद्ध पण्डितों ने जाकर तिब्बत में बौद्ध मत की और भी उन्नति की । गम्पो के समय से ही तिब्बत का चीन से यदाकदा युद्ध होता आया था । अन्ततोगत्वा सं० १८०८ में चीन का प्रभुत्व तिब्बत के लामा नरेश पर बैठ गया । लामा का राज्य वहां अबतक प्रस्तुत है और बौद्ध मत राज्य धर्म है ।

सिकिम, भूटान आदि का शेष इतिहास मुसलमानी राज्य के प्रायः अन्त से आरम्भ होता है ।

२७वां अध्याय।

मध्य तथा पश्चिमी भारत

(सं० ७०४ से १२५० तक)

मध्य भारत।

मध्य भारत के इस काल दो प्रधान भाग हैं, अर्थात् एक अँग्रेज़ी भाग और दूसरा देशी रियासतों का। अँग्रेज़ी भाग को मध्य देश कहते हैं और देशी को मध्य भारत। मध्य देश को प्राचीन समय में गोंड़वाना कहते थे। इसमें बरार भी शामिल है। मध्य भारत के छः प्रधान भाग हैं, अर्थात् भूपावर एजेन्सी, मालवा एजेन्सी, भूपाल एजेन्सी, ग्वालियर रेज़ीडेन्सी, बुन्देलखण्ड एजेन्सी और बघेलखंड एजेन्सी। बुन्देलखंड का कुछ भाग युक्त प्रान्त में भी लगता है। गोंड़वाने का इतिहास स्वावलम्बी न होकर बहुत करके परावलम्बी है, क्योंकि इसमें बहुधा अन्यत्र राजधानी रखने वाले वंश राज करने आये हैं। इसका कुछ विशेष वर्णन उचित स्थान पर किया जावेगा। प्राचीन समय में मध्य भारत भील, गोंड़, सहरिया आदि का निवास स्थान था। ऋग्वेद में इसका कथन नहीं हुआ है। पुराणों में सबसे पहिले निषधनाथ नल तथा विदर्भ नरेश का कथन मध्य भारत के सम्बन्ध में हुआ है। यह भी लिखा है कि मध्य भारत में अनार्य्य, पुलिन्द,

शवर आदि रहते थे। गौतम बुद्ध के समय में १६ रियासतें मुख्य थी जिनमें अवन्ती अर्थात् उज्जैन राज की भी गणना थी। पूर्वी मध्य भारत, कौशाम्बी नरेश वंश के अधिकार में था और कुछ देश पांचाल नरेश के भी अधीन था। कोसल की श्रावस्ती से दक्षिणी पैठान तक जो मार्ग था वह उज्जैन तथा माहिष्मती अर्थात् महेश्वर होकर जाता था। मौर्य्य नरेशों का शासन मध्य भारत पर भी था। अशोक राजा होने के पूर्व उज्जैन के राजप्रतिनिधि थे। इसी प्रकार शुंग वंश के अग्निमित्र विदिशा वर्तमान भेलसा मे राजप्रतिनिधि थे। अशोक के समय यहाँ बौद्ध मत का प्रचार हुआ, किन्तु शुंगों के समय ब्राह्मणत्व ने फिर ज़ोर पकड़ा। फिर शको ने मालवा मे घुस कर अपना राज स्थापन किया। जगत प्रसिद्ध विक्रमादित्य भी उज्जैन ही में शासक हुए हैं। जब संवत ४४० के लगभग शकारि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य थे, तब मध्य भारत मे भी गुप्तों का राज फैला। उपरोक्त वर्णन उचित स्थान पर कुछ विस्तार के साथ किये जा चुके हैं। पद्मावती वर्त्तमान नरवर में उस काल नागवंश का राज्य था। गणपति नाग समुद्रगुप्त को कर देता था। मालव और अभीर समुद्र गुप्त द्वारा जीते नहीं गये थे। मालव शको के अधीन थे, तथा अभीर ग्वालियर और झांसी के बीच रहते थे। इन्हीं के कारण यह प्रान्त अहिरवार कहलाता था। बघेलखंड के कैमुर पहाड मुरिन्दों के निवास स्थान थे। जंगली देश के कई राजे समुद्रगुप्त की सेवा मे थे। जंगली देश से बघेल-खण्ड का प्रयोजन समझ पड़ता है। जब हूणो के आक्रमण से गुप्त साम्राज्य नष्ट हो गया तब हूणों की अधीनता में बुध-गुप्त और भानुगुप्त मालवा के स्थानीय राजा रहे। हूण तोर-

माण और तत्पुत्र मिहिरकुल ने पूर्वी मालवा में ४० वर्ष शासन किया। इनका बल कैसे नष्ट हुआ सो यथा स्थान कहा जा चुका है। भारत में हूणों के प्रायः साथ ही गुर्जर भाषी एक भारी विजयिनी धारा आई। पहिले पहिल यह लोग राजपूताना और गुजरात में बसे। हूण आक्रमण के ही समय में मालव और अभीर लोग दक्षिणी पंजाब से खिसक कर मध्य भारत के मालवा और अहरवारा में बस गये। इन्हीं लोगों के नामों पर इन प्रान्तों के नाम हुए। इनके प्रायः सौ वर्ष पीछे हैहय उपनाम कलचुरि वंश ने बल पकड़ा।

महाराजा हर्षवर्द्धन ने भारी साम्राज्य स्थिर करके इन जातियों को दबाए रक्खा। उनके समय चीनी यात्री ह्यूयन्तसांग ने यहां हिन्दू मत का विकाश एवं बौद्धों का ह्रास देखा। इसी समय से और कुछ अंशों में इसके पहिले भी शक, कुशन, हूण, गुर्जर, मालव, अभीर, गोंड, भील, सोर, आदि जातियां हिन्दू होने लगीं और प्रायः दो तीन सौ वर्षों के भीतर यह सब पूर्णतया हिन्दू हो गईं और इन्हें गुण कर्मानुसार चातुर्वर्ण में उचित स्थान मिल गये। समय पर धार के पमारों ग्वालियर एवं दिल्ली के तोवरों, नरवर के कछवाहों, बुन्देलखंड के चन्देलों, बुन्देलों, धंधरों आदि का कथन हिन्दू मत के समर्थन तथा भारी राज्य वर्द्धन में आने लगा। आठवीं शताब्दी में मिहिरभोज आदि के आधिपत्य में गुर्जरों का प्रभुत्व बहुत बढ़ा। हम ऊपर देख चुके हैं कि गुर्जर नरेश वत्सराज ने गुजरात से बंगाल तक शासन किया तथा नागभट्ट ने कन्नौज जीता। राष्ट्रकूटों द्वारा पराजित होने पर भी रामभद्र के आधिपत्य में इन

लोगों ने अपना राज्य ग्वालियर तक फैलाया और तब तत्पुत्र मिहिरभोज ने गुर्जरों को सम्राट पद दिया। यह पद भोज पुत्र महेन्द्रपाल के समय तक चला। कन्नौज में स्थापित होने वाली यह गुर्जर शाखा परिहार, अथवा प्रतिहार कहलाती थी। इन्होंने कुछ काल बुन्देलखण्ड पर भी शासन किया। प्रमार अथवा पँवार गुर्जरों से निकले अथवा मालवों से इसमें कुछ मतभेद हो सकता है। उनका मालव होना अधिक युक्तियुक्त जान पड़ता है। इन लोगों का शासन चित्तौर, अवन्ती तथा धार में हुआ। सं० ६५० के लगभग बुन्देलखण्ड में चन्देलों का बल बढ़ा, बघेलखण्ड तथा गोंड़-वाने में कलचुरियों का तथा दक्षिण में राष्ट्रकूटों का। इन कारणों से परिहारों का प्रताप मन्द हो गया। मुसलमानों के राज्यारंभ पर्य्यन्त मध्य भारतीय क्षत्री राजकुल आपस में तथा भारतीय राजमंडल से सन्धि विग्रह करते हुए घटते बढ़ते रहे। अब हम मध्य भारतीय प्रान्तों के इतिहास को उठाते हैं।

गोंड़वाना उपनाम वर्तमान मध्यदेश में गोंड़ों का प्राधान्य था जैसा कि इसके नाम से प्रगट होता है। जबलपूर के रूपनाथ स्थान में मौर्य्य अशोक का एक शिला लेख है। मौर्य्यों के पीछे पुष्पमित्र शुंग के समय नागपूर और वर्धा ज़िलों में यहां हिन्दुओं का विदर्भ राज्य था। इस वंश की कन्या मालविका के साथ अग्निमित्रशुंग का विवाह हुआ था। अग्निमित्र ने विदर्भ के दो भाग करके उसमें दो राजा कर दिये थे। मालविकाग्निमित्र नाटक में कालिदास ने इस कथा का वर्णन किया है। अनन्तर गोंड़वाने पर आंध्रों का अधिकार प्रायः सं० २८० तक रहा। आंध्रों के पीछे

सातपुरा तथा नागपुर में वाकातक वंश का शासन हुआ जिसका पहिला राजा विंध्याशक्ति था। अनन्तर उत्तरी गोंड़वाने में कलचुरि वंश का आधिपत्य हुआ। इनकी राजधानी तृपुर थी जो जबलपुर में है। वर्त्तमान तेवरगाँव तृपुर के स्थान पर स्थित है। कलचुरि लोगों का अब्द संवत ३०६ से चलता है। इस वंश का प्राधान्य हूण पराभव के इधर उधर हुआ। छत्तीसगढ में एक अन्य हैहय वंश प्रतिष्ठित हुआ जिसकी राजधानी रत्नपूर थी। यह राज्य वर्त्तमान रायपूर और विलासपूर के ज़िलों पर फैला था। अनन्तर पृथ्वीराज के समय पर्यन्त गोंड़वाना चन्देलों, चौहानों, पँवारों और कलचुरियों में बँटा रहा। सागर और दमोह मे चन्देल आधिपत्य था। असीरगढ़ चोहानों का था और नागपूर पँवारों का। इसके पीछे दो तीन शताब्दियों तक गोंड़वाने का इतिहास लुप्तप्राय है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक फ़िरिश्ता ने लिखा है कि सं० १४५५ में खिरला का राजा नृसिंहराय गोंडवाने तथा अन्य प्रान्तों का शासक था।

मालवा का प्रमार वंश।

संवत	नंबर	नाम	किसका पुत्र	विवरण
८८२	(१)	कृष्ण उपेन्द्र		
	(२)	वैरिसिंह प्रथम	नं० १	
	(३)	सीयक प्रथम	नं० २	
	(४)	वाक्पति प्रथम	नं० ३	
	(५)	दूसरा वैरिसिंह वज्रट स्वामिन	नं० ४	
१००७	(६)	हर्षदेव सीयक दूसरा	नं० ५	

१०३१	(७)	मुंजवाक्पति दूसरा	नं० ६
१०५२	(८)	सिन्धुराज	नं० ६
१०६२	(९)	भोज	नं० ८
१११२	(१०)	जयसिंह	
११३७	(११)	उदयादित्य	
११५२	(१२)	लक्ष्मदेव या लक्ष्मीदेव	नं० ११
११६१	(१३)	नरवर्मन	नं० ११
११६०	(१४)	यशोवर्मन	नं० १३
११६५	(१५)	जयवर्मन	नं० १४
	(१६)	अजयवर्मन	नं० १४
१२१७	(१७)	विन्ध्यवर्मन	नं० १६
	(१८)	सुभटवर्मन	
१२६८	(१९)	अर्जुनवर्मन	नं० १८

मालवा का इतिहास सारे मध्य भारत में गरिमा पूर्ण है। गौतम बुद्ध के समय अवन्ति राज्य १६ राज्यों में एक था। मौर्य्य अशोक ने सांची में विशाल स्तंभ बनवाया जो दर्शकों को अब भी चकित करता है। मालवा की सांची और बुन्देलखंड के खजुराहे की पाषाण सम्बन्धी कारीगरी मध्य भारत के सिर को सदैव ऊंचा रक्खेगी। संवतारंभ में प्रसिद्ध मालव नरेश विक्रमादित्य का राज्य उज्जैन में हुआ। फिर क्रम से शकों, गुप्त तथा हूणों का समय आया, जिसका वर्णन अन्यत्र कुछ विस्तार के साथ हो चुका है। हूणों के पूर्व देश में सुन्दर नियमों पर शासन होता रहा, किन्तु इन लोगों की क्रूरताओं से सारा संसार ऊब उठा। अब मंडसोर नरेश यशोधर्मन तथा गुप्त नरेश बालादित्य ने मिलकर संवत् ५८५ मे हूणों को पराजित किया। इस काल यशोधर्मन का

प्रभाव मालवा मे बहुत बढ़ा, किन्तु किसी प्रवीण उत्तराधिकारी के अभाव में इस वंश का राज्य स्थायी न हुआ। सं० ६६३ से ७०४ पर्यन्त हर्षवर्द्धन का साम्राज्य मालवा में भी रहा। इनके पीछे जो अराजकता हुई उसमें छोटे छोटे प्रान्तीय शासकों ने फिर सिर उठाया। इस प्रकार मालवा में प्रमारों का प्राधान्य हुआ। मालव अथवा प्रमार लोग मालवा में कब आये, इसका कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता है। इतना असंदिग्ध है कि मालव लोग आर्य्यों के पीछे भारत में सब से प्राचीन आगन्तुक हैं। इनका युद्ध सिकंदर से भी हुआ था। यूनानियों ने इन्हें मलोई कहा है। वर्त्तमान विक्रमीय संवत् प्रायः आठ सौ वर्षों तक मालवीय संवत कहलाता रहा। यह संवत् प्रसिद्ध पँवार नरेश विक्रमादित्य का चलाया हुआ कहा जाता है। विक्रम के पीछे कृष्णराज पर्य्यन्त मालवा में पँवारों की महत्ता नहीं हुई, किन्तु चित्तौर में इनका राज्य था जिसे बप्पा रावल ने नष्ट किया। इन बातों से समझ पड़ता है कि संवतारंभ से कुछ पूर्व मालवों की एक धारा विक्रमादित्य के आधिपत्य में उज्जैन पर अधिकृत हो गई। इस महती घटना के स्मरणार्थ मालवीय अथवा विक्रमीय संवत चलाया गया। अनन्तर यह लोग पंजाब की ओर फिर खदेड़ दिये गये और हूण पराभव पर्य्यन्त इधर न आ सके। यशोधर्मन का मालव अथवा प्रमार होना सम्भव है। उज्जैन में उपेन्द्र अथवा कृष्णराज ने सं० ८८२ में मालवीय शासन स्थिर किया। थोड़े दिनों में धार मालवों की दूसरी राजधानी हुई। मालवा आने के पूर्व पंवार लोग आबू पहाड़ के निकट बहुत काल से रहते थे। इनका बल मालवा मे बहुत बढ़ा, यहां तक कि यह कहावत प्रसिद्ध हुई कि

संसार पँवारों का है । पँवारों के १६ नरेश प्रसिद्ध हैं जो विद्या रसिक और विद्वानो के आश्रयदाता थे। इस वंश का सातवां राजा मुंज वाकपति था जो स्वयं सुकवि था और जिसके यहां कई अच्छे कवि रहते थे जिनमें धनंजय और धनिक प्रधान थे। आप समर विजयी भी थे। दक्षिण के चालुक्य नरेश तैलप को आपने छः बार हराया, किन्तु सातवें युद्ध में आप भूल से गोदावरी नदी पार करके आगे बढ़े । यह देख तैलप ने घोर युद्ध करके इनकी महती सेना को करारी पराजय दी और इन्हें बंदी कर लिया । पहिले तो उसने इनका कुछ सन्मान किया, किन्तु जब इनके भागने का प्रयत्न खुला तब उसने भांति भांति से इनका अपमान किया. इनसे घर घर भीख मँगाई और अन्त में सिर भी काट लिया। मुंज का राजत्व काल सं० १०३१ से १०५१ तक चलता है। अनन्तर बंदी होकर तीन वर्ष के भीतर आप मारे गये और भाई सिन्धुराज नवसाहसांक उपनाम कुमार नारायण गद्दी पर बैठे। आपने हूणराज, कोसलपति, वागड़ों, लाट वालों तथा मुरलों को हराया। आपने नागवंशी राजकुमारी शशिप्रभा के साथ विवाह किया। आपके मन्त्री यशोभट्ट रमांगद थे। आपके पीछे आपके पुत्र जगत प्रसिद्ध राजा भोज मालवीय गद्दी पर बैठे। आपकी राजधानी धारा नगरी थी। राज्यारंभ के समय आप बालक थे। आपका राज्य प्रायः ५० वर्ष चलता है अर्थात् संवत् १०६२ से ११२२ पर्यन्त। गज़ेटियर में इनका शासन काल संवत् ११२० पर्यन्त लिखा है और स्मिथ मे ११२७ पर्यंत । भोज हिन्दू विचारों से आदर्श राजा थे. समुद्रगुप्त की भांति आपमें भी बहुत से सद्गुण थे। आप बड़े ही विद्यारसिक तथा सत्कवि थे । आपके

बनाये हुए ज्योतिष, ग्रहनिर्माण, काव्यरीति आदि विषयों के ग्रन्थ अब भी प्रस्तुत हैं। इनमें सरस्वती कंठाभरण, राजमार्तंड (योगशास्त्र पर), राज मृगांक करण, समरांगन, शृङ्गार मंजरी कथा आदि के नाम आते हैं। आप के यहां अवन्ती में गुजरात के आनन्दपुर का निवासी वज्रट का पुत्र उव्वट रहता था। इसने वाजसनेय संहिता पर एक भाष्य रचा। राजा भोज के यहां विद्वानों का बड़ा ही मान होता था और उन्हें पुष्कल धन मिलता था। आपने धारा नगरी में संस्कृत का एक विहार बनवाया जिसमे सरस्वती का एक मंदिर था। समय के फेर से अब उस स्थान पर एक मसजिद शोभायमान है। भूपाल के दक्षिण पूर्व आपने बड़े भारी भारी बांध बँधाकर २५० वर्गमीलों के फैलाव की भोजपुरी नाम्नी झील बनवाई। इससे सिंचाई का काम लिया जाता था। इन बांधों से राजा भोज के इनजिनियरों की पटुता समझ पड़ती थी। पंद्रहवीं शताब्दी में किसी मुसलमान राजा ने इसे फोड़वाकर पानी बहा दिया। शांति के उपरोक्त गुणों में ऐसे प्रवीण होकर राजा भोज युद्ध विद्या मे भी पटु थे। भोज चरित्र मे लिखा है कि अपने चचा मुंज के अपमानों का बदला लेने के लिए राजा भोज ने एक भारी सेना लेकर दक्षिण पर आक्रमण किया और चालुक्य नरेश को पकड़ कर उन्ही अपमानों के साथ उसका वध किया जैसी दशा मुंज की हुई थी। यह दशा संभवतः तैलप के पौत्र पहिले विक्रमादित्य की संवत् १०६५ में हुई होगी। महाराष्ट्र देश के स्वामी जयसिंह से आपका युद्ध हुआ तथा चेदि, लाट और तुरुश्क के नरेशों से भी आप लड़े। आपने चालुक्य नरेश भीम को जीत कर कुछ काल के लिए

उसके राज्य अन्हिलवाड़ पर अधिकार जमाया। जब हिन्दू मत के प्रसिद्ध शत्रु महमूद ग़ज़नवी ने भारत पर आक्रमण किये थे तब हिन्दू प्रभाव रक्षणार्थ महाराज भोज भी अन्य राजाओं के साथ उससे लड़कर पराजित हुए थे। संवत् १ ६७ के कुछ ही पीछे प्रसिद्ध चालुक्य नरेश सोमेश्वर आहव मल्ल ने विक्रमादित्य का बदला लेने को धारा नगरी पर चढ़ाई की। भोज को कुछ काल के लिए राजधानी छोड़नी पड़ी, किन्तु कुछ कष्ट न हुआ। अनन्तर चेदिपति कलचुरि नरेश कर्णदेव ने गुजरात नरेश भीमदेव चालुक्य से मिलकर महाराज भोज पर पूर्व और पश्चिम दोनों ओर से आक्रमण किया। फल यह हुआ कि इस विद्वान राजा का वध हुआ और पँवारों का बल मालवा में टूट गया। थोड़े ही दिनों में महाराष्ट्र देश के युवराज विक्रमादित्य की सहायता लेकर इस वंश ने मालवा में फिर से अधिकार जमाया किन्तु पँवारों का बल पूर्ववत न हो सका। राजा भोज के वंशधर प्रायः १५० वर्ष तक फिर भी स्थानीय शासक रहे। सं० ११६५ में यशोवर्मन प्रमार के पीछे उसका पुत्र जयवर्मन मालवा का राजा हुआ। थोड़े ही दिनों में इसके भाई अजयवर्मन ने इसे राज्यच्युत कर दिया और वह खुद राजा हो गया। यह देख इसके अन्य भाई लक्ष्मीवर्मन देव ने मालवा का कुछ भाग दबा कर वहां स्वतन्त्र राज्य जमाया। इसके उत्तराधिकारी हरिश्चन्द्र और उदय वर्मन थे। उधर मुख्य नरेश अजयवर्मन के उत्तराधिकारी समय समय पर विन्ध्या वर्मन, सुभटवर्मन तथा अर्जुनवर्मन हुए। अनन्तर मालवा में तोमर वंश के नरेशों और फिर चौहानों ने उनका स्थान लिया। संवत् १४५८ मे मालवा में मुसलमानों का स्वतन्त्र

राज्य हो गया, इसका कथन उचित स्थान पर किया जावेगा।

बघेलखण्ड तथा उत्तरीय गोंड़ावाना कलचुरि उपनाम चेदि वंश का मुख्य प्रान्त था। इन्ही को हैहय भी कहते हैं। इन लोगों का संवत् विक्रमीय संवत् ३०६ से चलता है। इससे प्रगट है कि उस काल इन लोगों ने किसी प्रकार की महत्ता प्राप्त की थी। यह वंश बहुत प्राचीन है। परशुराम से लड़ने वाले प्रसिद्ध माहिष्मती नरेश सहस्रबाहु भी हैहय थे। समय पर चेदि वंश माहिष्मती से हटकर बुन्देल-खण्ड की ओर आया और कृष्ण चेदि ने कालिंजर पर अधि-कार जमाया। इस काल से चेदि नरेशों ने कालिंजर पुख-राधीश्वर की उपाधि धारण की। अनन्तर गुप्त साम्राज्य के अभ्युदय से चेदियों का बल दब गया। समुद्रगुप्त जिन्हें जंगली नरेश कहता है वह चेदि ही थे, ऐसा अनुमान किया जाता है। यह लोग उसकी सेवा में थे। संवत् ६४८ से प्रायः १७ वर्ष राज करने वाला दाक्षिणात्य चालुक्य नरेश चेदिपति बुद्धवर्मन के पराजित करने का अभिमान करता है। उसी समय के बृहत्संहिता ग्रन्थ में भी लिखा है कि मध्य भारतीय चैद्य नरेश महत्ता युक्त थे। महाराज हर्ष-वर्द्धन के पीछे चेदियों ने शीघ्रता पूर्वक उस देश पर अधि-कार जमाया जो इन्ही के कारण चेदि देश कहलाया। कालिंजर अब तक इन्हीं के हाथ रहा किन्तु संवत् ६८२ से १०१७ पर्य्यन्त राज्य करने वाले चन्देल नरेश यशोवर्मन ने चेदियों से कालिंजर छीन लिया। कालिंजर के छिन जाने से चेदियों का बल कुछ दिनों के लिए मन्द पड़ गया। फिर भी उस काल ये लोग बिलकुल नष्ट नहीं हुए। सं०

१०३२ में अपने बड़े भाई शंकरगण के पीछे दूसरे युवराज देव गद्दी पर बैठे। उदयपुर प्रशस्ति के अनुसार भोज के चचा वाक्पति ने इन्हें पराजित किया। संवत् १०७२ से १०९७ पर्य्यन्त गांगेयदेव कलचुरि का शासनकाल है। आपने उत्तरी भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। सं० १०७६ में तिर्हुत में आपका अधिकार माना गया। इनके पुत्र कर्णदेव का शासन काल सं० १०९९ से ११७९ पर्य्यन्त है। इसने अन्हिलवाड़ के भीमदेव से मिलकर पँवारों का सर्वनाश किया। कर्णदेव ने पांड्य, मुरल, हूण, कुंग, वंग, कलिंग और कीर नरेशों को हराया। चोड़, कुंग, हूण, गौड़, गुर्जर और कीर नरेश आपके अधीन थे। गंगाधर कवि आपकी सभा में थे। मगध के पाल तथा उत्तरी भारत के कई अन्य नरेशो को भी आपने हराया, किन्तु वृद्धावस्था में इन्हे कई बार हारना पड़ा। बुन्देलखंड पति कीर्त्तिवर्मन, मालवीय उदयादित्य, अन्हिलवाड़ के भीमदेव, बंगाल के विग्रहपाल और दक्षिण के सोमेश्वर आहव मल्ल ने इन्हे हराया। इस बार कर्णदेव या तो राज्यच्युत हुए अथवा मार डाले गये। कर्ण के उत्तराधिकारी पुत्र यशः कर्णदेव ने चम्पारण्य को नष्ट किया ओर गोदावरी के निकट किसी आंध्र नरेश को हराया। लक्ष्मदेव प्रमार मालवा वाले ने आपको हराया और कन्नौज के गोविन्दचन्द्र ने आपका कुछ देश छीना। नरसिंह के उत्तराधिकारी भाई जयसिंह देव का समय सं० १२३४ था। हैहय वंशी अंतिम राजा का वर्णन सं० १२३८ के एक लेख में आता है। समझ पड़ता है कि मुसलमानी आक्रमण से इनका बल नष्ट हुआ। इनके पीछे बघेलखंड में कुछ दिनों के लिए भरों, चौहानों,

सेंगरों, गोंड़ों आदि का समय आया। अनन्तर यहां बघेलों का राज्य हुआ जिनके कारण देश बघेलखंड कहलाया। इनका वर्णन यथा स्थान किया जावेगा।

चेदि का कलचुरि वंश।

संवत्	नंबर	नाम	किसका पुत्र	विवरण
	(१)	काकवर्ण		
	(२)	शंकरवर्ण		
६३७	(३)	वुद्धराज (या वर्मन)	नं० २	इसके पीछे प्रायः ३०० वर्ष का अज्ञात काल है।
९३२	(४)	कोक्कल्ल पहला		
९५७	(५)	मुग्धतुंग प्रसिद्ध धवल	नं० ४	
	(६)	बालहर्ष	नं० ५	
९८२	(७)	केयूरवर्ष युवर जदेव प्रथम	नं० ५	
१००७	(८)	लक्ष्मणराज	नं० ७	
१०२७	(९)	शंकर गणदेव	नं० ८	
१०३२	(१०)	युवराज देव दूसरा	नं० ८	
१०५७	(११)	कोक्कलदेव दूसरा	नं० १०	
१०९५	(१२)	गांगेयदेव विक्रमादित्य	नं० ११	
१०९९	(१३)	कर्णदेव	नं० १२	
११३९	(१४)	यशःकर्णदेव	नं० १३	
१२०८	(१५)	गयकर्णदेव	नं० १४	

१२१२ (१६ नरसिंहदेव नं० १५
१२३४ (१७) जयसिंहदेव नं० १५
१२३७ (१८) विजयसिंहदेव नं० १७
(डफ़ के आधार पर)

नोट—इस वंश के अतिरिक्त कल्याण तथा रत्नपुर मे भी कलचरियों का राज्य रहा।

बुन्देलखंड देश की वर्तमान सीमायें संकुचित हैं किन्तु मुख्यतया जमुना और नर्मदा के बीच का देश बुन्देलखड है। इसकी पूर्वी सीमा बघेलखंड है, तथा पश्चिमी ग्वालियर। इसमें अब युक्त प्रान्त के हमीरपूर, उरई, झांसी, ललितपूर, ज़िले और ज़िला इलाहाबाद की कुछ तहसीलें हैं तथा मध्यदेश के सागर, दमोह और जबलपूर ज़िले। इनके अतिरिक्त बुन्देलखंड में नौ कुछ बड़ी रियासतें हैं और १२ जागीरें। नौ बड़ी रियासतों के नाम हैं ओड़छा, दतिया, समथर, पन्ना, चरखारी. छतरपूर, बिजावर, अजैगढ़ और बावनी। इन सबके अतिरिक्त बुन्देलखंड का कुछ भाग रियासत ग्वालियर में भी दबा हुआ है। प्राचीन समय से अबतक इस देश के कई नाम रहे हैं अर्थात् दशार्ण, वज्र, जेजाक भुक्ति, जुझौती, जुझार खंड, विन्ध्येल खंड और बुन्देल खंड। अब यह अंतिम नाम से पुकारा जाता है।

प्राचीन ऋषि अत्रि चित्रकूट मे रहते थे। उनकी पतिव्रता स्त्री अनुसूया जी का स्थान अब भी वहां है। वन यात्रा करने में रामचन्द्र चित्रकूट में ठहरें थे, जो उनके कारण से अब भी बुन्देलखंड का सबसे अधिक पवित्र स्थल है। महाभारत के समय हस्तिनापुर के महाराज पांडु ने अपनी विजय

यात्रा बुन्देलखंड ही से प्रारंभ की थी। अनन्तर दशार्णपति हिरण्य वर्म ने अपनी कन्या पांचाल राज द्रुपद के पुत्र शिखंडी को व्याही। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय भीम ने इस देश को जीता था। महाभारत के युद्ध में दशार्णाधिप को प्राग्ज्योतिष पति भगदत्त ने मारा था? गौतम बुद्ध के समय जो सोलह प्रधान रियासतें थीं उनमें से पांचालों का शासन बुन्देलखंड में केन नदी के पश्चिम की ओर तथा कौशाम्बी के वत्सों का उसके पूरब तक। इन दोनों राज्यों पर भी कोसल के श्रावस्ती नरेश का कुछ आतंक था। मौर्यों शुंगों तथा काण्वों का शासन इस देश पर समझ पड़ता है। फिर यहां गुप्तों का साम्राज्य फैला और तब हर्षवर्द्धन का। इन साम्राज्यों के होते हुए भी स्थानिक नरेशों का बहुत अंशों में राज्य रहता था। सं० ३०६ के पीछे कलचुरि कृष्णराज ने नाई बन कर कालिंजर के नरभक्षी दुष्ट राजा का वध किया। कालिजर का क़िला बुन्देलखंड भर की मानों कुंजी थी। इस पर अधिकार पाने से चेदियों ने कालिंजर पुर वराधीश्वर की उपाधि धारण की। संवत् ४५० के लगभग से बुन्देलखंड में गहरवारों का राज्य हुआ और फिर प्रायः १२५ वर्ष के पीछे संवत् ६७७ में इनको पराजित करके प्रतिहार उपनाम परिहारों ने अपना शासन जमाया। इनकी राजधानी मऊ थी, जो छतरपूर से १० मील है और नौगांव से ४ मील। इनके अधिकार में बेतवे से सोनभद्र और जमुना से मध्यदेशीय बिल्हारी पर्य्यन्त सारा देश था। हर्षवर्द्धन के समय चीनी यात्री ह्यूयन्त्सांग यहां भी संवत् ६९८ में आया था। उस काल यहां की राजधानी खजुराहो थी। यात्री खजुराहो गया था जहां उसने मंदिरों का वर्णन

किया है। वह कहता है कि यहां का राजा ब्राह्मण कक्षा का शासक था, इससे उसके हिन्दू होने का प्रयोजन समझ पड़ता है। उस काल इस राज्य का फैलाव चन्देरी और सागर से मिर्ज़ापूर तक तथा जमुना से मध्य देश की बिल्हारी पर्य्यन्त था। परिहारों का राजत्व काल संवत् ८८७ पर्य्यन्त चलता है।

इस काल चन्देलों का बल कुछ बढ़ने लगा था। इनका पहला राजा नन्हुक था। इनकी उत्पत्ति प्राचीन ऋषि चन्द्रा-त्रेय से कही जाती है। इस प्रकार यह चन्द्रवंशी क्षत्री हैं। इस वंश के २२ राजाओं का वर्णन पाषाण लेखों में मिलता है। राजा धंग पर्य्यन्त नरेशों का कथन खजुराहो के पाषाण लेखों में आया है। नन्हुक द्वारा पराजित होने पर परिहारों का बुन्देलखंडी राज्य बहुत संकुचित हो गया था, यहां तक कि अब उनके अधिकार में बहुत छोटी छोटी रियासतें अली-पुरा और नागौद हैं। नन्हुकदेव के जयशक्ति और विजय-शक्ति दो पौत्र थे। जयशक्ति ही के नाम पर यह देश जेजाक भुक्ति अथवा जुझौती कहलाया। यह भी संभव है यह नाम जुझौनिया ब्राह्मणों के ही कारण हो। नन्हुक से चौथे राजा राहिल ने ६४७ से ६६७ तक राज्य किया। आपने महोवा में राहिल सागर बनवाया। नन्हुक से छठवें राजा यशोवर्म्मन ने चेदिनरेश केयूर वर्ष से कालिंजर छीन लिया। इस प्रकार कालिंजरपुर व राधीश्वर की उपाधि चन्देलों को मिली। यह घटना संवत् ६८२ की है। संवत् ६७३ में हर्ष चन्देल ने राष्ट्रकूट तीसरे इन्द्र के प्रतिकूल कन्नौज पति महीपाल को सहायता दी थी। यशोवर्म्मन का राजत्व काल संवत् ६८२ से १००७ पर्य्यन्त है। आपने कन्नौज

पति महीपाल के उत्तराधिकारी देवपाल से एक विशाल विष्णु मूर्ति छीनकर उसे खजुराहो के अपने प्रसिद्ध मंदिर में प्रतिष्ठित किया। यह मूर्ति पहले तिब्बत या भूटान पति ने कैलास से प्राप्त की थी। अनन्तर यह कीर के शाही नरेश के यहां गई जहां से इसे कन्नौज के हेरम्बपाल ने पाया। उसके पुत्र देवपाल से इसे यशोवर्मन ने लिया। यह मूर्त्ति अब कुछ खंडित हो गई है किन्तु इसकी सुन्दरता अब भी यथावत है। यह मन्दिर भी बहुत ही सुन्दर है और तत्कालीन भारतीय कारीगरी को गौरव प्रदान करता है।

महाराज यशोवर्म्मन के पुत्र महाराज धंग चन्देलों में बड़े ही प्रसिद्ध शासक हो गये हैं। आपका राजत्वकाल संवत् १००७ या १०१२ से १०५६ पर्य्यन्त है। खजुराहे के एक शिला लेख में आपके विषय निम्न श्लोक लिखा हुआ है:—

शास्त्वा भुवमब्धु राशि रसना मेकामनन्यां सतीम्।
जीवित्वा शरदः शतम् समधिकम् श्रीधंग पृथ्वीपतिः॥
रुद्रस्मुद्रित लोचन स्हृदये ध्यायञ्जयञ्जाह्नवी।
कालिन्द्योः सलिले कलेवर परित्यागादगा न्निर्वृतिम्॥

अर्थात् समुद्र पर्य्यन्त पृथ्वी का अकेले शासन करके तथा १०० वर्ष से अधिक जीकर पृथ्वीपति श्रीधंग नेत्र मूंदे हुए अपने हृदय में शंकर का ध्यान और जप करते हुए गंगा और जमुना के पवित्र जल में शरीर छोड़कर स्वर्ग लोक को चले गये। इस प्रायः तत्कालीन लेख से महाराजा धंग के पुण्याचरण तथा सफल जीवन का पूरा पता लगता है। आपके विषय में संवत् १०११, १०५५ और १०५६ के शिला लेख हैं। अंतिम लेख के थोड़े ही दिन पूर्व आपका देहान्त हुआ था। खजु-

राहो के परमोत्कृष्ट मंदिर आप ही की उदारता के फल हैं। आपके समय चन्देल राज्य बहुत बढ़ा। दक्षिण मे भेलसा से उत्तर में जमुना पर्यन्त तथा पश्चिम में ग्वालियर से पूर्व में बघेलखंड तक आपका राज्य था। अतः मालवे का भी कुछ अंश आपकी सीमा में आ गया था। संवत् ६४६ में आप भी पंजाब के राजा जयपाल की ओर से कुर्रम घाटी मे सबुक्तिगीन से लड़कर हारे थे। आपके पुत्र गंड उपनाम नंद का शासन काल संवत् १०५७ से १०८२ तक है। जब सबुक्तिगीन के पुत्र महमूद गज़नवी ने भारत पर आक्रमण किये तब आपने जयपाल के पुत्र अनन्दपाल की सहायता करके भटिण्डा में महमूद से सं० १०६६ में युद्ध किया। इसमें भी हिन्दुओं को पराजय हुई। सं० १०७५ मे कन्नौज पति-राज्यपाल ने बिना लड़े ही महमूद से हार मान ली। इस पर राज्यपाल द्वारा हिन्दू पक्ष परित्याग के कारण क्रुद्ध होकर महाराज गंड ने युवराज विद्याधर तथा अधीनस्थ ग्वालियर नरेश को भेजकर युद्ध में कादर कन्नौज पति का वध कराया। इस बात से क्रुद्ध होकर सवत् १०८० में महमूद ने गंड के राज्य पर आक्रमण किया। भटिण्डा में लड़ने को पचास हज़ार पैदल तथा पांच सौ हाथी आप ले गये थे। इतनी भारी सेना रखते हुए भी और कादरता के लिए राज्यपाल को दण्ड देते हुए भी आपको अपने ही दल द्वारा महमूद से लड़ने का साहस न हुआ। अतएव गंड भी युद्धस्थल से कादरता पूर्वक भागे और कालिजर का क़िला महमूद के हाथ आया। महमूद ने उसपर अधिकार न रक्खा और इस प्रकार चन्देलों का राज्य अभंग रहा, यद्यपि महमूद के हाथ लूट का माल बहुत लगा। इस काल चन्देलो के पास १४ क़िले थे।

चन्देलराज कीर्त्तिवर्म्मन का शासन काल संवत् ११०६ से ११५७ पर्य्यन्त है। आपके राजकवि कृष्णदत्त मिश्र ने प्रबोध चन्द्रोदय नाटक बनाया जो सं० ११२२ में आपके सामने खेला गया। इसमें वेदान्त दर्शन के निगूढ़ रहस्य रूपक द्वारा दिखलाए गए हैं। इस ग्रन्थ में कीर्तिवर्म्मन द्वारा चेदिराज कर्णदेव का पराजित होना लिखा है। यह युद्ध चन्देल सेनापति गोपाल ने जीता था। इससे यह भी पता चलता है कि पहले कर्णदेव ने कीर्त्तिवर्म्मन को राज्यच्युत कर दिया था, किन्तु जीत अंत मे चन्देलों की हुई। गांगेय देव के सिक्को के समान कीर्त्तिवर्म्मन के भी सिक्के मिलते हैं। महोवे का कीर्त्तिसागर ताल आप ही का वनवाया हुआ है। सं० ११७४ में सल्लक्षण वर्मन का पुत्र जयवर्मन चन्देल गद्दी पर वैठा। मदन वर्म्मन इस वंश का सोलहवां राना था। जिसने सवत् ११६० मे एक दान पत्र लिखाया। इस पत्र से प्रगट है कि मदन वर्म्मन ने कलचुरियों को नर्मदा के दोनों किनारों से खदेड़ दिया था और वर्त्तमान सागर तथा दमोह पर्य्यन्त अपना अधिकार जमाया था। संवत् ११८६ से १२१६ पर्य्यन्त के दान पत्र इस नरेश के मिलते हैं। इनका राजत्व काल संवत् ११८६ से ११२४ तक है। आपने गुजरात नरेश को भी पराजित किया और काशिराज का सामना किया।

प्रायः अन्तिम चन्देल नरेश परिमार्द देव उपनाम परमाल का समय संवत् १२२४ से १२६० पर्य्यन्त है। ओड़छा में उस काल सनि राजपूत हंस का अधिकार था। इसने परिमार्ददेव पर आक्रमण करना चाहा। उसके सब सर्दार सहमत हुए किन्तु मंत्री हरिश्चन्द्र ने कहा कि यह बड़े जोखिम का काम है।

हंसराज ने यह सलाह न मानी और वह अपनी सेना के लिए अगुआ चुनने लगा, किन्तु यह पद स्वीकार करने को किसी सर्दार का साहस न हुआ। यह देख हरिश्चन्द्र ने कहा कि मैंने उचित मंत्र देकर अपना कर्तव्य पालन किया था, अब अगुआ होकर स्वामी की आज्ञा पालूंगा। संवत् १२६५ में प्रचण्ड युद्ध हुआ जिसमें हंसराज का वल नष्ट हो गया। चन्देल राज्य की ओर से मलखान ने सब से अच्छा युद्ध किया। थोड़े ही दिनों में कई कारणो से दिल्ली के सम्राट पृथ्वीराज की मुठभेड़ परिमार्द देव से हो गई। यह घटना संवत् १२३६ की है। चन्देलराज के मुख्य सामन्त आल्हा और ऊदल उस काल इनसे रूठकर कन्नौज चले गए थे। परमाल ने पृथ्वीराज से समय मांगकर उन्हें बुला भेजा और उनके आने पर प्रचण्ड संग्राम हुआ जिसमें दोनों ओर की सेनाओं को भारी क्षति हुई, किन्तु चन्देलों का वल विलकुल ध्वस्त हो गया। पृथ्वीराज ने चन्देल राज्य को विलकुल नष्ट न करके विजय यश से ही प्रसन्नता मनाई और वे दिल्ली वापस गये। कुछ काल चौहानों की ओर से पजून चन्देली राज्य के स्थानिक शासक अवश्य रहे किन्तु चन्देल लोग शीघ्र स्वतन्त्र हो गये। संवत् १२६० में कुतवुद्दीन ऐवक ने कालिजर पर आक्रमण किया। परमाल ने पहले तो घोर युद्ध किया किन्तु पीछे आप हार मान कर किले में घुस गये। आपने मुसलमानों की अधीनता स्वीकार करली और हाथी तथा कर देने का वचन दिया। मुसलमान ऐतिहासिक लिखते हैं कि हाथी आदि भेजने के पहले ही परमाल का शरीर छूट गया और उनके दीवान अजदेव ने लड़ने की ठानी। उन्होंने मुसलमानों से वहुत काल पर्य्यन्त युद्ध किया, किन्तु अन्त में

दुर्भिक्ष के कारण क़िले का पानी सूख गया और तब दीवान को भी आत्मसमर्पण करना पड़ा। ओड़छा के गज़ेटियर में लिखा है कि यद्यपि मुसलमानों ने संवत् १२६० में परमाल का मरना समझा था, किन्तु वास्तव में वे संवत् १२७० पर्य्यन्त जीवित रहे थे। जान पड़ता है कि परमाल की इच्छा से उनका मिथ्या मृत्यु समाचार प्रगट करके अजदेव ने युद्ध किया होगा। बुंदेलखंड में हाल ही मे हमने दान-सम्बन्धी दो ताम्र-पत्र पाए थे जिन्हें हमने लखनऊ के म्यूज़ी-यम (museum) को भेजवा दिया था और जिनका वर्णन उक्त म्यूजियम की १९१७ तथा १९१८ ईसवी वाली वार्षिक रिपोर्टों में लिखा है। इनके लेखों से सिद्ध होता है कि परि-मार्दिदेव (परमाल) के पीछे उनके पुत्र त्रयलोक्य वर्मन का अधिकार प्रायः समस्त बुन्देलखंड पर हो गया था। इससे जान पड़ता है कि परमाल के कुतुवउद्दीन ऐबक से हारने पर भी उनका राज्य बुन्देलखंड से उठा नही ओर वह चंदेल वंश के अंतिम राजा नहीं थे। उन लोगों का पूरा अधिकार कितने दिनों चला इसका पता नहीं लगता पर सोलहवीं शताब्दी पर्य्यन्त छोटे मोटे स्थानिक चन्देल राजे बने रहे, किन्तु उनका कोई विशेष प्रभाव न था और बुन्देलखंड के वास्तविक शासक कोई दूसरे ही थे। मुंगेर ज़िले के गिद्धौर नरेश वर्त्तमान चन्देलों मे सर्व प्रधान पुरुष हैं।

चन्देलों का शासन बड़ा ही लोक हितकारी था। इन्होंने बहुत क़िले, मन्दिर, और तालाब बनवाये जो अब तक वर्त्त-मान है। चन्देलों के अष्टकोट अब भी प्रसिद्ध हैं जिन्हे अठ-कोट कहते हैं। इनमें कालिंजर, अजैगढ़, खेरागढ़, मनियां-गढ़, मारफा, मौध, मैहर, और गढ़ा को गणना है। इनके

बनाये हुए सैकड़ों तालाव बुन्देलखंड में ठौर ठौर अव भी प्रस्तुत हैं। इस देश में जलाभाव के कारण तालाब यहां के जीव हैं। यहां ताल खुदाए कम जाते हैं, वरन् बन्धा बांध कर वे बनाये जाते हैं। चन्देलों ने इन बांधों में पाषाणों का बहुतायत से प्रयोग करके सैकड़ों परम दृढ़ सरोवरों द्वारा देश का असीम उपकार किया है। इनको चन्देली ताल कह कर लोग अव भी इन लोकोपकारी शासकों का गुणगान करते हैं। खजुराहो के प्रायः पच्चीस पाषाण मन्दिर चन्देली समय के हैं। इनकी सुन्दरता देखने ही से बन आती है। इनमें मतंगेश्वर, लक्ष्मण जी, विश्वनाथ, खंधारिया, काली जी, चित्रगुप्त, वामनजी, जवारी, दूलाद्देव, पारसनाथ और चतुर्भुज के मन्दिर प्रधान हैं। नन्दीगण और वाराह भगवान की मूर्त्तियां बहुत ही दर्शनीय हैं। इन मन्दिरों मे वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन आदि सभी मतों के देवता हैं जिससे चन्देलों की धार्मिक उदारता का पूरा परिचय मिलता है। हर्षवर्द्धन के समय आए हुए चीनी यात्री ने भी खजुराहो के मंदिरों की प्रशंसा की है। उस काल के अव केवल ३ मंदिर वहां प्रस्तुत हैं। जो मंदिर ब्रह्मा जी का कहलाता है, उसमें वस्तुतः चतुर्मुख महादेव की मूर्त्ति स्थापित समझ पड़ती है। इस प्रकार इन प्राचीन मदिरत्रय में से एक एक बौद्ध मंदिर है एक शैव और तीसरा शाक्त घंटाई में पत्थर का बड़ा वारीक काम हुआ है।

बुन्देलखण्ड में चन्देलों का राज्य संवत् ८८७ से संवत् १२६० पर्यन्त रहा। इनकी राजधानी समय समय पर खजुराहो, महोवा और कालिंजर में रही। इनके कुल मे चार प्राचीन आज्ञायें थीं अर्थात् मद्य न पीना, ब्राह्मण का वध न

करना, अनुचित विवाह न करना और अपने नाम में वर्मन शब्द रखना। कहते हैं इनके उल्लंघन से ही इस वंश का पराभव हुआ।

बुन्देलखण्डी चन्देलों का वंश।

संवत	नम्बर	नाम	किसकापुत्र	विवरण
	(१)	नन्नुक		चन्द्रात्रेयवंशी।
	(२)	वाक्पति		
	(३)	विजय		
९४७	(४)	राहिल		
९५७	(५)	हर्ष	नं० ४	
९८२	(६)	यशोवर्मन	नं० ५	
१०१२	(७)	धंग	नं० ६	
१०५७	(८)	गंड	नं० ७	
१०८२	(९)	विद्याधर	नं० ८	
१०९४	(१०)	विजय पालदेव		
११००	(११)	देव वर्मदेव	नं० १०	कहीं कहीं इनका समय सं० ११०७ भी लिखा है।
११०६	(१२)	कीर्तिवर्मनदेव	नं० १०	
११५७	(१३)	सल्लक्षण वर्मदेव	नं० १२	
११७४	(१४)	जयवर्मदेव	नं० १३	
	(१५)	पृथ्वीवर्मदेव		
११८६	(१६)	मदन वर्मदेव	नं० १५	
१२२४	(१७)	परमार्दिदेव या परमाल	नं० १६	इनके समय में राज्य जाता रहा।

संवत	नम्बर	नाम	किसकापुत्र	विवरण
१२७०	(१८)	त्रैलोक्य वर्मदेव	नं० १७	
१३१८	(१९)	वीरवर्मन	नं० १८	
१३४६	(२०)	भोजवर्मन	नं० १९	

मध्य भारत के वर्णन में हमने उसके सात वर्त्तमान भाग लिखे थे और इतिहास चार भागों का लिखा गया है, किन्तु शेष तीनों भागों का वर्णन अधिकतर इन्हीं में आ गया है, क्योंकि प्राचीन मालवा के वर्तमान भूपावार, मालवा, भूपाल और ग्वालियर का बृहदंश, अंग थे। ग्वालियर का एक छोटा सा शासक था जिसका कथन कन्नौज के इतिहास में किया जा चुका है। वर्त्तमान ग्वालियर के शेष भाग प्राचीन बुन्देलखण्ड, राजपूताना और युक्तप्रान्त से सम्बन्ध रखते हैं और उनका इतिहास उन्हीं के इतिहासों मे आ जाता है। इस प्रकार मध्य भारत का संवत् १२५० पर्य्यन्त इतिहास इसी स्थानपर समाप्त होता है। आगे का इतिहास उचित स्थान पर लिखा जावेगा।

पश्चिमी भारत।

पश्चिमी भारत मे हम काठियावाड़, गुजरात, सिंध, राजपूताना, पंजाब, वायव्य सीमा प्रान्त और काबुल का वर्णन करेंगे। वास्तविक पाश्चात्य भारत में काठियावाड़, गुजरात, सिंध, और राजपूताने की ही गणना होगी, शेष उपरोक्त प्रान्त उत्तर पश्चिमी भारत में हैं और बम्बई प्रान्त दक्षिणी पश्चिमी भारत में। फिर भी इसका सम्पर्क शेप दक्षिण से अधिक होने के कारण इसका कथन उसी के साथ होगा और पश्चिम मे ठेठ पश्चिम तथा उत्तर पश्चिमी देशों का कथन किया जावेगा।

काठियावाड़ में वल्लभी घराने का राजत्व काल सं० ५३७ के लगभग से प्रारंभ होकर प्रायः सं० ८२७ पर्य्यन्त चला। आगे वाले अध्यायों में वल्लभी राज चौथे धरसेन पर्य्यन्त कथन किया जा चुका है। उनके पाछे ध्रुवसेन तीसरे का समय ६०८ है। ये महाराज आठवें राजा प्रथम शिलादित्य के पौत्र थे। अनन्तर दूसरे ध्रुवसेन के भाई दूसरे खरग्रह का समय आया। इनका समय सं० ७१३ लिखा है। अनन्तर छः अन्य नरेश हुए जिन सब के नाम शिलादित्य थे। इस लिये वे दूसरे से सातवें पर्य्यंत शिलादित्य कहलाते हैं। कुछ दान पत्रों से यह भी निष्कर्प निकलता है कि तीसरे ध्रुव-सेन, दूसरे खरग्रह और दूसरे शिलादित्य राजा नहीं हुए। दूसरे शिलादित्य दूसरे खरग्रह के भाई थे। इनका समय सं० ७२४ है। दूसरे शिलादित्य के पुत्र तीसरे शिलादित्य थे जिनके दान पत्र सं० ७२३ से ७२५ तक के मिले हैं। तीसरे शिलादित्य के चौथे शिलादित्य पुत्र थ। इनका शासन काल सं० ७७० था। अन्तिम तीन राजाओं का कोई दान पत्र आदि से समय नहीं निकलता। वल्लभी वंश का पतन सं० ८२७ के लगभग हुआ। इन लोगों ने धर्म पर बहुत ध्यान दिया और धन वृद्धि के कारण युद्ध विद्या का तादृश ज्ञान एवं अभ्यास स्थिर न रक्खा। इनको कार्यदक्षता दीर्घ कालोन शान्ति एवं धन बाहुल्य के कारण जाती रही थी और जब इन पर यकायक मुसलमानों का आक्रमण हो पड़ा तब ये अपने को बिलकुल सम्हाल न सके। अरब वालों का राज्य सिंध प्रान्त पर सं० ७६९ मे हो चुका था और मुल्तान पर भी उनका अधिकार था। समय पर बल बढ़ाकर उन लोगों ने सं० ८२७ के लगभग वल्लभी राज्य पर भी आक्रमण किया।

इस प्राचीन राजवंश का निर्दयता पूर्वक विनाश हुआ और प्रायः सभी राज घराने वालों का वध हुआ। कहते हैं कि इस राजकुल की केवल एक सगर्भा स्त्री किसी प्रकार भाग भूग कर बची जिससे समय पर मेवाड़ का प्रसिद्ध शिशौदिया वंश चला। यह सगर्भा स्त्री वाली घटना वल्लभी की किसी अन्य विपत्ति से सम्बन्ध रखती है। इसका कथन यथास्थान होगा। वल्लभी वंश विनाश से इस प्रान्त से बौद्ध धर्म सदा के लिए लुप्त हो गया। ये राजे पहिले हिन्दू थे, किन्तु पीछे बौद्ध हो गए। अरब वालों ने केवल लूट के विचार से वल्लभी राज्य पर आक्रमण किया था, क्योंकि इस वंश के पूर्ण पराभव हो जाने पर भी उन लोगों ने काठियावाड़ उपनाम सौराष्ट्र पर अपना अधिकार न जमाया। संभव है कि इस प्रयत्न में अशक्त रहे हों। जो हो, सौराष्ट्र में वल्लभी नरेशों के पीछे अरबों का राज्य न हुआ।

वल्लभी घराने के पतन काल में सौराष्ट्र तथा गुजरात मे कई नवीन शक्तियां प्रभाव प्राप्त कर रही थीं। इनमें जेठवा, चौर, वल, अहेर, रवारी, मेर, भील और कोलियों की गणना है। तीसरी शताब्दी के पूर्व बौद्ध मत की बहुत प्रधानता थी और यह वल्लभी पतन पर्य्यन्त न्यूनाधिक रीति से चली गई। अनन्तर हिन्दू मत का प्राधान्य हो गया और बौद्ध राजन्य घराने के लोग राजपूत हो गये। वल्लभियों के पीछे सौराष्ट्र में चौरों की प्रधानता हुई। सं० ८०३ में वनराज चौर ने गुजरात में राज्य स्थापित किया जिसमें समय पर सौराष्ट्र का भी अंश सम्मिलित हुआ। वल तथा रवारी लोगों का भी कुछ प्राधान्य हुआ। वल्लभी नरेशों के पीछे सारे सौराष्ट्र का एक शासक बहुत काल नहीं रहा और स्थान स्थान पर

विविध वंशों का प्राधान्य हुआ । उत्तर में बसती बहुत कम थी । जेठवाओं का शासन पश्चिम में था और चौरों का दक्षिण तथा दक्षिण पूर्व में । वामनस्थली के चूड सम लोगों का प्रभाव सबसे अधिक बढा । सारांश यह कि इस काल से सौराष्ट्र में विदेशी लोगों का आगमन बहुतायत से होने लगा । वल्लभी पतन के पीछे वामनस्थली का प्रान्तीय शासक स्वतंत्र हो गया और उसके वंशधर प्रायः सौ वर्ष वहीं राज्य करते रहे । इस वंश का अन्तिम नरेश वलराम अपुत्र था । सम वंश के कुछ प्रधान पुरुष सिंध देश के सभी नगर में रहते थे । उनके राजा को वलराम की बहिन व्याही हुई थी, जिसका पुत्र राचूड़ था । इस नाम में रा शब्द राजा का अपभ्रंश समझ पडता है । वलराम के पीछे उनका यही भानजा राचूड़ गद्दी के लिए चुना गया । यह चुनाव सं० ६३२ के लगभग हुआ । इस प्रकार सं० ८२७ में वल्लभी पतन के समय से संवत् ६३२ पर्य्यन्त सौराष्ट्र में कोई एक प्रधान राजा न रहा किन्तु वामनस्थली की मुख्यता रही ।

राचूड़ ने अपने वंश का नाम चूड़सम रक्खा जिसमें इनके पैतृक घराने का भी नाम आजाता था । इस वंश का राजत्व काल सं० ६३२ से १५२७ पर्य्यन्त चलता है, अर्थात् प्रायः छै सौ वर्ष । इस वंश के अन्तिम नरेश रामंडलिक को वडी दुर्दशा पूर्वक मुसलमानों ने राज्यच्युत किया । अधिकार बचाने के लिए मंडलिक मुसलमान हो गया किन्तु फिर भी राज्य न वचा । राचूड का शासन काल सं० ६६४ पर्य्यन्त रहा । आप वड़े पराक्रमी राजा थे । धंधूसर के एक लेख से प्रगट होता है कि सारे प्रान्तिक नरेश इनकी प्रधानता मानते थे । राचूड़ का पुत्र हम्मीर इन्हीं के सामने

मर गया, सो इनके पीछे इनका पौत्र मूलराज गद्दी पर बैठा। रामूलराज के पीछे संवत् ६७२ में पुत्र विश्वराह राजा हुआ। इन दोनों ने विपक्षियो का दमन बहुत अच्छा किया। विश्वराह के उत्तराधिकारी ग्रहरिपु उपनाम प्रथम ग्रहरियो ने जूनागढ़ का उपर कोट बनाया। इस नरेश के समय गुजरात का चोरवंश समाप्त हो गया था और संवत् ६६२ से वहां सोलंकी मूलराज शासक हुआ था। गुजराती चौर नरेशों का प्रभासपत्तन में सोमनाथ उपनाम सोमेश्वर प्रसिद्ध मन्दिर था। ग्रहरिपु ने यहां के यात्रियों को सताना आरंभ किया। यह देख मूलराज ने इन्हें ऐसा करने से रोका किन्तु ग्रहरिपु ने न माना। तब मूलराज ने सेना समेत सौराष्ट्र में घुसकर ग्रहरिपु को करारी पराजय दी और इसे बंदी भी कर लिया तथा यात्रियों को कष्ट न देने का वचन लेकर छोड़ा। संवत् १०३६ में ग्रहरिपु के मरने पर राकवट राजा हुआ। उस काल सौराष्ट्र के दक्षिण शियाल टापू में वीरम देव पँवार का राज्य था। उसके यहां ३६ नरेश वन्दी थे। उसने युक्ति पूर्वक राकवट को भी वन्दी कर लिया। यह देख इनके चचा वलयुग ने सेना समेत जाकर वीरम का वध किया और राकवट को छुडाया। राकवट के पीछे इनका पुत्र राद्यस संवत् १०६० में राजा हुआ।

इस काल दूलाराज सोलंकी गुजरात का शासक था। गिरनार पहाड की ओर यात्रा करते हुए सोलंकी कुटुम्ब की एक स्त्री का सौराष्ट्र मे अपमान हो गया। इस बात से क्रुद्ध होकर दूलाराज ने वामनस्थली उपनाम वनथली पर अधिकार जमाया। राद्यस जूनागढ़ भाग गया, किन्तु दूलाराज ने उसे वहां भी जा घेरा और दुर्ग छीन कर संवत् १०६७ में राद्यस का

वध ही कर डाला। अब चूड़सम राज्य पर शासन करने के लिए एक प्रतिनिधि छोड़कर दूलाराज अन्हिलवाड़ पत्तन को लौट गये। इस प्रतिनिधि का शासन संवत् १०७५ पर्य्यन्त चला। इस वर्ष रायस के पुत्र रानोघन ने प्रतिनिधि को मार कर अपना पैतृक धन फिर प्राप्त किया। रानोघन के समय गज़नी के महमूद ने संवत् १०८२ में प्रभासपत्तन के प्रसिद्ध मन्दिर सोमनाथ उपनाम सोमेश्वर पर आक्रमण किया। ऐसा करने में वह सौराष्ट्र भी गया था, किन्तु अपने को उसका सामना करने के अयोग्य समझ कर अथवा सोलंकियों से शत्रुता के कारण रानोघन ने महमूद से युद्ध नहीं किया। इनके पीछे संवत् ११०१ मे इनका पुत्र प्रथम राखेंगर राजा हुआ और तब संवत् ११२४ में खेंगरनन्द दूसरा रानोघन गद्दी पर बैठा। गुजरात नरेश सिद्धराज सोलंकी ने इसको पराजित किया। नोघन के चार पुत्र थे। संवत् ११५५ में मृत शय्या पर आपने यह आज्ञा दी कि वही पुत्र मेरा उत्तराधिकारी हो जो मेरी चार इच्छायें पूरी करै, अर्थात् जसदान के निकट भोपरा का किला तोड़े, अन्हिलवाड़ का फाटक ध्वस्त करे, उमेता के हरराज को मारे और राजनिन्दक मेसन चारण के गाल फाड़े। नोघन के चौथे पुत्र दूसरे खेंगर ने यह चारों आज्ञायें पूरी करने का वचन दिया और किसी ने नहीं। यह सुन नोघन ने खेंगर को उत्तराधिकारी नियत करके प्रसन्नता पूर्वक शरीर छोडा। नोघन के समय में संवत् ११४७ में झाला राजपूत काठियावाड़ मे बसे। पहले इनका शासन सिन्ध में किरान्ती राज्य पर था, किन्तु वहाँ इनका शासक केसरदेव संवत् १११२ में मार डाला गया और यह लोग खदेड़ दिये गए। केसरदेव के पुत्र हरपालदेव की स्त्री गुज-

रात के सोलंकी वंश को थीं। इसलिए अनुगामियों को लेकर हरपालदेव सोलंकी नरेश कर्णराजा के यहां गए, जिन्होंने इनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर इनको सौराष्ट्र का वह प्रान्त दिया जो इनके नाम से झालावाड़ कहलाया। इस काल झालाओं के अधिकार में झालावाड़ के अतिरिक्त ध्रंगध्रा, लिम्डी, वांकानेर, वधवान, -आदि रियासतें हैं। झालाओं ही के समय में काठी क्षत्री सौराष्ट्र में आये, जिनके कारण समय पर इस देश का नाम काठियावाड़ हुआ। यह लोग अपने को राजा दुर्योधन का वंशधर समझते हैं। सिकन्दर के समय काठीलोवा पंजाब के एक भाग मे बसे थे। वहाँ से बढ़कर यह सिन्ध और कच्छ होते हुए सौराष्ट्र पहुंचे। पहले राखेंगर की सेना मे बहुत से काठी थे। हरपालदेव झाला के पुत्र खावड़जी का विवाह किसी काठी स्त्री से हुआ था। काठियों को नीच समझ कर झालाओं ने खावड़जी को छोड़ दिया। इससे रुष्ट होकर खावड़जी काठियों ही में मिल गये। इनके वंशधर खावड़ काठी कहलाते हैं। थोड़े दिनों मे विरावल नामक एक बल राजपूत ने किसी काठी सुन्दरी के साथ विवाह कर लिया। इस पर अन्य बल राजपूतों ने उसे भी छोड़ दिया। अब विवश हो विरावल को भी काठी होना पड़ा। विरावल के वंशधर सखायत काठी कहलाते हैं, तथा शेष काठियों की अवरत्त संज्ञा है। काठियों मे यह नियम है कि सखायतो की कन्यायें अवरत्त कुमारों से ब्याही जायें तथा अवरत्तों की सखायतों से।

उपरोक्त दूसरे रानोघन के पीछे संवत् ११५५ में दूसरे राखेंगर गद्दी पर बैठे। नोघन ही ने वनथाली छोड़कर

जूनागढ में राजधानी बनायी थी। यह स्थान बहुत दिनों तक चूड़ समों का राजस्थल रहा। गद्दी पर बैठते ही दूसरे खेंगर ने अपने पिता की चारों आज्ञायें पालन करने का प्रयत्न किया। जिस काल सोलंकी सिद्धराज मालवा गए थे तब उनकी अनुपस्थिति मे आपने सेना समेत बढ़ कर अन्हिलवाड़ का एक फाटक तोड़ डाला। अनन्तर उमेता पर आक्रमण करके आपने हरराज का वध किया। गुजरात से पलटने पर आपने भोपरा का क़िला नष्ट कर दिया। इस भांति तीन पैतृक आज्ञायें पूरी करके आपने मेसन चारण के मुख में इतना सोना भरा कि उसके गाल फटने लगे। इस प्रकार चौथी आज्ञा क्रोध से सम्पादित न कर आपने दान द्वारा पूरी की। जब सिद्धराज मालवा से पलटे तब खेंगर की इस धृष्टता से क्रुद्ध होकर उन्होंने जूना-गढ़ पर बदला लेने की ठानी। इस शत्रुता का एक और भी कारण था। रानोघन ने रानकदेवी नाम्नी उस कन्या से विवाह किया था जिसे सिद्धराजा भी चाहता था, इसलिए उसे भी प्राप्त करने के विचार से सिद्धराज ने जूनागढ़ पर बदला लेने का संकल्प शीघ्रता से पूरा किया। अतः उन्होंने जूनागढ पर आक्रमण करके अधिकार जमाया। राखेंगर निकल भागा, किन्तु जूनागढ़ से प्रायः ३५ मील पर पकड़ा जाकर मारा गया। सिद्धराज ने विधवा रानकदेवी को पटरानी बनाने तक का लोभ दिया किन्तु उसने न माना और सोलंकी नरेश को शाप देकर वह वाधवान पर सती हो गई। सिद्धराज ने जूनागढ़ पर शासन करने के लिए एक प्रतिनिधि छोड़ा, जिसका अधिकार थोड़े ही दिन चला और लोगों ने उसे खदेड़ कर तीसरे रानोघन को राजा

बनाया। इसके पीछे दूसरे राकवट (संवत् ११६७), जयसिंह उपनाम राग्रहरिओ दूसरे (संवत् १२०६), रा रायसिंह (संवत् १२३७), राजयमल (संवत् १२५८), रा महीपाल तीसरे (संवत् १२८७) क्रमशः एक दूसरे के पीछे राजा हुए। यह सब एक दूसरे के पुत्र थे। ग्रहरियो ने अन्य प्रान्तों पर लूट सम्बन्धी कई आक्रमण किये। महीपाल तीसरे को काठियों से बहुत युद्ध करना पड़ा। आपने बल राजपूत ढंक नरेश से मिलकर काठियों पर कई आक्रमण किये, किन्तु वे पराजित न हो सके और संवत् १३१० में राजा का शरीर छूट गया। अनन्तर इनके पुत्र तीसरे राखेंगर ने सात ही वर्ष के राजत्व काल में काठियों को पराजित कर दिया। गोहल राजपूत सेजक जी की पुत्री आपको ब्याही थी। संवत् १२६७ में राठूरी ने गोहलों को उनके मारवाड़ी निवास स्थान खेरगढ़ से निकाल दिया था। सेजक जी अपने गोहल अनुयाइयों समेत सौराष्ट्र आए। खेंगर ने अपने ससुर को पांचाल ज़िले का शाहपुर स्थान तथा बारह और गांव दिये। वहां सेजकपुर बसाकर यह लोग रहने लगे। गोहल लोग प्राचीन वल्लभी नरेश के वंशधर समझे जाते हैं। वर्तमान भावनगर नरेश इन्हीं सेजक जी के वंशधर हैं।

तीसरे खेंगर के पीछे पहले रामंडलिक संवत् १३१७ में गद्दी पर बैठे। संवत् १३१८ में जगतसिंह राठूर ने आपसे वनथली छीन ली। यहां राठूरो का अधिकार सौ वर्षों से ऊपर रहा। संवत् १३५५ में दिल्ली के सम्राट् अलाउद्दीन खिलजी के साले अलफ़खां ने गुजरात पर आक्रमण करके प्राचीन सोलंकी राज को नष्ट कर दिया। अनन्तर प्रभास-पत्तन पर बढ़कर उसने सोमनाथ के मंदिर को ध्वस्त किया।

इन विजयों से प्रोत्साहित होकर उसने सौराष्ट्र पर भी आक्रमण किया, किन्तु रामंडलिक ने उसे पराजित करके काठियावाड़ की स्वतंत्रता डेढ़ दो सौ वर्षों के लिए और स्थापित रक्खी। रामंडलिक का शरीरान्त संवत् १३६३ में हुआ। चूड समों का शेष इतिहास यथास्थान आगे लिखा जावेगा। यद्यपि इन लोगों का दबदबा सारे काठियावाड़ पर था, तथापि सारे देश पर इनका अधिकार न था। यह दशा गुजरात में सोलंकियों की थी। चूडसमों के समय सौराष्ट्र में मुख्य घटनायें बौद्ध मत पतन, बहिरंग जातियों का आगम नऔर हिन्दूमत बर्द्धन की हुईं।

अब गुजरात का वर्णन उठाया जाता है। यह एक प्रायद्वीप है। महाभारत के समय अथवा उससे भी पूर्ववाली गुजराती घटनाओं का कथन यथास्थान हो चुका है। मौर्य्यों का शासन इस प्रान्त में था। अनन्तर जिन शक नरेशों ने सौराष्ट्र पर शासन किया था उनका अधिकार गुजरात पर भी था। भारतीय नरेशों में से शिलालेखों आदि में शुद्ध संस्कृत का व्योहार पहिले पहिल विदेशी शकों ही ने किया रुद्रदामन शक नरेश संस्कृत भाषा तथा ब्राह्मणों की विद्याओं का अच्छा ज्ञाता था। उधर स्वदेशी आन्ध्र नरेशों ने प्राकृत की ही प्रधानता रक्खी। संवत् ४८७ से यहां गुप्तों का साम्राज्य फैला। संवत् ५५० के लगभग गुजरात में गुर्जरों का आगमन बहुसंख्या में हुआ। यह लोग हूणों के प्रायः साथ ही साथ भारत में आये थे। पंजाब तथा राजपूताना में समय समय पर बसते हुए यह लोग यथाकाल गुजरात पहुंचे थे। आबू पहाड़ के पास भिलमाल के निकट इन्होंने एक राज्य स्थापित किया और संवत् ६४२ में भड़ोंच में इनका दूसरा राज्य स्थापित

हुआ । इन लोगों ने हिन्दू सभ्यता और धर्म वहुत शीघ्रता से स्वीकार किये । महाराज हर्षवर्द्धन के समय भड़ोंच का राजा वल्लभी नरेश के अधीन था किन्तु हर्षवर्द्धन के पीछे जो गड़ वड़ हुआ उससे भिलमाल के गुर्जरों का प्रभाव अच्छा वढ़ा । सम्वत् ७६६ मे अरवो मुसलमानों ने सिंधपर अधिकार जमाया और इनका प्रभाव गुजरात की राजनीति पर भी पड़ने लगा । मुसलमानो के आक्रमण से भड़ोंच राज्य का वल कुछ क्षीण हुआ । उधर वादामी वाले चालुक्यों ने इस राज्य का दक्षिणीभाग हस्तगत कर लिया तथा संवत् ८५७ के लगभग राष्ट्रकूट नरेश तीसरे गोविन्द ने इस राज्य को नष्ट कर दिया और अपने भाई इन्द्र को लाट देश का राजा वनाया । लाट दक्षिणी और मध्य गुजरात को कहते हैं ।

मुसलमानी आक्रमणों तथा हर्षीय साम्राज्य ध्वंसन से जो गड़वड़ हुआ उसमें चौर राजपूतों ने वल वढ़ाया । यह गुर्जर वंश के समझ पड़ते हैं । संवत् ८०३ में वनराज ने भिलमाल के गुर्जरों की सहायता से अन्हिलवाड़ राज्य स्थापित किया । कहते हैं कि वनराज को अन्हिल नामक भरवाड़ी गड़ेरिया ने यह स्थान वताया था । उसी के नाम पर शहर का नाम अन्हिलवाड़ रक्खा गया । एक यह भी किम्वदन्ती है कि गुजरात के भीलों ने आपको शासक चुना । संवत् ८३७ में वल्लभी पतन से अन्हिलवाड़ पत्तन का प्रभाव वढ़ा । वनराज का शरीरान्त संवत् ८६१ में हुआ । इनके पीछे क्रम से योगराज, क्षेमराज, भूअद, वीरसिंह, रत्नादित्य और सामंतसिंह एक दूसरे के पीछे राजा हुए । अन्तिम राजा सामंतसिंह सम्वत् ६६२ में अपुत्र मरे और इन्हीं की इच्छानुसार इनके दौहित्र मूलराज सोलंकी राजा हुए । इस प्रकार

चौरोंका राजत्वकाल सम्वत् ८०३ से ९९२ पर्य्यन्त रहा। इनके समय अन्हिलवाड़ पत्तन पश्चिमी भारत में सर्वोत्कृष्ट स्थान हो गया। प्रभास पत्तन का प्रसिद्ध शैव मन्दिर सोमनाथ इन्हीं लोगों का बनवाया हुआ था क्योंकि मूलराज सोलंकी के समय उसका वर्णन आता है। तथा यह नहीं लिखा है कि उसीने बनवाया था। चौर शब्द का अर्थ संस्कृत में चोर है और गुजराती में लुटेरा। सोमनाथ जैसे सधन मन्दिर के बनवाने वालों को चोर अथवा लुटेरा नही कह सकते, कुछ लोगों का विचार है कि चौरों में दो नरेश थे, जिनमें एक अन्हिलवाड का शासक था और दूसरा प्रभासपत्तन का। यह समझ पडता है कि जब राष्ट्रकूट इन्द्र तृतीय ने परिहार महीपाल कन्नौज पति को सम्वत् ९७३ में हराया तब परिहारों का प्राचीन राज्यस्थल भिलमाल एवं उसके समीप का देश उनकी निर्वलता से उनके शासन से निकल अवश्य गया, किन्तु राष्ट्रकूटों ने उस पर कोई अधिकार न जमाया। यह देख अन्हिलवाड़ के चौरों ने उसे अपना लिया इस प्रकार ये दोनों राजधानियां एक नरेश के अधीन हो गई, जिसने प्रभास पत्तन मे सोमनाथ मन्दिर बनवाया।

अन्हिलवाड़ का चावड़ अथवा चौर वंश।

सवत्	नम्बर	नाम	किसका पुत्र	विवरण
८०३	(१)	वनराज		
८६३	(२)	योगराज	नम्बर १	
८९८	(३)	क्षेमराज		
९२४	(४)	भूयड़		
९५२	(५)	वीरसिंह		

संवत्	नम्बर	नाम	किसका पुत्र	विवरण
६७७	(६)	रत्नादित्य		
६६२	(७)	सामन्त सिंह		

(डफ़ के आधार पर)

गुजरात का चालुक्य वँश।

सम्वत्	नम्बर	नाम	किसका पुत्र	विवरण
	(१)	जयसिंह राज		पहली शाखा
	(२)	भूधर वर्मराज	नं० १	
७००	(३)	विजय वर्मराज	नं० २	
	(१)	धराश्रय जय-सिंह वर्मन	कीर्तिवर्मन का	दूसरी शाखा (सन्दिग्ध)
	(२)	जयाश्रय नागवर्द्धन	नं० १	
७२८	(१)	धराश्रय जयसिंह वर्मन	दूसरे पुल-केशी का	तीसरी शाखा
७२८	(२)	शिलादित्य श्रियाश्रय	नं० १	
७८८	(३)	युधामल्ल जयाश्रय मंगलराज विन-यादित्य	नं० १	
७६६	(४)	जनाश्रय पुल-केशिन	नं० १	

(डफ़ के आधार पर)

अन्हिलवाड़ का चालुक्य अर्थात् सोलँकी वंश।

संवत्	नंबर	नाम	किसका पुत्र	विवरण
६६८या	(१)	मूलराज प्रथम	कल्याण के	चौर सामन्त

संवत्	नम्बर	नाम	किसका पुत्र	विवरण
९९२			राजराज या कन्नौज के भुवनादित्य	सिंह का दौहित्र
१०५३	(२)	चमुण्डराज (दूलाराज)	नं० १	
१०६६	(३)	वल्लभराज	नं० २	
१०६६	(४)	दुर्ल्लभराज	नं० २	
१०७९	(५)	भीमदेव प्रथम	नागदेव	नागदेव नं० २ का पुत्र था
११२०	(६)	कर्णदेव प्रथम	नं० ५	
११५०	(७)	जयसिंह सिद्धराज	नं० ६	इनकी कुछ घटनायें ११५० के पूर्व की भी मिलती हैं।
१२००	(८)	कुमारपाल		नं० ५ का प्रपौत्र।
१२२९	(९)	अजयपाल		नं० ८ का भतीजा।
१२३३	(१०)	दूसरा मूलराज	नं० ९	
१२३५	(११)	दूसरा भीमदेव	नं० ९	इनके समय कुछ काल जयन्त सिंह का भी राज्य रहा
१२९९	(१२)	त्रिभुवनपाल	नं० ११	

(मुख्यतया डफ़ के आधार पर)

अन्हिलवाड़ का वाघेल चालुक्य वंश ।

संवत्	नंबर	नाम	किसका पुत्र	विवरण
	(१)	धवल		कुमारपाल का मौसिया ।
	(२)	आरणों राज	नं० १	
	(३)	लवणप्रसाद	नं० २	धोलका नरेश ।
१२७८	(४)	वीरधवल		धोलका का स्वतन्त्र राना ।
१२९२	(५)	वीसलदेव	नं० ४	सं० १३०० में अन्हिलवाड़ का राज्य छीना ।
१३१९	(६)	अर्जुनदेव		नं० ५ का भतीजा ।
१३३१	(७)	सारंगदेव	नं० ६	
१३५२	(८)	कर्णदेव	नं० ७	

(डफ़ के आधार पर)

इस काल गुर्जरों का प्रभाव बहुत बढ़ रहा था । कुछ लोगों का विचार है कि चौर, परिहार और पँवार सब आदि में गुर्जर ही थे । हमें पँवारों के गुर्जर होने में पूरा सन्देह है और चौर तथा परिहारों का गुर्जर होना निश्चित समझ पड़ता है । संवत् ८७३ में गुजराती नागभट्ट परिहार ने कन्नौज जीता । इनसे कुछ पूर्व वत्सराज परिहार ने गौड़ और बंगाल जीते थे । राष्ट्रकूटों की शत्रुता से उस काल बंगाल तथा कन्नौज इन्हें प्राप्त न हो सके । नागभट्ट के पुत्र रामभद्र संवत् ८८२ से ८९७ पर्य्यन्त भिलमाल की गद्दी पर प्रतिष्ठित रहे । आपने परिहारों के राज्य को ग्वालियर पर्य्यन्त फैलाया और नव

मिहिरभोज ने कन्नौज भी जीत कर परिहारों का विशाल साम्राज्य स्थापित किया। इन लोगों ने भिलामाल तथा कन्नौज पर संवत् ६७३ पर्य्यन्त अधिकार रक्खा और तब राष्ट्रकूट नरेश तीसरे इन्द्र ने महीपाल को पराजित कर दिया। महीपाल किसी भांति अपना कन्नौज राज्य तो स्थापित रख सके, किन्तु भिलमाल इनके हाथ से निकल गया।

गुजरात में सोलंकियों के दूसरे शासक वंश का राज चौरों के पीछे संवत् ६६२ अथवा ६६८ या १००३ से आरंभ हुआ। अन्तिम चौर नरेश सामंतसिंह अपुत्र होने से अपनी कन्या के पुत्र मूलराज सोलंकी का बडा लाड प्यार करता था और उसे अपने ही यहां रखता था। अन्त में मूलराज ही को उत्तराधिकारी नियत करके सामंतसिंह ने शरीर छोड़ा और तब पूरा चौर राज्य इनके अधिकार में आया। आपका शासन काल संवत् १०५३ तक चलता है। अन्हिलवाड़ तथा भिलमाल की रियासतें आपको मातामह से ही मिली थीं। आपने बलवर्द्धन करके काठियावाड़ के अंश, कच्छ और दक्षिणी गुजरात पर भी अधिकार जमाया। सौराष्ट्र नरेश राग्रहरिपु को पराजित करके आपने बन्दी कर लिया और सोमनाथ के यात्रियों को कष्ट न देने का वचन लेकर छोड़ा। दक्षिण के राजा तेलप ने मूलराज के देश पर आक्रमण किया, किन्तु उसे पराजित होना पड़ा। इस काल वारप चालुक्य लाट देश का शासक था। यह तैलप की ओर से मूलराज से लडा था। इसने पहले मूलराज को हराकर कन्यकोट भगा दिया किन्तु अन्त मे उसी के द्वारा युद्ध में मारा गया। कन्नौज के राठूर नरेश से इसका वैवाहिक सम्बन्ध था। मूलराज के समय अन्हिलवाड़ का राज्य बहुत बढ़ा

और अच्छा प्रभावशाली हो गया। आपके पीछे संवत् १०५३ में दूलाराज गद्दी पर बैठे। आपने सौराष्ट्र नरेश राव्रस को मार कर संवत् १०६७ में उनके राज्य पर अधिकार जमाया, किन्तु यह राज्य १० वर्ष पीछे चूड़ सम नरेशों ने फिर जीत लिया। जिस काल जनवरी संवत् १०८१ में महमूद ग़ज़नवी का अक्रमण सोमनाथ पर हुआ था, तब भीमदेव सोलंकी अन्हिलवाड़ का राजा था।

तत्कालीन अरबी विद्वान अलबरूनी कई बार भारत मे आया था। उसने इस मन्दिर का आंख देखा वर्णन किया है। मुख्यतया उसी आधार पर इस मन्दिर के विषय में यहां कथन किये जाते हैं। अलबरूनी का जन्म संवत् १०३० मे हुआ और मृत्यु १०८८ में। आप कहते हैं कि इस मूर्ति पर गंगाजी से लाकर नित्यशः एक घड़ा जल चढ़ाया जाता था और काश्मीर से एक झौआ फूल नित्य चढ़ाने के लिए आते थे। प्रभास पत्तन में इस मन्दिर की स्थिति के कारण बड़ी चहल पहल थी। यहां से जल और थल दोनो मार्गों से अच्छा व्यापार होता था। एक अन्य मुसलमानी ऐतिहासिक इब्नअसीर का कथन है कि प्रत्येक सूर्य अथवा चन्द्रग्रहण के समय इस मन्दिर में पूजा करने के लिए एक लाख हिन्दू एकत्र होते थे। दस हज़ार से ऊपर गाँवों की जमा इस पर चढ़ी हुई थी। एक हज़ार ब्राह्मण पुजारी इसकी पूजा करने पर नियुक्त थे और तीन सौ पचास वेतन भोगी गवैया इसके फाटक पर नित्य गाने और नाचते थे। इस मन्दिर मे बहुत अच्छे अच्छे और बहुमूल्य रत्न थे। चढ़ावा की आय इससे इतर थी। किसी मूर्त्ति विदारक विधर्मी का ऐसे स्थान के लूटने का लालच बहुत ही स्वाभाविक है।

महमूद संवत् १०८१ के अक्तूबर में ग़ज़नी से चला। उसके साथ तीस हज़ार घुड़सवार थे। वह मुलतान और अजमेर होता हुआ अन्हिलवाड़ पत्तन पहुंचा। वहां का सोलंकीराजा भीमदेव लड़ने का साहस न करके कच्छ के कन्थकोट क़िले में भाग गया। महमूद ने अन्हिलवाड़ पर अधिकार करके प्रभासपत्तन का रास्ता लिया। मार्ग में वहुत से मन्दिरो और नगरों को लूटता हुआ वह संवत् १०८१ की ३० जनवरी को प्रभासपत्तन में पहुंचा। इस नगर के दुर्ग पर उसने तुरन्त आक्रमण किया। रक्षकों ने पहिले दिन घोर समर करके मुसलमानों को चारों ओर भगा दिया, किन्तु दूसरे दिन महमूद सफल मनोरथ होकर नगर में घुसा। हिन्दुओं का नगर में विकराल वध किया गया। युद्ध और वध में पचास हज़ार से ऊपर हिन्दू मारे गये। महमूद ने मन्दिर में धन खोजा, किन्तु उसे थोड़ा ही द्रव्य प्राप्त हुआ। अव उसने प्रतिमा तोड़ने का विचार किया। वहां ब्राह्मणों ने वहुत अधिक धन देने का वचन देकर मूर्त्ति को वचाना चाहा और भांति भांति से विन्ती भी की, किन्तु महमूद ने कहा कि मुझे यह धन लेकर एक प्रकार से सोमनाथ की प्रतिमा वेचनी नही है क्योंकि प्रतिमा विक्रेता के स्थान पर प्रतिमा ध्वंसकारी का यश मुझे प्रियतर है। अव तोडना सुगम करने के लिए उसने शिवलिङ्ग पर वहुत सी आग जलवाई। अनन्तर शिवलिङ्ग तोड़ा गया और तव उसके भीतर से इतने रत्न निकले कि महमूद की भी तृप्ति हो गई। कहते हैं कि इस स्थान से महमूद डेढ़ करोड की लूट ले गया। शिवलिङ्ग का एक भाग ग़ज़नी वाली मसजिद के फाटक पर इसलिए रक्खा गया कि उसमें जाने वाले लोग

पत्थर पर पैर पोंछें। अब महमूद सिंध होता हुआ ग़ज़नी चला गया जहां वह संवत् १०८३ में पहुंचा वह कन्थकोट होता हुआ सिंध को गया था, किन्तु इसका निश्चय नहीं है कि भीमदेव से युद्ध हुआ था या नहीं। सिंध में बालू के कारण उसके दल को भारी क्षति हुई। उसने प्रभासपत्तन पर एक मुसलमानी गवर्नर छोड़ा इसका कोई चिरस्थायी प्रभाव रहना विदित नहीं होता। सोमनाथ के अन्तिम मंदिर में सागौन के अच्छे अच्छे छप्पन खम्भे थे, जिनमें बहुमूल्य रत्न जड़े हुए थे। प्रत्येक स्तम्भ किसी न किसी प्रान्तीय शासक का बनवाया हुआ था। जान पड़ता है कि प्राचीन मंदिर बिलकुल ध्वस्त हो गया था। जिस स्थान पर वह था उसके तीन ओर समुद्र था, किन्तु जहां उसका प्रतिनिधि अब है वहां केवल एक ओर समुद्र है। भीमदेव ने यह मंदिर फिर से बनवाया था। समय समय पर मुसलमानों ने इस पर पांच और आक्रमण किये। यह आक्रमण सवत १३५४, १३७५, १४५२, १५६८, और १५७७ में हुए, किन्तु भीमदेव का बनवाया मंदिर अब भी वर्त्तमान है। मंदिर का कुछ ऊपरी भाग गिरा हुआ है। इसकी कारीगरी बहुत अच्छी है। समय पर अन्हिलवाड़ नरेश सिद्धराज जयसिंह ने इसे सुशोभित किया। गुजरात के सोलंकी नरेश शैव थे और सोमनाथ की सभों ने अच्छी भक्ति प्रगट की है। इन लोगों ने और भी अच्छी अच्छी इमारतें बनवाईं, तथा साहित्य की उन्नति की।

सवत् ११११ के लगभग सोलंकी नरेश भीमदेव ने चेदिराज कर्णदेव से मिलकर मालवा के प्रसिद्ध भोजदेव को पराजित किया। इसी समय से सोलंकियों का अधिकार मालवा के कुछ भागों पर हुआ। सिद्धराज सोलंकी ने

सौराष्ट्र के चूड़सम नरेश दूसरे रानोघन को हराया। नोघन का समय संवत ११२४ से ११४५ पर्य्यन्त था। अनन्तर सिद्ध-राज ने मालवा पर आक्रमण किया। उनकी अनुपस्थिति में नोघन पुत्र दूसरे खेंगर ने अन्हिलवाड का फाटक तोड़ डाला और उसे लेजा कर जूनागढ़ में लगवाया। इस अपमान से क्रुद्ध होकर सिद्धराज ने राखेंगर को हराकर जूना-गढ़ पर अधिकार जमाया तथा संवत ११८२ में राखेंगर का बध भी कर डाला। जूनागढ़ पर सोलंकियों का राज्य बहुत थोड़े काल तक रहा। सिद्धराज ने संवत ११६१ में मालवा जीतकर उज्जैन पर अधिसार जमाया। अन्हिलवाड़ राज्य के उत्तरी भाग पर अजमेर के चौहानों का खटका रहता था, किन्तु सोलंकियों ने चौहानों से कोई भारी पराजय नहीं खाई। संवत १२०० में सिद्धराज का देहान्त हुआ। इनके कोई पुत्र न था सो इनके पीछे इनके दूर के वंशधर कुमार-पाल गद्दी पर बैठे। कुमारपाल ने ३० वर्ष राज्य किया। कुमारपाल तथा उनके वंशधरों के समय जैन मत का प्रभाव कुछ बढ़ा। कुमारपाल ने संवत १२१७ में कोंकण पर आक्र-मण किया, किन्तु इसका कोई स्थायी फल न हुआ। सं० १२३३ में दूसरे मूलराज गद्दी पर बैठे। आपके समय सं० १२३५ में शहाबुद्दीन गोरी ने उच्च तथा मुलतान के मार्ग से आकर गुजरात पर आक्रमण किया, किन्तु मूलराज के भाई भीमदेव ने मुसलमानों को करारी पराजय देकर और उनके दल को भारी क्षति पहुंचा कर उसे खदेड दिया। अब भीमदेव अपने भाई स्थान पर राजा भी हो गये। इनका राजत्वकाल सं० १२६८ तक चलता है। इनके समय मालवा नरेश सुभटवर्म्मन ने गुजरात पर आक्रमण करने का विचार

किया, और उसके पुत्र अर्जुनदेव ने गुर्जर देश को नष्ट किया। चन्द कृत रासो में लिखा है कि पृथ्वीराज ने भी भीम को पराजित किया था। इसी समय से गुजराती सोलंकियों का बल मन्द पड गया। यह देख इस भारी राज्य के अधीनस्थ पैत्रिक अधिकार वाले शासकों ने स्वतंत्रता प्राप्त करने के प्रयत्न किये। इससे सोलंकी राज मे और भी कमज़ोरी आई। संवत् १२५१ मे मोहम्मद गोरी ने कुतबुद्दीन को गुजरात भेजा जिसने देश को लूटा। संवत् १२८० में अन्हिलवाड़ राज्य का शासक जयन्तसिंह था। इसका एक दान पत्र उपरोक्त संवत् का मिलता है। ज्ञात पड़ता है कि कुछ काल के लिए जयन्तसिंह ने भीमदेव को राज्यच्युत कर दिया था, किन्तु भीम ने फिरसे इसे हरा कर अपना राज्य स्थापित किया। सोलंकी घराने का अन्त संवत १२९९ या १३०१ में हुआ। इस काल के पूर्व ही ढोलका के वघेल नरेश सोलंकियों का बहुत सा अधिकार पा चुके थे। कुमारपाल के वंशधरों का अन्हिलवाड़ के अतिरिक्त सौराष्ट्र और मालवा के भागों पर भी अधिकार था।

ढोल्का नरेशों का शासन संवत् १२९० से १३५५ पर्य्यन्त रहा। यह लोग मुख्य राजघराने की बिरादरी मे थे। इनका अधिकार कभी भारी न हुआ और शासन भी उत्तरी गुजरात एवं पूर्वी काठियावाड ही पर रहा। इन नरेशों को देवगिरि के यादवों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। पैत्रिक अधिकार वाले राजपूत शासकों ने बहुतायत से विद्रोह किये थे। इसलिए इस काल के राजाओ ने राजपूतों के स्थान पर ब्राह्मण सेनापति और ब्राह्मण प्रान्तीय शासक बहुतायत से नियुक्त किये। राजाओं की भारी बलहीनता होते हुए भी

गुजरात में इस काल व्यापार की अच्छी वृद्धि थी। व्यापारियों ने बहुत से मंदिर भी बनवाये। संवत १३५४ में सम्राट अलाउद्दीन ने अपने साले अलफ़खां तथा मंत्री मलिक नसरत जलेसरी को गुजरात विजयार्थ भेजा। इन लोगों ने दूसरे ही साल परम सुगमता पूर्वक अन्तिम ढोलका नरेश को पराजित करके देश पर अधिकार जमाया। इस प्रकार गुर्जरों का यह प्राचीन हिन्दू राज्य भारतीय घराऊ झगड़ों के कारण मुसलमानों द्वारा एक ही झपेटे में ध्वस्त हो गया। यद्यपि अन्हिलवाड के शासकों ने समय समय पर कई बाहरी प्रान्तों पर अधिकार किया, तथापि उनके शासन में पूरा गुजरात कभी न आया। इन लोगों ने मंदिर बहुतायत से बनवाये और अच्छा धर्म प्रचार किया। इनके कारण देश की सभ्यता तथा व्यापार की वृद्धि हुई। ब्राह्मणो तथा साहित्य का भी अच्छा मान किया गया। मध्य और दक्षिणी गुजरात को लाट देश कहते हैं। अन्हिलवाड के अतिरिक्त लाट में भी कुछ राजकुल रहे हैं। इनका प्रभाव कभी कहने योग्य नहीं हुआ। लाटवाल नरेशो का पृथक अस्तित्व बहुधा दाक्षिणात्य राजाओं के कारण हुआ।

अब सिन्ध देश का इतिहास उठाया जाता है। जिस काल आर्य्य लोग सिन्ध नदी के किनारे बसे थे, तब इसी नदी के सहारे उनका व्यापार सिन्ध देश होकर पूर्वी अफ्रीका और फ़ारस की खाड़ी वाले देशो से होता था। यह संवत् पूर्व लग भग १००० की घटना है। इसके प्रायः ५०० वर्ष पीछे फ़ारस नरेश ने सिन्ध पर अधिकार जमाया। मौर्य्य घराने का अधिकार इस प्रान्त पर भी था। अनन्तर अपालोडोटस और मिनैण्डर ने समय समय पर यहां शासन किया।

यह सब संवत् पूर्व के शासक हैं और इनका कथन यथा स्थान हो चुका है। महाराज हर्ष के समय यहां हूण वंश का शूद्र राजा शासक था। इससे और ब्राह्मण चाच के वंशधरों से देश मुसलमानों ने कैसे लिया इसका भी वर्णन ऊपर हो चुका है। राय नरेशों की राजधानियां अलोर और ब्राह्मणाबाद थीं। जब संवत् ७६९ में चाच के वंशधरों से सिन्ध छीना गया, तब उसी साल मुसलमानों ने आगे बढ़ कर मुलतान पर भी अधिकार जमाया। यहां विजेताओं को भारी कोष हाथ लगा। चाच वंशी विजित दाहिर नरेश की भगिनी के साथ विजयी मोहम्मद ने निकाह कर लिया उसकी दो कन्याओं को अपने स्वामी ख़लीफ़ा के पास भेज दिया। इन बालिकाओं ने मोहम्मद द्वारा अपने पिता के वंश की भारी दुर्गति देखी थी। अतएव इन्होंने ख़लीफ़ा के सामने मोहम्मद पर यह झूठा अभियोग लगाया कि उसने इनका सतीत्व नष्ट किया था। ख़लीफ़ा ने क्रोधान्ध होकर मोहम्मद को सजीव गीले गाय के चमड़े से सिला दिया। इस प्रकार सिन्ध और मुलतान के जीतने वाले मोहम्मद का शरीरान्त हुआ। उसकी यह दुर्गति देखकर इन बालिकाओं को भी पश्चात्ताप हुआ और इन्होंने ख़लीफ़ा से सच्चा हाल कह दिया। यह सुन ख़लीफ़ा ने इनको भी वध दण्ड दिया।

सिन्ध और मुलतान पर अरबी शासन कई शताब्दियों पर्य्यन्त चला। इनके आक्रमणों के प्रभाव से सौराष्ट्र का वल्लभी राज्य संवत् ८२७ के लगभग नष्ट हुआ, किन्तु सौराष्ट्र पर इन्होंने अधिकार न जमाया। गुजरात और भडोंच की गुर्जर रियासतों पर इनके आक्रमणों का क्या फल हुआ सो ऊपर दिखलाया जा चुका है। ख़लीफ़ा बग़दाद स्थानीय

शासकों द्वारा सिन्ध और मुलतान के प्रान्तों पर बहुत काल अधिकार जमाये रहे, किन्तु उनका अधिकार दिनों दिन मन्द पड़ता गया यहां तक कि संम्वत् ६२६ में यह दोनों अरबो स्थानीय शासक ख़लीफ़ा से बिल्कुल स्वतंत्र हो गये। सिन्ध के मुसलमानों की गुर्जरों से शत्रुता रही, किन्तु दाक्षिणात्य राष्ट्रकूट नरेश इनके मित्र थे। राष्ट्रकूटों से मिलकर यह लोग गुर्जरों से प्रायः लड़ते रहे, किन्तु उनको कोई विशेष हानि न पहुंचा सके। इन लोगों के यदाकदा चौहानो से जो युद्ध हुए हैं उनका कथन राजपूताना के इतिहास में है। सिन्ध देश से अरबों को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। सिपाहियों को यह लोग वेतन के स्थान पर भूमि देते थे। राज्य प्रबन्ध बहुत करके देशियों के हाथ में था और उनके धार्मिक मामलो में बहुधा हस्तक्षेप नहीं होता था। ब्राह्मणों के हाथ मे बहुत काम था। कई हिन्दू राजाओं को उमर ने मुसलमान किया था। वे ख़लीफ़ा हुशाम के समय मुसलमानी मत छोड़ कर फिर से हिन्दू मत मे आ गये। खुरासान, सीस्तान और ज़ाबुलिस्तान से व्यापार क़ाफ़िलों द्वारा होता था तथा चीन, लंका और मलाबार से समुद्र मार्ग द्वारा। सम्वत् १०६७ में महमूद ने मुल्तान जीत लिया और सम्वत् १०८१ में मंत्री अबदुल रज़्ज़ाक को वहां का स्थानीय शासक नियत किया। सम्वत् १०८३ में इस शासक ने सिन्ध पर भी अधिकार जमाया। समय पर इन शासकों की बलहीनता देखकर दक्षिणी सिन्ध के सूम्र राजपूतों ने इनकी अधीनता छोड़ कर पूर्वी सिन्ध में स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। इनकी राजधानी तूर हुई। उत्तरी सिन्ध में महमूद के वंशधरों का राज्य बना रहा। गुजरात के विजेता अला-

उद्दीन खिलजी ने तूर को नष्ट करके इस प्रान्त पर अपना अधिकार जमाया। इस प्रकार इन क्षत्रियों का सिन्धी राज्य प्रायः ढाई सौ वर्ष चला। गजनी वालों का सिन्धी अधिकार मोहम्मद गोरी के हाथ आया। गोरी तथा कुतबुद्दीन की ओर से कुवाच नामक प्रान्तीय शासक यहां का प्रबन्ध कर्त्ता रहा। अंतिम सम्राट के पीछे इसने विद्रोह का झंडा खड़ा किया, किन्तु अल्तमश ने इसे पराजित कर दिया। चंगेज़खां हलाकू के दाब से विफल होकर खीवा का अंतिम नरेश जलालुद्दीन सम्वत् १२७८ में सिन्ध आया, किन्तु थोड़े ही दिनों में फ़ारस वापस गया। सिन्ध का शेष वर्णन यथा स्थान होगा।

राजपूताना में इसकाल २१ देशी रियासतें हैं और जिला अजमेर मरवारा अंग्रेज़ों के अधिकार में है। इनमें जैसलमेर, जोधपूर और बीकानेर पश्चिम तथा उत्तर में हैं, शेखावाटी और अलवर उत्तर पूरब में, जयपूर, भरतपूर, धौलपूर, करौली, बूंदी, कोटा और झालावाड़ पूर्व तथा दक्षिण पूर्व में, परतापगढ़, बांसवारा, डूंगरपूर, उदयपूर और सिरोही दक्षिण पश्चिम में तथा अजमेर मरवारा, किशनगढ़, शाहपूर लाव और टोंक के कुछ भाग मध्य में हैं। टोंक के कुछ भाग मध्य भारत में भी हैं। इन रियासतों में से उदयपूर, जोधपूर, जयपूर, अलवर, बीकानेर, कोटा, बूंदी, धौलपूर आदि बड़ी रियासतें हैं।

प्राचीन काल में राजपूताने का कुछ भाग मत्स्य देश कहलाता था। अब वह बहुत करके जयपूर और अलवर में विभक्त है। महाराज रामचन्द्र के समय उनके भाई भरत ने राजपूताने के पुष्कर भाग के तत्कालीन राजा का अन्याय समझ उसे जीत कर पदच्युत कर दिया और अपने पुत्र

पुष्कल अथवा पुष्कर को वहां का राजा बनाया। इन्हींके नाम पर देश का नाम पुष्कर हुआ। महाभारत के समय मत्स्य देश में विराट का राज्य था। अनन्तर मौर्य्य शासन के पीछे यूनानी शासक अपालोडोटस और मिनैण्डर का राज्य यहां हुआ। इनके सिक्के रियासत उदैपूर में पाये गये हैं। मिनैण्डर ने चित्तौर के निकट नागरी उपनाम माध्यमिक नगर को जीता था। रुद्रदामन शक का एक शिला लेख गिरिनार पर मिला है जो सं० २०७ के लगभग का है। उसमें रुद्र-दामन मरुदेश वर्त्तमान मारवाड़ का शासक लिखा है। यहां शकों का राज्य उनके पराजय पर्य्यन्त रहा, विशेपनया दक्षिण और पच्छिम में। अनन्तर इसके भागों पर गुप्तों का राज्य उनके साम्राज्य ध्वस्त होने तक रहा। हर्षवर्द्धन के अधिकार में भी राजपूताने का वृहदंश था। इन सब शासकों का कथन यथास्थान किया जा चुका है। हर्षवर्द्धन के समय राजपूताना के चार मुख्य भाग थे। अर्थात् गुर्जर, बद्र, वैराट और मथुरा। गुर्जर में वर्त्तमान बीकानेर, पच्छिमी रियासतें और शेखावाटी का भाग सम्मिलित थे, बद्र में दक्षिणी और कुछ मध्य प्रान्तीय रियासतें, वैराट में जयपूर, अलवर और टोंक का कुछ भाग तथा मथुरा में भरतपूर, धौलपूर और करौली। कोटा, झालावार और टोंक के कुछ भाग उस काल उज्जैन की रियासत में लगते थे।

हर्षवर्द्धन से महमूद के समय पर्य्यन्त कई राजपूत शक्तियां बाहर से आकर यहां प्रतिष्ठित हुईं। सबसे पहले आने वालों में गहलोत वर्तमान शिशौदिया हैं जो मेवाड़ में बसे। इनका राजपूताने वाला सब से प्राचीन लेख सम्वत्

७०३ का है । इनके थोड़े ही दिन पीछे परिहारों ने आकर जोधपुर के मन्डोर पर अधिकार जमाया । अनन्तर उत्तर से चौहानों और भाटियों का आना हुआ, जो सांभर और जसलमेर में बसे । इससे प्रायः दो सै वर्ष पीछे दक्षिण पच्छिम में पँवारों और सोलंकियों का बल बढ़ा । राजपूताने के वर्त्तमान राज मंडल में पँवार परिहार और सोलंकी सम्मिलित नहीं हैं । चौहानों से भी राजपूताने का आदिम स्थान छूट गया और उनका शासन सिरोही, कोटा और बूंदी में हुआ । सं० ११०६ में यदुवंश करोली का अधिकारी हुआ तथा ११८५ में कछवाह वंश जयपूर का । बनारस और कन्नोज से विमुख होकर राठूरों ने तरहवीं शताब्दी में मारवाड़ का राज्य पाया और झालावाड़ में झाला नरेश सं० १८६५ में शासक हुए । महमूद ग़ज़नवी की सेना राजपूताना मे आयी थी और उसने सोलंकियों को पराजित भी किया था, किन्तु उसका कोई विशेष प्रभाव इस देश पर नहीं पड़ा । मुहम्मद ग़ोरी के समय में चौहानों का गुजराती सोलंकियों और कन्नौजी राठूरो से जो बिगाड़ हुआ उससे यह तीनों जातियां शिथिल हो गईं । मुहम्मद ग़ोरी को अकेले सोलंकियों ने सम्वत् १२३५ में हराया और अकेले चौहानों ने सं० १२४८ में । फिर भी आपसी बिगाड़ से उसी के द्वारा चौहानों तथा राठूरों का सर्वनाश हुआ और सोलंकी भी उसका सामना न कर सके तथा कुतबुद्दीन द्वारा लूटे गये । इसने अजमेर पर सेना जमाई और धीरे धीरे मुसलमानों ने राजपूताना के गुजरात और जमुना वाले दोनों मार्ग अवरुद्ध कर दिये, जिससे प्राचीन राजपून नरेशों को राजपूताना के दुर्गमतर भागों में जाना पड़ा, जहां से वे मुसलमानों के हटाए अद्य

पर्य्यन्त न हटे। अब हम इस प्रान्त के मुख्य २ भागों का इतिहास लिखते हैं।

राजपूताना क्या वरन पूरे भारत में उदयपूर नरेश के समान कुलीन कोई भी क्षत्री नहीं है। इनको महाराणा के अतिरिक्त श्री एकलिङ्ग के दीवान, हिन्दू सूर्य्य, हिन्दू पति आदि की उपाधियां सर्वसम्मति से प्राप्त हैं। इनके राज्य को मेवाड कहते हैं तथा राजधानी के नाम पर वह उदयपूर भी कहलाता है। इनके राज्य की स्थिरता यहां तक है कि महमूद के समय मेवाड़ नरेश का जितने देश पर शासन था प्रायः उतने ही पर अब भी है। खुमानरासा, राजविलास, राजरतनाकर, जयाविलास आदि ग्रंथों मे इस वंश की कथा वर्णित है। आपके पूर्व पुरुष स्वयं महाराजा रामचन्द्र थे। उनके पुत्र लव ने लवकोट उपनाम लाहौर बसाया। इन्हीं के वंश में कनक सेन का होना कहा जाता है जिसने अथवा तत्पुत्र विजयसेन ने सौराष्ट्र उपनाम काठियावाड मे प्रसिद्ध बल्लभी राज्य स्थापित किया। कर्नल टाड इसका समय सम्वत् २०१ लिखते हैं। हम ऊपर देख आये हैं कि बल्लभी राज्य को सं० ५३७ के लगभग तत्कालीन गुप्त नरेश के सेनापति मैत्रक वंशी भट्टार्क ने स्थापित किया था। वास्तव में यह शब्द भटार्क समझ पड़ता है अर्थात् योद्धाओ में सूर्य्य। इससे यह एक प्रकार की उपाधि थी। भट्टार्क का नाम कनक सेन या विजय सेन हो सकता था। संस्कृत में मित्र सूर्य्य को कहते हैं। इस लिए सूर्य्य वंश भी कहा जा सकता है। अतएव मैत्रकवंशी भट्टार्क ही सूर्य्य वंशी कनकसेन हो सकता था। बल्लभी राज्य का पतन सं० ८२७ के लगभग हुआ। इधर सं० ७८४ में वाप्पा रावल को टाड महाशय ने चित्तौर

का शासक माना है। इस वंश के पूर्व पुरुष गोह से बाप्पा पर्य्यन्त कई पीढ़ियां बीत चुकी थीं। इससे गोह अंतिम वल्लभी नरेश का वंशधर नहीं हो सकता था। टाड महाशय ने सं० ५८० में वल्लभी पर मुसलमानों का आक्रमण होना माना है। हम ऊपर देख आये हैं कि सं० ७६६ के पूर्व उनका अधिकार सिन्ध पर भी नहीं हुआ था। इससे केवल इतना कहा जा सकता है कि वल्लभी के सात शिलादित्यों में से किसी के समय इस राज्य पर कोई विपत्ति पड़ी और तब पुष्पावती नाम्नी एक गर्भवती स्त्री ने भाग कर मलिया पहाड़ की एक गुहा में शरण ली। इसी गुहा में उसका गोह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे बीरनगर की कमलावती ब्राह्मणी को सौंप कर वह सती हो गई। इसी गोह के नाम पर समय पर यह वंश गहलोत कहलाया। उदयपूर की पहाड़ी घाटी अहार में रहने से यह लोग अहार्य्य भी कहलाए। पच्छिमी पहाड़ों के शिशौदा ग्राम में रहने से इन्होंने शिशौदिया उपाधि पायी। यही इनकी सर्व प्रधान उपाधि है। चित्तौर छोड़कर उदयपूर जाने में यह लोग रानावत्त कहलाए किन्तु यह उपाधि बहुत प्रचलित न हुई।

सती होते समय पुष्पावती ने कमलावती से प्रार्थना की थी कि बालक गोह को ब्राह्मण कुमारों की भांति रखना किन्तु इसका विवाह क्षत्री कुमारिका से करना। गोह को ब्राह्मणोचित आचार सिखलाने में कमलावती के सारे प्रयत्न व्यर्थ हुए। यह राजपूत कुमारों के साथ रहता तथा पक्षियों, वन्य जन्तुओं आदि का शिकार खेला करता था। उस काल ईडर में मंडलक भील का राज्य था। भील गोह से बहुत प्रसन्न हुए। अन्त में उन्होंने इसे अपना राजा चुन लिया

और तत्कालीन भील नरेश को मार कर यह राजा हो गये। गौह तथा उनके वंशधरों ने आठ पीढ़ियों तक इस पहाड़ी देश का राज्य किया। इन्होंने कमलावती के वंशधरों को अपना पुरोहित बनाया। अन्तिम नरेश नागादित्य से रुष्ट होकर भीलों ने उसका वध कर डाला और राज्य छीन लिया। उस काल नागादित्य का बेटा बप्पा केवल तीन वर्ष का था। गौह की पालिका कमलावतीं के वंशधरों ने एक बार फिर इस प्राचीन घराने की रक्षा की। वे लोग बाप्पा को भांडेर के दुर्ग में ले आए जहां एक यदुवंशी भील ने इस बालक की रक्षा की। गजेटियर मे गौहादित्य और बाप्पा के बीच भोगादित्य (या भोज) महेन्द्रा जी प्रथम, नागादित्य, शिलादित्य (सं० ७०३ वाले जा बल्लभी के समझ पडते हैं) अपराजित, महेन्द्रा जी द्वितीय और कालभोज के भी नाम आये हैं तथा लिखा है कि अन्तिम दोनों में से ही कोई एक बाप्पा कहलाता था। बाल वय में इधर उधर फिरते और आपत्तियों से बचते हुए बाप्पा चित्तौर पहुंचे जहां इनका मामा मोरिवंश का पँवार राजा मानसिंह शासक था। उसने बाप्पा का भारी सत्कार किया। युद्ध करने के लिए उसके बहुत से जागीरदार थे। यह लोग बाप्पा का मान देखकर इनसे तथा राजा से कुढ़ने लगे।

इसी समय सिन्ध के मुसलमानो ने चित्तौर पर पहला आक्रमण किया। इन लोगों के अधिकार में उस प्रान्त के निकट का ग़ज़नी स्थान भी था जो प्रसिद्ध ग़ज़नी से पृथक था। यह आक्रमण देख बाप्पा से ईर्ष्या के कारण कोई जागीरदार सेनापति नही हुआ, किन्तु बाप्पा ने सेना नायक होकर

सिन्ध के अरबी मुसलमानों को पराजित किया। अनन्तर आगे बढ़कर गज़नी पर आपने अपने मन का शासक थापा। कहते हैं कि चढ़ाई करने वाले मुसलमान सेनापति की कन्या से बाप्पा ने विवाह भी किया। जिन जागीरदारों ने बाप्पा से ईर्ष्या प्रकट की थी उन्होंने इसकी वीरता देख कर अब पूरा साथ दिया। फल यह हुआ कि अपने मामा का राज्य छीन कर बाप्पा वहां के शासक हो गये। इसी समय उनको राजगुरु चक्कवै और हिन्दू सूर्य की उपाधियां मिली। टाड महाशय के अनुसार यह घटना सं० ७८४ की है और गज़ेटियर के अनुसार सं० ७९० की। अपको प्रायः बाप्पा रावल कहा गया है। कहते हैं कि आपने सैकड़ों हिन्दू और मुसलमान स्त्रियों के साथ विवाह किया जिनसे समय पर आपके अट्ठानवे हिन्दू और एक सौ तीस मुसल्मान पुत्र उत्पन्न हुए। इनके मुसलमान पुत्रों को नौशेरा पठान कहते हैं और हिन्दू पुत्रों को अग्नि उपासी सूर्यवंशी। राज प्राप्त करने के समय आपकी अवस्था १५ वर्ष की थी और बहुत दिन राज्य करने के पीछे अप नेएक हिन्दू पुत्र का चित्तौर का राज्य देकर आप काफ़िरस्तान चले गये और बहुत दिन तक कन्दहार काश्मीर, यराक, ईरान, तूरान आदि में रहते रहे। यह कथा डेलवारे के इतिहास में वर्णित है। मरने के समय आपकी अवस्था १०० वर्ष की थी। आपके हिन्दू पुत्र शव का दाह संस्कार करना चाहते थे और मुसलमान पुत्रों की इच्छा उसे समाधि देने की थी। कुछ देर तक दोनों में झगड़ा होता रहा और अन्त में जब कफ़न उठाया गया तब शव के स्थान पर असंख्य कमल पुष्प निकले जो झील में बो दिये गये। ऐसी ही कथा कबीरदास जी तथा फ़ारसी नरेश नौशेरवाँ के

विषय में प्रसिद्ध है। किसी ने शव उठाकर छिपे छिपे पुष्प रख दिये होंगे।

वाप्पा के पीछे मेवाड़ में ग्यारह सौ वर्ष के भीतर इनके वंशज ५५ राजा हुए। वाप्पा ने सं० ८१० या ८२० में चित्तौर छोड़ा था। इनके पीछे इनके वंशधर शक्ति कुमार का सं० १०२४ में होना ऐतपुर के लेख से प्रकट है। वाप्पा और शक्ति कुमार के बीच में टाड के अनुसार अपराजित, खलभोज, खुमान, भर्तृभट, सिंहजी, उल्लुट, नरवाहन और सलवाहन हुए हैं। पर जान पड़ता है कि टाड महाशय से ऐतपुर के लेख पढ़ने में कुछ भ्रम हो गया था और वास्तव में उनके कहे हुए राजाओं के अतिरिक्त इसी समय मत्तत, दूसरे खुमान, महायक, तीसरे खुमान, और दूसरे भर्तृभट नाम और भी शासक हुए हैं। शक्ति कुमार के पीछे अम्बापुस्सव, नरवर्म और जसोवर्म के नाम आते हैं। अपराजित चित्तौर में होने के कारण बड़े भाई असिल के होते हुए भी चित्तौर के रावल बनाये गये। सं० ७१८ के एक लेख में भी अपराजित का नाम मिलता है। सम्भव है कि ये दूसरे हों। असिल ने सौराष्ट्र मे एक राज्य प्राप्त किया जहाँ इनके वंशधर असल गहलोत कहलाए। टाड महाशय लिखते हैं कि उनको नगद्दा की घाटी में एक लेख मिला था जिसमे खलभोज के वीरत्व की प्रशंसा थी। खलभोज के पीछे सं० ८६८ से सं० ८९२ पर्यन्त खुमान का राज्य रहा। इनके समय महमूद नामक किसी मुसल्मान सेनापति ने देश पर आक्रमण किया। टाड का मत है कि इसे महमून समझना चाहिये। इस काल खुमान ने बहुत से नरेशों को सहायतार्थ बुलाया। मुसल्मानों ने करारी पराजय पायी और इस काल से प्रायः

दो सौ वर्षों के लिए मुसल्मानी आक्रमण से भारत को छुटकारा मिल गया। इस कथा का सविस्तर वर्णन खुमान रासे नामक ग्रंथ में किया गया है।

खुमान के सहायक शासकों के नाम रासे में दिये हुए हैं। कहते हैं कि ग़ज़नी से गहलोत आए, असेर से तक, नद्लोए से चौहान, राहिरगढ़ से चालुक्य, सेतबन्दर से निखकेरा, मंडोर से खेरवि, मगरोल से मकवाना, जेतगढ़ से जोरिया, तारागढ़ से रेर, नरवर से कछुवाह, साँचोर से कालुन, जूयनगढ़ से दुसानो, अजमेर से गोर, लुहादुरगढ़ से चुन्दाना, कसूदी से दोर, दिल्ली से तॉवर, पातन से चौर, झालौर से सोनगिरि, सिरोही से देवरा, गागारोन से खीची, जूनागढ से जादो, पतरी से, झाला, कन्नौज से राठूर, चुटियाला से वल्ला, मेरुनगढ़ से गोहिल, जैसलगढ़ से भट्टी, लाहौर से बूसा, रोनेजा से साँकला, खरलीगढ़ से सेहुट, मन्दलगढ़ से नकुम्प, राजोर से वडगूजर, कर्णगढ़ से चन्देल, सोकुरसे सीकुरवाल, उमरगढ़ से जेठवा, पल्ली से विरगोंटा, खन्तुरगढ़ से जारेजा, जिरगा से खिरवर, और काशमीर से परिहार। उस काल कैरुचे को भी ग़ज़नी कहते थे और साही के पास एक और ग़ज़नी थी। खेरवि पँवारों की एक शाखा समझ पडती है। कसौदी अथवा दसौंदी का कन्नौज के निकट होना लिखा है। टाड के अनुसार सिरोही के देवरा, गागरौन के खीची तथा जैसलगढ़ के भट्टी इस युद्ध मे नहीं हो सकते थे। उस काल सिरोही और गागरौन पँवारों के अधिकार मे थे और जैसलगढ़ बनाया ही नहीं गया था। देवरा, खीची और भट्टी युद्ध में शामिल हुए होंगे, किन्तु उस काल वे चोटुन सिन्धसागर और तिम्रोत में रहते थे। अजमेर तबतक बसा न था।

कन्नौज में राठूरों का राज्य न था न काशमीर मे पारहारों का। इन वंशों के सेनापति चाहे आए हों।

इस युद्ध में पाँच महीने में ७१ लड़ाइयाँ हुई। अन्त में लाहौर नरेश ने मुसलमानों को पेशावर तक हराया और तब सन्धि हो गयी। इसी समय से हिन्दुओं और घक्करो में मेल हो गया। हिन्दुओं ने इन्हें सिन्ध नदी के पच्छिम सारे कोहिस्तान मे इस नियम से प्रतिष्ठित किया कि वे शत्रुओं से घाटी की रक्षा करें। ख़ैबर का क़िला भी इसी रक्षा के लिए बनाया गया। खुमान ने २४ लडाइयों में मुसलमानों को पराजित किया। कुछ काल मे कुछ ब्राह्मणों की सलाह से खुमान ने गद्दी छोड़ कर अपने पुत्र जोगराज को राजा बनाया, किन्तु थोड़े ही दिनों में उसे उतार कर वह स्वयं शासक हो गया और सलाह देने वाले ब्राह्मणों का उसने वध किया। अनन्तर बहुत से ब्राह्मणों को उसने देश से निकाल दिया। अन्त में खुमान की क्रूरताओ से ऊब कर इसी के पुत्र मङ्गल ने इसका वध किया। किन्तु इस पितृहन्ता को सरदारों ने गद्दी न दी। तब उत्तरी मरुभूमि में जाकर यह लोडुरवा का शासक हुआ जहाँ मङ्गलिया गहलौतो का वंश चला।

खुमान के पीछे भृर्तृभट्ट उपनाम भट्टो राजा हुआ। अपने पिता के समान यह भी बड़ा प्रतापी हुआ। इसने राज्य बहुत बढ़ाया और अपने १३ पुत्रो को मालवा और गुजरात के विविध प्रान्तो का शासक बनाया। इसके वंशधर भटेवरा गहलोत कहलाते हैं। इसके पीछे चित्तौर नरेशों की अजमेर के चौहानों से समय समय पर सन्धि विग्रह दोनों होते रहे। सं० ११६४ का कडमाल वाला ताम्र पत्र इस वंश के राजा विजयसिंह को महाराजाधिराज कहता है और उसका

राज्य स्थान नागदा बतलाता है। तेवर तथा भेरा घाट के लेखों से प्रकट है कि इसने मालवा के प्रमार उदयादित्य की पुत्री श्यामल देवी से विवाह किया और अपनी पुत्री अल्हण देवी को चेदि के कलचुरि गोकरण से विवाहा। इन लेखों के सम्वत १२०८ और १२०२ हैं। चित्तौर के रावल तेजसी ने मुसल्मानों के प्रतिकूल बीसलदेव चौहान की सहायता की। भट्टो से समरसिंह पर्यन्त १५ चित्तौर नरेशों का कथन इतने ही में समाप्त किया जाता है।

समरसी अथवा समरसिंह का जन्म सं० १२०६ में हुआ था। आपका विवाह दिल्ली के प्रसिद्ध सम्राट पृथ्वीराज की बहन पृथा कुंवरि से हुआ था। इसी सम्बन्ध के कारण इन दोनों नरेशों में सदैव प्रगाढ़ मित्रता रही। आपको गुजरात नरेश भीम की भी बहन कर्मदेवि ब्याही थी। उस काल अन्हिल-वाड़ में भोला भीम का, अबू में जैत पँवार का, मन्डोर में नाहर राय का, बनारस और कन्नौज में जयचंद का और दिल्ली में पृथ्वीराज का शासन था। लाहोर मुसल्मानों के अधिकार में था। लाहौर के समीप वाली सीमा पर दिल्ली की ओर से चन्द्रपुण्डीर अधीन शासक था। भाग्यवश पृथ्वी राज को नागौर में एक भारी कोष मिला जिसमें सत्तर लाख अशर्फ़ी थीं। कन्नौज और अन्हिलवाड़े के नरेशों ने इस कोष प्राप्ति में बाधा डालने के विचार से चौहान राज्य पर आक्र-मण किया। इस अवसर पर पृथ्वीराज ने चण्डपुण्डीर को भेज कर समरसिंह को बुला भेजा। चन्दपुण्डीर ने समरसिंह को कमल के बीजों का माला पहिने और जटा रखाये हुए पाया तथा योगीन्द्र कह कर उनका अभिनन्दन किया। समरसिंह सेना लेकर चले। इनका गुजरात के सोलंकी

नरेश से सम्बन्ध था । इसलिए उनसे न लड़कर आप कन्नौज नरेश से युद्धोन्मुख हुए । इन्होंने युक्ति के साथ राठूरों से कई छोटे छोटे युद्ध किये । तब तक पृथ्वीराज ने उधर गुजरात नरेश के पराजित कर दिया । कहते हैं कि इसी अवसर पर शिहाबुद्दीन गोरी ने भी आक्रमण किया था । पृथ्वीराज और समरसी की सेनाओं ने मिलकर सं० १२४६ में उसे भी पराजित करके बन्दी कर लिया । अनन्तर दिल्ली नरेश ने शिहाबुद्दीन को बन्धन मुक्त करके दिल्ली में प्रवेश किया । समरसी ने उस भारी कोष में से स्वयं कुछ न लिया ।

दूसरे ही साल शिहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने फिर भारत पर आक्रमण किया । इस बीच पृथ्वीराज ने जयचंद से युद्ध करने में तथा विवाहादि के सम्बन्ध में राजकाज पर विशेष ध्यान न दिया था, जिससे इनका बल बहुत क्षीण हो गया था । चौहानराज ने समरसिंह को फिर बुलवाया । आपने चित्तौर का राज्य भार अपने छोटे तथा प्रिय पुत्र कर्ण को सौंप कर अपने बड़े पुत्र कल्याण के साथ ससैन दिल्ली को प्रस्थान किया । पृथ्वीराज ने दिल्ली से ७ मील आगे बढ़कर इनकी अगवानी की । समरसिंह के पहुँचने से दिल्ली में बड़ा आनन्द मङ्गल मनाया गया । आप वीर, धीर, समरपटु, बुद्धिमान, मंत्र कुशल, धार्मिक, सभ्य, प्रजाप्रिय और चौहानों के आदर पात्र थे । युद्ध के शकुन आपसे अच्छा कोई नहीं समझता था । बरछी के युद्ध, अश्वारोहण, तथा सैन्य संचालन में आप अद्वितीय थे । शासन प्रणाली मे आप खुमान की पद्धति पर चलते थे । पृथ्वीराज की सेना संबन्धी अकर्मण्यता पर आपने उन्हें बहुत समझाया और फटकारा । अनन्तर चौहान और शीशौदिया दोनों मिलकर मोहम्मद

गोरी के सम्मुख उपस्थित हुए। गुजरात के सोलंकियों तथा बनारस के राठ़ौरों ने घराऊ झगड़ों के कारण पृथ्वीराज का साथ न दिया, यद्यपि इसी भूल से थोड़े ही दिनों में उनकी भी दुर्गति हुई। कगर पर तीन दिन तक भारी युद्ध हुआ। अन्त में मुसलमानी हयदल की प्रबलता से हिन्दुओं के पैर उसी भांति उखड़ गये जैसे कि सिकन्दरी युद्ध में उखड़े थे। समरसिंह सपुत्र मारे गये और पृथ्वीराज बन्दी हुए। चित्तौर के तेरह हज़ार वीर स्वामिलोन की लाज रख कर उसी खेत में काम आये।

रावल समरसिंह का कथन छोड़ने के पूर्व इनका समय निरूपण आवश्यक समझ पड़ता है। इतना निश्चय है कि इनके पीछे कुछ दूर तक टाड का इतिहास अशुद्ध है। प्रश्न यह है कि क्या वह अशुद्धि रावल समरसिंह के विषय में भी तो नहीं है? एक समरसिंह के समय सं० १३३०, १३३१ व १३४२ से चल कर सं० १३५६ तक मान्य लेखों में मिले हैं। तेजसिंह उनके पिता थे और जैतसिंह पितामह। इन दोनों के भी समय समरसिंह के उपरोक्त समयों के अनुसार होने से उन्हें पुष्ट करते हैं। अतएव इस काल समरसिंह का होना सिद्ध है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या इन लेखों के कारण इससे प्रायः १० वर्ष पूर्व महाराजा पृथ्वीराज के समय किसी समरसिंह का होना असम्भव है? रायबहादुर पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा को महाराणा कुम्भकर्ण के समय का लिंग माहात्म्य नामक एक ग्रंथ मिला है जिसमें करणसिंह से समरसिंह पर्यन्त वंशावली यों है:—करणसिंह, क्षेमसिंह, सामंतसिंह, कुमार सिंह, मथन सिंह, पद्म सिंह, जैत सिंह, तेज सिंह,

समर सिंह और रतन सिह। रतन सिंह के समय अलाउद्दीन ने चित्तौर पर घेरा डाल कर उसे पराजित किया था। गज़ेटियर में जहाँ यह वर्णन है वहाँ ऐसा नहीं लिखा हैं कि इस लेख के अनुसार करण सिंह का पिता कौन था। डफ़ महाशय ने क्षेम सिंह का वर्णन किया है और उनके पिता का नाम लिखकर उनके पहले विक्रम सिंह को शासक लिखा है। इन लोगों के अनुसार भी करण सिंह का समय लगभग पृथ्वीराज के ही समय के आता है। इस प्रकार रावल समरसिंह का करण सिंह का पिता एवं पृथ्वीराज का समकालीन होना असम्भव नही है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के खोजे हुए सम्वत १२२६ तथा १२३५ के दो हिन्दी लेखों के अवतरण हमने अपने "मिश्र बंधु विनोद" (हिन्दी भाषा का इतिहास) के पृष्ठ २२३, २२४ और २२५ पर दिये हैं। उन से समरसिंह का रावल, चित्तौर नरेश, तथा पृथ्वीराज का समकालीन होना सिद्ध है। इसलिए टाड के भी कथन इस विषय पर असिद्ध नहीं हैं। यदि एकलिंग माहात्म्य में करण सिंह के पिता का नाम कुछ और भी लिखा हो तो समरसिंह उनका उपनाम या उपाधि मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। अतएव इस वंश में दो समरसिंह थे ऐसा माना जावेगा। ओझा जी ने हमारे पूंछने पर एक भारी पत्र लिख भेजने की कृपा की है जिसमें यह भी लिखा है कि नागरी प्रचारिणी सभा के उपर्युक्त लेख जाली हैं और यह जाल हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक एवं चन्द कृत रासो के नामी ज्ञाता एक स्वर्गीय भद्र पुरुष का रचा हुआ है तथा डूंगरपुर की ख्याति में वहाँ के समरसी का ब्याह पृथाकुंवरि से होना लिखा है। हमने इस मामले पर भली भांति विचार और

कुछ खोज भी किया है और हम उक्त लेखों को जाली मानने के लिए तैयार नहीं हैं। बात यह है कि इस काल का डूंगरपुर वाला इतिहास स्वयं अनिश्चित है, जो बात छिपी नहीं है। कुछ लोग डूंगरपुर नरेश को करणसिंह के पुत्र महप का वंशधर मानते हैं और कुछ चित्तौर के राणा रतनसिंह का। अतएव केवल डूंगरपुर की ख्याति के आधार पर टाड का कथन तथा नागरी प्रचारिणी सभा के खोजे हुए प्राचीन लेख अशुद्ध नहीं माने जा सकते, एवं हम जल्दी ऐसा विश्वास कदापि नहीं कर सकते कि उक्त लेखक जी जैसा एक भद्र पुरुष ने जाल बनाने का सा गर्हित कर्म किया होगा।

समरसिंह के पीछे उनका पुत्र कर्ण गद्दी पर बैठा। वह उस काल वयस्क न था, इसलिए अन्हिल्वाड़पत्तन की सोलंकी राजकुमारी कर्मदेवी ने अपने पुत्र कर्ण के वयस्क होने पर्य्यन्त राज्य भार संभाला। समरसिंह का एक पुत्र नेपाल में जाकर गोरखाओं का नेता हुआ। दिल्ली और अजमेर में विजय पाने के पीछे मुसल्मानों ने कुतुबुद्दीन की अध्यक्षता में एक सेना चित्तौर भेजी। यह देख राजमाता कर्मदेवी ने अपने राजपूतों तथा अनुयायी नरेशों का एक भारी दल एकत्रित किया। इस दल में ९ राजे तथा ११ रावत भी सम्मिलित थे। सेना के साथ स्वयं राज माता भी युद्ध क्षेत्र में पहुंचीं। अम्बर के निकट मुसल्मानी सेना को पूर्ण पराजय देकर इस वीर भारत महिला ने चित्तौर की स्वतंत्रता स्थापित रक्खी। करणसिंह के पीछे इस वंश का राज्य दो शाखाओं में बँट गया जिसका वर्णन यथास्थान किया जायगा।

अब चौहानों तथा अजमेर का इतिहास उठाया जाता है। चार अग्निवंशियों में चौहान सब से पिछले हैं, किन्तु

प्रधानता में किसी से कम नहीं रहे हैं। यह सामवेदी, सोम-वंशी, माध्वन्दनी शाखावाले वच्छ गोत्री क्षत्री हैं। कहते हैं कि शतपति चौहान ने मकावती पुरी प्राप्त की और यहां से महेश्वर पर्य्यन्त नर्मदा के किनारे इन लोगों का पहिला राज्य स्थापित हुआ। वहां से फैल कर समय पर इन लोगों का मन्डो, असेर, गोलकुण्डा और कोंकण पर अधिकार हुआ। उत्तर में गंगोत्री तक यह लोग फैले। मकौती नगरी को गढ मण्डला भी कहते हैं। चौहानों के अधिकार मे ५२ दुर्गों का होना कहा जाता है। राजपूताना के ऐतिहासिक ग्रंथों तथा टाड राजस्थान में इनकी वंशावली निम्नानुसार हैः—

अन्हल—सुवाच—मल्लन—गुलुनसूर—अजयपाल—ढोला राय—मानिकराय—हर्षराज—बीरबीलनदेव—बीसलदेव—सारंगदेव—आना—जयपाल (हर्षपाल भाई)—अजयदेव या आंनदेव—सोमेश्वर—पृथ्वीराज (चर्म हरदेव भाई)-रैनसी। चाहिरदेव के पुत्र विजयराज हुए और उनके लकुनसी। विजयराज को पृथ्वीराज ने गोद लिया था। टाड महाशय अजयपाल का समय सं० २०२ मानते हैं, मानिकराय का सम्वत् ७४१, हर्षराज का सं० ८२७ और बीसलदेव का सं० १०६६ से ११३० तक। उपरोक्त वंशावली में प्रत्येक नाम के पीछे उसके पुत्र ही का नाम नही है वरन् किसी भी मुख्य वंशधर का है, चाहे कितनी ही पीढ़ी दूर वह क्यों न हो। मानिकराय के पुत्र का नाम टाड अनुराज लिखते हैं। अजय-पाल अजमेर के बसानेवाले कहे गये हैं। उधर चित्तौर में एक शिला लेख मिला है जिससे सिद्ध होता है कि अजय के पुत्र आना सं०. ११५० में जीवित थे। बीसलदेव इन्हीं आना के पुत्र कहे गये हैं, जिनके पौत्र पृथ्वीराज थे। स्मिथ

महाशय ने काश्मीर के एक ग्रंथ के आधार पर पृथ्वीराज को वीसलदेव का भतीजा कहा है चित्तौरी शिला लेख के सामने चारणों अथवा काश्मीरी ग्रंथ का प्रमाण नहीं माना जा सकता। हम चारणों द्वारा कथित इतिहास के केवल उस लेख को प्रमाणनीय मानेंगे जो शिला लेख के प्रतिकूल नहीं पड़ता।

अजमेर के चौहानों का वंश (अन्य प्रकार से कथित)

संवत्	नम्बर	नाम	किसका पुत्र	विवरण
	(१)	सामन्तराज		
	(२)	जयराज	नं० १	
	(३)	विग्रहराज प्रथम	नं० २	
	(४)	चन्द्रराज प्रथम	नं० ३	
	(५)	गोपेन्द्रराज	नं० ३	
	(६)	दुर्लभ प्रथम	नं० ४	
	(७)	चन्द्रराज द्वितीय	नं० ६	
	(८)	गोवक या गुवक	नं० ७	
	(९)	चन्दन	नं० ८	
	(१०)	वाक्पति प्रथम	नं० ९	
१००७	(११)	सिंहराज	नं० १०	
१०२१	(१२)	विग्रहराज द्वितीय	नं० ११	
	(१३)	दुर्लभ द्वितीय	नं० ११	
	(१४)	गोविन्द	नं० १३	
	(१५)	वाक्पति द्वितीय	नं० १४	
१०८७	(१६)	वीर्यराम	नं० १५	
११४२	(१७)	दुर्लभ तीसरा	नं० १६	

संवत्	नम्बर	नाम	किसकापुत्र	विवरण
	(१८)	विग्रहराज तृतीय	नं० १६	
	(१६)	पृथ्वीराज प्रथम	नं० १८	
११८७	(२०)	अजयराज या सल्हण	नं० १६	
१२०७	(२१)	अरुणराज	नं० २०	
	(२२)	विग्रहराज चतुर्थ	नं० २१	
१२२३	(२३)	पृथिवी भट	नं० २१ का पौत्र	
	(२४)	सोमेश्वर	नं० २१	गुजरात की राजकुमारी कांचन देवी का पुत्र।
१२३५	(२५)	पृथ्वीराज द्वितीय	नं० २४	

(डफ़ के आधार पर)

सम्वत् ८०० के लगभग रूहेलखंड के अहिच्छत्र पुर से आकर चौहान लोग राजपूताना के सांभर स्थान में बसे। उनके अधिकार में अजमेर का प्रान्त था यद्यपि यह शहर तबतक बसा न था। सिन्ध के मुसलमानों ने उस काल सांभर पर आक्रमण किया और चौहानों का नेता ढोलाराय मारा गया। उसका पुत्र लोट ७ साल का था। वह युद्ध के समय कोट के कगूंरों पर खेल रहा था। अचानक उसके भी एक बाण लग गया जिससे उसका देहान्त हो गया। चौहान इस बच्चे को लोटपुत्र कहकर देवता की भांति इसकी पूजा करते हैं। इसके कड़े भी पूजे जाते हैं और कोई चौहान बच्चा कड़े नहीं पहिनता। चारणों ने लिखा है कि "चौहान वंशोद्भव ढोलाराय के घरका युवराज लोटदेव सोमवार

जेठ द्वादशी को शिव की आज्ञा से स्वर्ग को चला गया"।
लोटदेव के चर्चा मानिक राय सांभर छोड़ कर हट गये किन्तु कुछ दिनों में वापस आकर उन्होंने फिर उसपर अधिकार जमाया। मानिकराय चौहान दल के सर्वप्रधान संस्थापक थे। आपका वंश बहुत बड़ा है जिसमें खीची, भदौरिया आदि की संज्ञा है। मानिकराय से वीसलदेव पर्यन्त ग्यारह राजाओं का होना कहा गया है। इनमें हर्षराज की प्रधानता है जिनका राजत्वकाल सं० ८१२ से ८२७ पर्य्यन्त है। आपका राज्य अर्वली पहाड़ से आबू तक था और इधर चम्बल के पूर्व तक। आपने मुसलमानों से बहुत युद्ध कर के अरिमर्दन की उपाधि पाई। इनके पीछे दुजगुन देव राजा हुए, जिनका शासन भटनेर तक फैला। आपने युद्ध में नसीरुद्दीन को बारह सौ घोड़ों समेत पकड़ लिया जिससे आपको सुलतान ग्रह की उपाधि मिली। बच्छराज के पुत्र गोगा चौहान के अधिकार में सतलज से हिरयाना तक पूरा जंगल देश था। आपकी राजधानी मिहरा उपनाम गोगा की मैरो थी। यह सतलज के किनारे थी। लिखा है कि गजलीवन्द के राक्षसों से लड़कर ४५ पुत्रों तथा ६० भतीजो सहित गोगा मारे गये। टाड का विचार है कि यह युद्ध महमूद ग़ज़नवी से हुआ होगा।

सम्वत् ११५० के लगभग अज उपनाम अजय राज ने अजमेर का किला बनाकर शहर बसाया। अजमेर इन्द्रकोट पहाड़ की घाटी में है। क़िले का नाम गढ़बीटली रक्खा गया। वृद्धावस्था में राज्य छोड़ कर अज सन्त हो गये और अजमेर से १० मील पच्छिम रहने लगे जहां इनका शरीर छूटा। आपके पुत्र आना सम्वत् १२०७ पर्य्यन्त जीवित थे।

एक भारी बांध बंधाकर आपने प्रसिद्ध आना सागर तालाब बनवाया। इस काल पर्य्यन्त चौहान लोग दिल्ली के तोंवर नरेश के कुछ न कुछ अधीन समझे जाते थे। यह अधीनता ४०, ५० वर्षों से चली आती थी। बीसलदेव उपनाम तृतीय विग्रहराज ने सम्वत् १२०८ में तोवरों को वह करारी पराजय दी कि यह अधीनता लुप्त हो गई और स्वयं तोंवर चौहानों से दब गए। आपने भारतीय राजमंडल को एक मत करके महमूद वंशी मुसलमानों को करारी पराजय दी। कहते हैं कि इस दल में धार के उदयादित्य, चित्तौर के तेजसी तथा कई अन्य नरेश सम्मिलित थे। महमूद के चौथे उत्तराधिकारी मौदूद का उत्तरी राजपूताना से निकाला जाना दिल्ली के स्तम्भ में लिखा है। यह युद्ध बीसलदेव के संग्राम से पृथक समझा जाता है। आपके पुत्र सोमेश्वर का विवाह दिल्ली नरेश अनङ्गपाल की कन्या रूकाबाई से हुआ। आपके दूसरे पुत्र अनुराज के वंशधर बूंदी के हाड़ा कहे जाते हैं। बीसलदेव के विषय सं० १२२० का अन्तिम लेख मिला है, जिससे प्रकट है कि उस काल वे जीवित थे। अनङ्गपाल के पीछे पृथ्वीराज ने दिल्ली का भी राज्य पाया। वहां आपकी ओर से आपके भाई गोविन्दराय रहा करते थे। इस प्रकार दिल्ली और अजमेर के दो राज्य आपके शासनाधीन हुए। आपका वर्णन चन्द्रकृत रासो में बड़े विस्तार के साथ मिलता है। बीसलदेव के पीछे उनके पुत्र सोमेश्वर अजमेर के स्वामी होकर सं० १२२६ पर्य्यन्त राज्य करते रहे और तब इनके पुत्र पृथ्वीराज गद्दी पर बैठे। किन्तु इस ग्रन्थ का ऐतिहासिक मूल्य असंदिग्ध नहीं है। उससे प्रकट होता है कि पृथ्वीराज शृङ्गार और वीर दोनों रसों में पटु थे। आपने गुजरात के

भीम नरेश को हरा कर उसकी कन्या से विवाह किया तथा सं० १२३२ में काशी और कन्नौज के नरेश जयचन्द की भी कन्या का हरण किया। सं० १२३५ में आपने बुन्देलखंड के चन्देल नरेश परमाल को पददलित किया। काशी और कन्नौज के राजा जयचन्द एक तो इनके द्वारा दिल्ली पाने से ही अप्रसन्न थे, दूसरे इस कन्याहरण के अपमान से और भी क्रुद्ध हो गए। फल यह हुआ कि उन्होंने मोहम्मद गोरी के प्रतिकूल पृथ्वीराज की सहायता न की जिससे एक युद्ध में तो हरा कर पृथ्वीराज ने उसे बन्दी कर लिया किन्तु दूसरे में आप स्वयं बन्दी हो गए तथा आपके भाई रायगोविन्द मारे गए। इस दूसरे युद्ध के पूर्व पृथ्वीराज ने सं० १२४६ में नगर हिन्दा को घेर कर ज़ियाउद्दीन से उसे छीन लिया था। इसी बात पर रुष्ट होकर शिहाबुद्दीन ने इन्हें हराया। अनन्तर पृथ्वीराज का भी सं० १२५० में वध हुआ और इनका पुत्र रैनसी दिल्ली का दुर्ग बचाने में मुसल्मानों द्वारा मारा गया। मुसल्मानों को प्रचुर धन देकर चौहानों ने कुछ महीनों तक दिल्ली दुर्ग पर अधिकार बनाये रक्खा किन्तु फिर कुतबुद्दीन ने दिल्ली दुर्ग पर भी अधिकार जमाया। अब दिल्ली और अजमेर दोनों पर मुसल्मानों का अधिकार हुआ। कुछ दिन पृथ्वीराज का बेटा मुसल्मानों की ओर से वहां का भी गवर्नर रहा किन्तु थोड़े ही दिनों में बिगाड़ हो गया और अजमेर में हिन्दुओं का विकराल वध किया गया। इस प्रकार चौहानों की दिल्ली और अजमेर वाली मुख्य शाखा नष्टप्राय हो गयी। इस घराने का राज्य अब केवल नीमरान में रह गया है। वीसलदेव के अन्य वंशधरों का राज्य कोटा और बूंदी में अब भी है।

जैसलमेर की रियासत यद्यपि छोटी है, तथापि इसका इतिहास बड़ा मनोरंजक है। यहां के नरेश स्वयं श्रीकृष्ण-चन्द्र के वंशधर हैं। इनको भट्टी यादव कहते हैं। जब भग-वान श्रीकृष्णचन्द्र के अन्तिम समय यादवों का विनाश हुआ, तब आपके पुत्र प्रद्युम्न के पूत्र अनिरुद्ध के आत्मज वज्र को ले जाकर अर्जुन ने इन्द्रप्रस्थ का राज्य दिया। समय पर इन्द्र-प्रस्थ छोड़ आप मथुरा के शासक हो गये जहां इनके वंशधरो का राज्य कई पीढ़ी चल कर आदिम कलिकाल में गौतम बुद्ध के पहले नष्ट हो गया। आपके नव और खिर नामक दा पुत्र थे। नव ने मथुरा का राज्य पाया और खिर द्वारिका को चले आए। खिर के झारेजा और जदुभान नामक दो पुत्र हुए। जदुभान को अपने राजा के मरने पर विहरा की प्रजा ने उनका उत्तराधिकारी चुना। समय पर उसका नाम यदुकीडांग हुआ। उधर श्रीकृष्णचन्द्र के विपक्षियों ने नव पर आक्रमण किया जिससे मथुरा में अपने किसी पुत्र को स्थापित करके आपको मरुस्थली में भागना पडा। यहां आपका पुत्र पृथ्वीवाहु स्थापित हुआ इस वंशपरम्परा में क्रम से बाहुबल, वाहु, सुबाहु, रिझ और गज का जन्म हुआ। गज ने गजनी नामक गढ़ वनवाया। टाड महाशय इसे अफ़-ग़ानिस्तान की ग़ज़नी समझते हैं। किन्तु कनिंघम ने लिखा है कि यह पेशावर के निकट कहीं होगी। कनिंघम का मत यथार्थ समझ पडता है क्योंकि राजा गज के पुत्र शालि-वाहन का समय सम्वत् १३५ है, सो गज का उससे थोड़े ही पहिले होगा। अतः इनके समय ग़ज़नी पर कुशनों का अधिकार था। इसलिए राजा गज का अफग़ानिस्तान में दुर्ग बनाना अनुमान सिद्ध नहीं। गज के राज्य पर शाह

सिकन्दर रूमी तथा खुरासान पति शाह ममरेज़ ने मिलकर आक्रमण किया। इसी समय का निम्न दोहा प्रसिद्ध है :—

रूमी पति खुरसान पति हय गय पाखर पाय ।
चिन्ता तेरे चित्त लग सुनु जदुपति गज राय ॥

महाराज गज भी प्रचण्ड सेना सज कर उनके सन्मुख आ धमके। जिस दिन युद्ध होने वाला था, उसी के पहले रात में शाह ममरेज़ दुर्पच से मर गया जिससे शाह सिकन्दर भी विकल हुआ। इस गड़बड़ में राजा गज ने इनकी सेनाओं को पूरी पराजय दे दी। अनन्तर काश्मीर पर आक्रमण करके आपने वहां की राज्यकन्या से विवाह किया जिससे शालिवाहन पुत्र उत्पन्न हुआ। कई वर्षों में खुरासान पति ने ग़ज़नी पर फिर आक्रमण किया। इस बार विजय की आशा न होने से राजा गज ने तीर्थयात्रा के बहाने कुछ लोगों के साथ शालिवाहन को पूर्व भेज दिया और स्वयं सेना समेत खुरासानी दल से युद्ध किया। पांच पहर तक लड़ाई हुई जिसमें खुरासान पति और गज दोनों मारे गए किन्तु हिन्दुओं की पराजय हो गई। विपक्षियों ने अब ग़ज़नी का गढ़ घेरा जो तीस दिन के पीछे गिरा और नौ हज़ार राजपूतों ने साका करके मान रक्षा में प्राण दिए। इधर शालिवाहन ने सालिवाहन पुर बसा कर वहां शासन करना आरम्भ किया। सालिवाहन पुर को स्यालकोट कहते हैं। कुछ दिनों में इनके पिता के शत्रु शकों से इनकी भी मुठभेड़ हुई, जिन्हें मुलतान से ६० मील कहरूर नामक स्थान में आपने बड़ी करारी पराजय दी। यह सं० १३५ की घटना है। इस विजय से आपका यश इतना बढ़ा कि आप

शकारि कहलाने लगे और इसके स्मरणार्थ शाके सम्वत् चलाया गया। इसका प्रचार भारत में अब भी है। शाके सम्वत् का इनके द्वारा चलना सर्वमान्य नहीं है। आपके पुत्र रसालु भी सुयशी शासक थे। इन्हीं के पुत्र भाटी बड़े भारी युद्ध कर्त्ता हुए। आपने कई पड़ोसी नरेशों को पराजित किया। इन्ही के नाम पर इनके वंशधर भाटी यादव कहलाते हैं। भाटी के वंशधर मङ्गलराव के अभयराव तथा सारनराव नामक दो पुत्र हुए। अभय के वंशधर अभोरिया भाटी कहलाते हैं और सारनराव के सारन जाट। मङ्गलराव के समय गजनी नरेश धूंदी ने आक्रमण किया जिससे आपको स्यालकोट छोड़कर दक्षिण की ओर राजपूताने में भागना पड़ा। यहां यह लोग तन्नौत में रहने लगे। शालिवाहन के वंश में कुल्लूर नामक एक महाशय थे जिनके वंशधरों को गजनी के दवाव से जाटों में मिलकर रहना पड़ा। इसलिए वे कुल्लोरिया जाट हुए। अतः हम देखते हैं कि इस वंश के दो घराने जाट हो गए।

राजपूताने में भाटियों को बूटा, चुन्ना, वराह, लंगाह, सोध, लोदरा आदि राजपूतों में मिलना पड़ा। बूटा और चुन्ना राजपूत अब नही हैं। शायद इन लोगों के नाम समय के साथ बदल गये हैं। वराह मुसलमान हो गए हैं। सोध और लोद्रा पँवारों की शाखायें हैं। भाटी यादवों ने सं० ७८८ में तन्नात बसाया। सं० ९१० में इस वंश का स्वामी देवराज हुआ। आपने वर्त्तमान वहावलपूर राज्य में देवगढ़ उपनाम देवरावर का क़िला बनवाया तथा रावल की उपाधि ली। तन्नोत से शत्रुओं द्वारा निकाले जाकर आपने देवगढ़ बनाया था। इस काल लोद्रा क्षत्रियों का राज्यस्थान लोद्रवा १२ फाटकों का अच्छा

नगर था। वहां के स्वामी नृपभान से उनका पुरोहित अप्रसन्न होकर देवराज से मिल गया। अब इन्होंने युक्तिपूर्वक लोद्रोरवा पर अधिकार जमाया। यह जैसलमेर से उत्तर पश्चिम १० मील पर है। अनन्तर आपने पँवार नरेश ब्रजभान से क्रुद्ध होकर धारा नगरी पर आक्रमण किया। आपकी विजय हुई और आठ सौ अनुयाइयों समेत ब्रजभान मारे गए। देवराज ने देवरावर छोड़कर लोद्रोरवा को राजधानी बनाया। शायद लोद्रोरवा और धार जीतने पर ही आपने रावल की उपाधि ली होगी। एक दिन आप थोड़े ही अनुयाई लेकर शिकार को चले गए। ऐसे समय चुन्ना राजपूतों ने यकायक धावा करके २८ साथियों सहित इन्हें मार डाला। आपके पीछे पुत्र रावलमुंद शासक हुए। सं० ११५० के लगभग इस वंश का शासक दूसज हुआ। आपके जैसल और विजय राज पुत्र थे। वृद्धावस्था में मेवाड़ की राना वंशी राजकुमारी से लंज विजयराय नामक आपका तीसरा पुत्र हुआ। इनके राना के दौहित्र होने से दूसज के पीछे लोगों ने इन्हीं को शासक बनाया। आपका विवाह गुजरात के सोलंकी नरेश सिद्धराज की कन्या से हुआ था जिसके भोजदेव पुत्र उत्पन्न हुआ, जो २५ वर्ष की अवस्था में लंज विजयराय की गद्दी पर बैठा। इस काल उदयादित्य धार नरेश के वंशराय धवल पँवार ने अपनी तीन पुत्रियों में से एक का विवाह सिद्धराज के पुत्र जयपाल सोलंकी के साथ किया, दूसरी का भोजदेव के चचा विजयपाल से और तीसरी का चित्तौर के राना से। जैसल दूसज का बड़ा पुत्र होने से लंज के अभिषेक से सदैव रुष्ट था। अब वह और उपाय के अभाव में गोरी मुसलमानों को लोद्रोरवा पर चढ़ा लाया। भोजदेव मुस

लमानों से युद्ध करके मारा गया। जैसल ने लोदोरवा निवासियों को अपना सामान हटाने को दो दिन का समय दिया और तीसरे दिन मुसलमानों ने पूर्व निश्चयानुसार शहर लूटा। लूट के पीछे करीमखां सेनापति सदल वेखर की ओर कूच कर गया और वंशघाती जैसल लूटे हुए लोदोरवा का राजा हुआ। इस स्थान को रक्षा के आयोग्य समझ कर जैसल ने सं० १२१३ में १० मील पर किला बनाकर शहर बसाया। इसका नाम जैसलमेर हुआ, इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र का यह वंश समय समय पर गजनी, स्यालकोट, तन्नौत, देवरावर, और लोदोरवा में बसता हुआ सं० १२१३ में जैसलमेर पहुंचा।

अब लोदोरवा से उजड़कर लोग जैसलमेर में बस गये। जैसल के कैलुन और शालिवाहन दो पुत्र थे। सं० १२१९ में इस वंश के प्राचीन शत्रु चुन्ना राजपूतों ने फिर आक्रमण किया किन्तु इस बार उन्हें पराजित होना पड़ा। जैसल ने पाहो के वंश के लोगों ही को मंत्री तथा अन्य ऊँचे कर्मचारी बनाया, जिससे इन लोगों का बल बहुत बढ़ गया। सं० १२२४ में जैसल का शरीरान्त हुआ। बड़े पुत्र कैलुन ने पाहो मंत्री को अप्रसन्न कर दिया जिससे शालिवाहन राजा बनाए गए। सं० १३५ वाले शालिवाहन के एक वंशधर बद्रीनाथ जी के पहाड़ों पर शासक थे। इस काल उनके अपुत्र मरने से वहां से लोग जैसलमेर आए और राजा से उन्होंने यह प्रार्थना की कि शासक बनाने के लिए कोई राज पुत्र दिया जावे। शालिवाहन ने अपने पुत्र हसो को उनके साथ भेजा। यह राजपुत्र मार्ग ही में मर गया और इसकी स्त्री के पलास के नीचे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसलिए इसका नाम पला-

सेव रक्खा गया। पहाड़ी यादवों ने इसी को अपना राजा माना और इसी के नाम पर राज्य का नाम ख़ासेव हो गया।

तीन पुत्रों के होते हुए शालिवाहन सिरोही में अपना विवाह करने गये। उनकी अनुपस्थिति में अपने दायभाई को सलाह से शालिवाहन का मृत्यु समाचार उड़ाकर उनका बड़ा पुत्र बीजिल राजा हो गया। जब शालिवाहन विवाह करके आये तब उन्होंने बीजिल को बहुत समझाया, किन्तु उनके अनुचित विवाह करने से पुत्र अथवा प्रजा किसी ने भी उन्हें राजा नहीं माना। विवश होकर शालिवाहन राज्य के खदाल प्रान्त में चले गये जहां की राजधानी देवरावल थी। इसी अवसर पर बलूचियों ने खदाल पर आक्रमण किया, जिनसे लड़ने में तीन सौ अनुयाइयों समेत शालिवाहन मारे गये। बीजिल को भी राज्य सुख न मिला। एक बार क्रुद्ध होकर उन्होंने दायभाई पर प्रहार कर दिया और उस दुष्ट ने भी बदले में इनपर प्रहार किया। इसपर लज्जा और क्रोध के मारे बीजिल ने आत्मवध कर डाला।

अब कोई उचित उत्तराधिकारी न होने से सं० १२५७ में जैसल के बड़े पुत्र केलुन वृद्धवय मे गद्दी पर बैठाये गये। आपने सं० १२७५ पर्य्यन्त शासन किया। इनके समय ख़िज़िरख़ां बहलूच ने खादल पर दूसरा धावा किया। इसके साथ पांच हज़ार सैनिक थे। केल्हन ने सात हज़ार सैनिक लेकर इस भ्रातृहन्ता से युद्ध किया। आपने पूरी विजय पाई और पन्द्रह सौ साथियों समेत ख़िज़िर ख़ां मारा गया। जैसलमेर का शेष इतिहास यथास्थान लिखा जावेगा।

जयपूर के शासक कुशवंशी कच्छवाह क्षत्री हैं। कुश रामचन्द्र के दो पुत्रों में से एक थे। भगवान के पीछे आपने कोशल का एक भाग पाया जो कुशावती कहलाया। आपके वंशधरों ने सोन नदी के किनारे रोहितासगढ़ बनाया। यहां से उजड़ कर सं० ३५१ के लगभग राजा नल ने ग्वालियर में नरवर उपनाम निषिद् राज्य प्राप्त किया। इनके वंशधरों में बहुतों की उपाधि पाल थी। नल वंशियों ने नरवर मे प्रायः ८०० वर्ष राज्य किया। इस लम्बे समय मे कभी तो यह स्वतंत्र रहे और कभी परतंत्र। ग्वालियर के एक शिला लेख में लिखा है कि सं० १०३४ में वज्रदामन कच्छवाह ने कन्नौज पति से यह नगरी छीन ली। अब यह लोग कभी चन्देलो के वशवर्ती रहे और कभी स्वतंत्र। वज्रदामन के आठवें वंशधर तेजकरण उपनाम दूल्हाराय ने सं० ११८५ में ग्वालियर छोड़ा। इसका कारण संदिग्ध है। कुछ आधारों में कथन है कि दूलहाराय के चचा ने उनसे ग्वालियर छीन लिया और कुछ कहते हैं कि जब दौसा की बड़गूजर राजकुमारी मरौनी से विवाह करने आप गये तब अपने परिहार अथवा प्रमार भाग्नेय को ग्वालियर का प्रबन्ध सौंप गये, जिसने उनका राज्य ही छीन लिया। इनका ससुर अपुत्र था और उसने दौसा का प्रान्त इन्हीं को दे दिया। समझ पडता हैं कि ससुर का बडा राज्य पाने से दूल्हाराय यहीं बस गये और तब धीरे धीरे पैतृक राज्य से इनका अधिकार शिथिल होकर समय पर नष्ट हो गया। दूल्हाराय के नये राज्य वाले पूरे देश का नाम ढूंढार था, जो छोटे छोटे राजपूत और मीना सरदारों में बटा था। यह सब दिल्ली नरेश के अधीन थे। सं० १२०७ के लगभग दूल्हाराय के उत्तराधिकारी ने

सुसावत मीनाओं से अम्बर छीन लिया। इसी नाम पर जयपुर का राज्य अब भी अम्बर कहलाता है। पृथ्वीराज की एक बहिन अम्बर नरेश पजून को ब्याही थी। पजून से दूल्हाराय तक वंश परम्परा इस प्रकार है :—पजून, कुन्तल, हूनदेव, मैदुलराव, कंकुल और दूल्हाराय।

जब मोहम्मद ग़ोरी पृथ्वीराज से हारा था तब पजून ही ने उसे बन्दी किया था। पृथ्वीराज के प्रधान सामन्ता मे आपकी गणना थी। चन्देल पराजय में भी पजून ही की मुख्यता थी और चन्देली राज्य के स्थानिक शासक भी पृथ्वीराज की ओर से आप ही नियुक्त हुए थे। यह शासन बहुत थोड़े काल चला होगा। पृथ्वीराज ने जिन ६४ सामन्तों के बल पर भरोसा करके राठूर कन्या का अपहरण किया था, उनमें भी आप एक थे। कुछ लोग कहते हैं कि आप भी ग़ोरी के युद्ध में मारे गये थे।

यद्यपि रावदेव ने सं० १३६६ के लगभग मीनाओं से बूंदी प्राप्त किया था, तथापि बूंदी नरेश हाड़ाओ का आदिम इतिहास प्राचीन चौहानों से सम्बन्ध रखता है। सं० १०५० के लगभग चौहान लोग उस प्रान्त के शासक थे जहां पीछे से अजमेर बसा। इस वंश के किस भाग ने बूंदी प्राप्त किया सो विविध ग्रन्थों में कई भांति से वर्णित है। टाड राजस्थान तथा राजपूत इतिहास ग्रन्थो में बीसलदेव के वंशधरों द्वारा बूंदी राज्य स्थापित होना कहा गया है। इधर नादोल, अचलगढ़ और मीनाल के शिला लखों में दूसरा ही कथन है। इसके अधिक प्रमाणनीय होने के कारण हम इसी के आधार पर चलते हैं।

सं० १०५० के लगभग मानिकराय उपनाम वाक्पतिराय का छोटा पुत्र लक्ष्मणराय अथवा लाखन नवीन राज्य प्राप्त करने के विचार से दक्षिण की ओर चल कर नादोल पहुंचा। यहाँ इसके वंशजों ने प्रायः दो सै वर्ष तक राज्य किया। अनन्तर द्वितीय मानिकराय वहां से भी चलकर बूम्बाउदा, मिनाल आदि के निकट मेवाड़ के दक्षिण पूर्वी भाग में बस गये। दूसरे मानिकराय के छठवें वंशधर हाड़ाराज उपनाम राव हाडो थे, जिनके नाम पर यह वंश हाड़ा कहलाने लगा। स्थानीय कथाओं में कहा गया है कि पांचवीं शताब्दी के हांसो वाले चौहान राजा के पुत्र भानुराजा का किसी राक्षस ने खा लिया। उसकी हड्डियां मात्र रह गई जिसपर चौहानों की देवी आशुपूर्णा माता ने उन्हीं हड्डियों से उसे जिला दिया। इसी से उसके वंशधरों का नाम हाड़ा पडा। कर्नल टाड का विचार है कि यह राक्षस महमूद ग़ज़नवी था जिससे लड़कर भानुराजा सं० १०७९ में मृतक प्रायः होकर फिर बच गया। सं० १४९९ में रावदेव ने बूंदी प्राप्त किया जैसा कि ऊपर कहा गया है। बूंदी का शेष इतिहास यथास्थान कहा जावेगा।

अबतक राजपूताने में हम बहिरङ्ग क्षत्रियों से चार प्रधान कुलों को आते हुए देख आये हैं, अर्थात् शिशोदिया, चौहान, यादव, और कछवाहों को। राजपूताने के मरु तथा दुर्गम देश होने से जितनी भारी विजयिनी धारायें उपजाऊ देशों में आती थीं उतनी यहां नहीं आईं। इसी से जिन क्षत्रियों का राज्य अन्यत्र बिगड़ गया उन्होंने इस दुर्गम देश में शरण लेकर अपनी स्वतंत्रता की रक्षा की। वन्य पहाड़ी तथा मरू देशों का यही प्रधान सद्गुण है कि उनका कोई

लालच नही करना और करने पर भी बाहर से सुगमता पूर्वक उन्हें स्ववश नहीं रख सकना । इस लिए ऐसे देशों के निवासियों को स्वतंत्रता स्थिर रखने का अच्छा डोल लगता है ।

पंजाब ।

अब पश्चिमी प्रान्तों का कथन समाप्त करके हम उत्तर पश्चिमी प्रान्तों को उठाते हैं, अर्थात् पजाब, वायव्य सीमा-प्रान्त और काबुल को । सब से पहले पंजाब का कथन होना है । इसी पवित्र देश में वैदिक आर्य्य रहते थे और यहीं ऋग्वेद का गान हुआ था । यहीं महर्षि विश्वामित्र ने व्यास और सतलज से भारतों की सेना अक्षत निकल जाने देने की प्रार्थना की थी । कुरुक्षेत्र का पवित्र स्थल भी इसी प्रान्त में है । दिल्ली के समीप इन्द्रपत अब भी युधिष्ठिर के इन्द्रप्रस्थ का स्मरण दिलाता है । जिस काल सिन्ध पर फ़ारसी नरेशों का अधिकार था तब पंजाब का भी कोई भाग उनके शासनाधीन होना सम्भव है । सिकन्दर ने मुख्यतया पंजाब और सिंध पर ही आक्रमण किया था । यूनानी, शक, तथा कुशान शासकों के समय पंजाब की क्या स्थिति रही सो यथा समय ऊपर कहा जा चुका है । गुप्तों का यहां कोई प्राधान्य नहीं हुआ किन्तु हूणो का अधिकार यहीं से आरंभ हुआ । तोरमाण और तत्पुत्र मिहिरकुल हूण की राजधानी सागल थी । यही स्थान महाभारत में प्रसिद्ध मद्रपति शल्य का राज्यस्थल था, और उस काल साकल कहलाता था । कुशनों के कारण पंजाब में मूर्तिपूजा का प्रचार बढ़ा और हूणों के अत्याचारों से यहां से बौद्ध मत लुप्तप्राय हो गया । हर्ष के समय झेलम नदी से पूव वाला

पंजाब उनके अधिकार में आया था और शेप देश मे तक्ष-शिला, सिंहपूर, सेहकिया, तृगर्त, आदि की रियासतें थीं। सिंहपूर के राज्य में लवण पहाड था। तक्षशिला और सिंह-पूर की रियासतें काश्मीर के अधोन थी। सेहकिया राज्य में सिन्ध नदी से व्यास पर्य्यन्त देश था और इसकी राज-धानी साकल थो। सम्वत् ७०५ तक हर्षवद्धन का विशाल साम्राज्य ध्वस्त हो गया था। इसके थोड़े हो दिन पीछे तोंवर क्षत्रियो ने दक्षिण पूर्व में अपना अधिकार जमाया और सं० ८४८ में इन्द्रप्रस्थ बसाया। इन्हीं के अधिकार मे हांसी भी थी। सं० ७६६ में अरवों ने सिन्ध जीता और उनका मुल-तान पर भी अधिकार हुआ। सं० ६२८ तक मुलतान का अरवी राज्य ख़लीफा से बिलकुल स्वतंत्र हो गया था। सं० ८६१ मे तृगर्त वर्त्तमान जालन्धर का राज्य भली भांति स्थापित था।

मुलतान जीतने के पीछे अरवो ने ब्रह्मापुर (वर्त्तमान शर कोट) अज़ाहाद और करोर में सेनाएं रक्खीं तथा पचास हज़ार सैनिक लेकर अरबी सेनापति दियालपूर होता हुआ झेलम के निकट हिमाचल तक पहुंचा। इस धावे में उसे ख़लीफ़ा द्वारा यथोचित सहायता न मिली और इसका कोई फल न निकला। जालन्धर का नामकरण उस जलन्धर राक्षस के कारण कहा जाता है जिसे महादेव ने मारा था। कहते हैं कि उस राक्षस का सर ज्वालामुखी पर था और पैर मुलतान में जो उस काल व्यास और सतलज का संगम-स्थल था। महाराजा कनिष्क की जो बौद्ध सभा कूवन में हुई थी, उसके वर्णनो में जालन्धर का नाम आता है। महाराज हर्ष के समय ह्यूयन्त्सांग जलन्धर गये थे जो उस काल तृगर्त

का राज्यस्थल था। इस राज्य में वर्त्तमान होशियारपूर और कांगड़ा के ज़िले तथा चम्बा, मण्डी और सुकेत की रियासतें सम्मिलित थीं। यहां के राजा क्षत्री थे। राजतरङ्गिणी में लिखा है कि सं० ९५० के लगभग तृगर्तपति पृथ्वीचन्द्र को काश्मीर पति शंकरचन्द्र ने हराया था। सं० ११४५ में जालन्धर पर इब्राहीमशाह गोरी ने अधिकार जमाया। इस काल से यह मुसलमानी अधिकार में रहा और समय पर उसका सम्बन्ध लाहौर के राज्य से हुआ। मुलतान के अरबों ने हिन्दुओं के धर्म में किसी प्रकार की बाधा न डाली। सं० ९२८ मे यह एक प्रधान शासक के अधिकार में आया। इन्होंने पूर्ण स्वतंत्रता स्थापित की और ख़लीफ़ाओं का वह अधिकार भी छोड़ा दिया जो बहुत काल से नाममात्र को था। सं० ९७२ में यहां मुसलमानी भौगोलिक मसूदी आया। इसका कथन है कि मुलतान शब्द मूलस्थानपूर का अपभ्रंश है। बौद्ध काल में इसका यही नाम प्रचलित था। इसका सब से पुराना नाम काश्यपपुर है। यह नाम हिरण्यकशिपु के पिता से सम्बन्ध रखता है। मसूदी ने लिखा है कि यहां कोरेश जाति का मुसलमानी शासक है। उस काल इसकी आबादी घनी थी और देश उपजाऊ था। सं० १०३७ मे मुलतान कर्मेशियन लोगों ने छीन लिया। इसी समय मुलतान के सिवाने से पेशावर पर्य्यन्त देश लोदी पठानों के अधिकार में था। कर्मेशियन लोग मुसलमानी मत नहीं मानते थे। इनके प्रभाव से लोदी पठानों ने भी मुसलमानी मत छोड़ कर इन्हीं का मत ग्रहण किया। कुछ दिनों मे मुलतान पर भी लोदियों का अधिकार होग या। सं० १०५५ में महमूद के पिता सबुक्तिगीन का अधिकार सिन्ध नदी

के पश्चिम पर्य्यन्त हो गया। उस काल शेख़ हामिद मुलतान का शासक था। इसने भी सवुक्तिगीन की महत्ता मानी। सं० १०६३ मे मुलतान के शासक अबुलफ़तह लोदी ने लाहौर नरेश अनन्दपाल का पक्ष लेकर महमूद से युद्ध किया किन्तु पराजित होकर उसे महमूद की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। उसने सं० १०६७ में फिर विद्रोह किया। अब महमूद ने अबुलफ़तह को भारत से निकाल कर अपने पुत्र मसऊद को मुलतान का गवर्नर बनाया। मसऊद ने सं० १०८९ के पीछे अबुलफ़तह को फिर छोड़ दिया। इस काल समझ पड़ता है कि अबुलफ़तह फिर मुसलमान हो गया था। इस काल से मोहम्मद गोरा के समय पर्य्यन्त मुलतान ग़ज़नी वालों के अधिकार में रहा।

समझ पड़ता है कि लवण पहाड़ का ब्राह्मण राज्य ग़ज़नी वाले आक्रमणों के पूर्व बढ़कर लाहौर तक आ चुका था। इसकी राजधानी भटिंडा मे थी। दिल्ली का राज्य जीवित था किन्तु उसमें कोई महत्ता न थी। पंजाब की यही दशा सम्वत् १०३६ पर्यन्त रही जब लाहौर नरेश जयपाल ने ग़ज़नी पर आक्रमण किया। लधमान पर युद्ध होकर सन्धि हो गई जिसके द्वारा जयपाल ने ग़ज़नी को कर देना स्वीकार किया। जब आपने कर देने का वचन पूरा न किया तब सं० १०४५ में सवुक्तिगीन ने भारत पर आक्रमण किया। जयपाल ने दिल्ली, अजमेर, कालिंजर और कन्नौज नरेशों का भी दल एकत्र करके लधमान पर मुसलमानों से घोर युद्ध किया किन्तु पूर्ण पराजय पायी। अब इन्हें ग़ज़नी को चार दुर्ग देने पड़े और सवुक्तिगीन ने सिंध नदी पर्य्यन्त अधिकार जमाया। इनके पीछे सं० १०५४ में इनका पुत्र महमूद ग़ज़नी

का सुलतान हुआ । सं० १०५८ में महमूद ने भी पेशावर के निकट जयपाल को पराजित किया। अब लज्जा, शोक और निराशा से जयपाल ने सजीव चिता पर चढ़कर अपना शरीर भस्म कर डाला और इनका पुत्र अनन्दपाल गद्दी पर बैठा। अनन्दपाल नें मुलतान के अबुलफ़तह को मिलाकर सं० १०६३ में महमूद से युद्ध करके पराजय पायी। सं० १०६६ में आपने फिर कई नरेशों का दल जोड़ा। इनमें उज्जैन और ग्वालियर के भी नरेश थे। इस महती सेना ने घोर युद्ध कर के ग़ज़नवी दल के पैर उखाड़ दिये किन्तु दुर्भाग्य बश इसी समय किसी कारण से आनन्दपाल का हाथी डर कर भागा। इसी एक घटना से हिन्दुओं का सारा दल तितर बितर हो गया और मुसलमानों ने उसे खदेर कर मारा। अब महमूद ने नगरकोट अथवा कांगड़ा को लूटा। इसी बीच अनन्दपाल का शरीर छूट गया और उनका बेटा तृलोचन पाल गद्दी पर बैठा। सं० १०७१ में महमूद ने युद्ध करके तृलोचन पाल को काश्मीर भगा दिया और लवण पर्वत के नन्दन दुर्ग पर अधिकार जमाया, तथा थानेश्वर को लूटा। सं० १०७८ में तृलोचन पाल ने महमूद से फिर युद्ध किया किन्तु यह नरेश पराजित होकर मारा गया और महमूद का अधिकार पंजाब के बृहदंश पर हो गया।

सं० १०८७ में महमूद का शरीरान्त हो गया और १०९२ में उसके पुत्र मसऊद ने सिवालक राज्य की प्राचीन राजधानी हांसी जीती किंतु कालचक्र के उलट फेर से इतने ही दिनों में ग़ज़नी का भी बल चूर्ण हो गया और सं० १०९८ में सलजूक तर्कों से पराजित होकर अपना देश छोड़ मसऊद को पंजाब भाग आना पड़ा। इस वंश का अधिकार

कुछ काल तक ग़ज़नी में और रहा, किंतु पीछे से इन लोगों का राज्य पंजाब मात्र में रह गया। यही दशा सं० १२३६ पर्य्यन्त रही। इधर मुसलमानों की बल हीनता से पूर्वी और दक्षिणी पंजाब में हिन्दुओं का प्रभाव फिर से बढने लगा। हम ऊपर देख आये हैं कि सं० ७६० के लगभग कन्नौज से बढ़कर तोंवर क्षत्रियों ने दिल्ली के निकट अपना राज्य जमाया था और थोडे ही दिनों में इन्द्रप्रस्थ को राजधानी बनाया था। सं० १०४५ में दिल्ली के तोंवर नरेशों ने मुसलमानों के प्रतिकूल जयपाल की सहायता की थी। इस वंश के २१ नरेशों ने इस प्रान्त पर शासन किया। फ़रिश्ताने लिखा है कि राजा ढिल्लू ने दिल्ली शहर सिकन्दरी आक्रमण के पूर्व बसाया था। तोंवर कुल के अन्तिम नरेश अनंगपाल ने सं० १२०० के लगभग लाल क़िला बनवाया और शहर बसवाया। इसी दुर्ग में लोहे का वह विशाल स्तम्भ गड़ा है जो २३ फ़ीट ऊँचा है और जिसका व्यास १६ इंच है (यह ३ फ़ीट पृथ्वी में गड़ा है और २० फ़ीट बाहर है। इस पर गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का यश खुदा है। विचार किया जाता है कि अनंगपाल ने यह विशाल स्तम्भ मथुरा से लाकर इस स्थान पर अपने मंदिरों के बीच स्थापित किया था। चन्दकृत रासो में यही स्तम्भ दिल्ली किल्ली कहा गया है, अर्थात् दिल्ली की कील। उसमें इसके विषय मे एक विचित्र कथा लिखी है। कहते हैं कि एक पवित्र ब्राह्मण ने राजा से कहा कि यह कील शेषनाग के फन तक गड़ी हुई है, जिससे यह अचल है और इसके स्थापित करने वाले का राज्य भी अचल रहेगा। राजा को इस पर विश्वास न आया और उसने किल्ली को खुदवाया, तो उसके जड़ में शेषनाग का रुधिर लगा पाया है।

अब राजा ने ब्राह्मण वचन पर विश्वास करके स्तम्भ को फिर आरोपित करने की आज्ञा दी, किन्तु उनके अविश्वास का यह दंड मिला कि कोई भी किल्ली को भली भांति स्थापित न कर सका और वह पृथ्वी में ढीली रह गयी। इसीसे शहर का नाम ढिल्ली अथवा दिल्ली हुआ।

टाड महाशय ने तोंवर नरेशों का राजत्वकाल प्रायः चार सौ वर्षों का माना है और इनके २१ राजे कहे हैं और पंजाब गज़ेटियर के बीसवें पृष्ठ पर इसी मत का बहुत करके समर्थन है, किन्तु कहीं कहीं तोंवरों का राजत्वकाल केवल १०० वर्ष का माना गया है। जिस काल तोंवर लोग यहां आये थे तब इनके राज्य की उत्तरी, पूर्वी और दक्षिणी सीमाएं हांसी, गंगाजी और आगरे तक थीं। पीछे से इस वंश का प्रभाव एवं राज्य कुछ बढ़ गया था। या तो सं० १२०८ मे बीसलदेव चौहान ने अनंगपाल तोंवर को पराजित करके दिल्ली राज्य अजमेर मे मिला लिया या इसके थोड़े ही दिन पीछे अनंगपाल ने अपना राज्य दौहित्र पृथ्वीराज को दे दिया। बीसलदेव की शायद यह सन्धि हुई हो कि राज्य अनंगपाल के दौहित्र तथा बीसल के पौत्र पृथ्वीराज को मिले। पृथ्वीराज का पराक्रम बहुत बढ़ा यहां तक कि भारतीय नरेशों में आप सम्राट माने जाने लगे। आप युद्ध और प्रेम दोनों में प्रवीण थे।

सम्वत् १२३० में ग़ोर नरेश ग़यासुद्दीन के भाई तथा सेनापति शिहाबुद्दीन मोहम्मद ग़ोरी ने भारत विजय का दृढ़ मन्सूबा किया। इस काल के पूर्व ही सं० १२१३ से ग़ोरियों ने ग़ज़नी पर अधिकार जमा लिया था। सम्वत् १२३२ में मोहम्मद ग़ोरी ने कर्मेशियन लोगों से मुलतान

छीन लिया और उसपर भी अधिकार जमाया। सं० १२३५ में आपने गुजरात नरेश भीमदेव के राज्य पर आक्रमण किया किन्तु पराजय पायी। अब उस प्रान्त को जीतने योग्य न समझ कर मोहम्मद ने दूसरे साल पेशावर पर अधिकार जमाया। इसी काल महमूद का वंशधर खुसरू मोहम्मद से बचने को अपना पंजाबी बल संगठित कर रहा था। उधर काश्मीर नरेश ने मोहम्मद को प्रोत्साहन दिया। आपने सं० १२३८ में मलिक खुसरू को पराजित करके उनका पूरा राज्य छीन लिया तथा लाहौर पर भी अधिकार जमाया। अब अपने बल को १० वर्ष पर्य्यन्त भली भाँति संगठित करके सम्वत् १२४८ में सरहिन्द को जीत कर और वहा दुर्ग मे सेना नियुक्त करके मोहम्मद ने सं० १२४६ में पृथ्वीराज का सामना किया। तलावरी अथवा कगर पर भारी युद्ध हुआ जिसमें मुसलमानों की पूर्ण पराजय हुई और मोहम्मद वन्दी हो गये। यह स्थान थानेसर के निकट है। पृथ्वीराज ने अनुचित अभिमान वश इसे वन्धन मुक्त कर दिया। दूसरे ही वर्ष इसी स्थान पर फिर युद्ध हुआ और मोहम्मद की जीत हुई। पृथ्वीराज और उनके भाई रायगोविन्द मारे गए तथा मुसलमानों का अधिकार अजमेर के राज्य पर हो गया। इसमें हाँसी वाला सिवालक राज्य भी सम्मिलित था। दूसरे साल मोहम्मद के सेनापति कुतबुद्दीन ने दिल्ली पर अधिकार जमाया। लवणगिरि के निवासी घक्कर आदि फिर भी लड़ते ही रहे। यह देख मोहम्मद ने युद्ध करके बहुत घक्करो को बड़ी निर्दयता पूर्वक वध किया किन्तु फिर भी इनके कारण लाहौर से ग़ज़नी का मार्ग भयशून्य न होने पाया। थोड़े ही दिनों में एक बार मोहम्मद ग़ज़नी को जा रहा था,

कि इन लोगों ने मौक़ा पाकर यकायक आक्रमण करके सं० १२६३ में उसे मार ही डाला। इस घटना से भारतीय मुसलमनी राज्य को कोई क्षति न पहुंची।

अब पंजाब से मिले हुए वायव्य सीमा प्रान्त का इतिहास उठाया जाता है। आर्य्य तथा यूनानी समयों का इस देश वाला इतिहास पंजाब से मिलता है। चन्द्रगुप्त मौर्य्य के अधीन यह भी प्रान्त था। अशोक ने गान्धार (पेशावर) तथा परवली (अभिसार उपनाम हज़ारा) में बौद्ध मत को प्रधानता दी। यूनानियों तथा कुशानों के समय वाला इस प्रान्त का इतिहास ऊपर कहा जा चुका है। चन्द्रगुप्त के समय गान्धार (पेशावर) में असकेनोई लोगों का राज्य था और इसकी राजधानी पुष्कलावती थी, जिसे अब चारसद्द कहते हैं। सेल्यूकस ने गान्धार और काबुल का राज्य चन्द्रगुप्त को दिया था। मौर्य्यों के पीछे वैक्ट्रिया नरेश यूक्रेटायडीज़ ने पेशावर पर अधिकार जमाया। कुशनों का भी राज्य यहां रहा। कनिष्क के समय यहीं से महायान मत की प्रधानता हुई। कुशन वशिष्क के समय यह साम्राज्य अफ़ग़ानिस्तान और सिन्ध नदी के समीप तक रह गया था और कुछ दिनों में वैक्ट्रिया वाले यूएची वंश के नेता किटोलो ने इन्हें पराजित करके अपना राज्य स्थापित किया। इन्हें लघु यूएची कहते हैं। समय पर इनके राज्य का अंश हूणों ने छीन लिया। इन लोगों ने उधर तो फ़ारस के सासानी घराने को पराजित किया और इधर काबुल तथा पश्चिमी पंजाब पर अधिकार जमाते हुए गुप्त साम्राज्य को ध्वस्त किया। समय पर बालादित्य गुप्त और यशोधर्मन ने मिलकर हूणों को पददलित किया। हूणों के होते हुए भी लघु यूएची का अस्तित्व

किसी प्रकार काबुल में बना रहा और हूण पराभव के पीछे इन लोगों ने अपना प्रभाव फिर कुछ बढ़ाया।

भारत पर पहले अरबों ने आक्रमण किया था और फिर ग़ज़नी वालों ने। अरब वालों ने पहले सं० ७१२ में काबुल पर आक्रमण किया और सं० ७४० में उसे कर देने पर बाधित किया किन्तु १०, १२ ही वर्षों में लघु यूएची नरेश ने फिर स्वतंत्रता प्राप्त करली। इन शासकों को तुरकी शाहिया कहते थे। यह बौद्ध थे और इस मत का प्रचार करते थे। काबुल की ओर से विफल मनोरथ होकर ही मुसलमानों ने सं० ७६९ मे सिन्ध और मुलतान जीता था। सं० ९२७ में लाइस पुत्र याकूब ने काबुल जीता। तुरकी शाहिया राज्य तो इस प्रकार नष्ट हो गया किन्तु अरबों का राज्य काबुल में न जमा। सं० ९५९ में काश्मीर नरेश ने उदयभानुपुर (ओहिन्द) के विद्रोही शासक को पदच्युत करके उसका राज्य ब्राह्मण लल्लिय के पुत्र तोरमाण को दिया। इसे कोमलुफ की उपाधि मिली, जिसे मुसलमान ऐतिहासिक कमलू कहते थे। इसी वंश के राजाओं को हिन्दू शाहिया नरेश कहते हैं। समय पर इन लोगों का अधिकार लाहौर तक फैला और वहीं इनकी राजधानी हो गयी। सं० १०३१ में ग़ज़नी के दास गवर्नर पिरी ने हिन्दुओं के उस दल को पराजित किया जो ग़ज़नी छीनने को भेजा गया था। इसके पीछे लाहौर नरेशों से ग़ज़नी वालों का किस प्रकार युद्ध हुआ सो पंजाब के इतिहास में कहा जा चुका है। सं० १०८२ में महमूद ग़ज़नवी ने अफ़ग़ानों पर आक्रमण किया। उस काल यह लोग सुलेमान पर्वत माला और ग़ज़नी के बीच मे रहते थे। मह-

मूद के आक्रमणों से हज़ारा को छोड़ पूरा वायव्य प्रान्त उसके अधिकार में आ गया।

धार्मिक विचार से वायव्य सीमा प्रान्त देश बहुत गौरव पूर्ण है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है बौद्ध मत की महायान शाखा यहीं से निकली। जब चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय चीनी यात्री फ़ाहियेन यहां होकर निकला था तब भी बौद्ध मत की प्रधानता थी। उस काल गान्धार में ही ५०० बौद्ध मठ थे। सं० ५७२ के लगभग मिहिरकुल हूण ने उद्यान और काश्मीर स्ववश करके बौद्धों पर बड़े अत्याचार किये। इससे बौद्ध मत की कुछ क्षीणता हुई। सं० ५७७ में चीनी यात्री सुङ्गयून गांधार पहुंचा। इसने लिखा है कि उस काल गांधार का हूण राजा काबुल के बौद्ध नरेश से युद्ध करता था। ह्यूयन्त्सांग सं० ६८७ में गान्धार आया। इस काल गान्धार काबुल के अधीन था। काबुल नरेश के बौद्ध होने पर भी इस काल यह धर्म गांधार में बहुत गिर रहा था। चीनी यात्री ऊकोङ्ग सं० ७१४ से ७२१ पर्य्यन्त गान्धार में रहा। इसने यहां के राजाओं को बौद्ध मत प्रचारक पाया तथा ३०० मठ उसे यहां मिले। महाराज हर्ष के समय पर्य्यन्त वायव्य सीमा प्रान्त की जनता पूर्णतया भारतीय थी और यहां के तुर्की शासक भी बौद्ध थे। इसके पीछे हिन्दू शाही नरेशों के समय यहां हिन्दूपन और भी बढ़ा। यहां का शेष हाल यथास्थान लिखा जावेगा।

अब अफ़गानिस्तान का इतिहास उठाया जाता है। यद्यपि यह आजकल भारतीय प्रान्त नहीं है, तथापि प्राचीन काल में यह भारत ही का अंग समझा जाता था। भारत से इसका लगाव थोड़े ही काल से छूटा है। यह कोई भी न

कहेगा कि महर्षि पाणिनि और चाणक्य भारत सन्तान न थे, वरन् यह सुनकर सब को आश्चर्य होगा कि वह अफ़गान थे। अफ़गान होने पर भी वे दोनों विधर्मी न होकर पूर्ण ब्राह्मण थे। अफ़गानिस्तान मे हिरान, कन्दहार, गज़नी, ग़ोर और काबुल ऐतिहासिक स्थान हैं। तक्षशिला भी यहीं का नगर कहा जा सकता है। आर्य्य लोग अफ़गानिस्तान होकर भारत आए थे। उनके पीछे सबसे पहले तक्षशिला ही का वर्णन आता है। इसे रामानुज भरत के पुत्र तक्ष ने अपनी राजधानी बनायी। इसीसे उनके नाम पर इसका नाम तक्षशिला पड़ा। कुछ लोगों का यह भी विचार है कि तक अथवा तक्षक जाति वाले लोगो के कारण इसका नाम तक्षशिला हुआ। महाभारत के समय राजा दुर्योधन के मामा शकुनी गान्धार (पेशावर) देश के राजा थे। उनका अधिकार कुछ अफ़गानिस्तान पर भी अवश्य होगा। राजा युधिष्ठर ये उत्तराधिकारी परीक्षित थे। इनके पुत्र जन्मेजय ने तक्षशिला जीत कर यहां कुछ काल पर्य्यन्त निवास किया था। तक्षशिला मे गौतम बुद्ध के समय एक प्रसिद्ध विश्व-विद्यालय था। जिस चिकित्सक जीवक ने गौतम बुद्ध के अँगूठे की चोट अच्छी की थी वह तक्षशिला ही का विद्यार्थी था। सिकन्दर के समय यूरोपीय वैद्य सर्पदंश की दवा नही जानते थे। उस काल भी तक्षशिला के वैद्य लोग सर्पदंशित मनुष्यों को अच्छा कर देते थे, जिससे सिकन्दरी दल मे इनका मान हुआ था। हिरान और कन्धार सिकन्दर ही ने बसाए थे, ऐसा ऐतिहासिकों का विचार है। सिकन्दर के पीछे काबुल पर्य्यन्त देश चन्द्रगुप्त मौर्य्य के अधिकार में आया और शेष अफ़गानिस्तान में सेल्यूकस का शासन

रहा। सेल्यूकस वंशियों का बल जब घटा तब १८६ सं० पू० में बैक्ट्रिया का राज्य स्थापित हुआ। पचास वर्ष के भीतर बैक्ट्रिया नरेशों ने पंजाब पर्य्यन्त देश को जीता। सं० पूर्व ७२ में अफ़ग़ानिस्तान का पश्चिमी भाग पार्थिया वालों के अधिकार में था और शेष पर शक शासक थे। सं० १०७ के लगभग कुशनों ने इन दोनों को हटाकर अफ़ग़ानिस्तान पर शासन जमाया। इनमें कनिष्क सर्वप्रधान सम्राट था। कुशनों द्वारा मूर्त्तिपूजन तथा महायान बौद्ध धर्म का भारी प्रचार हुआ। कुशन लोग यूएची जाति की उस शाखा में थे जिसकी बृहत संज्ञा है। इनके पीछे यहां लघु यूएची नरेशों का राज्य हुआ जिन्हें तुरकी शाहिया कहते हैं। महाराज हर्ष के समय चीनी यात्री ह्यूयन्त्सांग ने इन शासकों को बौद्ध धर्मानुरक्त पाया था। सं० ६२७ में इनका राज्य अरबों द्वारा नष्ट हो गया और ६५६ में काश्मीर की सहायता से काबुल में हिन्दू शाहिया नरेशों का राज्यारंभ हुआ। यह लोग ब्राह्मण थे।

सं० ६६६ में निहावेन्द के संग्राम में अरबों ने फ़ारस का सासानी राज्य ध्वस्त कर दिया और पश्चिमी अफ़ग़ानिस्तान पर भी अधिकार जमाया। अरबों की अधीनता में हिरात शहर की अच्छी उन्नति हुई। काबुल जीतने के प्रयत्न में अरबी बहादुर विफल मनोरथ रहे और तुरकी शाहिया नरेश ने उन्हें पराजित कर दिया। यहां से विमुख होने पर उन्होंने सिन्ध और मुलतान पर अधिकार जमाया। ख़लीफ़ाओं का बल बिगड़ने पर फ़ारसी सफ़्फ़ारियों ने हिरात, क़न्दहार और बलख़ पर अधिकार जमाया। थोड़े दिनों में सामानी लोगों ने इन्हें हटा कर इनके जीते हुए देश पर

शासन फैलाया। ग़ज़नी पर इनका गवर्नर रहता था। अल्पतिगीन एक तुरकी दास था जो समय पर ग़ज़नी में सामानियों का गवर्नर हुआ। इसका अधिकार बहुत बढ़ा। इसके पीछे इसका दास तथा दामाद सबुक्तिगीन सामानियों से स्वतंत्रप्राय हो गया। सबुक्तिगीन के पीछे इसके पुत्र महमूद का राज्य सं० १०५५ से १०८७ पर्य्यन्त चला। इसने सामानियों को पराजित करके सुलतान की उपाधि धारण की। इसका राज्य लाहौर से समरक़न्द और स्पहान तक था जिसमे उत्तरी पंजाब, पूरा अफ़ग़ानिस्तान और पश्चिमी फ़ारस सम्मिलित थे। इसके समय ग़ज़नी में एक विश्वविद्यालय स्थापित हुआ और उसमें अच्छे अच्छे प्रासाद बने। मूर्तिखण्डन तथा विधर्मियों के लूटने में महमूद का बड़ा चाव था। इसकी उदारता के कारण बहुत से कृतविद्य पुरुष ग़ज़नी में एकत्र हुए जिनमें शाहनामा का रचियता फ़िरदौसी कवि एक था। इस कवि ने महमूद को उदारता के प्रतिकूल भारी अभियोग लगाया है। महलों के अतिरिक्त ग़ज़नो में बहुत सी मसजिदें, नहरें आदि बनीं। महमूद ने भारत को लूटा ही न था वरन उसकी उन्नतियों से लाभ भी उठाया था। भारतीय नगरों की सुन्दरता के अनुसार उसने ग़ज़नी कों भी सुन्दर बनाया। उस काल उत्तमता और विभव में ग़ज़नी का सामना करने वाला संसार में कोई भी शहर न रह गया था। इतने विद्वान पुरुष भी उस काल और कहीं एकत्रित न थे। महमूद के उत्तराधिकारी तादृश शक्तिशाली न थे। इस कारण सेल्जूक तुरकों ने महमूदी राज्य के बहिरंग प्रान्तों को छीन लिया और महमूद के पुत्र मसऊद को स्वयं पंजाब भाग आना पड़ा।

अन्य स्थानों के साथ इनका अधिकार क़न्दहार पर भी हो गया था।

समय पर ग़ोर का प्रभाव बढ़ा। महमूद के समय फ़रिश्ता के अनुसार यहां मोहम्मद सूरि अफ़ग़ान का राज्य था जिसे धोखेबाज़ी से जीत कर महमूद ने यह राज्य अपने अधीन कर लिया था। सं० ११८० के लगभग ग़ोरी सरदार कुतुबुद्दीन सूर ने ग़ज़नी के सुलतान बहराम की कन्या से विवाह किया। किन्हीं कारणों से इन दोनों में झगड़ा हो गया और बहराम ने ग़ोरी का वध कर डाला। यह देख कुतुबुद्दीन के भाई सैफुद्दीन ने भ्रातृवध का बदला लेने के लिए सहसा आक्रमण करके ग़ज़नी पर अधिकार जमाया। बहराम भागा किन्तु शीघ्र ही सेना लेकर पलटा और सैफुद्दीन को बन्दी करके तथा घोर यन्त्रणाओं के साथ इसका वध करके फिर ग़ज़नी का शासक हुआ। अब तीसरे भाई अलाउद्दीन ने अपने भाइयों का झगड़ा उठाया और बहराम को पराजित करके इसने ग़ज़नी को उजाड़ कर जला दिया और नगर निवासियों का निर्दयता पूर्वक वध किया। इसको जहांसोज़ की उपाधि मिली। इसने ग़ज़नी को ऐसा जलाया कि महमूद तथा उसके दो उत्तराधिकारियों के केवल मक़बिरे शेष रहे। यह घटना सं० १२१० की है। इन्हीं उपद्रवों के साथ अफ़ग़ानिस्तान से औरों का राज्य नष्ट हो गया और ग़ोरियों का अधिकार प्रान्त भर में फैला। सं० १२१२ में अलाउद्दीन का शरीरान्त हुआ और एक वर्ष के लिए इसका पुत्र सैफुद्दीन शासक होकर मर गया तथा उसके चचा का बड़ा पुत्र ग़यासुद्दीन गद्दी पर बैठा। इसने अपने भाई शिहाबुद्दीन मोहम्मद ग़ोरी को सेनापति बनाया

तथा राज्य प्रबन्ध में भी बहुत कुछ अधिकार दिये। शिहाबुद्दीन शब्द के अर्थ धर्मस्फुलिङ्ग के हैं। इसने सं० १२५८ पर्य्यन्त पाश्चात्य प्रदेशों के अतिरिक्त समस्त उत्तरी भारत पर भी अधिकार जमाया। इसका राज्य पश्चिम में खुरासान और सीस्तान, पूर्व में बंगाल, उत्तर में ख़्वारिज़िम (तुर्किस्तान) में हिन्दूकुश और हिमालय, तथा दक्षिण में बलूचिस्तान पर्य्यन्त था। इसमें क़न्दहार, हिरात, काबुल, ग़ज़नी, आदि सभी शामिल थे। यद्यपि मोहम्मद ग़ोरी महमूद ग़ज़नवी ही के समान विजयी था, तथापि उसके समान विद्या प्रेमी और सभ्य न था। सं० १२५६ में ग़यासुद्दीन का शरीरान्त हुआ और मुहम्मद सुलतान हो गया, किन्तु चार ही वर्षों में सं० १२६३ में खक्करों द्वारा मार डाला गया और इसका भतीजा महमूद ग़ोर का शासक हुआ। यह बड़ा ही शिथिल था और मोहम्मद के भारी राज्य पर नाम मात्र को भी इसका अधिकार न रहा। इसने सुख पूर्वक कुतुबुद्दीन को दिल्ली का सुलतान मान लिया जो दास पद से उठकर एकबारगी शाह पद को पहुंचा। पांच वर्षों में महमूद का शरीरान्त हो गया और सिन्ध नदी के पश्चिम वाले उसके सारे देश में अराजकता फैल कर प्रचंड संग्राम हुआ जिसका फल यह हुआ कि ख़्वारिज़िम का बादशाह इन देशों का शासक बना। इस घराने का राज्य भी बहुत थोड़े दिन चला। यद्यपि काबुल बड़ा प्राचीन स्थान है तथापि बाबर के पहले यह किसी मुसलमानी बादशाह का राज्यस्थल न हुआ। उपरोक्त वर्णन से विदित हुआ होगा कि यद्यपि महमूद ग़ज़नवी और मोहम्मद ग़ोरी कोई स्थायी राज्य स्थापित न कर सके, तथापि इन्हीं के कारण भारत ने

अपनी स्वतंत्रता खो दी, मानों ईश्वर ने इन्हें भारत की मान-खंडना करने ही को उत्पन्न किया था। इनमे भी मोहम्मद गोरी तो मानों बिजली सा चमक कर बिला गया और पलक मारते मारते इसके वंश तक का अफ़ग़ानिस्तान में भी पता न रहा, किन्तु इसी पल भर में हतभाग्य भारत न जाने क्या से क्या हो गया। वस्तुतः संसार में गुण ही पूज्य है। बिना गुण के किसी की महत्ता स्थिर नहीं रह सकती और निर्गुणी महत्वाकांक्षी पुरुष संसार में अपने को केवल उपहास भाजन बनाता है।

२८वां अध्याय

दक्षिणी तथा तामिल भारत

(सं० ७०४–१२५० तक)।

दक्षिण।

हम ऊपर के अध्यायों में दक्षिण का इतिहास संवत् ८०५ पर्य्यन्त लिख चुके हैं। इसी समय आदिम चालुक्य दूसरे कीर्त्तिवर्म्मन को पराजित करके राष्ट्रकूट दान्ति दुर्ग ने देश पर अधिकार जमाया। चालुक्यों के समय उत्तरी कोंकण पर पुरी के मौर्य्यों का अधिकार था और दक्षिण पर बनवासी के कदम्बों का। पुरी बम्बई के निकट थी। चालुक्यों की उत्तरी शाखा नवश्री पर स्थापित होकर कोंकण पर शासन करने लगी। इनके घराने की एक शाखा कृष्णा के निकट वेंगी प्रान्त में स्थापित होकर वहां की शासक हुई थी। यह शाखा पूर्वी चालुक्य कहलती थी। राष्ट्रकूटों के अधिकार में यह वेंगी प्रान्त न आया, सो उनका राज्य चालुक्यों वाले से कुछ छोटा था। राष्ट्रकूट नरेशों की वल्लभराज उपाधि थी, जिससे अरब वाले इन्हें बल्हरा कहते थे। उनसे इनकी मित्रता होने से उन्होंने इनको बड़ी प्रशंसा की थी। इन लोगों का राजत्व काल संवत् ८०५ से १०३० पर्य्यन्त रहा, अर्थात् पूरे सवा दो सै वर्ष। अरबों से मिलकर यह

लोग कन्नौज के प्रतिहारों से प्रायः लड़ा करते थे। इस वंश के सबसे पहले वंशधर दन्तिवर्म्मन और इन्द्रराज थे, जिनके नाम इलोरा वाले दशावतार मन्दिर के शिला लेख में आये हैं। यह पिता पुत्र थे। इन्द्र के पुत्र पहले गोविन्द के पुत्र कर्क ने ब्राह्मणों द्वारा बहुत से यज्ञ करवाये। कर्कात्मज इन्द्रराज का विवाह चालुक्य वंश में हुआ, जिससे दन्तिदुर्ग पुत्र उत्पन्न हुआ। इसी ने अन्तिम चालुक्य नरेश को जीत कर दक्षिण का राज्य प्राप्त किया।

दन्तिदुर्ग ने पहले कर्नाटक नरेश को जीत कर फिर संवत् ८०५ में कीर्त्ति वर्म्मन सोलंकी को जीता। अनन्तर इसने कांची, कलिङ्ग, कोसल, श्रीशैल, मालव, लाट और टंक के राजाओं को पराजित किया। श्रीशैलराज वर्त्तमान कर्नूल ज़िले में कहा गया है जो मदरास प्रान्त में है। मासंगढ के दान पत्र से दन्तिदुर्ग का संवत् ८१० पर्य्यन्त जीवित रहना सिद्ध है। कुछ काल में आप अपुत्र मरे और आपके चाचा कृष्णराज गद्दी पर बैठे। आपका राजत्व काल संवत् ८३२ पर्य्यन्त चलता है। आपको शुभतुङ्ग भी कहते हैं। आपने चालुक्यों को पूर्णतया स्ववश किया और फिर महादेव का एक ऐसा अच्छा मन्दिर बनवाया कि उसके बनाने वाले ने ही कहा कि "आश्चर्य्य है, मैं ऐसा मन्दिर कैसे बना सका।" बरोदा के दान पत्र में लिखा है कि देवताओं ने इस मन्दिर को स्वयम्भुव समझा, क्योंकि कारीगरी में ऐसी सुन्दरता का आना असम्भव था। विचार किया जाता है कि यलूर का प्रसिद्ध कैलास मन्दिर यही है। शुभतुङ्ग के पीछे इनके आत्मज दूसरे गोविन्द संवत् ८३२ में गद्दी पर बैठे। इस काल दक्षिण का व्यापारिक सम्बन्ध फ़ारस से बहुत

अधिक था। जब फ़ारस में पारसी लोगों पर मुसलमानी मत का दबाव मत परिवर्तनार्थ असह्य हो गया, तब उनके कई कुटुम्ब वहां से उजड़ कर दक्षिणी भारत में बस गये। धार्मिक सहिष्णुता के कारण राष्ट्रकूटों ने उनका मान किया और उनके अग्नि मन्दिर के लिए सामान दिया। गोविन्द के निर्बल शासक होने से राज्य पतन का भय समझ उसका छोटा भाई ध्रुव उसे उतार गद्दी पर बैठा। यह प्रतापी और युद्धप्रिय हुआ। इसे निरूपम, कलिवल्लभ और धारावर्ष भी कहते हैं। इसने पल्लवों को हराकर उनसे कर में हाथी लिये, तथा चेरपति गंगवंशी नरेश को बन्दी कर लिया। अनन्तर परिहार वत्सराज को हरा कर इसने गौड़ बंगाल मे कुछ दिनों के लिए अधिकार जमाया। इसके कारण परिहार वत्सराज को मारवाड़ के जंगलों में भागना पड़ा। ध्रुव का एक शिला लेख मिलता है।

ध्रुव के पीछे इनका लड़का तीसरा गोविन्द राजा हुआ। इनके विषय में संवत् ८६१, ८६५, ८६६ और ८८४ के दान पत्र मिलते हैं। तीसरे गोविन्द को प्रथम जगत्तुङ्ग भी कहते हैं। यह बड़े प्रभावशाली राष्ट्रकूट नरेशों में से एक था। इसके शौर्य से प्रसन्न होकर ध्रुव जीते ही जो गद्दी से उतर इसे राजा बनाना चाहते थे, किन्तु इसने उन्हें ऐसा करने से रोका। जब उनके पीछे यह गद्दी पर बैठा तब बारह नरेशों ने मिलकर इसके प्रतिकूल विद्रोह का झंडा खड़ा किया किन्तु इसने अकेले उन सबको पूर्णतया पद-दलित किया। अपने पिता के पकड़े हुए गंगनरेश को इसने बन्धन-मुक्त कर दिया, किन्तु विद्रोह करने पर उसे फिर बन्दी कर लिया। अनन्तर इसने ससैन प्रस्थान करके गुर्जर, मालव,

माराशर्व (विन्ध्यपति), पल्लव, और वेंगी के नरेशों को पराजित किया। यह सब जीतें संवत् ८६१ के पूर्व समाप्त हो चुकी थीं। इस काल गोविन्द के राज्य में नर्मदा और तुङ्गभद्रा के बीच का सारा देश था और मालवा से कांची पर्य्यंत शेष देश पर इनका साम्राज्य फैला। आपने अपने भाई इन्द्र को लाट प्रान्त का राज्य दिया। इनकी उपाधियां प्रभूतवर्ष, पृथ्वीवल्लभ और श्रीवल्लभ थीं। आपका प्रभाव इतना बढ़ा था कि आप स्वेच्छा से राजाओं को बनाते बिगाड़ते थे।

गोविन्द के पीछे आपका पुत्र शर्व उपनाम पहला अमोघवर्ष संवत् ८७४ अथवा ८८४ में गद्दी पर बैठा। इसका राजत्व काल संवत् ९३४ के पीछे तक चला। अमोघवर्ष ने वेंगी पर आक्रमण तथा कई नरेशों का वध किया। राष्ट्रकूटों की राजधानी मान्यखेत वर्तमान मालखेड़ (हैदराबाद वाला) कब हुई सो ज्ञात नहीं, किन्तु अमोघवर्ष के समय वह अवश्य थी। आप जिनसेन नामक जैन सन्त को पूजते थे। इनके समय राष्ट्रकूटों का बल यथावत था। इनके पुत्र कृष्ण उपनाम अकालवर्ष के राज्य वाले संवत् ९५५ और ९५९ मिलते हैं, जिससे अन्तिम संवत् पर्य्यन्त आपका शासन अवश्य था। आपने चेदिपति कुकल की पुत्री के साथ विवाह किया जिससे जगत्तुङ्ग नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। आपके समय संवत् ९५५ में गुणभद्र ने जैन पुराण समाप्त किया। अकाल वर्ष ने गुर्जर भोज को हराया और बंगाल पर आक्रमण किया। आपके पीछे दूसरे जगत्तुङ्ग राजा हुए जिनका शासन बहुत थोड़े काल तक रहा। आपने अपने मामा रण विग्रह उपनाम शंकरगण की कन्या से विवाह किया

जिससे इन्द्रपुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका राजत्वकाल संवत् ६५६ से ६७५ पर्य्यन्त है। आपने परिहार नरेश महीपाल को हराकर कन्नौज पर अधिकार किया। इस पराजय से क़न्नौज का साम्राज्य ध्वस्त हो गया। कुछ दिनों में चन्देलों की सहायता से परिहारों ने कन्नौज फिर से प्राप्त कर लिया किन्तु परिहार साम्राज्य का पुनर्जीवन न हुआ। आपने कुक्कल के पुत्र अर्जुन की पौत्री विजाम्बा के साथ विवाह किया। इनके ससुर का नाम अङ्कणदेव था। इस विवाह से दूसरे अमोघ वर्ष और चौथे गोविन्द नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। अमोघ वर्ष पिता के पीछे गद्दी पर बैठे किन्तु कुछ दिनों में इन्हें उतार कर गोविन्द राजा हो गये। आप बड़े सुन्दर थे। आपने कई शैव मन्दिर बनवाये। मान्यखेत में आपका संवत् ६६० वाला एक दानपत्र मिला है। आपके पीछे बद्दिग उपनाम तीसरे अमाघवर्ष और फिर उनके दोनों पुत्र कृष्ण राजा और खोटिक एक दूसरे के पीछे गद्दी पर बैठे। कृष्ण का समय एक दानपत्र से संवत् १०१३ ठहरता है। खोटिक के पीछे उनका भतीजा कुक्कल उपनाम दूसरा कर्क राजा हुआ। इसका एक दान पत्र संवत् १०२६ का मिला है। यह वीर पुरुष कहा गया है, किन्तु संवत् १०३० में चालुक्य तैलप ने इसे पराजित करके राष्ट्रकूट राज्य का अंत कर दिया। इन्द्र के पीछे का कोई राष्ट्रकूट नरेश प्रतापी नहीं समझ पड़ता।

राष्ट्रकूट नरेशों में बहुत से विद्या रसिक थे और कवियों को आश्रय देते थे। हलायुध कवि ने कवि रहस्य में लिखा है कि उसने कृष्णराज के आश्रय मे यह ग्रन्थ रचा। इलोरा में इन लोगों ने बहुत से गुफा मन्दिर निर्माण कराये, अर्थात् गुफाओं को काटकर उनके भीतर एक एक पत्थर के सुन्दर

मन्दिर बनवाये। किसी समय में इलोरा में इस प्रकार के बहुत से बौद्ध मन्दिर बने थे। पहले अमोघवर्ष के समय पर्य्यन्त कुछ बौद्ध शेष थे, यद्यपि इस मत का पतन हो गया था और होता जाता था। इन राजाओं ने बौद्ध मन्दिरों से भी अच्छे शैव तथा वैष्णव मन्दिर गुफाएं काटकर बनवाये। इन मन्दिरों के कारण भारत में इलोरा की भारी ख्याति है। चालुक्यों के समय जैन मत उन्नति पर था। यह उन्नति राष्ट्रकूटों के समय भी स्थापित रही। कुछ छोटे छोटे राजा और वैश्य लोग दिगंबर जैन थे। फिर भी कुल मिलाकर इन शासकों के समय पहले की अपेक्षा पौराणिक हिन्दू धर्म ने अच्छी उन्नति की और पौराणिक देवताओं का पूजा भली भांति स्थापित हुआ।

कल्याण का चालुक्य वंश।

हम ऊपर देख आये हैं कि दक्षिण में पहले राष्ट्रकूट शासक थे, जिन्हे निकाल कर आदिम चालुक्यों ने अधिकार जमाया। इन्हें पराजित करके दूसरे राष्ट्रकूटों ने अधिकार पाया और तब इनको फिर निकाल कर उत्तर चालुक्यों ने राज्य प्राप्त किया। यह लोग पूर्व चालुक्यों के ही वंशधर अपने को समझते हैं, किन्तु इनके एक ही वंशवाले होने पर भी राज्य अपनी बराबर स्थापित नहीं रही। उनको बादामी वाले चालुक्य कहते हैं और इन्हें कल्याण वाले, यद्यपि राज्य दोनों का दक्षिण पर ही रहा। कल्याण के चालुक्यों का वास्तविक शासन काल संवत् १०३० से संवत् १२१४ पर्य्यन्त रहा और फिर संवत् १२४१ पर्य्यन्त ये ही नाम मात्र के शासक रहे।

हम ऊपर देख चुके हैं कि तैलप ने संवत् १०३० में राज्य प्राप्त किया। इनका शासन काल संवत् १०५४ तक चलता है। आपने चोल राज्य पर भी आक्रमण किया और चेदि नरेश को हराया। स्वयं चालुक्य होकर भी आपने गुजरात के चालुक्य मूलराज के प्रतिकूल अपने सेनापति बारप को भेजा। समझा जाता है कि इसके पूर्व लाट देश पर आपने अधिकार जमा लिया था क्योंकि बारप कीर्त्ति-कौमुदी में लाटेश्वर का सेनापति कहा गया है। मूलराज ने इस दल को करारी पराजय दी। अनन्तर तैलपने मालवा पर आक्रमण किया। वहां इस काल भोज का चचा वाक्पति मुंज शासक था। वह पकड़ लिया गया और संवत् १०५२ में उसका दुर्दशा के साथ वध हुआ। अन्तिम राष्ट्रकूट नरेश कक्कल की पुत्री जाकव्वा के साथ तैलप का विवाह हुआ था जिससे सत्याश्रय और दशवर्म्मन पुत्र हुए थे। तैलप के पीछे सत्याश्रय ने संवत् १०६५ तक राज्य किया और तब उसके मरने पर दशवर्म्मन का पुत्र पहला विक्रमादित्य गद्दी पर बैठा। इनके समय मालवा के भोजदेव ने अपने चचा का बदला लेने के विचार से दक्षिण पर आक्रमण किया और विक्रमादित्य को पकड़ कर इनका उसी प्रकार वध किया जैसा मुंज का तैलप ने किया था। पहले विक्रमादित्य के पीछे उनके भाई जयसिंह जगदेकमल्ल गद्दी पर बैठे। इनका राज्य संवत् १०८७ तक चलता है। आपने भोज के सहायकों का साथ उनसे तोड़ दिया, तथा चेदि नरेशों को पराजित किया और कोंकण राज्य का सर्वस्व छीन लिया। आपके समय चोलों ने चालुक्य राज में घुसकर आप को करारी पराजय दी और प्रजा को बहुत सताया। उन्होंने आपसे

दण्ड स्वरूप बहुत सा धन लिया। यह समय पहले राजेन्द्र चोल का था। आपके पीछे आपके पुत्र प्रथम सोमेश्वर ने संवत् ११२६ पर्य्यन्त राज्य किया। इनको आहवमल्ल और त्रैलोक्य मल्ल भी कहते थे। इन चालुक्य नरेशों का चोलों से बराबर युद्ध होता रहा है। सोमेश्वर ने भी चोलों से लड़ कर बाद को धारा नगरी पर आक्रमण किया। राजा भोज को कुछ दिनों के लिए धारा छोड़नी पड़ी। अनन्तर डाहल पर आक्रमण करके आपने चेदिपति कर्ण को राज्यच्युत किया अथवा मार डाला। फिर पाश्चत्य प्रान्तों को जीतते हुए तथा वहां विजयस्तंभ स्थापित करते हुए आप समुद्र के किनारे किनारे रास कुमारी पर पहुंचे। मार्ग मे इन्हें अपने राज्य में घुसते देख चोल नरेश ने इनसे युद्ध किया और वह कोप्पम् पर हराया गया। इस युद्ध मे राजाधिराज चोल नरेश का वध हुआ और चोलों तथा चालुक्यों की सीमा तुङ्गभद्रा स्थिर हुई। आपने कांची पर भी अधिकार किया। भोज और चोलों के इन युद्धों का हाल एक पाषाण लेख मे मिलता है, जहां यह भी लिखा है कि आपने कान्य-कुब्ज नरेश को हराया। सोमेश्वर का वर्णन विल्हण ने भी किया है। आपने कल्याण बसा उसे अपनी राजधानी बनाया।

सोमेश्वर के तीन पुत्र थे, अर्थात् सोमेश्वर, विक्रमादित्य और जयसिंह। सोमेश्वर बड़े होने से युवराज बनाये गये, किन्तु विक्रमादित्य के प्रवीणतर होने से युद्धों में ये ही भेजे जाते थे। आपने अपने पिता के समय चोलों से युद्ध किया। इस काल मालव नरेश का राज्य करण चेदि और सोलंकी भीमदेव ने छीन लिया था। अतः मालवपति ने

विक्रमादित्य से सहायता मांगी। विक्रमादित्य ने इनके शत्रुओं को हराकर इन्हें फिर से मालव राज्य पर प्रतिष्ठित किया। कहते हैं कि आपने गौड़, बंगाल तथा आसाम पर भी आक्रमण किया। सिंहल नरेश ने आपकी अधीनता स्वीकार की। आपने केरलों को हराया और गंगकुण की राजधानी छीन ली। अनन्तर आप वेंगी और चक्रकोट की ओर चले। जब यह विजययात्रा हो रही थी, तभी उधर इनके पिता प्रथम सोमेश्वर को बड़े ज़ोर का बुख़ार आया। जब जीवन की कोई आशा न रही तब आप तुङ्गभद्रा नदी पर गए और बहुत सा स्वर्णदान करके नदी के पवित्र जल में डूबकर आप ने शरीर छोड़ा। विल्हण ने लिखा है कि पहले सोमेश्वर ने कई यज्ञ किये, तथा ब्राह्मणों और कवियों से सदैव बड़ी उदारता का व्यवहार किया। आपके पीछे दूसरे सोमेश्वर भुवनैकमल्ल संवत् ११२६ से ११३३ पर्य्यन्त शासक रहे। विक्रमादित्य पितृ मरण का हाल सुनकर कल्याण लौट आये और भुवनैकमल्ल ने उनका यथोचित मान किया और आपने भी विजयों की सारी लूट राजा को सौं पदी। सोमेश्वर दुर्बल हृदय और अत्याचारी था। प्रजापीड़न से उसने उन का प्रेम खो दिया। जब विक्रमादित्य के समझाने पर भी सोमेश्वर ने बुरी आदतें न छोड़ीं, वरन् समझाने के कारण उन्हीं के प्रतिकूल कुछ करने का विचार किया तब छोटे भाई जयसिंह को लेकर विक्रमादित्य एक भारी सेना के साथ कल्याण को छोड़कर चल दिये। यह देख सोमेश्वर ने उनके पीछे सेना भेजी, किन्तु विक्रमादित्य ने उसे काट डाला। अब तुङ्गभद्रा, बनवासी और मलय होते हुए आप विजयार्थ कोंकण पहुंचे, किन्तु वहां का नरेश जयकेशी इनके अधीन

हो गया और उसने मुंह मांगे से अधिक इन्हें दिया । शासक होने पर विक्रमादित्य ने जयकेशी के पौत्र जयकेशी के साथ अपनी कन्या का विवाह किया था । कोंकण से आगे बढ़कर आपने अलूप तथा केरल नरशों को जीता और फिर तुङ्गभद्रा नदी पर चोल राजवीर राजेन्द्र की कन्या से विवाह किया । थोड़े ही दिनों में चोलपति का सोमेश्वर चालुक्य ने युद्ध में वध किया तथा चोल देश मे विद्रोह फैला । यह सुन विक्रमादित्य ने कांची पहुंच अपने साले अधिराजराज को गद्दी पर बैठाया । जब एक मास रहकर कांची से आप तुङ्गभद्रा गये, तब वेंगीपति राजिग उपनाम कुलोत्तुङ्ग ने इनके साले को राज्यच्युत करके चोल राज्य पर स्वयं अधिकार जमाया । अनन्तर दूसरे सोमेश्वर को मिलाकर उसने द्रविड देश के निकट विक्रमादित्य के दलपर धावा किया, किन्तु करारी पराजय खाई । राजिग हार कर भागा और सोमेश्वर बन्दी हो गया । अनन्तर विक्रमादित्य ने कुछ काल तक आगा पीछा करके सोमेश्वर को राज्यच्युत कर दिया और स्वयं कल्याण का राज्यसिंहासन सुशोभित किया । आपने छोटे भाई गजसिंह को वनवासी का राजप्रतिनिधि बनाया ।

दूसरे विक्रमादित्य का राजत्वकाल संवत् ११३३ से ११८४ पर्यन्त रहा । आपके राजकवि विल्हण ने विक्रमाङ्क देव चरित लिखकर मनोहर संस्कृत साहित्य में आपका जीवन चरित्र कहा । विल्हण काश्मीरी पण्डित थे और विक्रमादित्य ने इन्हे विद्यापति की उपाधि देकर अपने यहां रक्खा था । आप दरिद्रों और विद्वानो के साथ बडी उदारता का व्योहार करते थे । आप ही के समय मे मिताक्षराकार प्रसिद्ध विज्ञानेश्वर कल्याण मे रहते थे । विद्यापति ने कहा है कि कल्याण

के समान सुन्दर शहर संसार में नही है। विक्रमादित्य ने एक भारी विष्णु मन्दिर वनवाया तथा उसके सामने सरोवर खुदवाया। आपने प्रजा का सुशासित और प्रसन्न रक्खा इनके सामने चोरी इत्यादि का प्रजा को कुछ भी भय न रहा। आपको कलिविक्रम, परमाद्रराय और तृभुवनमल्ल भी कहते हैं। आपने शक संवत् उठाकर अपना संवत् चलाया, किंतु उसका चलन आपके पीछे न रहा। आपके राजा होने के थोड़े ही दिन पीछे करहाड उपनाम करहाटक वाले शिलाहार नरेश ने अपनी कन्या चन्द्रलेखा का स्वयंवर किया। यह वड़ी ही रूपवती थी और स्वयंवर में वहुत से राजे एकत्रित हुए थे, जिनमे से विक्रमादित्य को पसन्द कर इसने उनके साथ-विवाह किया। विक्रमादित्य के चन्द्रलेखा के अतिरिक्त और भी कई स्त्रियां थी। थोड़े दिनो में आपके भाई जयसिंह ने वनवासी में विद्रोह का झंडा खड़ा किया और चोल तथा अन्य राजाओं को साथी बनाकर एक भारी दल के साथ वढ़कर कृष्णा नदी पर विश्राम किया। विक्रमादित्य ने उसे कई प्रकार से समझा कर इस कुमार्ग से रोका, किन्तु उसने न माना। तव सेना सहित वढकर इन्होंने उस भारी दल को पूर्ण पराजय दे दी। अपने साथियों समेत जयसिंह भागा, किन्तु विक्रमादित्य ने उनका पीछा न करके हाथी, घोडा तथा अन्य सामान छीनने पर ही संतोष किया। कुछ दिनों में लोग एक जंगल से जयसिंह को पकडकर विक्रमादित्य के सामने लाये, किन्तु आपने उसे क्षमा कर दिया। इनके भाई जयसिंह तथा सोमेश्वर के कथन इससे आगे इतिहास में अधिक नही हैं। इससे जान पडता है कि किसी न किसी प्रकार उनका वध अवश्य किया गया होगा।

आप यह प्रायः कहा करते थे कि मेरे सब अधीनस्थ शासकों में मैसूर का विष्णुवर्द्धन होय्सल अदम्य है। आपके शरीरान्त से थोड़े दिन पूर्व पाण्ड्य कोंकण और गोवा (गोमन्त) के नरेशों को मिलाकर विष्णुवर्द्धन ने आपके राज्य पर आक्रमण कर दिया। यह देख विक्रमादित्य ने अपने अधीन सरदार अच अथवा अचगि के साथ एक प्रचण्ड सेना भेजी, जिसने कई युद्ध करके इन सब को पराजित किया और कोंकण पर अधिकार जमाया। कहते हैं कि अच ने कलिङ्ग, वङ्ग, मरु, गुर्जर, मालव, और चेदि नरेशों को विक्रमादित्य के अधीन बनाया। चोलराज भी कई कारणों से इनके प्रतिकूल था। इसलिए सं० ११७२ में आपने विष्णुवर्द्धन द्वारा उसे हरा-कर गंगावादी से भगा दिया था। इस प्रकार बहुत काल पर्य्यन्त सुख पूर्वक राज्य करके विक्रमादित्य ने सम्राट पद का भोग किया। चालुक्यों में यह सर्व प्रधान शासक था। आपके राज्य में कई प्रान्त थे। कुलोत्तुङ्ग चोल के वर्णन में दिखलाया जावेगा कि इस काल दक्षिण और तामिल देशों में केवल दो ही शासक थे अर्थात् विक्रमादित्य चालुक्य और कुलोत्तुंग चोल। उसी स्थान पर इनके राज्यों की सीमा भी दिखलाई जावेगी। चालुक्य राज्य में कई राष्ट्र, विषय, और ग्राम थे, जिन्हें मंडल (प्रान्त) भाड (विभाग) और उर (नगर) भी कहते हैं। जयसिंह वाले विद्रोह-दमन के पीछे विक्रमादित्य ने प्रायः प्रत्येक राष्ट्र में एक न एक शासक रक्खा जिन्हें आंतरिक प्रबन्ध के बड़े बड़े अधिकार दिये गये थे। इन राज प्रतिनिधियों में से प्राचीन कुलों के बड़े बड़े सरदार भी थे। इन्होंने समय पर बढ़ कर चालुक्य राज का विनाश किया। विक्रमादित्य ने प्रत्येक राष्ट्र पर राज

प्रतिनिधि नियुक्त करने के अतिरिक्त प्रत्येक विषय (ज़िले) पर एक गवर्नर नियुक्त किया। यह शासक प्राचीन राज्यों के सर्दार भी होते थे। इस प्रकार गंग सरदार येड़ेहल्ली और कादूर में गवर्नर थे। प्रत्येक नगर अथवा ग्राम मे एक एक शासिका सभा अथवा उपशासक था। इनके अतिरिक्त सन्धि विग्रह के मंत्री, सेनापति, शांति मंत्री, कोष प्रबन्धक. महासेनापति दण्डनायक, मह ासगंताधिपति आदि भी थे। एक अफ़सर हरिकर्नाट लाट सन्धि विग्रही भी कहे जाते थे। चालुक्य राज्य के उत्तर पश्चिम में स्यूण देश था जहां के राज प्रतिनिधि देवगिरि के यादव थे। उत्तरीय और दक्षिणी कोंकण तथा कोल्हापुर के प्रतिनिधि तीन शिलाहार थे, गोवा और हांगल (धर वर में) के दोकदम्ब, यलवर्ग के सिंद, धर वल में गट्ट, गुट्टल के गुट्ट (गुप्त), सौन्दत्त के रट्ट, नोलंव वादी के उच्चगं दुर्ग वाले पाण्ड्य ओर गंगवादी के होयसल। बनवासी प्रायः हांगल वाले कदम्बों के अधीन रहता था। बीजापुर के निकट नार्डवाडी, गुब्बुर, कंबर वाड़ो, सितबल्ड़ो और गोंडवाने में भी राज प्रतिनिधि रहते थे। मध्यभारत के निकट वाले प्रान्तों में हैहय सरदार प्रतिनिधि थे। इन बातों से प्रगट होता है कि विक्रमादित्य ने जिसे जहां महत्तायुक्त पाया उसे वहां का प्रतिनिधि बनाया। इस प्रथा में यह भारी दोष था कि जब तक सम्राट लोग प्रबल रहते तब तक प्रान्तीय शासकों की अधीनता चलती, किन्तु उनकी शिथिलता के साथ इन लोगो की स्वतंत्रता का भाव प्रबल होना स्वाभाविक ही था और हुआ भी ऐसा ही। स्वयं विक्रमादित्य के समय होयसल ने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया था।

काल के कुचक्र से, चालुक्य और चोल साम्राज्य दोनों एक ही शताब्दी में ध्वस्त हो गये ।

विक्रमादित्य के समय धार्म्मिक स्वतन्त्रता एवं सहिष्णुता अच्छी थी । आपके पिता शैव थे । कुमारावस्था में स्वयं विक्रमादित्य ने बल्लिगावे में एक जिनालय बनवाया था । संवत् ११५५ में आपने बौद्ध विहार और आर्य्या नागादेवी के लाभार्थ दानपत्र लिखे थे । आपके एक मंत्री भी बौद्ध थे। फिर भी स्वयं विक्रमादित्य वैष्णव थे और विष्णु मन्दिरों का इन्होंने सबसे अधिक उपकार किया । आपका राज्य एका-एक बहुत बढ़ गया था । यदि आपके उत्तराधिकारी कुछ प्रवीण होते तो यह साम्राज्य दृढ़ भी हो जाता, किन्तु ऐसा हुआ नहीं ।

विक्रमादित्य के पीछे आपका पुत्र तीसरा सोमेश्वर भुवलोकमल्ल संवत् ११८४ से ११९५ पर्य्यन्त शासक रहा । कहते हैं कि भुवलोकमल्ल ने आंध्र, द्रविड, मगध और नेपाल नरेशों के सरों पर पैर रक्खे और सारे विद्वानों की प्रशंसा प्राप्त की । अभिलषितार्थ चिन्तामणि नामक संस्कृत का ग्रन्थ रचकर आपने विविध विषयों पर जानने योग्य बातें लिखीं । प्रधानतया यह राजधर्म का ग्रन्थ है । भारी पाण्डित्य के कारण आपको विद्वान लोग सर्वज्ञ भूप कहते थे । आपने यह ग्रन्थ संवत् ११८८ में बनाया । आपके पुत्र जगदेकमल्ल ने १२ वर्ष राज्य किया और तब संवत् १२०७-में उसका दूसरा भाई तैलप गद्दी पर बैठा, जो इस वंश का अन्तिम नरेश था । यह भी एक विचित्रता है कि पहले तैलप ने यह राज्य स्थापित किया और दूसरे ने खोया । अग-

देकमल्ल और तैलप के समयों में चालुक्यों का बल बड़ी शीघ्रता से गिरता गया। चालुक्यों ने बहिरंग प्रान्तों में ऐसे अधीन शासक रक्खे थे जिनका पद बपौती के अनुसार चलता था। कल्याण की शक्ति को मन्द देख कर इन लोगों मे से कई स्वतंत्र हो गये। इन्ही अधीनस्थ शासकों में से कलचुरि वंशी विज्जल अथवा विज्जण एक था, जो तैलप का दण्डनायक अर्थात् सामरिक मंत्री भी था। इसने कोल्हापुर के महामंडलेश्वर तथा तैलङ्गण के काकतेय प्रोतराज की सहायता से राज्य प्राप्ति का विचार किया। इसने संवत् १२१४ पर्य्यन्त अपने स्वामी तैलप को पूर्णतया अधीन रक्खा। विज्जण के आगे अपने को नितान्त शक्ति हीन पाकर संवत् १२१४ मे कल्याण छोड़कर तैलप अन्नगेरी भाग गया। फिर भी सवत् १२१६ पर्य्यन्त विज्जण तैलप ही के नाम पर राज्य चलाता रहा, किन्तु इस वर्ष स्वामी का वास्तविक राज्य और बल बहुत छोटा समझ कर विज्जण ने उसपर आक्रमण किया और अपनी स्वतंत्रता की घोषणा की। तैलप और भी दक्षिण हटकर बनवासी में रहने लगा। तैलप के राज्य का कथन पाषाण लेखों मे संवत् १२२२ पर्य्यन्त आया है। विज्जण के शासनारम्भ ही मे लिङ्गायत शैवों का ऐसा झगड़ा उठा कि कलचुरियों का बल बहुत शिथिल पड़ गया। यह देख चालुक्य वंश के अधीनस्थ सरदारों में से स्वामि भक्त ब्रह्म अथवा बोम्म ने कई युद्धो द्वारा कलचुरियों को पराजित करके संवत् १२३६ में तैलप के पुत्र चौथे सोमेश्वर को अन्नगेरी की गद्दी पर फिर से बिठलाया। इसने कई युद्धो में मिलाकर अपने एक हाथो से ८६ हाथियों का वध किया। इस प्रकार सोमेश्वर की अधीनता में चालुक्य राज्य

का वृहद्वंश आगया। संवत् १२४१ वाले अन्नगेरो के एक शिला लेख में लिखा है कि बोम्म ने कलचुरियों को नष्ट करके चालुक्य राज्य का पुनर्स्थापन किया। दुर्भाग्य वश संवत् १२४६ में वीर वल्लाल ने दक्षिण से और भिल्लम ने उत्तर से आक्रमण करके चालुक्य राज्य को ध्वस्त किया। यह दोनों यादव नरेश थे। बोम्म इन दोनों से लडा किन्तु वीर वल्लाल ने इसे पराजित करके चालुक्यों का राज्य नष्ट कर दिया। संवत् १२४६ के पीछे सोमेश्वर का नाम किसी शिला लेख में नहीं आता है।

कलचुरियों का वास्तविक राज्य संवत् १२१३ से चलता है किन्तु विज्जण ने अपना अभिषेक संवत् १२१८ में किया और संवत् १२२४ में इनका शरीरान्त हुआ। कलचुरि लोग, चेदि, हयहय और कुलचुरि भी कहलाते थे। इनका कुछ वर्णन मध्य भारतीय इतिहास मे आ चुका है। विज्जण का महामंत्री वलदेव ब्राह्मण था जिसके पोछे उसका भाञ्जा वासव महामंत्री हुआ। कहते हैं कि वासव की वहिन पद्मावती वड़ी सुन्दरी थी, जिसके साथ विज्जण ने या तो विवाह कर लिया या अनुचित व्यवहार मान रक्खा। वासव पुराण में यह भो लिखा है कि विज्जण की वहिन नीललोचना वासव को व्याही थो। वासव की अन्य भगिनी नागलाविका से चेन्नवासव पुत्र उत्पन्न हुआ। वासव और चेन्नवासव भारी शिव भक्त थे। इन्होंने लिङ्गायत सम्प्रदाय चलायी, जिसमें शिवलिङ्ग और नन्दी की प्रधानता है। इसके पुजारियों को जंगम कहते थे। वासव ने इन जंगमों के आतिथ्य में सारा राज कोष व्यय कर डाला। यह सुन विज्जण ने उसे पकड़ना चाहा, किन्तु वह अपने अनुयायियों समेत निकल भागा।

जब राजा के भेजे हुए लोगों को भी उसने हरा दिया तब स्वयं विज्जण उसके सामने गया। धार्मिक विचारों से वासव के भी अनुयायी बहुत हो गये, यहां तक कि उसने राजा तक को भी पराजित कर दिया। अब सन्धि हो गई जिसके अनुसार वासव फिर मंत्री हुआ। विज्जण जैन था और वासव लिंगायत शैव। इन दोनों सम्प्रदायों में इस कथा के उपाङ्गों में भेद है। फल यह हुआ कि राजा और मंत्री के विद्रोह में एक दूसरे के द्वारा यह दोनों मारे गये। चेन्नवासव ने अपने मामा की सारी सम्पत्ति विज्जण के पुत्र को दे दी। चेन्नवासव पहले ही से लिङ्गायत सम्प्रदाय का मुख्य धार्मिक नेता था, सो इसके द्वारा सम्प्रदाय की अच्छी उन्नति हुई। विज्जण के पीछे उसके पुत्र सोमेश्वर ने ११ वर्ष और तब संकम ने प्रायः १० वर्ष राज्य किया। संवत् १२३६ मे बोम्म ने संकम से राज का वृहदंश छीन लिया और रहा सहा देश भिल्लम ने संवत् १२४१ में छीना। इस प्रकार संवत् १२१६ से १२४१ पर्य्यन्त कुशासन करके यह राज्यवंश दक्षिण से लुप्त हो गया।

चालुक्यों तथा कलचुरियों के समय केवल दो बौद्ध मन्दिरों का बनना लिखा है। अनन्तर यह धर्म दक्षिण से लुप्त हो गया। इस काल में जैनियों की भी वृद्धि कभी नहीं हुई और लिङ्गायत सम्प्रदाय के प्रभाव से जैन धर्म भी दक्षिण में मृतक प्राय होगया। राष्ट्रकूटों के वर्णन मे कहा जा चुका है कि जैन मत का प्राधान्य केवल व्यापारियों मे था। इन लोगों ने जैन मत छोड़ कर लिङ्गायत विचारों को मान लिया, जिससे जैन मत लोकप्रिय न रह गया। कहते हैं कि बहुतेरे जैन मंदिरों से जैन मूर्त्तियां फेंक दी गई और उनके स्थान

पर हिन्दू प्रतिमाएं प्रतिष्ठित हुईं। हिन्दू देवताओं का पूजन इस काल बहुत बढ़ा और हिन्दू धर्म-शास्त्र पर बहुत से निबन्ध तथा टीकाएं लिखी गईं। मालवा के प्रमार नरेश भोज ने भी एक ऐसा ग्रन्थ बनाया। याज्ञवल्क्य स्मृति पर विज्ञानेश्वर ने मिताक्षरा रचा और दक्षिण कोंकण नरेश अपरार्क ने एक निबन्ध। अपरार्क शिलाहार वंश के राजा थे। आपका समय ११९४ अथवा १२४४ था। इस काल के पीछे पण्डित वरहेमाद्रि और मायण ने भी ऐसे ही ग्रन्थ रचे। विज्ञानेश्वर ने मिताक्षरा में भोजदेव को धारेश्वर कह कर आदर दिया है।

यादवों का राज्य दक्षिण में संवत् १२४६ से आरम्भ हुआ था, किन्तु इनका इतिहास इसी समय से उठाने के पूर्व हम उचित समझते हैं कि इनके दक्षिण में आने का भी सूक्ष्म वर्णन कर दिया जावे। जब भगवान श्रीकृष्ण के समय द्वारावती में यादवों का विनाश हुआ तब उनके प्रपौत्र वज्र की अध्यक्षता में यदुवंश का एक भाग उत्तर को चला गया, किन्तु दूसरा भाग था जो उसी समय अथवा उसके कुछ पीछे दक्षिण पहुंचा। दक्षिणी वंश का नेता समय पर सुबाहु यादव हुआ, जिसके चार पुत्रों में से दूसरे दृढ़ प्रहार ने दक्षिण में राज्य प्राप्त किया। यादवी वंश का इतिहास इसी वंश के मंत्री हेमाद्रि ने व्रतखण्ड में लिखा है। पाषाण लेखों में से भी इसका बहुत कुछ समर्थन होता है। दृढ़ प्रहार की राजधानी श्री नगर अथवा चन्द्रादित्य पुर थी। यह नासिक ज़िलेका वर्त्तमान चमडोर हो सकता है। दृढ़ प्रहार का पुत्र स्यूंणचन्द्र पिता के पीछे राजा हुआ। इसने स्यूंण पुर बसाया और इसके राज्य को स्यूण देश कहते हैं जो नासिक से देव-

गिरि (दौलताबाद) तक था । दृढ प्रहार से भिल्लम पर्य्यन्त इस वंश में २३ नरेश हुए, जिससे भाण्डारकर महाशय ने इस वंश का भिल्लम पर्य्यन्त राजत्व काल ४३७ वर्ष माना है। अतएव दृढ़ प्रहार का समय संवत् ८११ के लगभग आता है । उक्त महाशय ने इनका समय सं० ८८२ कहा है और दृढ़ प्रहार से भिल्लम तक नरेश माने हैं ।

हम अभी लिख आये हैं कि चालुक्यों के देश पर दक्षिण से वीरवल्लाल यादव ने आक्रमण किया और उत्तर से भिल्लम यादव ने । उस काल सम्पूर्ण देश का स्वामी कालीय वल्लाल था किन्तु उसका चचा भिल्लम बडा पराक्रमी था । इसने अम्सल से श्री वर्द्धन का जीता तथा प्रत्यंडक और मंगलवेष्ठक के नरेशों को भी जीता और अन्त में संवत् १२४१ में कलचुरियों को भी पराजित करके कल्याण राज्य का उत्तरी भाग प्राप्त किया । अब कृष्णा नदी के उत्तर का सारा दक्षिण देश इसके हाथ आया । उधर इसके भतीजे कालीय वल्लाल के मरने से लोगों ने उसके पुत्रों को अयोग्य मानकर भिल्लम को ही राजा माना । इसने अब देवगिरि बसाया, और अपना तिलकोत्सव करके संवत् १२४४ में देवगिरि को राजधानी बनाया । देवगिरि अन्त पर्य्यन्त यादव नरेशों की राजधानी रही । उधर मैसोर नरेश वीर वल्लाल कृष्णा नदी के दक्षिण अपना प्रभाव बढ़ा रहा था । अभी चालुक्य वंश निर्मूल नहीं हुआ था, किन्तु उसकी बलहीनता के कारण राज्यार्थ मुख्य झगड़ा भिल्लम और वीर वल्लाल ही में था । इन दोनों की सेनाओं में कई युद्ध हुए कि इतने ही में संवत् १२४८ में भिल्लम का शरीरान्त हो गया । इसका बेटा जैतुगि उपनाम जैत्रपाल गद्दी पर बैठा और संवत् १२६७ पर्य्यन्त

शासक रहा। वीर वल्लाल ने संवत् १२४६ में लुक्कुंडी वर्त्तमान लक्कुंडी में जैत्रपाल को करारी पराजय दी और उधर इसी साल चालुक्य बल का भी ध्वस्त किया। इस प्रकार थोड़े दिनों के लिए कुंतल (दक्षिणी-महाराष्ट्र) देश मैसोर के अधिकार मे रहा। जैत्रपाल ने काकतेय वंशी राजा रुद्रदेव का वध किया और तैलङ्ग पति से भी सग्राम किया। प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य्य के पुत्र लक्ष्मीधर जैत्रपाल की सभा के विद्यापति थे।

जैत्रपाल के पीछे इनका पुत्र सिंघण संवत् १२६७ से १३०४ पर्यन्त शासक रहा। इन्होंने अपने राज्य को बहुत बढ़ाया। इनके द्वारा जज्जल हराया गया और कक्कुल का राज्य छीना गया। मालव नरेश अर्जुन का वध हुआ तथा घोड़सवारों द्वारा धारा नगरी घेरी गई। पन्हाला के भोज बन्दी हुए तथा भंगारिग नरेश लक्ष्मीधर पराजित किये गये। अनन्तर सिन्घण ने वीरवल्लाल को भी पराजित करके कुन्तल राज्य पर अधिकार जमाया। इस भांति पूरा महाराष्ट्र देश इनके अधिकार में आ गया। सिंघण ने मथुरा और काशी के नरेशों को मारा तथा हम्मीर को पराजित किया। भोज को बन्दी करने से आपने कोल्हापूर के शिलाहार राज्य को प्राप्त किया। आपने गुजरात पर दो बार आक्रमण किये, किन्तु साधारण विजयों के अतिरिक्त इसका कोई फल न हुआ। उस काल भरोच के निकट लवणप्रसाद शासक था। दक्षिण में सिन्घण ने दक्षिण मराठा देश के रट्टो, गोवा के कदम्बों, गुप्त वंशी गत्तों तथा पाण्ड्यों को पराजित किया। इस प्रकार सिंघण का राज्य चालुक्यों वाले के समान होगया। भास्कराचार्य्य का पौत्र चंगदेव आपका मुख्य ज्योतिषी था।

सिंघण का बेटा जैत्रपाल इन्हीं के आगे मर गया और इसलिए उसका पुत्र कृष्ण उत्तराधिकारी हुआ। कृष्ण का राजत्व काल संवत् १३०४ से १३१७ पर्य्यन्त है। आपने कई यज्ञ किये। इनके पीछे इनका भाई महादेव संवत् १३१७ से १३२८ तक शासक रहा। इन्होंने तैलङ्ग, गुर्जर, कोंकण, करनाट, और लाट नरेशों को हराया। कोंकण नरेश सोमेश्वर युद्ध में मारा गया तथा उसका देश महादेव के अधिकार में आया। यह सोमेश्वर थाना के शिलाहार वंश का था ऐसा भंडारकर महाशय का विचार है।

महादेव के पीछे कृष्ण का पुत्र तथा इनका भतीजा रामचन्द्र उपनाम रामदेव या रामराज गद्दी पर बैठा। इसका शासन काल सं० १३२८ से १३६६ पर्य्यन्त चलता है। आपने किसी मालव नरेश को पराजित किया। प्रसिद्ध पण्डित हेमाद्रि महादेव तथा रामचन्द्र दोनों का मंत्री था। आपके ग्रन्थ व्रतखण्ड में इस यादव वंश का पूर्ण इतिहास दिया हुआ है। हेमाद्रि बड़े ही उदार, ब्रह्मण्यदेव, धर्म्मिष्ठ, वीर तथा प्रभावशाली थे, आप बहुत से ब्राह्मणों को नित्य भोजन कराते थे। आपके चतुर्वर्ग चिन्तामणि ग्रन्थ के चार भाग हैं, अर्थात् व्रतखण्ड, दानखण्ड, तीर्थखण्ड, और मोक्षखण्ड। आपने वाग्भट्ट के आयुर्वैदिक ग्रन्थ की टीका आयुर्वेद रसायन रचा तथा बोपदेव कृत मुक्ताफल की भी एक टीका बनाई। बोपदेव आप ही के यहां रहते थे। बोपदेव ने मुक्ताफल, हरिलीला, मुग्धबोध तथा कई अन्य ग्रन्थ बनाये। पहले दो ग्रन्थ हेमाद्रि की इच्छानुसार बने थे। हरिलीला में भागवत का सारांश है। जान पड़ता है कि इसी ग्रन्थ के कारण कुछ लोग भूल से इन्हे भागवतकार समझने लगे

हैं। वोपदेव के ग्रन्थों में वैष्णवता, आयुर्वेद, व्याकरण आदि के विषय हैं। हेमाद्रि ने दाक्षिणात्य लिपि में भी कुछ सुधार किये थे। इन सुधारों का मूल लंका से प्राप्त हुआ था। महाराष्ट्र इन्हीं को हेमदपन्त कहते हैं। रामचन्द्र के राज्य में ज्ञानेश्वर ने भगवद्गीता की एक मराठी टीका रची। यह संवत् १३४७ का ग्रन्थ है। यादवों के समय व्यापार तथा मराठी भाषा की अच्छी उन्नति हुई थी।

इन उन्नतियों के होते हुए भी संवत् १३५१ में अलाउद्दीन ख़िलजी ने ८००० सेना लेकर यकायक देवगिरि पर आक्रमण कर दिया। राजा को इस आक्रमण का बिल्कुल खटका न था, सो वह घबड़ा गया। फिर भी ४००० सेना लेकर उसने अलाउद्दीन को शहर पर अधिकार जमाने से रोका। वह उस काल कहीं बाहर गया था सो वहां से आकर नगर की रक्षा पर सन्नद्ध हुआ। फिर भी इतनी सेना से विजय की आशा न होने से वह क़िले के भीतर चला गया। अला-उद्दीन ने क़िले का घेरा डाला। रामचन्द्र आत्मसमर्पण की बात चीत करता ही था कि इतने में इसके पुत्र शंकर ने भारी सेना एकत्र करके मुसलमानों का सामना किया। उन लोगों ने यह ख़बर उड़ा रक्खी थी कि दिल्ली से और सेना आने वाली है। जब युद्धारंभ हुआ तब अलाउद्दीन ने एक हज़ार सेना अलग रखकर शेष को ले लड़ना आरंभ किया। हिन्दुओं का दल भारी था सो मुसलमानों की पराजय होने लगी। इतने ही में १००० सेना भी युद्धस्थल में आधमकी जिससे हिन्दू लोग समझे कि दिल्ली का भारी दल आगया। इस भय से उनमें गड़बड़ मच गया और अलाउद्दीन ने उन्हें पूर्ण पराजय दे दी। अब सन्धि हो गई

है। बोपदेव के ग्रन्थों मे वैष्णवता, आयुर्वेद, व्याकरण आदि के विषय हैं। हेमाद्रि ने दाक्षिणात्य लिपि में भी कुछ सुधार किये थे। इन सुधारों का मूल लंका से प्राप्त हुआ था। महाराष्ट्र इन्हीं को हेमद्पन्त कहते हैं। रामचन्द्र के राज्य मे ज्ञानेश्वर ने भगवद्गीता की एक मराठी टीका रची। यह संवत् १३४७ का ग्रन्थ है। यादवों के समय व्यापार तथा मराठी भाषा की अच्छी उन्नति हुई थी।

इन उन्नतियों के होते हुए भी संवत् १३५१ मे अलाउद्दीन खिलजी ने ८००० सेना लेकर यकायक देवगिरि पर आक्रमण कर दिया। राजा को इस आक्रमण का बिल्कुल खटका न था, सो वह घबड़ा गया। फिर भी ४००० सेना लेकर उसने अलाउद्दीन को शहर पर अधिकार जमाने से रोका। वह उस काल कहीं बाहर गया था सो वहां से आकर नगर की रक्षा पर सन्नद्ध हुआ। फिर भी इतनी सेना से विजय की आशा न होने से वह क़िले के भीतर चला गया। अलाउद्दीन ने क़िले का घेरा डाला। रामचन्द्र आत्मसमर्पण की बात चीत करता ही था कि इतने मे इसके पुत्र शंकर ने भारी सेना एकत्र करके मुसलमानों का सामना किया। उन लोगों ने यह ख़बर उड़ा रक्खी थी कि दिल्ली से और सेना आने वाली है। जब युद्धारंभ हुआ तब अलाउद्दीन ने एक हज़ार सेना अलग रखकर शेष को ले लड़ना आरंभ किया। हिन्दुओं का दल भारी था सो मुसलमानों की पराजय होने लगी। इतने ही में १००० सेना भी युद्धस्थल में आधमकी जिससे हिन्दू लोग समझे कि दिल्ली का भारी दल आगया। इस भय से उनमें गड़बड़ मच गया और अलाउद्दीन ने उन्हें पूर्ण पराजय दे दी। अब सन्धि हो गई

है। वोपदेव के ग्रन्थों में वैष्णवता, आयुर्वेद, व्याकरण आदि के विषय हैं। हेमाद्रि ने दाक्षिणात्य लिपि में भी कुछ सुधार किये थे। इन सुधारों का मूल लंका से प्राप्त हुआ था। महाराष्ट्र इन्हीं को हेमाद्पन्त कहते हैं। रामचन्द्र के राज्य मे ज्ञानेश्वर ने भगवद्गीता की एक मराठी टीका रची। यह संवत् १३४७ का ग्रन्थ है। यादवों के समय व्यापार तथा मराठी भाषा की अच्छी उन्नति हुई थी।

इन उन्नतियों के होते हुए भी संवत् १३५१ में अलाउद्दीन खिलजी ने ८००० सेना लेकर यकायक देवगिरि पर आक्रमण कर दिया। राजा को इस आक्रमण का बिल्कुल खटका न था सो वह घबड़ा गया। फिर भी ४००० सेना लेकर उसने अलाउद्दीन को शहर पर अधिकार जमाने से रोका। यह उस काल कहीं बाहर गया था सो वहां से आकर नगर की रक्षा पर सन्नद्ध हुआ। फिर भी इतनी सेना से विजय की आशा न होने से वह क़िले के भीतर चला गया। अलाउद्दीन ने क़िले का घेरा डाला। रामचन्द्र आत्मसमर्पण की बात चीत करता ही था कि इतने मे इसके पुत्र शंकर ने भारी सेना एकत्र करके मुसलमानो का सामना किया। उन लोगों ने यह ख़बर उड़ा रक्खी थी कि दिल्ली से और सेना आने वाली है। जब युद्धारंभ हुआ तब अलाउद्दीन ने एक हज़ार सेना अलग रखकर शेष को ले लड़ना आरंभ किया। हिन्दुओं का दल भारी था सो मुसलमानों की पराजय होने लगी। इतने ही में १००० सेना भी युद्धस्थल में आधमकी जिससे हिन्दू लोग समझे कि दिल्ली का भारी दल आगया। इस भय से उनमें गड़बड़ मच गया और अलाउद्दीन ने उन्हें पूर्ण पराजय दे दी। अब सन्धि हो गई

जिसके अनुसार हिन्दुओं ने ६०० मन मोती, दो मन जवाहि-रात, हजार मन चांदी, ४००० रेशमी थान तथा अन्य बहु-मूल्य पदार्थ दिये, और दिल्ली को कर देना भी स्वीकार किया। यह सारा सामान लेकर अलाउद्दीन दिल्ली वापस गया। अनन्तर अपने चचा को मारकर वह दिल्ली का बाद-शाह हो गया। मोतियों तथा जवाहिरात की मात्रा मे अत्युक्ति संभव है।

रामचन्द्र ने कर न दिया और तब अलाउद्दीन ने सं० १३६४ मे अपने दास सेनापति मलिक काफूर को ३०००० घुड सवार देकर देवगिरि पर आक्रमणार्थ भेजा। भारी युद्ध हुआ जिसमें रामचन्द्र वन्दी होकर दिल्ली भेजा गया जहां से छः मास के पीछे वह मानपूर्वक छोड दिया गया। अब जीवन पर्य्यन्त रामचन्द्र वार्षिक कर देता रहा। सं० १३६६ में तैलंगण जीतने के लिए जाते हुए काफूर देवगिरि मे ठहरा जहां रामचन्द्र ने उसका उचित आतिथ्य किया। इसी साल राजा का शरीरान्त हो गया और इनका पुत्र शंकर गद्दी पर बैठा। इसने दिल्ली को कर देना बन्द कर दिया। यह देख दिल्लीश्वर ने सं० १३६९ में मलिक काफूर को फिर भेजा। उसने राज्य को उजाड तथा शंकर को मार कर देवगिरि को अपना निवास स्थान बनाया। अब दक्षिण मुसल्मानी प्रान्त हो गया, किन्तु इतने ही में अलाउद्दीन का शरीरान्त हो गया और उसका तीसरा पुत्र मुबारक सुल-तान हुआ। यह मौक़ा देख रामचन्द्र के दामाद हरपाल ने दक्षिण में विद्रोह खड़ा किया। यह सुन मुबारक स्वयं दक्षिण पहुंचा। उसने हरपाल को पकडकर जीते जी उसकी खाल खिचवाली। इस प्रकार दक्षिण का यह यादवी राज्य

सं० १३७५ में समाप्त होगा और मुसलमानों का अधिकार दक्षिण में फैला ।

तामिल भारत ।

महाराज हर्षवर्द्धन के समय हम देख आये हैं कि तामिल देश में पल्लवों ने चोल राज्य का उत्तरी भाग छीन लिया था, और पांड्यों ने चोलों का शेष तथा केरलों का पूरा राज्य अधिकृत कर लिया था । इस प्रकार चार प्राचीन राज्यों में से उस काल केवल दो रह गये थे । समय के साथ सं० ९०० के लगभग ये दोनों राज्य भी शिथिल पडे और तब चोलों का समय फिर आया । इससे प्रायः दो शताब्दी पीछे मैसोर में होय्सल वंश का प्रभाव बढ़ा तथा वारंगल के काकतीय नरेशों का प्रभाव जमा । इस प्रकार तामिल में पल्लव, पांड्य, चोल, होय्सल और काकतीय नरेशों की इस काल प्रधानता रही । यद्यपि पांड्यों के शिथिल पडने पर केरलों ने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली थी, तथापि उनकी महत्ता कभी न हुई । इस लिए उनका पृथक इतिहास यहां न लिखा जावेगा और हम शेष पांच राजवंशों का ही वर्णन यहां करेंगे ।

हम ऊपर देख आये हैं कि प्रसिद्ध पल्लव नरेश पहले नरसिंह वर्म्मन के पीछे दूसरे महेन्द्र वर्म्मन और पहले परमेश्वर वर्म्मन राजा हुए थे । इनके पीछे दूसरा नरसिंह वर्म्मन गद्दी पर बैठा । इसने कुछ गुफा मन्दिर बनवाये और कई अन्य मन्दिरों का निर्माण किया जिसमें कांची का कैलास नाथ प्रधान है । यह राजा भारी शिव भक्त था । इसका राजत्व काल थोड़े ही दिन चला और तब दूसरा परमेश्वर

वर्म्मन गद्दी पर बैठा। यह निर्बल चित्त का मनुष्य था। यद्यपि इसके विषय में लिखा है कि यह मनुस्मृति पर चलता था, तथापि जान पड़ता है कि उस काल प्रबल शासक की आवश्यकता थी, क्योंकि लोगों ने इसे पदच्युत करके नन्दिवर्म्मन पल्लव मल्ल को गद्दी पर बिठलाया। दूसरे परमेश्वर वर्म्मन के सातवें पीढ़ी वाले पूर्व पुरुष सिंह विष्णु थे जिनके भाई भीमवर्म्मन की छठी पीढ़ी का वंशधर पल्लव मल्ल था। नाते में वह परमेश्वर वर्म्मन का चचा होता था। राज्य पर इसका कोई स्वाभाविक अधिकार न था, किन्तु सेनापति तथा अन्य लोगों की सहायता से इसको गद्दी प्राप्त हुई, जिससे समझ पड़ता है कि इसका एक मात्र कारण परमेश्वर की अयोग्यता थी। पल्लव मल्ल सं० ७७२ में गद्दी पर बैठा, सो पहले नरसिंह वर्म्मन के पीछे वाले चारों नरेशों का शासन काल सं० ७०७ से ७७२ तक समझना चाहिये।

नन्दिवर्म्मन पल्लव मल्ल ने सं० ७७२ से लगभग सं० ८८२ तक राज्य किया। कुछ इतिहासज्ञों का मत है कि इनका राजत्व काल इतना बड़ा नहीं है, किन्तु डाक्टर फ्लीट तथा ऐयर महाशयों ने यही समय उचित कारणों से ठीक माना है। यद्यपि पल्लव मल्ल ने कई नरेशों से पराजय पाई, तथापि इनके समय पल्लव राज्य का सर्व प्रधान विस्तार हुआ। पश्चिमी चालुक्य दूसरे विक्रमादित्य ने सं० ७९० से ८०३ पर्य्यन्त शासन किया था। आपने पल्लव मल्ल को पराजित करके कांची पर कुछ दिनों के लिए अधिकार किया, किन्तु उसे लूटने के स्थान पर राज सिंहेश्वर तथा अन्य मन्दिरों को प्रचुर कञ्चन दान दिया। अनन्तर युवराज

कीर्त्तिवर्म्मन को भेजकर एक वार फिर पल्लव मल्ल को हराया । इन पराजयों से पल्लवों का वास्तविक वल नष्ट प्राय हो गया; किन्तु उस काल नन्दिवर्म्मन का प्रभाव और भी बढ़ता हुआ देख पड़ा । आपके सेनापति उदयचन्द्र ने राज्यच्युत पल्लव परमेश्वर वर्म्मन को निम्बवन, चूतवन, शंकर ग्राम, शूराव लुण्डर तथा अन्य स्थानोंपर पराजित किया और नेलवेल पर शभर नरेश उदयन को मारकर उसका झंडा छीन लिया। अनन्तर विशाघ नरेश पृथ्वी व्याघ्र को पराजित करके उसे विष्णु वर्द्धन के राज्य से निकाल दिया । उदयचन्द्र ने कालिदुर्ग पर अधिकार कर के "मण्र गये कुडि" पर पाण्ड्य नरेश को हराया । उधर पांड्य इतिहास मे लिखा है कि पांड्यराज अरिकेशरि ने पल्लव मल्ल को हराया । इन वातों से पल्लव पाण्ड्य युद्ध का फल अनिश्चित है ।

पल्लव मल्ल के पीछे उसका वेटा दन्तिवर्मन गद्दी पर वैठा । इसका समय सं० ८६१ मिला है । इससे समझ पड़ता है कि इसका भी राजत्वकाल वड़ा था । इसे राष्ट्रकूट नरेश तीसरे गोविन्द ने पराजित किया । फिर भी इसकी उपाधि पल्लवकुल तिलक अथवा पल्लव तिलक थी और इसके उत्तराधिकारी पल्लव तिलक कुलोद्भव कहलाते थे । इससे समझ पड़ता है कि दन्तिवर्मन के समय पर्य्यन्त पल्लवों का पराभव नहीं हुआ था । इनके उत्तराधिकारियों में पल्लव तिलक नंदि वर्मन तथा पल्लव तिलक दन्तिवर्मन के नाम पाषाण लेखों मे आये हैं । इनके समय पल्लव राज्य के अंशो पर कुछ अन्य पल्लव नरेश शासन करने लगे थे । इनमें से एक शाखा को गंग पल्लव कहते हैं । पूर्वी गंग लोग कलिंग के शासक हुए हैं ।

गंगों की तीन शाखायें हैं, अर्थात् एक पूर्वी गंग, दूसरी पश्चिमी-गंग, व तीसरी गंग पल्लव। पूर्वी गंगों मे कलिंगपति अनन्तवर्मन चोड गंग मुख्य था। गंग पल्लवों में वादूर के पत्र दन्ति, नन्दि, और नृपतुङ्ग के नाम लेते है। इनका शासन काल प्राय: डेढ़ सौ वर्ष चला था। प्रधान पल्लव शाखा इस काल शिथिल थी और प्रधानता गंग पल्लवों मे ही थी। इनमें अन्तिम नरेश अपराजित था। इसके आठ वर्ष राज्य कर चुकने के पीछे सं० ६५० के लगभग चोल नरेश पहले आदित्य ने इसे पराजित करके कांची पर अधिकार जमाया। इसी समय से पल्लवों का राज्य नष्ट हो गया और यद्यपि अन्य शासकों के यहां मंत्री आदि होकर इन लोगो ने कुछ प्राधान्य प्राप्त किया, तथापि इनका कोई चिरकालीन राज्य स्थापित न हुआ। सं० १२६६ में चोलो के सेनापति पुर्हजिग पल्लव ने अपने स्वामी की बलहीनता देखकर कुछ चोल राज्य दबाया, और अपने राजा होने की घोषणा की। आपका राज्य सं० १३३५ पर्य्यन्त चला और तब काकतीय प्रतापरुद्र नरेश ने कांची पर अधिकार जमाया। इस छोटे से राज्य का छोड सं० ६५० के पीछे पल्लव शासन कभी स्थापित न हुआ।

पाण्ड्यों का इतिहास पल्लवों से दृढ़तर है। हम हर्ष काल में पाण्ड्य राज टोलियन शेंडन को गद्दी पर देख आये है। इनके पीछे इनका बेटा अरिकेसरि मारवर्मन सं० ७०७ से ७३७ पर्य्यन्त गद्दी पर रहा। इसीके समय पाण्ड्यों ने निलवेली पर पल्लवों को पराजित किया। इस काल पल्लव नरेश पांड्य राज्य मे बहुत दूर घुस आया था जब वह हारा तब अरिकेसरि ने आठ अथवा तेरह युद्धो में केरल नरेश को हराया।

जान पड़ता है कि इस काल केरलों ने पांड्यों की अधीनता हटाने को भारी प्रयत्न किया था जिसमें वे विफल मनोरथ रहे। वीरता धैर्य तथा उदारता के लिए अरिकेसरि की भारी ख्याति है। याचकों को यह बड़े बहुमूल्य अलंकार देता था। आपके राज्यारंभ काल में द्वादश वार्षिक अकाल पड़ा था। जान पड़ता है कि इसीका प्रबन्ध करने में अरिकेसरि की भारी उदारता प्रगट हुई होगी। पहले आप जैन मतावलम्बी थे, किन्तु जब ज्ञान सम्बन्ध शैव ने मदुरा पहुंच कर तर्क में,जैनों को पराजित किया तब आप शैव हो गये। आपके कई पुत्र थे, जिनमें से कोच्चडैय्यन रणधीरन आपके पीछे राजा होकर सं० ७६७ पर्य्यन्त शासन करता रहा। पिता और प्रपितामह द्वारा प्राप्त तीनों तामिल राज्यों पर इनका अधिकार रहा। आपने कोंग राज्य से युद्ध किया और वादामी के चालुक्य राज को हराया। चालुक्यों के इतिहास में उधर यह लिखा हुआ है कि इस काल के विनयादित्य राजा ने पांड्यों को हराया था। इनसे युद्ध होना तो निश्चित है, किन्तु विजय का प्रश्न सन्दिग्ध रह जाता है।

रणधीरन के पीछे इसका पुत्र अरिकेसरि पराकुश मारवर्मन राजसिंह सं० ७६७ पर्य्यन्त शासक रहा। इन्होंने मालव राजकुमारी से विवाह किया जिससे जटिल पुत उत्पन्न हुआ। राजसिंह ने काशू और गंग नरेशों से युद्ध किया। पल्लवों ने इस काल में भी पांड्यों के राज में घुसकर कई युद्ध किये, किन्तु यश पांड्यों को ही मिला। जिस मालव वंश की राजकुमारी से आपने विवाह किया था वह दक्षिण का ही वंश था न कि मध्य भारत का। राजसिंह के पीछे इनका बेटा नेडुन जडैय्यन परांतक सं० ७६७ से ८२७ पर्य्यन्त शासक

रहा। आपने पल्लव, आयवेल और कुरुवों को हराया। आयवेल पोडिय पहाड़ों के शासक थे जो ट्रावनकोर रियासत में है। कुरुम्ब आयवेलों की प्रजा समझे गये हैं। पल्लव केरल और कोंगू नरेशों ने मिलकर अब पांड्य राज से युद्ध किया, किन्तु हार खाई। आपने काञ्ची वा पनिड्डूर में एक भारी विष्णु मन्दिर बनवाया। सं० ८२७से ६१६ पर्य्यन्त दूसरे राजसिंह, वरगुण महाराज और श्रीमार उपनाम परचक्र कोलाहल का राजत्वकाल एक दूसरे के पीछे रहा। राजसिंह परांतक का बेटा था तथा वरगुण का पिता और श्रीमार का पितामह। वरगुण ने पल्लव राज्य पर आक्रमण किया। इसके शिला लेखों से प्रगट है कि चोल राज्य के दक्षिणी भागों पर इसका राज्य बना रहा था। यह भारी शैव था। श्रीमार ने लंका पर आक्रमण करके उसकी राजधानी को लूटकर उजाड़ कर दिया। इसने गंग, चोल, पल्लव, मगध, और केरल नरेशों को हराया, तथा किसी माया पांड्य को भी पराजित किया। इस पांड्य से युद्ध होना प्रगट करता है कि पांड्य राज्य में इसकाल से वह घरू झगड़ा होना आरंभ हो गया था, जिसने समय पर इस राज्य का सर्वनाश किया। श्रीमार के पीछे इसका बेटा वरगुण वर्मन गद्दी पर बैठा। इसने तंजोर पर आक्रमण किया। अब गंग पल्लव नरेश अपराजित ने पश्चिमी गंग नरेश पहले पृथ्वी पति से मेल कर के वरगुण पांड्य से श्री पुरंबीय पर युद्ध किया। पृथ्वी पति मारा गया, किन्तु अपराजित की विजय हुई। इस काल पांड्य राज्य में आपस का विद्रोह इतना बढ़ा कि वरगुण पांड्य को तंजोर का युद्ध छाड वापस आना पडा। इस आंतरिक झगड़े का मूल कारण कोई उग्र पांड्य समझ

पड़ता है जिसने पांड्य राज्य प्राप्त करने के लिए लंकराज से सहायता मांगी। लंकराज्ञ वरगुण के पिता श्रीमार का पुराना शत्रु था। इसलिए उसने उग्र का पक्ष लेकर मदुरा पर आक्रमण किया। युद्ध मे क्षत पीडित होकर वरगुण पांड्य भागा और किसी अज्ञात स्थल मे जाकर मर गया। अब लंक राज ने उग्र को गद्दी पर बिठलाया और पांड्यों का सारा कोष लेकर लंका का रास्ता लिया। थोड़े ही दिनो मे श्रीमार के दूसरे पुत्र परान्तक वोर नारायण षडैय्यन ने उग्र को पकड़ कर स्वयं गद्दी प्राप्त की। इससे जान पड़ता है कि उग्र का राज्य बहुत थोड़े दिन चला। वीर नारायण का शरीरान्त सं० ९५७ के लगभग हुआ।

वरगुण के समय से ही पांड्यों का बल बहुत क्षीण हो गया था। उधर सं० ९०३ से चोलो का बल भारी उन्नति पर था। वीरनारायण के पीछे उनका बेटा राजसिंह गद्दी पर बैठा। अब पांड्यो की बलहीनता तथा अपने पराक्रम से प्रोत्साहित होकर चोलराज प्रथम परांतक ने समय समय पर उनसे तीन भारी संग्राम किये। पहला संग्राम सं० ९६६ के पूर्व हुआ, जब चोलों ने पांड्यो को करारी पराजय देकर उनकी राजधानी मदुरा पर अधिकार कर लिया। इस विजय से परांतक ने मदिरयकोंण (मदुरा छीनने वाला) की उपाधि धारण की। दूसरा युद्ध सं० ९७७ मे हुआ। इस बार पांड्य ने अपने शत्रु लंकराज से सहायता मांगी और जब लंकेश्वर की सेना पांड्य राज्य मे आई तब आपने भारी प्रसन्नता मनाई। फिर भी परांतक ने वेलूर के युद्ध मे इन दोनों सेनाओ को करारी पराजय देकर संग्रामराघव की उपाधि धारण की। तीसरा युद्ध सं० १००० मे हुआ। इस

वार पांड्य राज ने अपने देश छोड़कर लंका में शरण ली। परांतक ने पूरे पांड्य राज्य पर अधिकार करके लंका पर भी आक्रमण किया और लंकराज को हराया। अब पांड्य नरेश केरल देश में भाग गया। सं० १०२१ में चोलराज दूसरे परांतक का वीर पांड्य से युद्ध हुआ जिसमें भी चोलों की विजय हुई। अनन्तर सं० १०२६ में चोलों से लड़कर वीर पांड्य मारा गया। चोल नरेश प्रथम राजराज ने सं० १०५२ मे पांड्यों तथा चोलों को पराजित करके पांड्य राज अमर भुजंग को बन्दी कर लिया। फिर भी पाँड्य लोग लड़ते ही रहे और सं० १०७१ मे प्रथम राजेन्द्र चोल ने पांड्यों और केरलों को पराजित करके अपने पुत्र सुन्दर चोल को चोल पांड्य की उपाधि देकर पांड्य और केरल देशों पर शासन करने के लिए राज प्रतिनिधि की भाँति नियुक्त किया। इसी समय से पंच पांड्यों का समय चलता है, अर्थात् पांड्य राज्य के विविध प्रान्तों में छोटे छोटे पाँच पांड्य माँडलिक शासक हुए। फिर भी इनका प्रभाव नाम मात्र को रहा, और सं० १०७१ से ११२७ पर्य्यन्त पांड्य चोल प्रतिनिधि शासक वाली प्रथा स्थापित रही। इन प्रतिनिधियों ने पांड्यों को ऐसा दबाये रक्खा कि उन (पांड्यो) को सर उठाने तक का अवकाश न मिला। इस अन्तिम संवत् में चालुक्य चोल कुलोत्तुङ्ग चोल राज्य का शासक हुआ। इसके समय राज परिवार में कुमारों की कमी थी, सो चोल, पांड्य, प्रतिनिधि की प्रथा उठ गई। फिर भी सं० ११७५ पर्य्यन्त कुलोत्तुङ्ग के सबल शासन में पांड्यों का बल बढ़ने न पाया। इसके पीछे ज्यों ज्यों चोलों की अवनति होती गई त्यों त्यों उनके अधीनस्थ शासक सबल पड़ते गये। धीरे धीरे पांड्यों का बल बढ़ चला।

संवत् १२२४ में पांड्यों के दो प्रधान विभाग हो गये, जिनके नेता पराक्रम पांड्य और कुलशेखर पांड्य थे। लंकराज ने पराक्रम की सहायता की और चोलों ने कुलशेखर की। लंकदलपति लंकापुर, दंडनाथ ने भारत मे आकर रामेश्वरम् को लूटा, तोंडि और पाश पर अधिकार जमाया तथा मदुरा पर आक्रमण किया। इसी बीच कुलशेखर ने पराक्रम पांड्य को मार डाला और उसके पुत्र वीर पांड्य को भगा दिया। अब कुलशेखर ने दंडनाथ का सामना किया, किन्तु हार खाकर इसे चोल राज्य मे भागना पड़ा और दंडनाथ ने वीर पांड्य को मदुरा की गद्दी पर बिठलाया। अनन्तर इस पराक्रमी लंकदलपति ने चोल राज्य पर भी आक्रमण किया, किन्तु चोलों के सेनापति ने इसे पराजित करके भगा दिया। इतने बीच कुलशेखर का भी शरीरान्त हो गया और चोलो ने उसके पुत्र विक्रम पांड्य का पक्ष लिया। इन लोगो ने बढ़ कर वीर पांड्य तथा उसके पुत्रों का वध किया और मदुरा पर अधिकार जमाया। वहां विजय स्तंभ बनाकर तथा पराक्रम पांड्य को गद्दी पर बिठला कर चोल सेना वापस आई। यह घटनायें सं० १२३५ के पूर्व की हैं। थोड़े दिनों मे वीर पांड्य के पुत्र ने विक्रम पांड्य को हटाकर फिर गद्दी प्राप्त की, किन्तु सं० १२५४ में चोलों ने बढ़कर उसे फिर हराया। पांड्य देश में ज्ञातवर्मन कुलशेखर का राज्य स० १२४७ में आरंभ हुआ था। इतना पराक्रम दिखलाने पर भी चोलों का बल घटता ही गया और पांड्यों का वर्द्धमान रहा।

पांड्यों का विशेष प्राबल्य पहले मारवर्मन सुन्दर पांड्य के समय से आरंभ हुआ। आपका राजत्व काल सं०

१२७३ से १२६४ पर्य्यन्त है। आपने चोलों को पराजित किया। अनन्तर सं० १३०८ पर्य्यन्त दूसरे मारवर्मन सुन्दर पांड्यका शासन काल रहा और तब पहला जातवर्मन सुन्दर पांड्य सं० १३२८ पर्य्यन्त २० वर्ष गद्दी पर रहा। चोलों तथा पांड्यों में एक यह भी प्रथा थी कि एक राजा के होते हुए भी दूसरा उसी की इच्छा से गद्दी पर बैठ जाता था और इस प्रकार दोनों का शासन काल साथ ही साथ चलता था। सुन्दर पांड्य के साथ इसी नियमानुसार जातवर्मन वीर पांड्य सं० १३११ से १३२८ पर्य्यन्त शासक रहा। यह सुन्दर पांड्य सारे पांड्य नरेशों मे प्रधान था। इसने चेर चोल, बल्लाल, तथा अन्य राजाओं को जीत कर सब देश-विजयी का विरद प्राप्त किया और लंका को लूट कर द्वितीय राम का उपाधि पाई। इसने करनाट, राजकटाक (उडीसा का कटक) पति गजपति, काकतीय राजगणपति, होयसल सोमेश्वर तथा कोंगू नरेश को हराया! होयसल राज से आपने श्रीरंगम लिया और चोल आपको कर देने लगे। कोंगू राज्य आपके अधिकार में आया, तथा तामिल ज़िले और तैलगू प्रान्त तथा उत्तरीय तामिल प्रान्त इनके अधिकार मे हुए।

पहिला मारवर्मन कुलशेखर संवत् १३२५ में राजा हुआ। इस प्रकार एक ही स्थान पर तीन वर्षों के लिए एक दूसरे की सम्मति से तीन राजे साथ ही साथ शासक हुए। कुलशेखर का राजत्व काल सं० १३६७ पर्य्यन्त चलता है। इसके समय पांड्य देश में कई और नरेश थे, किन्तु कुलशेखर की प्रधानता थी। जातवर्मन सुन्दर पांड्य सं० १३२७ में गद्दी पर बैठा। आपका शरीरान्त सं० १३५० में हुआ। सं० १३४६ में मार्को पोलो ने मदुरा पर आप ही का शासन

पाया था। कुलशेखर तथा सुन्दर पांड्य के समय चोल राज ध्वस्त हो चुका था, सो प्राचीन चोल और पांड्य राज्यों के वृहदंश पर इन्हीं का अधिकार था। पांड्य लोगों के यहां इस काल मुसल्मान मंत्री भी होने लगे थे। कहते हैं कि कुलशेखर कभी किसी रोग के कारण खट्वासेवी न हुए और इनके राज्य में कोई विदेशी शत्रु घुसने का साहस नहीं करता था। कुलशेखर के सुन्दर पांड्य नामक औरस पुत्र था और किसी अविवाहिता स्त्री से इनके वीर पांड्य पुत्र भी हुआ था। यद्यपि सुन्दर पांड्य युवराज हो चुके थे, तथापि वीर पांड्य की बुद्धिमत्ता और शौर्य्य देखकर कुलशेखर ने सुन्दर को हटा कर वीर को ही अपना उत्तराधिकारी बनाया। इस बात से क्रोधान्ध होकर सुन्दर ने सं० १३६६ मे अपने पिता कुलशेखर का वध कर डाला। अब सुन्दर राजा हो गया, किन्तु वीर पांड्य ने पितृवध का बदला लेने के लिए सुन्दर से युद्ध ठाना। पहिले तो वीर पराजित हो गया किन्तु जब कुलशेखर के दौहित्र मानाभरण ने इसका पक्ष लिया तब सुन्दर पांड्य देश मे ठहर न सका और दिल्ली में अलाउद्दीन खिलजी के शरण गया तथा वीर पांड्य शासक हुआ। उधर सं० १३६६ से अलाउद्दीन सेनापति मलिक काफूर तामिल देश पर आक्रमण कर रहा था। भ्रातृ विरोध के कारण इसने पहले तो पांड्य राज्य के कुछ नगरों पर अधिकार जमाया, किन्तु पीछे से वीर पांड्य ने इसे पराजित करके खदेड़ दिया। मुसलमानों ने जिन हिन्दू मंदिरों को भ्रष्ट कर डाला था उनकी वीर पांड्य ने फिर से स्थापना की। वीर पाड्य पितृवध से चौदह वर्ष पूर्व गद्दी पर बैठ चुका था। इसका राजत्व काल सं० १३५२ से १३६९ पर्य्यन्त चलता है।

यद्यपि वीर पांड्य ने अपने देश पर उस काल मुसलमानों का प्रभाव न जमने दिया; तथापि तामिल के अन्य प्रान्तों पर उन्होंने बहुत कुछ प्रभाव डाला। इधर सं० १३९२ से विजय-नगर का प्रसिद्ध हिन्दू राज्य स्थापित हुआ, जिसका प्रभाव सारे तामिल देश पर बहुतायत से पड़ा। इन कारणों से पांड्यों की महत्ता शिथिल पड़ गई। यद्यपि सं० १७०६ पर्यन्त एक पाड्य राजा गद्दी पर था, तथापि इनकी प्रधानता न होने से इनका इतिहास भारतीय इतिहास मे कहने योग्य नहीं है। इस काल के पांड्य नरेशों में मुख्य ये थेः—

नाम	समय
पराक्रम पांड्य	(संवत् १४४१–१४७२)
जाटिल वर्म्मन	(संवत् १४५१–)
मार वर्म्मन	(संवत् १४७७–१४६७)
पराक्रम पाड्य	(संवत् १४४४–१५२०)
कुलशेखर देव	(संवत् १५८७–१५३०)
पराक्रम कुलशेखर	(संवत् १५२६–१५५६)
सुन्दर पांड्य	(संवत् १५२७–१६१२)
अतिवीरराम उपनाम श्री वल्लभ	(संवत् १६१४–१६५३)
शीवल मारन	(संवत् १६७२–१७०६)

हम ऊपर देख आये हैं कि महर्षि वाल्मीकि के समय भी पांड्यों का राज्य था और इधर वह सं० १७०६ पर्यन्त चला है। इससे प्रगट है कि किसी न किसी रूप में यह प्राचीन राजकुल चौबीस सै वर्ष पर्य्यन्त जीवित रहा। सं० पूर्व ७०० में भी इनके फाटक में मोती जड़े थे। प्राचीन रोम राज्य

से भी इनका व्यापारिक संबंध रहा। गौतम बुद्ध, मौर्य, आंध्र, राष्ट्रकूट, चालुक्य, कुशन, गुप्त, हूण, यादव तथा मुसलमानो तक के समयों को इन्होंने देखा। अन्त मे काल-चक्र की प्रवल गति ने इस प्राचीन राज्य कुल को भी कुचल डाला।

अब चोलों का इतिहास आरम्भ होता है। हम ऊपर देख आये हैं कि हर्षीय साम्राज्य के समय चोल राज्य नष्ट होकर पांड्यो और पल्लवों में बटा हुआ था। चोल राज्यच्युत होकर मंत्री आदि प्रधान पदों द्वारा अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे थे। जब पल्लवों तथा पांड्यो का बल शिथिल पड़ा, तब चोलों को फिर उन्नति का समय मिला। इस द्वितीय चोल शासक श्रेणि मे विजयालय पर केसरि वर्म्मन पहला नरेश है जो संवत् ९०२ में प्रधानता प्राप्त करता है। आपने मुत्तरैयनों से तंजोर प्राप्त किया और पांड्यो के आक्रमण निष्फल किये। विजयालय के पुत्र पहले आदित्य ने चेर नरेश से मित्रभाव रख कर स० ९५० के लग-भग पल्लव अपराजित को पराजित करके कांची पर अधि-कार जमाया तथा समग्र पल्लव राज्य हस्तगत किया। आपने पल्लवो के दानपत्रों का मान करके उनके द्वारा दी हुई भूमि पर हस्तक्षेप न किया। अनन्तर तलखाद वाले पश्चिमी गंगों द्वारा शासित कोंगू राज्य का कुछ भाग भी आदित्य ने प्राप्त किया। आदित्य पहला प्रभावशाली चोल नरेश कहा जा सकता है। आपके पीछे आपका बेटा पहला परांतक पर केसरी वर्मन सं० ९६३ से १०१० पर्य्यन्त शासक रहा। इन्होंने भी चेरों से मित्रता रक्खी और इनकी महारानी भी चेर वंश की राजकुमारी थी। यद्यपि पल्लवो का तुंडैमंडल देश चोलों के

अधिकार में आगया था, तथापि उनके अधीनस्थ बाण लोग स्वतंत्र प्राय थे। परांतक ने इन्हें पराजित करके इनका देश अपने अधीनस्थ शासक पश्चिमी गंग दूसरे पृथ्वीपति को दे दिया। ऐसा करने के पूर्व आपको पांड्यों से युद्ध करना पड़ा था जिसमें आपने सं० ९६६ में मदुरा पर अधिकार जमाया था। अनन्तर बाणों के समान वैदुंब शासकों को भी परांतक ने पराजित किया। पांड्यों से दूसरे युद्ध में लंक-राज ने भी उनकी सहायता की, किन्तु परांतक ने सं० ९७५ में इन दोनों को पराजित करके संग्राम राघव की उपाधि प्राप्त की। यह युद्ध वेल्लूर पर हुआ था। इस प्रकार परांतक पांड्य और पल्लव दोनों राज्यो पर अधिकारी हुआ। संवत् १००० में पांड्यों ने फिर परांतक से हार खाई और नव चोल सेनापति शेम्बियन ने पूर्वी चालुक्यों से युद्ध किया। यह घटना कुछ संदिग्ध है। युद्धों के अतिरिक्त परांतक ने सिंचाई के लिए कई नहरें खुदवाई और राज्य प्रबन्ध की उन्नति पर अच्छा ध्यान दिया।

संवत् १०१० से संवत् १०४३ पर्य्यन्त केवल तेंतीस वर्षों में पांच नरेश चोल गद्दी पर बैठे। राजादित्य, गंडरादित्य, तथा अरिंजय नामक परांतक के तीन पुत्र थे। राजादित्य पिता के सामने ही मर गया और गंडरादित्य ने सं० १०१० में केवल कुछ महीनों तक राज्य किया। आप तामिल भाषा के अच्छे पण्डित थे। आपके पीछे पर केसरि अरिंजय सं० १०१० से १०१४ पर्य्यन्त शासक रहे और उनके पुत्र राजकेसरि सुन्दर चोल उपनाम दूसरे परांतक सं० १०११ से १०२७ पर्य्यन्त गद्दी पर रहे। एक ही समय में एक ही राज्य पर अनेक राजाओं का होना चोल और पांड्यों वाले नियमों के विरुद्ध

न था। गंडरादित्य के पुत्र पर केसरि उत्तम चोल संवत् '११२६ से ११४२ पर्यन्त शासक रहे और सुन्दर चोल के पुत्र दूसरे आदित्य उपनाम करिकाल सं० १०२७ से १०३७ तक। अन्त में पहले राजराज सं० १०४२ में अकेले शासक थे। आप भी सुन्दर चोल के पुत्र थे। इनका कथन आगे किया जावेगा। इन तैंतीस वर्षों में चोलों का बल मंद रहा। संवत् ९९६ के लगभग महाराष्ट्र नरेश तीसरे कृष्ण ने चोलों को निकाल कर कांची पर अधिकार जमाया। इस प्रयत्न में उन्हें वेंदुंबो से सहायता मिली। कांची पर राष्ट्रकूटों का अधिकार पच्चीस वर्ष पर्य्यन्त रहा। परांतक पुत्र राजादित्य इन्हीं से युद्ध करने में मारा गया। इस प्रकार चोल राज्य का उत्तरी भाग इतने दिन पर्य्यन्त इनके अधिकार से अलग रहा। सुन्दर चोल ऐसा न्यायी माना गया था कि लोगों ने इसे दूसरा मनु समझा। आपने पांड्यों को पराजित करके वीर पांड्य का वध किया तथा लंकाराज्य को भी पराजित किया। आप ही ने राष्ट्रकूटों से कांची और तुंडमंडलम भी छीन लिया। इस प्रकार चोलों का घटा हुआ बल फिर से जग मगाया।

प्रथम राजराज चोल सं० १०४२ से १०७० पर्य्यन्त शासक रहा। आपने पांड्यों को हरा कर अमर नरेश को बन्दी बनाया तथा चेर उपनाम केरल देश को भी जीता। इन देशों से आपको चांदी, सोना, मोती, और मूंगे बहुत प्राप्त हुए। कुछ दिनों में इन्ही राज्यों पर आपका फिर दूसरा आक्रमण हुआ, जिससे चोरों की राजधानी किलन आपको प्राप्त हुई। पांड्यों के उदगय क़िले को भी आपने नष्ट किया और फिर लंका के एक भाग को जीता। इस काल पश्चिमी

चालुक्य के अधिकार में साढ़े सात लाख गाँव थे। उनके शासक सत्याश्रय का राजत्व काल सं० १०५४ से १०६५ पर्य्यन्त था। राजराज ने नौ लाख सेना लेकर चालुक्य देश पर आक्रमण किया। सत्याश्रय ने पूर्ण पराजय पाई और बहुत सा धन चोलों को दिया। इस आक्रमण में चोल सेना ने सत्याश्रय के प्रजा जनों को बहुत लूटा, यहां तक कि स्त्रियों, बच्चों और ब्राह्मणों का भी वध हुआ और उनकी कन्यायें छीन कर उनकी जाति बिगाड़ी गई। इतने अत्याचार करने पर भी चोलों ने चालुक्य राज्य पर कोई अधिकार न पाया, और पांड्य लोग भी पूर्णतया पददलित न हो सके। राजराज ने अपने जीवन के अंतिम संवत् में भी भारतीय महासागर के बारह हजार टापुओं को जीता। राजराज बड़ा श्रद्धालु शैव था। चालुक्यों को जीतकर इसने तंजोर में बड़ा ही विराट् और विशाल शैव मन्दिर बनवाया। यह मन्दिर दक्षिणी भारत का बहुत ही प्रशंसनीय स्तूप है। इस काल इस मंदिर के अतिरिक्त और भी बहुत से मंदिर बने। कावेरी नदी से कई नहरें निकाल कर सिंचाई का प्रबन्ध किया गया। सं० १०६६ में राजराज ने अपनी पृथ्वी को भली भांति नाप कर एक अच्छा बन्दोबस्त किया। अपने शैव मंदिर पर राजा ने बहुत सी आय की भूमि चढ़ाई जिससे उसका प्रबन्ध भली भांति चले। धार्मिक उदारता तथा सहिष्णुता ऐसी थी कि राजराज ने बौद्ध मंदिरों को भी भारी भारी दान दिये। सुन्दर [illegible] तथा वाद्यपटु लोगों को भी दूर दूर से बुला कर अपने राज्य में बसाया और नाट्य-शास्त्र के लिए प्रासाद बनवाया। राजराजेश्वर नाटक इन्हीं के सामने खेला गया था। सब साधारण की शिक्षा का भी

प्रबन्ध आपने बहुत अच्छा किया था। धार्मिक चढ़ावों की आय क़ायम रखने को आपने राजकर्मचारी नियुक्त किये जिन्होंने उनका अच्छा प्रबन्ध किया। इनके पिता भी दूसरे मनु कहलाते थे और इनकी माता उनके साथ सती हो गई थीं। राजराज के नाम को कलंकित करने वाला केवल चालुक्य राज्य के जन समुदाय पर अत्याचार था।

राजराज के पीछे इनका बेटा पहला राजेन्द्र चोल सं० १०७० में गद्दी पर बैठा और सं० ११०१ पर्य्यन्त शासक रहा। इसीके समय उत्तरी भारत पर महमूद ग़ज़नवी के प्रधान आक्रमण हुए थे। यदि यह चाहता तो भारत की रक्षा खेलते हुए कर सकता था, किन्तु उस काल दाक्षिणात्य अपने को उत्तरीय भारत से पृथक् समझते थे, और इन दोनों देशों मे भारतीय ऐक्य का भाव नहीं उठा था। राजेन्द्र चोल ने सबसे पहले तलखाद के गंगो पर आक्रमण किया। इन्हें तथा पूर्वी चालुक्यों को स्ववश करके आपने पांड्यो तथा केरलों पर चोल अधिकार दृढ़तर करना चाहा। इस विचार से इन दोनो नरेशों को पूर्ण पराजय देकर राजेन्द्र चोल ने अपने पुत्र को चोलपांडय की उपाधि दी और उसे इन दोनो राज्यों पर शासन करने के लिए राज प्रतिनिधि नियुक्त किया। अनन्तर पश्चिमी चालुक्य जयसिंह को भी हराकर आपने मध्य और उत्तरी भारत पर आक्रमण करने का विचार किया। बरार के दोनो नरेश तथा वस्तुर बंगाल कोल तथा कलिंग के राजा जीते गये। वेंगी नरेश पूर्वी चालुक्य विमलादित्य आपका बहनोई था, किन्तु वह भी पराजित किया गया। इसके पीछे जल सेना सन्नद्ध करके आपने दक्षिणी बर्मा के केदार प्रान्त पर अधिकार जमाया तथा निकोबार

पप्पाल आदि द्वीपों पर भी अधिकार किया। सुमात्रा और जावा के द्वीपों में आपके ताम्र लेख मिलते हैं। जल मार्ग से आपने चीन को भी एक पठौनी सं० १०१० में भेजी थी। राजेन्द्र चोल बड़ा विद्वान था। इसने बहुत से पुजारी उत्तर से लाकर दक्षिण में बसाये थे। इनके बेटे राजाधिराज का राजत्व काल सं० १०७५ से ११०७ पर्य्यन्त है। पिता के पीछे इनका स्वतंत्र शासन केवल पांच वर्ष रहा। आपने लंकपति का वध किया और लंका पर अधिकार जमाया। सं० ११०७ में कुप्पम के युद्ध में पश्चिमी चालुक्य सोमेश्वर आहवमल्ल द्वारा आप मारे गये और आपका छोटा भाई राजेन्द्र देव गद्दी पर बैठा। इसका राजत्व काल सं० १११६ पर्य्यन्त चलता है और तब इसका भाई वीरराजेन्द्र सं० ११२७ पर्य्यन्त शासक रहता है। प्रसिद्ध पश्चिमी चालुक्य विक्रमादित्य ने राज्य पाने के पूर्व इस चोल राज से तीन युद्ध किये थे। अन्त में पहले सोमेश्वर से लड़कर वीर राजेन्द्र मारा गया। यद्यपि विक्रमादित्य से वीरराजेन्द्र के कई युद्ध हुए थे, तथापि अन्त में इसने उन्हे अपनी पुत्री व्याह दी थी। इस लिए इसके मरने पर विक्रमादित्य ने जब चोल राजधानी में गड़बड़ देखा तब ससैन उसमें आकर अपने साले तथा वीर के पुत्र अधिराज राजेन्द्र को गद्दी पर बिठलाया। यह बड़ा ही अयोग्य शासक था और कुछ ही महीने राज्य कर पाया था कि राजेन्द्र चोल के दौहित्र राजेन्द्र उपनाम कुलोत्तुङ्ग इसका वध करके स्वयं चोल सिंहासन पर बैठा।

प्रसिद्ध चोल नरेश राजेन्द्र चोल की कन्या अमंग देवी पूर्वी चालुक्य नरेश पहले राजराज को व्याही थी। आप वेंगी के राजा थे, जहां आप का शासन काल सं० १०७६ से १११८

पर्य्यन्त रहा। इन दोनों का बेटा राजेन्द्र चाल उपनाम कुलोत्तुङ्ग था जिसे वेंगी का राज्य अथवा राज प्रतिनिधि का पद मिलना चाहिये था, क्योंकि इस काल वेंगी के पूर्वी चालुक्य चोलों के अधीन हो गये थे। कुलोत्तुङ्ग ने वेंगी की ओर आंख उठा कर भी न देखा और वहां का राज प्रतिनिधि सं० १११६ में इसका चचा सातवाँ विजयादित्य नियुक्त हुआ। इधर चोल राज्य पर कुलोत्तुङ्ग का अधिकार सं० १०२७ में हुआ। अतएव प्रगट है कि इस महत्वाकांक्षी राजकुमार ने मातृकुल का अधिकार छीनने के लिए आठ वर्ष अधिकार शून्य रहना और अपने पितृकुल का अधिकार खोना तक पसंद किया। संभव था कि इस प्रयत्न मे इसे निष्फल रहना पड़ता और उधर इसका वेंगी राज्य निकल ही चुका था, किन्तु इसने इतना जोखिम उठाना सुख से स्वीकार किया। कुलोत्तुङ्ग के राज्य पाने से प्राचीन चोल वंश का अन्त हो गया और चोल चालुक्य का आरंभ हुआ। वास्तव मे कुलोत्तुङ्ग पूर्वी चालुक्य था, किन्तु वह मातृकुल के कारण अपने को चाल कहता था। इस लिए यह राज वंश चोल चालुक्य कहलाता है। अतएव हम देखते है कि चाल राज्य सं० ६०३ से सं० ११२७ पर्य्यन्त चला और चोल चालुक्य राज्य सं० ११२७ से सं० १२००
पर्य्यन्त। कुलोत्तुङ्ग सं० ११२७ से ११७५ पर्य्यन्त शासक रहा। उधर पश्चिमी चालुक्य विक्रमादित्य सं० ११३३ से संवत् ११८५ पर्य्यन्त गद्दी पर रहा। इस प्रकार ये प्रभावशाली दोनो शासक प्रायः एक ही समय चोल और पश्चिमी चालुक्य राज्यों पर प्रतिष्ठित रहे। इन दोनों में कई बार युद्ध भी हुए किन्तु किसी की भारी जीत नही हुई, केवल इस काल के प्रायः अन्त में चालुक्यों की ओर से होय्सल नरेश ने चोलों से

मैसोर का कुछ भाग छीन लिया था। चार वर्षों तक कुलोत्तुङ्ग के लेखों में आप राजकेसरि वर्मन राजेन्द्र चोलदेव कहे गये हैं और पांचवें वर्ष से कुलोत्तुङ्ग। इनके लेख में लिखा है कि आपने कुनल नरेश को हराया तथा पांड्य नरेश का वध किया। सं० ११४२ में आपने कन्या कुमारी, सह्यादि और मलाबार जीते। इस प्रकार दक्षिण और तामिल देशों में दो ही साम्राज्य रह गये अर्थात् पूर्व में चोल और पश्चिम में चालुक्य। चालुक्यों का राज्य नर्मदा से तुङ्गभद्रा तक था। जहां से वह नदी कृष्णा से मिलती है वहां से यदि एक रेखा दक्षिण को यदातोर (गंगवाडी में) तक खोंची जावे और उत्तर में जगदल पुर बेर गढ होते हुए गोदावरी तक तो इसके पूर्व चोलों का राज्य है और पश्चिम चालुक्यों का। गंगवादी और कोगू के दक्षिण इन प्रान्तों समेत सारा देश चोलों का था और उत्तर में इनकी सीमा वेंगी तक गई थी। उसके आगे कलिङ्गों का राज्य था। पांड्य तथा केरल राज्य इस समय चोल राज्य के ही अन्तर्गत थे।

कुलोत्तुङ्ग ने जहां जहां प्रजा को विद्रोही समझा वहां वहां सामरिक शासक नियुक्त किये। सं० ११४३ में आपने अपने कुछ प्रान्तों की फिर से पैमाइश कराई। अनन्तर आपने कलिङ्ग देश को जीता, किन्तु वहां पर चोल राज्य स्थायी न हुआ। यह घटना सं० ११६६ की है। सं० १२०३ में हम कलिंग में वहां के शासक अनंत वर्मन चोडगंग का शासन देखते हैं। सं० ११७३ और ७४ के शिला लेखों में लिखा है कि होय्सल सरदार विट्टदेव विष्णुवर्द्धन ने चोलों से गंगवाडी चालुक्यों के लिए जीती। इस काल के पीछे कंगूनेगलो और कोयतूर के सीमा तक होय्सलों का अधिकार

हो गया और चोलों के अधिकार से दक्षिणी और पूर्वी मैसोर निकल गया। इस हानि के अतिरिक्त कुलोत्तुङ्ग ने और कोई क्षति न उठाई। आपके समय तड़ाग समिति, आराम निरीक्षका समिति तथा साधारण प्रवन्ध नामक तीन समितियां थीं। इनके अतिरिक्त कुडूवू निरीक्षक महाजन, क्षेत्र निरीक्षक महाजन, ग्राम निरीक्षक महाजन और उदासीन निरीक्षक महाजन थे। कृतविद्य ब्राह्मग अन्य प्रसिद्ध ग्राम निवासी तथा उपरोक्त महाजन मिलाकर ग्राम, सभा, बनती थी, जिसे सरकार की ओर से मालगुज़ारी की वसूली, माफ़ी तथा अन्य प्रकार के कई अधिकार थे। प्रजा द्वारा प्रतिनिधि चुनने के बहुत से नियम थे। यह प्रथा कुलोत्तुङ्ग से पहले वाले चोल शासकों के समय में भी प्रचलित थी। दाक्षिणात्य इतिहास के ग्रन्थों में इसका वर्णन विस्तार पूर्वक है। कुलोत्तुङ्ग कट्टर शैव था। "शिवात् परतरं नास्ति" का वाक्य इसकी जिह्वा पर सदैव रहता था। प्रसिद्ध वैष्णव सुधारक रामानुज के एक मित्र ने कुलोत्तुङ्ग को इस वाक्य का उत्तर यों दियाः—

"शिवात् परतरं नास्ति द्रोणमस्ति ततः परम्।"

दक्षिण में शिव एक बांट को कहते थे जिससे द्रोण दूसरा बांट भारी था। इस धृष्ट उत्तर को सुनकर कुलोत्तुङ्ग ने रामानुज के शिष्य की आँखें निकलवा लीं, यद्यपि इस उत्तर से उनका यह प्रयोजन था कि कुलोत्तुङ्ग का ही प्रश्न धृष्टतापूर्ण है, क्योंकि देवताओं में छोटे बड़े का विचार करना अनुचित है। इस अत्याचार के कारण महात्मा रामानुज ने चोल राज्य छोड़कर मैसूर मे कुलोत्तुङ्ग के मरण पर्य्यन्त निवास किया। कुलोत्तुङ्ग और विक्रमादित्य के पीछे यह दोनों राज्य पतनोन्मुख हो गये।

कुलोत्तुङ्ग के पीछे इनका चौथा बेटा विक्रम राजा हुआ। इसका राजत्वकाल अठारह वर्षों से अधिक न था। इसके समय रामानुजाचार्य फिर चोळ राज्य में आ बसे। विक्रम पुत्र दूसरे कुलोत्तुङ्ग ने चौदह वर्ष राज्य किया। आप साहित्य में प्रसिद्ध हैं। इनके समय चिदंबर का वैष्णव मन्दिर तोड डाला गया और मूर्त्ति समुद्र में फेंक दी गई। इसी को प्राप्त कर के रामानुज ने तिरुपति मे स्थापित किया। अनन्तर राजराज दूसरे तथा राजाधिराज दूसरे ने पंद्रह और तेरह वर्ष राज्य किया। इस प्रकार सं० ११७५ से १२३५ पर्य्यंन्त साठ वर्ष में चार चोल शासक हुए। इस काल में तामिल साहित्य की बडी भारी उन्नति हुई और पांड्यों ने भी राजनैतिक उन्नति प्राप्त की। दूसरे राजाधिराज के समय पराक्रम पांड्य और कुलशेखर पांड्य में राज्यार्थ विरोध हुआ। लंकराज ने पराक्रम का पक्ष लिया और चोलराज ने कुलशेखर का। इस युद्ध का कथन पांड्य राज्य के इतिहास में आचुका है। पहले तो लंकराज की जीत हुई किन्तु चोलोंने पीछे उन्हें हराकर अपने पक्षी को गद्दीपर बिठाया। तीसरे कुलोत्तुङ्ग चोल का समय सं० १२३५ से १२७३ पर्य्यन्त है। अपने राज्य के उन्नीसवें साल के पूर्व आपको वीर पांड्य के पुत्र को हराना पडा जिसने आपके साथी विक्रम पांड्य को गद्दी से उतार दिया था। कांची पर भी आपने किसी शत्रु को हराया। इस नरेश ने बहुत से नवीन मन्दिर बनवाये और पुरानों की मरम्मत की। इन्हीं के समय कांची के निकट शंकु वरायन, धर्मपुर के निकट आदि गैमान तथा नीलोर में तेलेगू चोलों की प्रधानता होने लगी। इसी समय पश्चिमी चोलों के प्राचीन सहायक यादव तथा होय्सल सर-

दारों ने उस राज्य को नष्ट कर दिया। कुलोत्तुङ्ग ही के समय यव नन्दिन ने तामिल व्याकरण नन्नूल बनाई। कुलोत्तुङ्ग के पीछे तीसरे राजराज सं० १२७३ से १३०० पर्य्यन्त शासक रहे। बीर बल्लाल होय्सल आपका संबंधी था। उसने एक बार पांड्या तथा दूसरे बार पल्लव कोप्पेरुंजिङ्ग को हरा कर चोलों का राज्य बचाया। पहला युद्ध सं० १२८० के पूर्व हुआ और दूसरा सं० १२८६ में जब कि चोल राज पल्लव का बन्दी हो गया था। होय्सल के इन उपकारों से चोल राज सं० १३०० पर्य्यन्त किसी प्रकार स्थापित रहा, किन्तु इसके अधीनस्थ शासक बहुत बलवान हो गये थे जिससे चोल राज्य किसी प्रकार संभल न सका। नीलोर में तेलगू चोल टिक्क उपनाम गंडगोपाल बलवान था। इसने दाक्षिणात्य प्रान्तों को दबाया। दक्षिण से बढ़कर सुन्दर पांड्य ने चोलों को पूरी पराजय दी। इधर मध्य में पल्लव सरदार अदम्य हो पड़ा। इसने चोलों के उत्तरी राज्य पर अधिकार कर लिया। इस भांति चोल राज्य क्रमशः क्षीण होता हुआ संवत् १३०० में अशेष हो गया। जिस प्रकार अधीनस्थ शासकों की उद्दंडता से पश्चिमी चालुक्य साम्राज्य सं० १२४५ के लगभग ध्वस्त हुआ था, उसी भांति चोल साम्राज्य सं० १३०० में मिट गया।

अब मैसूर प्रान्त का इतिहास उठाया जाता है। प्राचीन ग्रन्थों में इसे महिष मंडल कहते थे। समझ पड़ता है कि दुर्गा सप्तशती का महिषासुर इसी प्रान्त का राजा था। कहते हैं कि जिस काल मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त जैन साधू भद्रबाहु के उपदेशों से गृहत्यागी हुआ तब भद्रबाहु के साथ आकर मैसूर प्रान्त के श्रवण बेलगोला में बारह वर्ष रहा और

यही उसका शरीर छूटा। अशोक ने महिष मंडल में भी उप-
देशक भेजे। आंध्रों का राज्य मैसूर के उत्तरी भाग में हुआ।
मैसूर में राज्य करने वाले आंध्र शासक शातकर्णी कहलाते
थे। मैसूर के तीन प्राचीन भाग थे अर्थात् गंगवाडी ९६०००,
नोलंब वाडी ३२०००, और बनवासी १२०००। ये संख्यायें
क्या प्रगट करती हैं, सो निश्चित नहीं, किन्तु इनसे इन प्रान्तों
की आनुषंगिक महत्ता अवश्य प्रगट होती है। इन्हें अब अष्ट-
ग्राम, नन्दिदुर्ग और नागर प्रान्त कहते है। आंध्रों के पीछे
उत्तर पश्चिम मे कदंबों का शासन हुआ और उत्तर पूर्व में
पल्लवें का। कदंबों की राजधानी बनवासी थी और ज़िला
शिमोगा उनके राज्य मे था, तथा पल्लवों की राजधानी
कांची एवं राज्य तुंडाक अथवा तुंड मंडल था। इके पूर्व
इस प्रांत में बांण उपनाम महाबलि रहते थे जिनके पूर्व पुरुष
बाल अथवा महावलि थे। नवीं शताब्दि से पल्लव लाग भी
नोनंब अथवा नोलम्ब कहलाने लगे। मैसूर पर अधिकार
जमाने के लिए चालुक्यों और पल्लवों का बड़ा युद्ध हुआ
था। पल्लवों के कारण ही एक प्रान्त का नाम नोलम्बवाड़ी
हुआ। इस प्रकार नोलंब वाडी तथा बनवासी में हम कदंबों
तथा पल्लवों का प्राधान्य पाते हैं। उधर दद्दिग और माधव
नामक दो इक्ष्वाकु वंशी गंग राजकुमार सं० २५० के लगभग
शेष मैसूर पर अधिकार करते हैं जो उनके कारण गङ्गवाड़ी
कहलाता है। उनकी राजधानी कुनाल अथवा कोलाल में
होती है और नन्दिदुर्ग प्रधान क़िला। ये लोग गङ्गनद के
प्रान्त से आने के कारण गङ्ग नरेश कहलाये। कलिंग में एक
अन्य गङ्ग घराना स्थापित हुआ जो पूर्वी गङ्ग कहलाये और
जिनके कारण मैसूर के गङ्ग पश्चिमी गङ्ग हो गये। पश्चिमी

गङ्गों मे तीसरे नरेश ने तलखात को राजधानी बनाया। सातवे राजादुर्विनीत ने पूर्व और दक्षिण में बहुत से पल्लवदेश पर अधिकार किया। सम्वत् ६०० के लगभग यह राज्य बहुत सम्पन्न था और इसीलिए श्रीराज्य कहलाता था। पश्चिम गङ्गराज श्रीपुरुष ने पल्लव राजाको पराजित करके मनयपुर में अपनी राजधानी बनाई। सं० ६८७ में चालुक्यों के दो भाग हो गये अर्थात् पूर्वी और पश्चिमी। पूर्वी चालुक्यों ने कृष्णा जिले में वेंगी को राजधानी बनाया और अन्त मे राज मांडि को उधर पश्चिमी चालुक्य वातापी और कल्याणी में शासक रहे। राष्ट्रकूट नरेश ध्रुवधारा वर्ष ने पलवों से कर लिया तथा गंगों के देश पर अधिकार जमाया। अनन्तर राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द प्रभूत वर्ष ने गंग नरेश को छोड़कर उसका राज्य भी वापस दे दिया। राष्ट्रकूट अमोघवर्ष के कई लेख कनाड़ी भाषा मे मिले हैं, जिससे प्रगट है कि यह कर्नाटक और कर्नाटियों को बहुत चाहता था। जब सं० १०२६ मे चोलों ने पूर्वी चालुक्यों का दमन किया, तब उनका राष्ट्रकूटो से भी युद्ध होने लगा। इस काल गंग नरेश राष्ट्रकूटों के मित्र थे। गंग नरेश बूतुग राष्ट्रकूट अकालवर्ष का बहनोई था। इसने युद्ध में राजादित्य चोल को मार कर अपने साले के साथ उपकार किया। इसके बदले राष्ट्रकूटों ने मैसूर के उत्तर पश्चिम के ज़िले बूतुग को दिये।

संवत् ८७७ में शत्रमल्ल गंग गद्दी पर था। इसके समय गंगों की भारी महत्ता हुई और इसे सत्य वाक्य की उपाधि मिली। यह उपाधि शत्रमल्ल के पीछे सब गंग नरेशों ने धारण की। शत्रमल्ल के पीछे नीति मार्ग, सत्य वाक्य एरियप्पा और बूतुग क्रमशः एक दूसरे के पीछे राजा हुए।

इसी वृतुग का वर्णन अकाल वर्ष के सम्बन्ध मे ऊपर हुआ है। इसके उत्तराधिकारी मरसिंह ने नोलंबों को पूर्णतया नष्ट किया। सं० १०५४ और १०६१ में चोलो ने गंगराज को हराकर गंगवाड़ी पर अधिकार कर लिया। मैसूर का शेष भाग विक्रमादित्य चालुक्य के अधिकार में आया। इस प्रकार पश्चिमी गंगों का अधिकार सदा के लिए जाता रहा। दक्षिण और तामिल देशो में सं० १० ५० के लगभग पश्चिमी चालुक्यों, पूर्वी चालुक्यों, और चोलों का प्रभाव था, किन्तु पूर्वी चालुक्यों पर चोलों का अधिकार हो गया और गंग राज्य भी पहले उनके अधिकार मे आया, किन्तु थोड़े ही दिनों में पश्चिमी चालुक्यों का प्रभाव गंगवाड़ी में बैठ गया। यह प्रभाव होय्सल घराने द्वारा पश्चिमी चालुक्यों को मिला, किन्तु उनका अधिकार बहुत करके कहने मात्र को रहा और वास्तविक शासन होय्सल ही करते रहे। अंत में यह नाममात्र का भी अधिकार चालुक्यों से निकल गया। इस स्थान पर होय्सलों का कुछ वर्णन आवश्यक है।

होय्सल पहले पश्चिमी घाट के छोटे छोटे रईस थे। इनका पूर्व पुरुष सल था। एक समय किसी जैन पुजारी को कोई चीता घेरे था। सल को वहां देखकर उसने कहा पोय्सल (पैसल मारो)। यह सुन सल ने उस चीते को मार डाला। इसी समय से उनका और उनके वशधरों का नाम पोय्सल हो गया। होय्सल शब्द इसी पोय्सल से निकला है। ये लोग यादव हैं और इनकी राजधानी दोर समुद्र (द्वार समुद्र) मे थी। पोय्सल नरेश विनयादित्य का राजत्व काल संवत् ११५८ पर्यन्त रहा। सं० ११३२ में आपने पश्चिमी चालुक्य विक्रमादित्य को उनके भाई सोमेश्वर

के प्रतिकूल सहायता दी थी। आपके समय इस राज्य में कोंकण, अल्वखेड (दक्षिणी कनाडा) यल नाद, तलकाद (सीमा मैसूर का दक्षिणी भाग), और सान्तिमले (कृष्णा ज़िला में) सम्मिलित थे। इनका पुत्र एरियङ्ग पश्चिमी चालुक्यों का भारी सेनापति था। इसने मालवा की राजधानी धार जलाई। यह अपने पिता के सामने मर गया और विनयादित्य के पीछे उसका पौत्र तथा एरियङ्ग का पुत्र वल्लाल सं ११५८ से गद्दी पर बैठा। इसने अपनी राजधानी वेलूर में कर दी, यद्यपि द्वार समुद्र भी दूसरी राजधानी रही। इसने कई छोटे छोटे युद्ध किये। सं० ११६३ के पीछे इसका नाम नहीं आता यद्यपि इसका और कुछ दिन शासन करना संभव है। इसके पीछे इसका भाई विट्टिदेव गद्दी पर बैठा, जिसका वास्तविक शासन काल सं० ११६१ से ११९८ पर्यन्त है। यह पहले जैन था, किन्तु महात्मा रामानुज के उपदेशों से वैष्णव हो गया और तब इसने अपना नाम विष्णुवर्द्धन रक्खा। इसी के सामने रामानुज से बहुतेरे जैनों का वाद हुआ जिन्हें पराजित करके इस उपदेशक ने कोल्हू में पिरवा दिया। इस कोल्हू में बहुत जैन साधुओं के अतिरिक्त बहुत से साधारण जैन भी पिरवाये गये। यह कोल्हू तुंडनोर में अब भी रक्खा हुआ है। विष्णुवर्द्धन के वैष्णव होने से मैसूर में जैन मत का भारी ह्रास हुआ तथा वैष्णव मत का प्रभाव बढ़ा। इधर चोल सम्राट शैव थे जिन्होंने शैव मन्दिरों में बहुत कुछ संपत्ति चढ़ाई। वे भी यदा कदा वैष्णव मन्दिरों पर संपत्ति चढ़ाते थे। विष्णुवर्द्धन वैष्णव होने के पीछे हिन्दू मत का भारी परिपोषक हुआ। इसने अपने प्राचीन राज्य की सारी आय ब्राह्मणों को दे दी और

स्वय जीते हुए देशों पर संताप किया। यह होयसलों में सबसे प्रधान शासक था। ऊपर कहा जा चुका है कि मैसूर का गंगवाड़ी प्रान्त सं० १०६१ में चोलों के अधिकार में आया था। संवत् ११७२ में विष्णुवर्द्धन ने यह प्रान्त छीन कर चोलों को मैसूर से निकाल दिया। विट्टदेव ने अनेक विजयों द्वारा अपने राज्य को बहुत बढ़ाया। अनन्तर इन्होंने अपने नाममात्र के स्वामी पश्चिमी चालुक्य विक्रमादित्य से भी युद्ध किया। उनकी ओर से अचुगि ने इन्हें पराजित कर दिया। इस प्रकार होयसलों का उन्नतिशील प्रभाव कुछ रुक गया। विक्रमादित्य का शरीरान्त सं० ११८३ में हुआ। सं० ११८७ में विष्णुवर्द्धन के अधिकार में कोंगू जंगली तलकाद गंगवाड़ी, वनवासे, हनुगल, और कुलमेरे थे। इन अन्तिम दो को छोड़कर शेष को वर्तमान मैसूर कहते हैं। आपकी राजधानियां तलकाद और वंकापुर थीं। इतने प्रभावशाली होने पर भी सं० ११६४ पर्यन्त अपने को विक्रमवंशी सोमेश्वर का अधीनस्थ शासक माना और अन्त पर्यन्त अपने को स्वतन्त्र नरेश कभी नहीं कहा। सं० ११६८ में आपका शरीरान्त वंकापुर में हुआ और आपका बेटा विजय नरसिंह केवल आठ वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठा। इसका शासन सं० १२३० पर्यन्त रहा। इसने अच्छे वंशों की तीन सौ चौरासी स्त्रियों के साथ विवाह किया। इसका पुत्र वीर बल्लाल सं० १२२२ में उत्पन्न हुआ। नरसिंह का शरीरान्त चालीस ही वर्ष में हो गया, और इसके पीछे वीर बल्लाल ने संवत् १२३० से १२८१ पर्यन्त राज्य किया। सं० १२३१ से चालुक्यों की अधीनता का कथन इस राज्य में कोई नहीं होता है। संवत १२३५ के लग-

भग आपने पांड्यों की राजधानी उच्चंग्य दुर्ग पर अधिकार जमाया किन्तु पांड्यों की अधीनता स्वीकार करने पर उसे विजय पांड्य को फेर दिया। अनन्तर पश्चिमी चालुक्यों की बलहीनता देखकर आपने उनके देश पर आक्रमण किया और सं० १२४६ अथवा १२४८ में चौथे सोमेश्वर और उनके राजभक्त सहायक बोम्म को पराजित करके कृष्णा नदी पर्यन्त पश्चिमी चालुक्य देश पर अधिकार किया। देवगिरि के यादव स्यूण लोग भी भिल्लम की अध्यक्षता में कृष्णा के उत्तर पर्यन्त पश्चिमी चालुक्य देश पर अधिकृत हो गये थे। सं० १२५७ में स्यूणों तथा होय्सलों का सोरसूर पर भारी युद्ध हुआ जिसमे स्यूणों ने पराजय पाई। अब सं० १२४८ में वीर बल्लाल ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा करके श्री पृथ्वीवल्लभ, समस्त भुवनाश्रय, महाराजाधिराज परमेश्वर और परम भट्टारक की उपाधियां लीं। बल्लाल ने मैसूर की महत्ता को बहुत बढ़ाया। आपका प्रभाव ऐसा बढ़ा कि पीछे वाले नरेश बल्लाली भी कहाते थे। दक्षिण में बल्लाल ने पांड्यों के अतिरिक्त पल्लव और मगध नरेशों को भी हराया तथा चोल गद्दी की रक्षा की। जब बल्लाल दक्षिण के युद्धों में लगे हुए थे, उस काल स्यूणों ने उत्तर से बढ़ कर कृष्णा से दक्षिण पर भी अपना राज्य फैलाया।

वल्लाल के पीछे सं० १२८१ से १३११ पर्य्यन्त नरसिंह तथा सोमेश्वर का राज्य रहा। इनके समय स्यूणो ने द्वार समुद्र तक जीतने का प्रयत्न किया, किन्तु कुछ सफलता पाने के पीछे वे खदेड़ दिये गये। इधर होय्सल नरेश भी तलकाद से हटकर कन्ननूर अथवा विक्रमपूर मे रहने लगा जो श्रीरंगम अथवा त्रिचनापल्ली के निकट है। सोमेश्वर के

पीछे सं० १३११ में इसके पुत्रों में राज्य का बटवारा हो गया जिसमें राजधानी और कन्नड राज्य तीसरे नरसिंह ने पाया और ज़िला कोलार तथा तामिल प्रान्त रामनाथ को मिले। स्यूण नरेश महादेव का नरसिंह से युद्ध हुआ था। सं० १३४६ में तीसरा वल्लाल गद्दी पर बैठा। इसके अधिकार में पूरा राज्य फिर से आया, किन्तु सं० १३६७ मे अलाउद्दीन के सेनापति मलिक काफूर ने मैसूर पर आक्रमण किया। वल्लाल पराजित होकर बन्दी हो गया और द्वार समुद्र लूटा गया, जिससे मुसलमानों ने बहुत सा सोना प्राप्त किया। वल्लाल तो छोड दिया गया, किन्तु मुसलमान लोग इसके पुत्र का शरीर बंधक की भांति दिल्ली ले गये। यह बेटा सं० १३७७ में छोडा गया। अब मुसलमानों ने गणपति नरेशों का वरंगल राज्य भी छीन लिया। इधर मैसूर के राजा ने मुसलमानो से फिर विद्रोह किया। अब सं० १३८३ में मुहम्मद तुग़लक़ ने एक और सेना भेजी जिसने होय्सल राजधानी को नष्ट कर दिया। राजा तुंडनूर चला गया और वहां से भी दक्षिणी आर्काट पहुंचा। फिर वापस आकर विरूपाक्ष पत्तन पर उसने तुर्कों का सामना किया। विरयी के युद्ध में सं० १३९६ में यह मुसलमानों द्वारा मारा गया और इसका पुत्र विरूपाक्ष वल्लाल सं० १४०० में गद्दी पर बैठा। उधर सं० १३९२ से इसी प्रान्त में हिन्दुओं के प्रसिद्ध राज्य विजयनगर की स्थापना हो गई थी। इसलिए विरूपाक्ष वल्लाल का अधिकार मृतप्राय था। इसी समय से प्रसिद्ध होय्सल घराने का अन्त समझना चाहिये। इस प्रकार इसका शासन काल प्रायः ढाई सौ वर्ष चलता है। मैसूर का शेष इतिहास यथा स्थान लिखा जावेगा।

करनाटकीय इतिहास विशेषतया परावलम्बी होने से उस का यहां दिग्दर्शन मात्र काफ़ी समझा जाता है ।

कर्नाटक ।

यह कनारी प्रदेश का नाम है जो वेदर (हैदराबाद दक्षिण से ६० मील उत्तर-पश्चिम) से दक्षिण-पूरब की ओर पूर्वी घाट पहाडी के पास से कोयम्बटोर और बालाघाट होता हुआ पश्चिमी घाट पहाड़ी के निकट से पूर्व और उत्तर-पूर्व दिशा को वेदर की ओर जाकर समाप्त होता है । वास्तव मे मैसोर प्रान्त को कर्नाटक कहना चाहिए पर अब कारोमंडल समुद्र तट की निकटस्थ भूमि को जो पूर्वी घाट के नीचे है करनाटक कहते हैं । यह मद्रास प्रान्त में सम्मिलित है और उसके अधिकांश भाग पर विस्तृत है पर प्राचीन कर्नाटक देश के बम्बई वाले अंश को ही अब इस नाम से अधिक पुकारते हैं जिसमें वेलगाम, धारवार और बीजापुर के पूरे ज़िले तथा उत्तरी कनारा का कुछ अंश, दक्षिणी मराठा एजंसी की रियासतें और रियासत कोल्हापुर सम्मिलित है । इसका विस्तार कुल मिलाकर ५०७४ वर्ग मील है और जन संख्या प्रायः पौने चार लाख । इसमें कपास की खेती वाली कावर भूमि बहुत है । पांचवी शताब्दी में वराहमिहिर ने कर्नाटक का नाम लिखा है । प्राचीन काल में निम्नलिखित वंशों के राजाओं ने इस प्रदेश पर राज्य किया—आन्ध्र, कदम्ब, पल्लव, गंग, पूर्वी चालूक्य, राष्ट्रकूट, चोल, उत्तर चालूक्य व होय्सल । इसके पीछे विजयनगर साम्राज्य ने इस पर अपना अधिकार जमाया ।

मैसूर का होय्सल वंश।

संवत्	नंबर	नाम	किसका पुत्र	विवरण
११०५	(१)	विनयादित्य		
	(२)	यरियंग	नं० १	इसने राज्य नहीं किया।
११५८	(३)	प्रथम बल्लाल	नं० २	
११६१	(४)	विष्णुवर्द्धन	नं० २	
११६८	(५)	प्रथम नरसिंह	नं० ४	
१२३०	(६)	वीर बल्लाल दूसरा	नं० ५	
१२८१	(७)	नरसिंह दूसरा	नं० ६	
१२६१	(८)	वीर सोमेश्वर	नं० ७	
१३११	(९)	वीरनरसिंह तीसरा	नं० ८	
१३४६	(१०)	वीरवल्लाल तीसरा	नं० ६	

(विशेषतया डफ के आधार पर)

वेंगीवाले पूर्वी चालुक्यों का वंश

(इनके अतिरिक्त पिठापुरम् में १४ पूर्वी चालुक्य नरेश सं० १२५६ पर्य्यन्त हुए हैं)।

संवत्	नम्बर	नाम	किसका पुत्र	विवरण
६७२	(१)	विष्णुवर्द्धन प्रथम	दूसरे पुलकेशी का भाई	यह पुलकेशी पश्चिमी चालुक्य था
६६०	(२)	जयसिंह प्रथम	नं० १	
७२०	(३)	इन्द्र भट्टारक	नं० १	

संवत्	नम्बर	नाम	किसका पुत्र	विवरण
७२०	(४)	विष्णु वर्द्धन दूसरा	नं० ३	
७२९	(५)	मंगियुवराज	नं० ४	
७५२	(६)	जयसिंह दूसरा	नं० ५	
७६६	(७)	कोक्किलि	नं० ५	
७६६	(८)	विष्णु वर्द्धन तीसरा	नं० ५	
८०३	(९)	पहला विजयादित्य भट्टारक	नं० ८	
८२१	(१०)	विष्णु वर्द्धन चौथा	नं० ९	
८५६	(११)	विजयादित्य दूसरा	नं० १०	
९००	(१२)	विष्णु वर्द्धन पांचवां	नं० ११	
९०१	(१३)	विजयादित्य तीसरा	नं० १२	
९४५	(१४)	प्रथम भीम	नं० १२ का पौत्र	युवराज प्रथम विक्रमादित्य का पुत्र ।
९७५	(१५)	विजयादित्य चौथा	नं० १४	
९७५	(१६)	प्रथम अम्म	नं० १५	
९८२	(१७)	विजयादित्य पांचवां	नं० १६	
९८२	(१८)	ताड़प	नं० १२ का पुत्र	युधामल्ल का पुत्र
९८२	(१९)	विक्रमादित्य दूसरा	नं० १४	
९८३	(२०)	भीम तीसरा	नं० १६	
९८४	(२१)	युधामल्ल दूसरा	नं० १८	
९९१	(२२)	भीम दूसरा	नं० १५	
१००२	(२३)	दूसरा अम्म	नं० २२	

संवत्	नम्बर	नाम	किसका पुत्र	विवरण
१०२७	(२४)	दानार्णव	नं० २२	इसके पीछे २७ या ३०, वर्ष का अज्ञात काल है।
१०६०	(२५)	शक्तिवर्मन	नं० २४	
१०७२	(२६)	विमलादित्य	नं० २४	
१०७६	(२७)	प्रथम राजराज	नं० २६	
११२५	(२८)	कुलोत्तुंग चोडदेव पहला	नं० २७	इसने पूरा चोल राज्य प्राप्त किया।
११७५	(२९)	विक्रम चोड़	नं० २८	चोलराज।
११९३	(३०)	कुलोत्तुंग चोड़देव दूसरा	नं० २९	चोलराज।
१२०७	(३१)	राज राजदेव दूसरा	नं० ३०	चोलराज।
१२२२	(३२)	राजाधिराज दूसरा	नं० ३१	चोलराज।
१२३५	(३३)	कुलोत्तुंग तीसरा	नं० ३२	चोलराज।
१२७३	(३४)	राजराज तीसरा	नं० ३३	सं० १४०० में राज्य समाप्त।
१४०२	(३५)	राजेन्द्र	नं० ३४	सं० १४२४ तक रहे। राजा नाम मात्र को थे।

वाण नरेशों का वंश।

संवत्	नम्बर	नाम	किसका पुत्र	विवरण
	(१)	जयनन्दि वर्मन		

संवत्	नम्बर	नाम	किसका पुत्र	विवरण
	(२)	विजयादित्य	नं० १	
	(३)	मल्लदेव	नं० २	
	(४)	वाण विद्याधर	नं० ३	गंगनरेश शिव महाराज (सं० १०५७ ७३) की पौत्री का पति
	(५)	प्रभु मेरुदेव	नं० ४	
	(६)	पहला विक्रमादित्य	नं० ५	
	(७)	दूसरा विजयादित्य	नं० ६	
	(८)	विजयवाहु विक्रमादिय दूसरा	नं० ७	

(डफ़ के आधार पर)

वारंगल के काकतीय नरेश ।

इस अध्याय के समाप्त करने के पूर्व काकतीय नरेशों का भी कुछ कथन आवश्यक समझ पड़ता है। इस वंश का पहला राज्यस्थल अन्मकोंड उपनाम अनुमकुण्ड था। यहां सं० १२१६ में चालुक्य रचना शैली का एक सहस्र स्तंभयुक्त देवमन्दिर बनाया गया था। महाराज रुद्रदेव के समय राजधानी अनुमकुण्ड से हटा कर वारंगल की गई। इसी को ओरुंगल्लू एवं एकशिल नागरी भी कहते हैं। काकतीय नरेश सूर्य्य वंशी कहे जा सकते हैं, किन्तु नीलोर ज़िले के कुछ शिला लेखों में ये शूद्र कहे गये हैं।

पूर्वीय चालुक्य वेंगी नरेश धनार्णव के पीछे २५ से २७ वर्ष तक अराजकता रही। अनन्तर जब शान्ति हुई, तब

वेंगी नरेशों का चोलों से सम्बन्ध हुआ। समय पर वेंगीपति कुलोत्तुंग को मातामह के नाते तथा अन्य कारणों से चोल राज्य प्राप्त हो गया। इस व्यवसाई नरेश ने तो चोल राजधानी में रहते हुए भी दूरस्थ वेंगी प्रान्त पर शासन शिथिल होने न दिया, किन्तु इसके पीछे यह बात स्थापित न रही। पश्चिमी चालुक्य नरेशों ने वेंगी को सूनी देख वहां राज्य फैलाने का डौल डाला। किसी समय वेंगी महाराष्ट्र राज्य का एक प्रान्त रहा भी था, जैसा कि ऊपर उचित स्थलों पर कहा भी जा चुका है। इस कारण से पाश्चात्य चालुक्यों को वेंगी का विशेष लालच था। इन लोगों के ये प्रयत्न चोल राज्य के वेंगी वाले स्थानीय शासक रोका करते थे। इसलिए इन स्थानीय शासकों का बल बढ़ा। फल यह हुआ कि यद्यपि पाश्चात्य चालुक्यों ने वेंगी न पाई तथापि इसके स्थानीय शासकों ने प्रबल पड़ कर अपने को निर्बल चोल राज्य से स्वतन्त्र कर लिया। इस प्रकार यह काकतीय राज्य स्थापित हुआ। इस वंश का पहला राजा बेटा था। इसके पूर्व पुरुषों में प्रोल, दुर्जय तथा करिकाल के नाम आते हैं।

बेटा उपनाम बेटमराज की उपाधि त्रिभुवनमल्ल थी। इनके अधिकार में आन्ध्र देश का एक भाग था। कहते हैं कि इनके मन्त्री बैज ने इन्हें पश्चिमी चालुक्य सम्राट के पैरों पर झुका कर सब्बी प्रान्त दिलाया, जिसे एक सहस्र का जिला कहते हैं। बेटा को पूर्ण स्वतंत्रता कभी न मिली। इन्होंने अपने नाम से कभी दान पत्रादि जारी न किये। इन्हें महामंडलेश्वर कहते थे। एक बार इन्हें पाश्चात्य चालुक्य छठवें विक्रमादित्य ने पराजित किया। बेटा के पीछे आपका पुत्र द्वितीय प्रोल गद्दी पर बैठा। इसे प्रोललरस, प्रोडराज

तथा प्रोलराज भी कहते हैं। इनके विषय सं० ११७४ का केवल एक लेख मिला है। प्रोल ने तीसरे तैलप को वन्दी बनाया, किन्तु पीछे से छोड़ दिया। तीसरे तैलप का राजत्व काल सं० १२२४ तक है। प्रोल के उत्तराधिकारी रुद्र का सब से प्रथम लेख सं० १२१६ का है। इससे प्रोल का राजत्व काल भारी समझ पड़ता है और विचार किया जाता है कि जब यह गद्दी पर बैठा तब वयस्क न था। ऐसी किम्वदन्ती भी है। तेलुगू के ज़िलों में प्रोल ने कई विजय प्राप्त कीं। इनके विषय में भविष्य भाषण हुआ था कि इनका वध इन्हीं के पुत्र द्वारा होगा। कहते हैं कि उड़ीसा नरेश गजपति ने प्रोल के राज्य पर आक्रमण किया। उस काल किसी प्रकार प्रोल के पुत्र के न चाहते हुए यकायक उसके हाथ से धोखे में इनका वध हो गया। इस कथा का कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता है। प्रोल ने बहुत से ताल बनाकर देश की सिंचाई को उन्नति दी। प्रोल के पीछे इनका बड़ा बेटा रुद्र गद्दी पर बैठा। इनके विषय में दो लेख मिले हैं जो सं० १२१६ तथा १२४२ के हैं। आपने दोम्म को हराया तथा मैलिगिदेव को जीत कर उसका राज्य छीन लिया। कहते हैं कि यह मैलिगिदेव भिल्लम यादव के पहले का राजा मुल्लुगि था। भिल्लम का राजत्व काल सं० १२४४ से १२४८ तक था। इनका राज्य वास्तव में स्यूण देश में था जो पूरा काकतीयों के अधिकार में नहीं आया था। समझ पड़ता है कि रुद्र ने उसका कोई भाग पाया होगा। रुद्र ने काकतीय राज्य को बहुत बढ़ाया। इनके समय इस राज्य की सीमायें निम्नानुसार थीं:—पूर्वीय सीमा—समुद्र; दाक्षिणात्य—

श्रीशैलम; उत्तरीय—मलयवन्न; तथा पश्चिमी—कटक पर्य्यन्त पश्चिमी चालुक्य राज्य।

रुद्र धार्मिक स्वभाव के मनुष्य तथा सद्गुणी थे। आपकी सेना बड़ी थी और आप अच्छे दलनियन्त थे। आपने बहुत से मन्दिर बनवाये तथा विद्वानों को उदारता से आश्रय दिया। कहते हैं कि कांची और विन्ध्याचल के बीच के सब नरेश आपकी सहायता चाहते थे। रुद्र के पीछे इनका भाई महादेव राजा हुआ। इसके पुत्र गणपति का राजत्व काल सं० १२५५ से चलता है। इससे महादेव का राजत्व काल छोटा समझ पड़ता है। काकतीयों ने रुद्र के समय यादवों को हराया था। इससे भिल्लम के उत्तराधिकारी जैतुगि ने इस राज्य पर आक्रमण किया। जान पड़ता है कि इस युद्ध में महादेव का वध हुआ और इनका पुत्र गणपति बन्दी कर लिया गया, तथा सन्धि हो जाने पर छोड़ा गया।

गणपति सं० १२५५ में गद्दी पर बैठे। आपके राज्य के बासठवें वर्ष का एक लेख शाके ११८२ (सं० १३१७) का है। नातवाडी और कोट के नरेश आपके सम्बन्धी थे। जायन को बहनें नारम और पेरम आपको व्याही थीं। जायन को आपने मन्त्री बनाया। इन सम्बन्धों से गणपति को बहुत बल प्राप्त हुआ। सं १२६२ के पूर्व गणपति ने प्रसिद्ध यादव नरेश सिंहन को पराजित किया। आपने चोल, कलिंग, करनाट, लाट और वेलनाड़ नरेशों से भी सफलता पूर्वक युद्ध किये। इस काल चोलों का विशाल राज्य ध्वस्त हो रहा था। चोलों की निर्बलता से गणपति का बल बहुत बढ़ा। फिर भी पांड्यों की बलवृद्धि से काकतीयों ने तामिल देश में

अपना राज्य खो दिया। सं० १३०१ से गणपति ने क्रमशः कई कर प्रजा को छोड़ कर वाणिज्य को उन्नत किया। गणपति के समय काकतीय रज्य की वृद्ध हुई। आपने वहुत से मन्दिर और प्रासाद वनवाये, धार्मिक दानो की महिमा बढ़ाई, नहर विभाग को उन्नत किया, तथा आपके समय धार्मिक उन्नति भी वहुत हुई। गणपति के कोई पुत्र न था, सो अपनी कन्या रुद्राम्वा का नाम रुद्रदेव महाराज रक्खा और उसे राजाओं के योग्य शिक्षा दी। सं० १३१८ मे गणपति के पीछे रुद्राम्वा गद्दी पर बैठी। किसना ज़िले का गुड़िमटल वाला क़िला इन्हीं के राजत्वकाल मे बना। रुद्राम्वा गद्दी पर वैठने से पूर्व विधवा हो चुकी थी। इसने तीस वर्ष वड़ी सफलता से राज्य किया। सिंहासनासीन होने से दश वर्ष पूर्व से ही गणपति ने अपने ही साथ इसे भी शासिका वना दिया था। इसीसे सं० १३४८ मे जब वेनिस का यात्री मार्को पोलो रुद्राम्बा के देश मे आया, तब उसने लिखा कि यह प्रभावशालिनी युवती ४० वर्ष से वडी बुद्धिमत्ता से राज्य करती है। उसके अनुसार रुद्राम्वा बडी न्यायप्रिय शासिका थी और इसी लिए उसने अपने पूर्व पुरुषों के समान ही उत्तम प्रणाली से राज्य किया और उस की प्रजा उससे वहुत अनुरक्त थी। रुद्राम्वा के स्थानीय शासकों ने वड़ी भक्ति से इसके शासन का समर्थन किया। आपके राज्य में अखण्ड शान्ति रही। रुद्राम्वा के केवल एक कन्या थी जिसका नाम मुम्मदाम्वा था। जव इस कन्या का वेटा रुद्र वयस्क हुआ, तव रुद्राम्वा ने गद्दी छोड़ कर इसे राजा वना दिया।

रुद्र उपनाम प्रताप रुद्र सं० १३४८ से सिंहासनासीन हुआ। आपके समय सं० १३६५ में मलिक फ़ख्रुद्दीन जूना के आधिपत्य में मुसलमानों ने वारंगल पर आक्रमण करने को एक सेना कड़ा मानिकपूर से भेजी। उत्तरीय भारत के मुसलमानों का यह पहला आक्रमण वारंगल पर हुआ। इनके आक्रमणारंभ में ही वर्षा ऋतु लग चुकी थी, सो मुसलमानी दल कुछ कर न सका और हताहत संख्या में भारी हानि उठा कर उत्तर को चला गया। सं० १३६८ में मलिक काफ़ूर के आधिपत्य में एक दूसरा मुसलमानी दल तिलङ्ग देश पर आक्रमण करने को भेजा गया। वारंगल के दुर्ग का घेरा २२५४२ गज़ का था। यह दुर्ग मुसलमानो ने सब ओर से घेर लिया। यह देख ३००० हिन्दुओं ने वनकदेव की अध्यक्षता में रात का मुसलमानों पर छापा मारा, किन्तु वे पराजित हो गये। अनन्तर मुसलमानो ने दुर्ग के बाहरी कोट पर कठिन परिश्रम से अधिकार कर के भीतरी दीवालों पर चढ़ना आरंभ किया। यह देख प्रतापरुद्र भयभीत हो गया और उसने आत्म समर्पण को सूचना देने को मुसलमानी सेनापति के पास अपनी एक ऐसी स्वर्ण मूर्ति भेजी, जिसके गले में अधीनता सूचक सोने की जंजीर बंधी हुई थी। राय प्रतापरुद्र ने ३०० हाथी, ७००० घोड़े तथा बहुत सा मणि धन मुसलमानो के भेंट किया और दिल्ली को वार्षिक जज़ीया देना भी स्वीकार किया। इस नियम पर सन्धि होगई और मार्च सं० १३६६ में मलिक काफ़ूर वारंगल से चला गया। कहते हैं कि इस आक्रमण में मलिक काफ़ूर ने देवगिरि तथा वारंगल को पराजित किया और तोंडैमण्डलम, चोलमंडलम, तथा अन्य देशों पर अधिकार जमाया और मन्दिरों को

लूटकर वह प्रतिमायें और कोष ले गया। जब दक्षिण से वह अपने स्वामी आलाउद्दीन के पास पहुंचा, तब उसने सम्राट को ३१२ हाथी, २०००० मन सोना, मणिमुक्ता पूर्ण बहुत से बक्स तथा अन्य बहुमूल्य पदार्थ दिये। सोने में अत्युक्ति समझ पड़ती है। सं० १३६६ में मुसलमानी सेना-पति ने देवगिरि के राजा का वध किया तथा तेलिंगन के काकतीयों और करनाट के बल्लालों से कर वसूल किया।

मुसलमानी आक्रमणों के गडबड़ से लाभ उठाकर केरल रविवर्मन कुलशेखर ने कांची पर अधिकार कर लिया। यह देख प्रतापरुद्र ने नीलोर पर अधिकार जमाया और सं० १३७३ में कांची फिर से प्राप्त की। इस काल उड़ीसा के किसी नरेश ने काकतीय राज्य पर आक्रमण किया किन्तु वह पराजित हुआ। यह घटना निश्चित नहीं है। प्रतापरुद्र ने इस काल अपना बल ऐसा बढ़ा समझा और राजपरिवर्त्तन से दिल्ली का बल ऐसा मन्द माना कि कर देने से इनकार कर दिया। यह देख सं० १३८० मे ग़यासुद्दीन तोग़लक़ ने अपने बेटे मलिक फ़खुद्दीन जूना को तेलिंगन पर आक्रमणार्थ भेजा। मुसलमानों ने देश लूटना आरंभ किया ओर प्रतापरुद्र ने उनपर आक्रमण किया, किन्तु हारकर इसे वारंगल वापस आना पड़ा। अब दिल्ली के युवराज जूना ने वारंगल भी घेरा। दोनों ओर से कराल युद्ध हुआ और दोनों दलों को भारी हानि पहुंची। अन्त में मुसलमानी दल में महामारी का प्रकोप हो उठा जिससे सैकड़ों लोग नित्य मरने लगे। उधर सुलतान दिल्ली का मृत्यु समाचार उड़ा दिया गया। इन बातों से हतोत्साह होकर युवराज देवगिरि वापस गया, किन्तु शाही मृत्यु समाचार की असत्यता जानकर दो ही महीनों में

वापस आकर उसने वारंगल फिर घेरा। इस वार उसका बेदर तथा वारंगल पर अधिकार हो गया और राजपरिवार सहित प्रतापरुद्र बन्दी होकर दिल्ली भेजा गया। अब तेलिंगन पर शासनार्थ मुसलमान वाइसराय नियत करके युवराज भारी लूट सहित दिल्ली वापस गया। सं० १३८४ में वारंगल, मलाबार, मैसूर तथा करनाट मुसलमानो राज्य के अंग हो गये।

इस काल दक्षिण तथा तामिल भारत मे मैसूर के होय्सल, देवगिरि के यादव तथा वारंगल के काकतीय शक्ति सम्पन्न शासक थे। इन तीनों का ध्वंसन मुसलमानों द्वारा हुआ। फिर भी मुसलमानो को इस काल ये राज्य पूर्णतया प्राप्त न हुए और थोड़े ही दिनों में यादवों तथा होय्सलों के स्थान पर विजयनगर का विशाल साम्राज्य स्थापित हुआ तथा काकतीयों के स्थान पर समय पर तेलुगू के रेड्डि राज्यों का प्रादुर्भाव हुआ।

२९वां अध्याय

राजपूत, मुसल्मानागमन और भारतीय सिंहावलोकन

(सं० १२५० तक)।

राजपूत।

जिस काल आर्य्य लोग भारत में आये तब उनमे कोई वर्ण अथवा जाति भेद न था और वे सब एक ही थे। उनमें से कोई पुरुष अपनी योग्यतानुसार कोई भी कर्म कर सकता था। भारत मे आने से आर्य्यों ने आदिम निवासियों को श्यामकाय तथा सभ्यता के अगों मे अपने से बहुत नीचे पाया। स्वयं आर्य्य लोग गोरे थे। इन कारणों से शारीरिक रंगो के अनुसार भारत में समय पर आर्य्यों और अनार्य्यो मे वर्ण भेद स्थापित हुआ। यह भेद ऋग्वेद मे भी पाया जाता है, जिसका समय हमने सं० पूर्व ४००० से २५०० पर्य्यन्त माना है। ऋग्वेद में ब्राह्मण यज्ञ का एक पदाधिकारी मात्र है तथा राज्य शासन करने वाला राजन्य कहलाता है। पुरुषसूक्त ऋग्वेद का प्रायः अन्तिम भाग है। इसमे ब्राह्मण तथा राजन्य की उत्पत्ति पृथक है, किन्तु यह पद पैतृक नहीं है। यजुर्वेद का समय हमने २३०० या २२०० सं० पू० तक माना है, और अथर्व का २००० तक। यजुर्वेद में जाति

भेद स्थापित है और अथर्व में उसका भारी विकास है। अतएव सं० पू० २३०० के लगभग से हम राजन्य वंश को पृथक जाति के रूप में पाते हैं। पहले यह जाति कर्मानुसार बनी और फिर पैत्रिक हो गयो। तथापि इन लोगों के खान पान बेटी व्योहार आदि सम्बन्ध ब्राह्मणों से बराबर होते रहे। गौतम बुद्ध के समय में हम इस बात के उदाहरण पाते हैं, यद्यपि मिलित विवाहों की प्रथा उस काल कमी पर थी। जाति बद्ध होने के पीछे भी लोग एक जाति में से दूसरी में जा सकते थे। विश्वामित्र क्षत्री से ब्राह्मण हो गए थे और भरत पुत्र भारद्वाज ब्राह्मण से क्षत्री। हमने आदिम कलि काल का समय महाभारत वाले राजा जन्मेजय और गौतम बुद्ध के बीच में माना है। इस आदिम कलिकाल में भारत के आदिम निवासी यकबारगी हिन्दू सभ्यता में आ गये। समझ पड़ता है कि आदिम निवासियों को हिन्दू समाज में गुण कर्मानुसार यथायोग्य स्थान मिला। इस काल भी बहुत सी नवीन जातियों का ब्राह्मण और क्षत्री माना जाना संभव है। विशेषतया पंजाब, बंगाल, द्रविड़, तामिल तथा अन्य सीमा प्रान्तों में।

सिकन्दर के समय मालवीय कहलाने वाले लोग पंजाब के एक भाग मे रहते थे। समय पर इन्हीं के कारण मध्य भारत के एक प्रान्त का नाम मालवा हुआ। सिकन्दर के समय किसी प्रान्त का मालवा नाम न था। यद्यपि गौतम बुद्ध और सिकन्दर के बीच में किसी बाहरी जाति का भारत में आना नहीं लिखा है, तथापि तत्कालीन इतिहास के अपूर्ण होने से यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसा हुआ ही नहीं। यदि मालवीय लोग प्राचीन भारतीय होते तो प्रमाद

अथवा पँवार नाम से क्षत्रीपद प्राप्त करने के लिए इन्हें यज्ञ द्वारा शुद्ध होने की आवश्यकता न पड़ती, और अग्निकुलज न कहलाकर यह अपने प्राचीन भारतीय पूर्व पुरुष के नाम से पुकारे जाते। अतएव नवीन क्षत्रियों से सबसे प्राचीन यही हैं और अग्निवंशियों में सबसे पहला नम्बर इन्हीं का है भी। समय पर शक यूएची (वृहत और लघु), हूण, गुर्जर, मँगोल आदि वहिरग जातियां भारत में आईं और इनके बहुतेरे सरदार भिन्न भिन्न प्रान्तों के शासक होकर भारतीय राजमण्डल मे मिल गए। गुर्जर लोग हूणों के साथ और उनसे कुछ पीछे तक आए। मंगोल वंगालियों में मिल गये, द्रविड़, महाराष्ट्रों में और तामिल ठेठ दक्षिणियों मे। तामिल लोग निश्चय पूर्वक भारतीय हैं। द्रविड़ो के विषय कुछ सन्देह है किन्तु इनके आदिम निवास, आगमन काल आदि के विषय कोई भी पता नही चलता, जिससे इनका भारतीय होना अनुमान सिद्ध है। क्षत्री जाति सदा से व्यापारानुसार वनती रही थी। जिन बाहरी शक नरेशो को गौतमी पुत्र आन्ध्र ने जाति हीन असभ्य कहा है, उन्हीं में से रुद्रदामन की कन्या के साथ उसी गौतमी पुत्र के लड़के का विवाह हुआ। इससे स्पष्ट प्रकट है कि भारतीय राजमंडल बाहरी असभ्यों से भी केवल राज्य के नाते विवाहादि सम्बन्ध जोड़ने मे अपनी लघुता नहीं समझता था। इसी रुद्रदामन शक के विषय मे ब्राह्मण पंडितो ने कहा है कि अनेक स्वयम्वरों में भारतीय राजकन्याओं ने इसके गले मे जयमाल डाली अर्थात् इसके साथ विवाह किया। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय पर्य्यन्त इन लोगो की शक संज्ञा रही, किन्तु पीछे से साधारण क्षत्री समाज में यह ऐसे

मिल गए कि अब उनसे पृथक नहीं किये जा सकते। यही दशा यूएची, गुर्जर, हूण, मौर्य्य, मंगोल, आदि की है। बंगाली पालों तथा सेनों, दक्षिणी चालुक्यों, राष्ट्रकूटों, यादवों, चोलों, पांड्यों, पल्लवों, गङ्गों, पश्चिमी गुर्जरों, सोलंकियों, राठूरों, कच्छवाहों, चौरों, वल्लभियों, चौहानों, भट्टियों, शिशोदियों, मध्य भारतीय पँवारों, हयहयों, चन्देलों, बुन्देलों, उत्तरी तोंवरों, परिहारों, गहरवारों, वैसों आदि के विवाह एक दूसरे से बराबर बेखटके होते थे। इसके प्राचीन तथा नवीन अनेक दृष्टान्त प्रस्तुत हैं। इन सब मे सभी प्रकार के क्षत्री नये पुराने हैं, किन्तु राज्य प्राप्त करने के पीछे पूर्व काल में कभी किसी भारतीय राजकुल का औरों से वैवाहिक सम्बन्ध नहीं रुका। जाति सम्बन्धी नियमों की भारी कड़ाई होने पर भी आज तक यही कथन बहुत अंशों में चरितार्थ है। शक, यूएची, हूण, गुर्जर और मगोल खुले खुले विदेशी थे। मौर्य्य लोग खुले खुले शूद्र थे। जिस मुरा के कारण यह वंश मौर्य्य कहलाया वह स्वयं नाइन और चन्द्रगुप्त की माता थी। इनके पिता नन्द का बाप भी नाई था और एक क्षत्री रानी द्वारा नन्द का जन्म हुआ था। फिर भी मौर्य्य वंश की महत्ता सर्व मान्य हैं। इन लोगों ने जाति भेद का कुछ भी विचार नहीं रक्खा था, क्योंकि जहां चन्द्रगुप्त की माता नाइन थी वहीं अशोक की माता ब्राह्मण कन्या थी। फिर भी मौर्य्य वंश क्षत्रियों में मिल गया और आज उसका पृथक पता नहीं है।

पँवार, सोलंकी उपनाम चालुक्य, परिहार उपनाम प्रतिहार, और चौहान खुले खुले अग्निकुलज हैं। यह इसी क्रम से क्षत्री समाज मे आए। कहते हैं कि जब परशुराम ने पिता

वधकृत दोष से क्रोधित होकर भारतीय क्षत्रियों का २१ बार ध्वंसन किया तब देश में वीरता की भारी अवनति हो गयी। यह अवांछनीय दशा देख कर ऋषियों ने राजपूताने में अर्बुदगिरि (आबू पहाड़) पर विश्वामित्र द्वारा यज्ञ कराया। इसी यज्ञ में इन्द्र ने दर्भ पुत्तली बनाकर और उसे अमृत से सींच कर संजीवन मंत्र पढ़ा, जिससे यज्ञ स्फुलिङ्ग से एक भारी पुरुष निकला। उसके दाहने हाथ में गदा थी और वह मुख से मार मार कहता था। इसलिए उसका नाम प्रमार हुआ और उसने आबू, धार तथा उज्जैन का राज्य पाया। अनन्तर ब्रह्मा से प्रार्थना की गई कि वह अपने अंश से पुरुष बनावैं। यह सुन ब्रह्मा ने एक पुतली बना कर यज्ञ कुण्ड मे डाल दी, जिससे एक हाथ में खड्ग और दूसरे मे वेद लिए हुए तथा गले मे जनेऊ पहिने एक वीर निकला। इसका नाम चालुक्य अथवा सोलंकी रक्खा गया और अन्हिलपुर पत्तन इसे राज्य में मिला। अनन्तर रुद्र ने प्रतिमा रची जिसका गंग जल से सिंचन हुआ तथा मंत्र पढ़ा गया। इस पर धनुष धारण किए एक काला कुरूप वीर निकला। राक्षसों के प्रतिकूल भेजे जाने पर उसका पैर फिसला जिससे उसका नाम परिहार पड़ा और वह फाटक की रक्षा पर नियुक्त हुआ। उसे नुनंगुल मरुस्थली (मरुदेश के नौ स्थान) राज्यार्थ मिली। अन्त में विष्णु ने पुतली बनाई और तव उन्ही के समान चतुर्भुज वीर निकला जिसके चारो हाथों मे अस्त्र थे। देवताओं ने इसे आशीर्वाद दिया और मकावती नगरी अर्थात गढ़ामंडला इसे राज्यार्थ मिला। इन चारों ने उसी स्थान पर राक्षसों को विध्वंस करके यश प्राप्त किया।

उपरोक्त वर्णन से प्रकट है कि प्रमार सबसे बहादुर समझा गया, सोलंकी धर्म आरूढ़, परिहार क्रूर और बुरा तथा चौहान प्रिय। इन बातों से परिहारों का गुर्जर और हूण होना अनुमान सिद्ध है। प्रमार मालवीय समझ पड़ते हैं। विक्रमादित्य चालुक्य के राजकवि बिल्हण ने लिखा है कि चालुक्यों की उतपत्ति ब्रह्मा के चालुक अर्थात चुल्लू से हुई। यह कथन यज्ञ वाले वर्णन से प्रतिकूल नहीं है। सोलंकियों के इतिहास में लिखा है कि यह लोग अवध से आए हैं। अवध के प्राचीन निवासी होने से इनका धर्मी होना स्वाभाविक ही है। पूर्व काल में अवध तथा बुन्देलखंड में कुछ अनार्य्य लोगों की प्रधानता थी। इन्हीं का सोलंकी होना सम्भव है। चौहानों का मुख्य स्थान गढ़ा मंडला नर्मदा के निकट है, जिससे इनका मध्य भारतीय अथवा दाक्षिणात्य होना कहा जा सकता है। द्रविड़ देश में आन्ध्रो के पीछे अभीरों का राज्य हुआ है। इसी देश के निकट शबर, पुलिन्द, गोंड, सन्ताल आदि रहते थे। इन्हीं में से किसी का चौहान होना सम्भव है।

इस काल क्षत्रियों की ३६ शाखाएं हैं, अर्थात गहलोत, यादव, तोंवर, राठूर उपनाम गहरवार, कच्छवाह, पँवार, चौहान, सोलंकी, परिहार, चौर, तक उपनाम तक्षक, जीत उपनाम जाट, हूण, काठी, बल्ल, झाला, मकवाहन, जेठवा, गोहिल, सर्व्य, सिलर, दवी, गौर, दोर अथवा दोद, बिर-बल, चन्देल, बड़गूजर सेंगर, सिकरवल, बैस, दाहिया, जोहिया, मोहिल, निकुम्प, राजपाली, दहिरिया और दहीमा। इनके अतिरिक्त टाड ने जलिया, पेशनी, सुहागनी, चड़रा, रान, सिमाला, बुटीला, गोचिर, मालुन, ओहिर,

हल, बाचुक, बातुर, केरच, कोटुक, वूमा और बिरगोटा क्षत्रियों के और नाम लिखे हैं । जिनकी कोई शाखा नहीं है । इनके अतिरिक्त रैकवार, गौर, जनवार, गौड़, अहवन, धन्धेरे, बुन्देले आदि नाम प्रसिद्ध हैं जिनमें से बहुतेरे उपरोक्त ३६ कुरियो के अन्तर्गत हैं । टाड महाशय ने गहरवार तथा राठूर अलग अलग लिखे हैं यद्यपि यह दोनों एक हो समझ पड़ते हैं । बुन्देला पूर्व काल में गहरवार कहलाते थे तथा राठूरों का भी यही नाम था ।

नवीन क्षत्रियों ने बहुत अंशों में अपनी नवीनता छिपाने का प्रयत्न नहीं किया है । इनमें जिन लोगों के वंश प्राचीन कुलों से मिल जाते हैं उन्हें प्राचीन समझना चाहिये और जिनके नहीं मिलते हैं उन्हें नवीन । उदाहरण के लिए चन्देलों और बुन्देलों को ले लीजिये । चन्देलों की उत्पत्ति चन्द्रात्रेय से कही गयी है जिसमें प्राकृतिक नियमों से प्रतिकूलता है । इस कथा मे नवीनत्व की झलक मिलती है । इधर बुन्देलों की शाखा खुली खुली रामचन्द्र से चली आती है, सो इसमें नवीनता का विचार जोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं । यही दशा राहर, शिशोदिया, कच्छवाह, यादव, आदि की है। तक्षक, हूण, जाट, आदि नामों ही से इन वंशों की नवीनता प्रकट है । यही दशा अग्निकुल क्षत्रियों की है । साहित्यिक और धार्मिक विचारों से एक ही यज्ञ द्वारा चारों क्षत्रियों की साथ ही साथ उत्पत्ति कही गयी है, यद्यपि इनमें शताब्दीयों का अन्तर था । नवीन और प्राचीन क्षत्रियों की कुलीनता मे कोई भेद नहीं है । हिन्दू समाज ने इन सब को सभी भांति समान गौरव दिया है और यह पूर्णतया उचित भी है। इनका भेद यहां केवल ऐतिहासिक दृष्टि से दिखलाया गया है।

अब हम इनमें से मुख्य राजपूतों के विषय में सूक्ष्म रीत्या कुछ कुछ कथन करेंगे। गहलोत रामचन्द्र के पुत्र लव के वंशधर हैं। गुजरात का वल्लभी राजकुल इसी वंश में था। पीछे यह लोग गहलौत, शिशौदिया आदि कहलाए। इनका कथन वल्लभी और मेवाड के इतिहास में है। भाटी और जारेजा इन्ही की शाखाएं हैं। तोंवर वंश कहीं कहीं यादवों की शाखा माना गया है, किन्तु इनकी गणना ३६ कुरी में है, जिससे इनका यादव होना ठीक नहीं जान पड़ता, क्योंकि इस दशा में उनको प्रधान शाखा न मानी जाकर यह यादवों के अन्तर्गत माने जाते। चन्दबरदायी ने इन्हें पाण्ड वंशी कहा है जो ठीक समझ पड़ता है। इनका इतिहास दिल्ली के वर्णन में आया है। राठूर पहले कन्नौज और काशी के शासक थे और अब जोधपूर के हैं। एक राष्ट्रकूट वंश दक्षिण में भी शासक था। वे भी राठूर ही हैं या नहीं इस बात का अब नक कोई निश्चय नहीं हुआ है। दक्षिण में एक त्रैकूट राज-वंश भी था। राठूरों को गहरवार भी कहा है। बुन्देलखण्ड के बुन्देला भी पहले गहरवार कहलाते थे। गहरवार होने से राठूर भी रामचन्द्र के वंशधर ठहरते हैं। कछवाहों का कथन जयपूर के इतिहास में आया है। पँवारों का कथन हम कई स्थानों पर कर चुके हैं। यह सिकन्दरी समय के मालवीय समझ पड़ते हैं। संवत प्रचारक उज्जैनपति विक्र-मादित्य सबसे बड़े पँवार थे। आबू पहाड़, धार और उज्जैन इनके मुख्य राज्य कहे गए हैं। मोरिवंशी पँवार चित्तौर के शासक थे। उन्हीं को जीत कर बाप्पा ने वहां शिशौदियों का राज्य स्थापित किया। हयहयों का स्थान महेश्वर भी पँवारों का राज्यस्थल कहा जाता है। जगदेव पँवार और

भोज बड़े सुयशी नरेश हुए हैं। चन्दवरदायी ने लिखा है कि तिलंगाना में राम प्रमार भी भारी स्वतंत्र शासक थे। चौहानों का कथन अजमेर के वर्णन में है। पहले चौहान अन्हुल कहे जाते हैं। इनमें से २४ शाखायें हैं जिनमें वूंदी और और कोटा के नरेश प्रधान है। चौहानों में १२ छोटे छोटे सरदार अपनी पृथ्वी बचाने को मुसलमान हो गये थे। चौहानों में सब से पहले मुसलमान पृथ्वीराज के भतीजे ईश्वरदास हुए। चालुक्य अथवा सोलंकी नरेशों ने गुजरात और दक्षिण में वहुत काल पर्य्यन्त राज्य किया। इनके अतिरिक्त बहुत से सोलंकी नरेश भी थे। रीवां के वर्त्तमान वाघेल नरेश भो सोलंकी हैं, जिनके नाम पर सारा प्रान्त बघेलखण्ड कहलाता है। प्रतिहार अथवा परिहारों का सब से बड़ा राज्य कन्नौज का था जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। इसके अतिरिक्त गुजरात में भी इनके दो राज्य थे जिनका कथन गुजरात के इतिहास में है। चौरो का भी वर्णन गुजरात के इतिहास में है। तक अथवा तक्षक नाग वंश की शाखा समझ पड़ती है। इनका वर्णन वैदिक समय से होता आया है। परीक्षित का मारनेवाला और जनमेजय से हारने वाला यही वंश था। सिकन्दर के समय भी यह वंश पंजाब के एक प्रान्त में शासक था। शालिवाहन यादव ने इन्हीं को हरा कर स्यालकोट बसाया था। चित्तौर के रावल खुमान की सहायता करने को असेरगढ़ से तक नरेश गये थे। यह स्थान खानदेश में है। समय पर तक सरदार सिंहारन मुसलमान होकर वजीहुलमुल्क कहलाने लगा। फ़ीरोज तुग़लक ने इसके वेटा ज़फ़र खां को गुजरात का गवर्नर बनाया, जहां पर यह स्वतंत्र होकर मुज़फ़र के नाम

से शासक हो गया। जीत अथवा जाट साधारण क्षत्री नहीं माने जाते किन्तु अपने को क्षत्री समझते हैं। कुछ यदुवंशी भी जाट हो गये थे जिनका कथन जैसलमेर के इतिहास में है। सं० ४१६ में जाटों का कुछ अधिकार राजपूताना में मिलता है। महमूद ने जब सोमनाथ पर आक्रमण किया था तब पलटते समय जाटों ने उसकी सेना को बहुत कष्ट दिया था। इसी अपकार का बदला चुकाने को उसने सं० १०८३ में जाटों पर आक्रमण किया। इनका देश उस काल मुलतान की सीमा पर था। सिन्ध नदी पर एक प्रचण्ड जलयुद्ध हुआ। इसमें महमूद की प्रायः १५०० नौकाएं थीं और जाटों की ४००० किन्तु पराजय इन्हीं की हुई। इस काल जाटों का राज्य भरतपुर में है।

काठी लोग अपने को दुर्योधन वंशी कहते हैं। इनका इतिहास काठियावाड में दिया गया है। इनके यहां बहुत से लोग गोधन की चोरी अथवा डकैती करते थे। काठियावाड़ में इनके कुछ कुछ राज्य भी हैं। झाला क्षत्री सूर्य्य, चन्द्र अथवा अग्नि मे से किसी कुल में नहीं है। महाराणा प्रतापसिंह की युद्ध में आत्मबल द्वारा झाला नरेश ने रक्षा की। इसीसे प्रसन्न होकर महाराणा ने अपनी कन्या व्याहने द्वारा उसके पुत्र का सर्वोपरि मान किया। इनका इतिहास गुजरात में है। जेठवा क्षत्री अपने को हनूमान का वंशधर कहते हैं। घिरवाल अथवा गहरवाल क्षत्रियों का वर्त्तमान नाम बुन्देला है। इनका तथा चन्देलों का वर्णन बुन्देलखन्ड के इतिहास में है। सिकर वालों का नाम फ़तहपुर सीकरी से निकला है जहां पूर्व काल में उनकी रियासत थी। दहीमा वंशी कैमास, पुण्डीर और चामुण्डराय

पृथ्वीराज के भारी सामन्तों में से थे । चामुंडराय की प्रशंसा मोहम्मद गोरी के भी ऐतिहासिकों ने की है । उनका कथन है कि इस वोर के दरेरे से मोहम्मद बाल बाल बच गया । शेष क्षत्री वंशों का कथन हमारे भारतीय इतिहास के लिए आनावश्यक समझ पड़ता है ।

मुसलमान आगमन ।

एशिया को सारे संसार के लिए धर्म उत्पन्न करने का गौरव प्राप्त है । यदि अफ़ग़ानिस्तान होकर एशिया भर में उत्तर से दक्षिण तक रेखा खोंची जावे तो इसके पूर्व हिन्दू और बौद्ध मतों का प्राधान्य समझ पड़ेगा, तथा पश्चिम में ईसाई और मुसलमानी मतों का । ये दोनों मत पाश्चात्य एशिया के मत समुदाय में से हैं, जिनमें चार मतों की प्रधानता है, अर्थात् पारसी, यहूदी, इसाई, और मुसलमानी । इन चारों के चलाने वाले एक रसूल अथवा पैग़म्बर थे, जिन्हें ईश्वर का बसीठी (दूत) कहते हैं । इब्राहीम, मूसा, ईसा, और मोहम्मद चारों रसूल थे । हज़रत मोहम्मद को हबीबुल्ला कहते हैं । यह पैग़म्बर आख़िरुज़्ज़मां (अन्तिम बसीठी) समझे जाते हैं । मुसलमानी मत आप ही का चलाया हुआ है । आपका जन्म शुक्रवार के दिन सं० ६२६ में अरब के प्रधान स्थान मक्के में हुआ था । आपके पिता आपका जन्म होने के पहले ही मर गये थे और माता भी बाल्यावस्था में चल बसीं, अतएव आपके चचा अबूतालिब ने आपका पालन-पोषण किया । हज़रत अली इन्हों अबूताबिल के बेटे थे जो मोहम्मद से छब्बीस साल छोटे थे । रसूल मक़बूल ने पच्चीस साल की अवस्था में चालीस वर्ष की एक धनवान

व्यापारी स्त्री से अपना विवाह किया। व्याह के पूर्व आप इसी के यहां नौकर थे। समय समय पर आपने ग्यारह और स्त्रियों से विवाह किया। कुल आपके बारह या पंद्रह बीबियां थीं। आपका चित्त धार्मिक विषयों पर अधिक लगता था और चालीस वर्ष की अवस्था में अपने विचार दृढ़ करके आपने एक नवीन मत निकाला और अपने कुटुम्बियों को एकत्र करके उनके सामने उसकी घोषणा की। आपने कहा कि यह मत चलाने के लिए मुझे एक नायब की आवश्यकता है सो इस कार्य्य में मेरा हाथ कौन बटावेगा? सब लोग चुप रहे किन्तु अली ने बढ़कर कहा कि मैं आपका अनुयायी बनूंगा। सबसे पहले अली तथा रसूल की पहली स्त्री ने इसलाम ग्रहण किया। इसी समय से उपदेश का कार्य आरम्भ हुआ। आपके सिद्धांतानुसार इसलाम ग्रहण कराने के लिए बल प्रयोग भी उचित है। तेरह वर्ष तक आप यह नवीन मत बड़े उत्साह के साथ फैलाते रहे। अनन्तर मक्के में आपके शत्रु प्रबल पड़े और तब सं० ६७९ में आपको मक्का छोड़ २०० मील उत्तर यसरब को भाग जाना पड़ा। यसरब इसी समय से मदीना कहलाने लगा। कहते हैं कि कुरान शरीफ़ ईश्वर ने मोहम्मद द्वारा पृथ्वी पर भेजी। ईश्वरीय कथन होने से यह कलाम मजीद भी कहलाती है। सं० ६८६ पर्यन्त अली ने धर्म प्रचारार्थ यहूदियों को चार वार हराया। रसूल मकबूल का शरीरान्त स० ६९० में हुआ। इस काल आपके अनुयाई सवा लाख थे। यह लोग अरब फ़ारस, मिश्र, तथा रूम के निवासी थे। मरने के समय तक आपका अधिकार प्रायः पूरे अरब पर हो चुका था।

किसी के मुसल्मान होने के लिए उसका दो मतों पर विश्वास आवश्यक है अर्थात् ईश्वर को छोड़ कोई भी सबल नहीं और मोहम्मद ईश्वर का रसूल है। इसका अरबी रूप यों है:—"लाइलाह इल्लिल्ला मोहम्मद रसूलिल्ला"। इसी को कलमा कहते हैं। मुसलमानी मत में इसके अतिरिक्त कुछ अमुख्य सिद्धान्त भी हैं। प्राचीन अरब लोग तथा स्वयं रसूल के पूर्व पुरुष मूर्त्ति पूजक थे। किन्तु रसूल ने आज्ञा दी कि जो लोग ईश्वर का कोई साझीदार (शरीक) मानते हैं अथवा उसकी मूर्त्ति पूजते हैं वे काफ़िर हैं और अंत में नर्क में पड़ेंगे। कुरान शरीफ़ की आज्ञा है कि प्रत्येक मुसलमान को काफ़िरों पर जिहाद (लड़ाई) करनी चाहिये। पहले उनको मुसलमान होने का उपदेश दिया जाय। यदि वे मान जावें तो भाई के समान समझे जावें और मुसलमान होने पर कोई भिन्न भाव न रक्खा जावे। यदि न मानें तो प्रति काफ़िर से जज़ीया (कर) वसूल किया जावे। यदि कर भी न देवें तो उनसे युद्ध किया जावे। जो मुसलमान किसी काफ़िर के हाथ से मारा जावेगा वह स्वर्ग प्राप्त करेगा और जो जीतेगा वह राज्य पावेगा। जो मुसलमान जिस काफ़िर को मारेगा वह उसके माल मता जोरू बच्चों का मालिक हो जावेगा। स्वयं रसूल ने मुसलमानी मत फैलाने के लिए तलवार पकड़ी थी। आपने सं० ६८४ में ईरान, रूम, हबश, आदि देशों के सात नरेशों को मुसलमान होने के लिए पत्र भेजे थे और उनके पास दूत भी प्रेषित किये थे। ईरान अर्थात् फ़ारस का बादशाह खुसरो परवेज़ पारसी धर्म को मानता था, तथा रूम नरेश हरकुल हबश नरेश मञ्जाशी ईसाई थे। रसूल ने सावन सुदी ३ सं० ६७९ को मदीना जाने के लिए मक्का छोड़ा

था। इसी समय से मुसलमानों का हिजरी संवत चलता है। आपके तीन पुत्रियां थी अर्थात् फ़ातिमा, रुक़ैय्या और ज़ैनब। फ़ातिमा अली को ब्याही थी और इन्हीं के पुत्र हसन और हुसैन थे, जिन्हें सम्मानार्थ इमाम कहते हैं। जिन मुसलमानों की माता और पिता हसन और हुसैन वाली दोनों शाखाओं में होते हैं, (अर्थात् माता एक शाखा की हुई तो पिता दूसरी शाखा का) वे पुनीत समझे जाते हैं और हसनैनी कहलाते हैं। रुक़ैय्या के भी वंशधर हैं किन्तु उनका मान फ़ातिमा वालों के सदृश नहीं है।

रसूल के पीछे ख़लीफ़ा होने के लिए मुसलमानों में विद्वेष उभड़ पड़ा। कुछ लोग अली को ख़लीफ़ा बनाना चाहते थे, किन्तु उमर ने रसूल के ससुर अबूबक्र को ख़लीफ़ा बनाया। उमर बड़ा प्रभावशाली पुरुष था। आबूबक्र के समय मुसलमानी दल पश्चिम की ओर शाम जीतने को चला। इतने ही में केवल दो साल ख़लीफ़ा रह कर अबूबक्र सं० ६६२ में पंचत्व को प्राप्त हुआ और उमर ख़लीफ़ा हुआ। आपने मुसलमानी मत का बहुत कुछ विस्तार किया। आपके समय मुसलमानों ने रूम के क़ैसर हरकुल से शाम देश छीना तथा अरस्तूत्रिस से मिश्र (ईजिप्ट) और यज़्जर्द से फ़ारस छीने गये। फ़ारस नरेश ने निहावेन्द के युद्ध में सं० ६६६ में पराजय पाई। अनन्तर खुरासान प्राप्त करके मुसलमानों ने सं० ७०१ में कंदहार पर चढ़ाई की। इस समय ख़लीफ़ा के एक अफ़सर मुग़ीरा ने काबुल के राजा जयपाल से बलूचिस्तान देश प्राप्त किया। अनन्तर मुग़ीरा ने सिंध राज्य पर आक्रमण किया, किन्तु वहां के राजा ने अरबों को पराजित करके मुग़ीरा का वध किया और बहुत

से मुसलमानों को बंदी बनाया। यह देख मकरान उपनाम बलूचिस्तान के शासक अबूमूसा ने खलीफ़ा उमर को सिंध पर चढ़ाई करने की सलाह दी और कुछ जल सेना भी भेजी किन्तु खलीफ़ा ने न माना और यह चढ़ाई बंद हो गई। दूसरे साल सं० ७०२ मे मुग़ीरा के ग़ुलाम अबूलूलूने खलीफ़ा उमर का वध कर डाला। इस पर अली ने फिर ख़लीफ़ा होने का प्रयत्न किया, किन्तु लोगों ने उसमान को खलीफ़ा बनाया। बलूचिस्तान में आमिर पुत्र अब्दुल्ला शासक हुआ। सं० ७१२ मे अरबों ने काबुल पर आक्रमण किया। सं० ७१३ में किसी आंतरिक शत्रु ने उसमान का भी वध किया और अली खलीफ़ा हुए। मुसलमानों में दो मुख्य विभाग हैं अर्थात् सुन्नी और शिया। जो इन चारों खलीफ़ाओं को मानते हैं वह सुन्नी कहलाते हैं। उधर शियाओं का विश्वास है कि रसूल की इच्छा अली को ही खलीफ़ा बनाने की थी सो उनसे पहले वाले तीनों खलीफ़ा ग़ालिब थे अर्थात् बिना अधिकार के बल प्रयोग से खलीफ़ा बन बैठे थे। शिया लोग केवल अली और उनके हसन और हुसन को ही खलीफ़ा मानते हैं। उनको मुख्य शत्रुता उमर से है। उस पर तथा अबबक्र और उसमान पर तबर्रा कहना उनके धर्म का अंग समझा जाता है। लानतबर (फला, जिसका नाम लिया जावे) तबर्रा है। अली के समय मुसलमानों का दल बलूचिस्तान से आगे बढ़ कर विजयार्थ कोह पाया और कीकानात पहुंचा, कि इतने ही में किसी आंतरिक शत्रु द्वारा अली के वध की सूचना मिली। यह घटना सं० ७१८ की है।

आपके पीछे इमाम हसन केवल छै मास खलीफ़ा रहकर मारे गये और तब अमीर मुआविया खलीफ़ा हुए। आप

मदीना छोड कर दमिश्क़ राजधानी बनाई और सवाद पुत्र अब्दुल्ला को चार हज़ार सेना देकर सिंध पर आक्रमणार्थ भेजा। हिन्दुओं ने कीकानियां पहाड़ पर इस दल को पराजित करके अब्दुल्ला का वध किया। अनन्तर उमर पुत्र राशिद भेजा गया। इसने कीकानियों से मेल करके मंदड और बरोच के पहाड पर शत्रुओं का सामना किया, किन्तु यह पहाडियों द्वारा मारा गया और इसकी सेना विमुख हुई। इधर विफल मनोरथ रहने पर भी मुआविया ने अपने पुत्र यज़ीद द्वारा रूमियों को पराजित करा कर कुस्तुनतुनिया को घिरवाया। मध्य एशिया में अरब की सेना तूरान पर्य्यन्त गई। अब्दुल रहमान ने सं० ७२१ में मेर्व से काबुल पहुच कर वहां १२००० लोगों को मुसलमान बनाया। इसके सेनापति मुहल्लब ने इसी समय मुलतान लूटा और बहुत से बन्दी लेकर वह खुरासान चला गया। सं० ७२२ से ७७२ पर्य्यन्त अरबों ने मध्य एशिया में मुसलमानी मत फैलाने के भारी प्रयत्न किये। इन प्रयत्नों में अरबी सेनापति कुतैबा का श्रम सब से प्रशंसनीय है। सं० ७३५ में मुआविया का शरीरान्त हो गया और उसका बेटा यज़ीद ख़लीफ़ा हुआ। इससे अली के पुत्र इमाम हुसैन से विद्रोह हो उठा। यजीद ने इमाम हुसैन को धोखे से बुलाया। इनके साथ केवल ७३ अनुयायी थे। यज़ीद ने इन्हें मारने के लिए बीस हज़ार सवार लगाये। तीन दिन तक युद्ध हुआ और ये लोग कर्बला में सकुटुम्ब बडी निर्दयता पूर्वक मारे गये। इसी घटना पर शोक मनाने को मुसलमानों में ताज़ियादारी होती है, विशेषतया शियों में। सं० ७४० में यज़ीद का भी शरीरान्त हो गया। इसी संवत् में

काबुल के तुर्की शाहीया नरेश ने अरबों को कर देना स्वीकार किया।

संवत् ७५७ में काबुल अरबों की अधीनता से स्वतंत्र हो गया। उधर से विफल मनोरथ होकर मुसलमानो ने सिंध की ओर फिर ध्यान दिया। सं० ७६६ में इन्होंने सिंध नरेश दाहिर को युद्ध में मारकर वहां अधिकार जमाया। दाहिर के प्रान्त मुलतान पर भी इनका शासन हो गया। इसी समय में अरबों ने मिश्र देश से बढ़ते हुए उत्तरी अफ़रीका में मुराको तक अधिकार जमाया था। वहां के गवर्नर मूसा ने सं० ७६७ में कुछ सेना भेजकर यूरोप का स्पेन देश लूटा। इस विजय से प्रोत्सहित होकर सं० ७६८ में तारीक़ की अध्यक्षता में उसने एक दल भेजकर स्पेन नरेश राडरिक को पराजित किया। अब तारीक वहां का राजा बन बैठा। इस बात से क्रुद्ध होकर मूसा ने स्वयं वहां पहुंच कर तारीक को बंदी कर लिया। मूसा की इन विजयों से ख़लीफ़ा को ईर्ष्या हुई और उसने उसे दमश्क बुला कर यात्रा के लिए मक्के भेज दिया। इस व्यवहार से हताश होकर मूसा ने मार्ग में प्राण त्याग दिये। फिर भी स्पेन पर मुसलमानों का राज्य किसी न किसी रूप में सं० १२८६ पर्य्यन्त स्थापित रहा। इसके पीछे ये लोग वहां से निकाल दिये गये।

सं० ७७६ में मध्य एशिया के समरक़द तथा अन्य राज्यों ने मुसलमानों के प्रतिकूल चीन से सहायता मांगी। चीनी सम्राट ने अरबों के प्रतिकूल उन्हें सहायता दी तथा मुसलमानी मत न मानने के उपलक्ष में सुआत खुदल (पश्चिमी बदख़शा), चित्राल, यासिन, ज़ाबुलिस्तान (गज़नी), कपिसा और काश्मीर नरेशों को राजा की उपाधि दी। सं० ७८१ में

सिंध के गवर्नर जुनैद ने भड़ोच, उज्जैन तथा अन्य भारतीय स्थानों पर सेनायें भेजीं, किन्तु इनका कोई फल नहीं हुआ। सं० ८०७ में अब्बासी ख़लीफ़ा सफ़ाह ने बनी उमैया के पिछले ख़लीफ़ा मरवान का बध करके अब्बासी वंश में ख़लीफ़ा पद स्थापित किया। इस प्रकार ख़लीफ़ाओं में यह एक भारी घटना हुई। इसी साल अली के पुत्र दाऊद की अध्यक्षता मे सेना भेज कर सफ़ाह ने मरवान द्वारा नियुक्त शासक से सिन्ध छीन लिया। इसने दमिश्क छोड़कर बग़दाद को राजधानी बनाया। इसी समय से ये लोग ख़लीफ़ा बग़दाद कहाने लगे। सं० ८०८ में अरबों ने चीनियों को करारी पराजय दी जिससे मध्य एशिया में मुसलमानी मत की वृद्धि होने लगी। सं० ८२८ में सिंध के स्थानिक शासक ने ख़लीफ़ा अलमसूर के पास बग़दाद में एक पटौनी भेजी। इसी के साथ कोई हिन्दू ज्योतिषी भी था जिससे अरबों ने हिन्दू ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त किया। सं० ८३३ में ख़लीफ़ा महदी ने अब्दुल मल्लिक की अध्यक्षता में एक सेना भारत भेजी जिसने बरदा पर अधिकार जमाया, किन्तु दल में रोग फैल गया जिससे बहुत से सैनिक मर गये और बचे बचाये समुद्रीय दुर्घटना से फ़ारस की खाड़ी के निकट डूब मरे। सं० ८४३ में प्रसिद्ध ख़लीफ़ा हारून रशीद गद्दी पर बैठा। यह बड़ा दानी तथा न्यायप्रिय था। कहते हैं कि यह रूप बदल कर घूमा करता था और इस प्रकार प्रजाओं के दुःख मेटता था। इसका शरीरान्त सं० ८६५ में हुआ। अंतिम रोग में इनको दवा भारतीय वैद्य मानिक बाने की थी। जान पड़ता है कि यही हारून के राजवैद्य थे। अब इनका बेटा मोहम्मद अमीन ख़लीफ़ा हुआ जिसे मारकर सं० ८७० में

उसका भाई मामून ख़लीफ़ा बना। इसके समय बहुत से अरबी लोग आकर सिंध में बस गये। मामून के समय तक ख़लीफ़ाओं का बल बहुत अच्छा रहा, किन्तु इसके पीछे से कई कारणों से ख़लीफ़ा लोग बलहीन हो गये और इनके अधीनस्थ शासक स्वतंत्र होते गये। समय पर सिंध और मुलतान के गवर्नर स्वतंत्र हो गये। इसी भांति ईरान में सफ़ारिया, खुरासान में सामानी और तूरान मे ग़ज़नी के सरदार स्वतंत्रप्राय बन बैठे। अब तक के ख़लीफ़ा लोग न केवल धार्मिक गुरु वरन् राजनैतिक शासक भी थे। इस काल से पोप की भांति ख़लीफ़ा भी केवल धर्म गुरु रहे। सं० ८७६ में उब्बाद पुत्र ग़स्सान ख़लीफ़ा मामून द्वारा खुरासान का शासक नियत किया गया। इसने समरकंद का शासन भार नूह को दिया, शाश और इसफ़ंजाब कायहिया को, रात का इलियास को और फ़रग़ने का अहमद को। यह सब असद सामानी के बेटे थे। सं० ८८५ मे सिंध के शासक बशीर ने विद्रोह खड़ा किया। ग़स्सान ने इसे पराजित करके मूसा को सिंध का शासक बनाया। संवत् ६२८ में ख़लीफ़ा मोतमिद ने लईस के बेटे याक़ूब सफ़ारी को सिंध का शासक नियुक्त किया। इसी काल के पीछे से सिंध और मुलतान के गवर्नर स्वतंत्र हुए। सं० ६७१ में इसहाक़ का बेटा मंसूर खुरासान और नैशापुर मे विद्रोही हुआ। हिरात के गवर्नर हुसैन अली ने इसका साथ दिया, किन्तु मंसूर मर गया और हुसैन कई युद्धों के पीछे बंदी हो गया।

भारतीय इतिहास का ग़ज़नी से मुख्य सम्बन्ध है। यहां के शासकों का वर्णन उठाने के पूर्व हम इस काल के पीछे

वाली उन मुसलमानी विजयों का भी सूक्ष्म कथन कर देना उचित समझते हैं जो अन्य देशों पर हुईं। चीन पर चंगेज़ ख़ां के आक्रमण सं० १२६८ से आरंभ हुए और सम्वत् १३३३ से १४२५ तक मंगोलों का राज्य सारे चीन में रहा। इनका प्रधान शासक कुबलाई ख़ां था जिसने बरमा को भी पराजित किया। इसने सब मतों को समदृष्टि से देखा और इसके द्वारा चीन की भारी उन्नति हुई। सम्वत १३३८ में इसने जलपोतों द्वारा एक लाख सेना भेजकर जापान पर भी आक्रमण किया, किन्तु करारी पराजय खाई। इस एक लाख सेना में से केवल तीन पुरुष बचे और शेष मारे गये अथवा समुद्र मे डूबे। रूस पर मंगोलों का अधिकार सम्वत् १२९५ से १५३७ पर्य्यन्त रहा। ये लोग इसी बीच में मुसलमान भी हुए। स्पेन के अतिरिक्त प्रायः सारे दक्षिणी योरोप पर मुसलमानों का राज्य फैला। अतएव प्रगट होता है कि पाश्चात्य एशिया, चीन, रूस, दक्षिणी योरोप, और उत्तरी अफ़्रीक़ा के जीतने वाले मुसलमान कोई साधारण पुरुष न थे। इनके द्वारा भारत का जीता जाना भारतीयों की शक्ति-हीनता को प्रगट नहीं करता। हमारी कादरता केवल इतने में प्रगट होती है कि जहां और देशों ने मुसलमानों से हारने पर भी समय पर इन्हें पराजित कर दिया, वहीं हम लोग न केवल बलशाली मुसलमानों से हारे वरन् बलहीनों को भी पूर्णतया न दबा सके। अब हम ग़ज़नी वालों का कथन उठाते हैं।

संवत् ९९१ में सामानी वंश के तुर्की दास (ग़ुलाम) अलप्-तिगीन ने अबूअली को हराकर ग़ज़नी प्राप्त की। संवत् ९९९ में भौगोलिक मोहम्मद अबुलक़ासिम बग़दाद से भारत के

लिए चला। सवत् १०१८ में यह मंसूरिया में था और सं० १०२५ में बग़दाद वापस गया। इसने अपने देखे हुए देशों का भौगोलिक वर्णन किया। पहिले मंसूर सामानी का किन्हीं कारणों से अल्पतिगीन से बिगाड़ हो गया। सं० १०१६ में इसने एक सेना भेजी जिसे अल्पतिगीन ने पराजित कर दिया। अब मंसूर ने एक दूसरी सेना भेजी किन्तु वह भी पराजित हुई। इसपर मंसूर ने अल्पतिगीन से युद्ध छोड़ दिया। सं० १०२० में अल्पतिगीन मर गया और उसका बेटा इसहाक़ ग़ज़नी का शासक हुआ। सं० १०२१ में लवीक ने ग़ज़नी पर आक्रमण किया। इसहाक़ पराजित होकर अपने पिता के गुलाम सुबुक्तिगीन को लेकर बुख़ारा भाग गया। इसके पिता के शत्रु मंसूर सामानी ने इसे उस प्रान्त का शासक बना दिया। दूसरे साल लवीक को हराकर इसने ग़ज़नी को फिर प्राप्त किया। सं० १०२३ में इसहाक़ के मरने पर दूसरे नूह सामानी ने अल्पतिगीन के गुलाम बलकातिगीन को ग़ज़नी का शासक नियत किया। सं० १०२७ में सबुक्तिगीन के पुत्र महमूद का जन्म हुआ। सं० १०३० में बलकातिगीन के मरने पर अल्पतिगीन का एक अन्य दास पिरी ग़ज़नी का शासक नियुक्त हुआ। सं० १०३१ मे एक भारतीय सेना ग़ज़नी जीतने को गई, किन्तु सबुक्तिगीन की सहायता लेकर पिरी ने उसको पराजित कर दिया। सं० १०३४ में पिरी गद्दी से उतार दिया गया और सबुक्तिगीन ग़ज़नी का शासक नियुक्त हुआ। दूसरे नूह सामानी ने भी यह मान लिया। थोड़े ही दिनों में सामानियों की बलहीनता से ग़ज़नी स्वतन्त्र प्राय हो गई। सं० १०३६ में लाहौर नरेश जयपाल ने ग़ज़नी पर आक्रमण करने

को प्रस्थान किया और लघमान पर इसका सबुक्तिगीन से सामना हुआ, किन्तु सन्धि हो गई और जयपाल वापस आया। सं० १०४२ में सबुक्तिगीन ने कुसदार पर अधिकार जमाया और भारत पर आक्रमण करके बहुत सी लूट तथा बन्दी ले गया। यह देख जयपाल ने दिल्ली, अजमेर, कालिंजर और कन्नौज के नरेशों की सहायता लेकर सं० १०४५ मे लघमान पर सबुक्तिगीन का सामना किया। यह भारतीय सेना पराजित हो गई। अब जयमाल को सन्धि करनी पडी जिसके अनुसार उसने ग़ज़नी वालों को उस ओर के चार क़िले तथा सौ हाथी देने का वचन दिया। अब सबुक्तिगीन ने सिन्धु नदी पर्य्यन्त देश पर अधिकार जमाया और पेशावर में अपना शासक नियुक्त किया। सं० १०४७ मे किन्हीं कारणों से इसने अपने बेटे महमूद को एक साल के लिए ग़ज़नी में क़ैद कर दिया। सं० १०५१ में सबुक्तिगीन की सहायता से दूसरे नूह सामानी ने अबूअली को हिरात पर हराया और सबुक्तिगीन को खुरासान, बल्ख़ एवं हिरात का शासक नियुक्त किया, तथा महमूद को नैशापुर का गवर्नर और सेना का कमान जनरल बनाया। दूसरे साल अबूअली ने वहकर महमूद को पराजित किया और उससे नैशापुर छीन लिया। यह देख सबुक्तिगीन ने महमूद को सहायता दी और तब इन दोनो ने तूस के निकट अबूअली और फ़ईक़ को हराया। सं० १०५४ में सबुक्तिगीन मर गया और उसका बेटा इसमाइल ग़ज़नी का शासक हुआ। इसी साल नूह सामानी भी मरा और उसका बेटा दूसरा अबुलहिर्स मंसूर सुल्तान हुआ। सं० १०५५ में महमूद ने अपने भाई इसमाईल को क़ैद कर दिया। इसी संवत् में दूसरा मंसूर

सामानी भी राज्यच्युत हुआ और उसका भाई अब्दुल मलिक सुलतान हुआ। यह देख महमूद ने उसे हराया और वह फ़ाईक़ के साथ बुख़ारा चला गया। सं० १०५६ में महमूद की मलिक से सन्धि हो गई जिसके अनुसार बलख़ और हिरात इसे मिले और मेर तथा नैशापुर उसके अधिकार में रहे। इस काल महमूद ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की। इन लोगों से महमूद के कई युद्ध हुए जिनमें यह विजयी हुआ।

अब महमूद ने भारत पर आक्रमण करने का विचार किया। यह विचार धार्मिक उत्साह तथा लूट के लालच से उठा। ऊपर कहा जा चुका है कि प्रत्येक धार्मिक मुसलमान का अपने मतानुसार यह कर्तव्य है कि वह काफ़िरों को मुसलमान बनावे अथवा उनसे जज़ीया लेवे या इन दोनों बातों के न मानने पर उनको मारे। इन विचारों से महमूद ने हिन्दुस्तान से धार्मिक संग्राम करने का दृढ़ सङ्कल्प किया और शपथ खाई कि भारतीय प्रतिमा पूजकों के प्रतिकूल प्रतिवर्ष सेन सन्धान करूंगा। वह सं० १०५८ मे सेना लेकर चला। पेशावर के निकट उसका जयपाल से युद्ध हुआ जिसमें इस ब्राह्मण भूपाल ने पूर्ण पराजय खाई और यह सकुटुम्ब बन्दी हो गया। थोड़े ही समय में महमूद ने इसे छोड़ दिया, किन्तु इसने पराजय की ग्लानि से चिता पर चढ़ कर अपना सजीव शरीर भस्म कर डाला और इसका बेटा अनन्दपाल गद्दी पर बैठा। पेशावर पर युद्ध होने से समझ पडता है कि यह प्रान्त हिन्दुओं के अधिकार में फिर से आ गया था। सम्वत् १०६२ में महमूद का दूसरा धावा हुआ। इसमें भीरा राय को मारकर उसने मुलतान के निकट

भटिया दुर्गपर अधिकार किया। अब मुलतान के शासक अबुलफ़तह लूदी से मिलकर अनन्दपाल ने महमूद का सामना करना चाहा। महमूद ने मुलतान पर आक्रमण किया। मार्ग में अनन्दपाल युद्धोन्मुख हुआ किन्तु पराजित होकर काश्मीर भाग गया। इधर महमूद ने मुलतान के दुर्ग पर घेरा डाल कर उसे जीत लिया। सम्वत् १०६६ में महमूद से भटिंडा के निकट अनन्दपाल की उसके सहायक नरेशों समेत मुठभेड़ हुई। इस बार उज्जैन, ग्वालियर, कालिंजर, कन्नौज, दिल्ली और अजमेर के नरेश अनन्दपाल की ओर से लड़े और पहाड़ी घक्कर भी इनके सहायक थे। स्त्रियों तक ने अलङ्कार बेच कर इस धर्म शत्रु से युद्ध के लिए आर्थिक सहायता दी। पूरी तैयारी हुई। बड़ी भारी सेना एकत्र हुई। चालीस दिन तक दोनों दल एक दूसरे के सामने पड़े रहे, किन्तु किसी ने आक्रमण न किया। अन्त में तीस हज़ार घक्करों ने एकाएक धावा करके चार हज़ार मुसलमानों को काट डाला। मुसलमानी सेना भागने को ही थी कि दैवी दुर्योग से अनन्दपाल का हाथी भागा और उसके कादर सहायकों को अपने अपने प्राण बचाने की पड़ गई। सारा हिन्दू दल आन की आन में भाग खड़ा हुआ और मुसलमानों ने दो दिन तक इन्हें खेद खेद कर मारा। आठ हज़ार हिन्दू मारे गये और बहुत सी लूट महमूद के हाथ आई। अनन्तर कांगड़े का क़िला भी महमूद के हाथ आया। इसे नगरकोट अथवा भीम नगर भी कहते हैं। यहां महमूद को असंख्य धन मिला। लूट के साथ उसे चांदी का एक ऐसा मकान भी मिला जो तीस गज़ लम्बा और पंद्रह गज चौड़ा था। यह कई खंडों मे था जिसे कहीं लेजाकर फिर जोड़ सकते थे।

सं० १०७० में अनंदपाल के पीछे उसका बेटा त्रिलोचनपाल लाहौर की गद्दी पर बैठा। सं० १०७२ में महमूद ने काश्मीर पर आक्रमण किया किन्तु यह लोहकोट के आगे न बढ़ सका। लोहकोट का घेरा भी निष्फल रहा। सं० १०७५ में सुलतान ने बरन वर्त्तमान बुलंदशहर पर आक्रमण किया किन्तु वहां का राजा हरदत्त दश हज़ार अनुयायियों समेत मुसलमान हो गया। तब उसे छोड़कर महमूद ने मथुरा लूटी और बहुत से मन्दिरों को जलवाया तथा खुदवाया। मथुरा हरदत्त ही के अधिकार में थी। सं० १०७६ में महमूद ने कन्नौज पर आक्रमण किया। वहां के शासक राज्यपाल परिहार को युद्ध का साहस न हुआ। अतएव वह गंगापार भाग गया और कन्नौज के सातों दुर्ग एक ही दिन महमूद के अधिकार में आए। महमूद ने कन्नोज को ध्वस्त न किया किन्तु मंदिरों को खोद डाला और बहुत से नगर निवासियों को मारा तथा शहर लूटा। राज्यपाल की इस कादरता के कारण बुन्देलखंड के स्वामी गंड ने अपना युवराज विद्याधर भेजकर कन्नौजपति का बध करवाया। यह सेना कन्नोजपति के बेटे त्रिलोचनपाल को गद्दी पर बिठला कर वापस आई। यह लाहौरपति त्रिलोचनपाल से पृथक् था। राज्यपाल की दशा सुनकर महमूद ग़ज़नी से फिर आया। त्रिलोचनपाल ने जमुना पर उसकी गति का अवरोध किया, किन्तु वह पार होकर चंदेल राज्य में पहुंचा। यहां गंड की भारी सेना देखकर महमूद का हृदय भयभीत हुआ और उसने अपने वहां जाने पर पश्चात्ताप किया। इधर कादर गंड भी प्रकंपित था और थोड़े से अनुयायी लेकर वह रातो रात लश्कर छोड़कर भाग गया। यह देख उनकी सेना

तितर बितर हो गई और महमूद ने सारा माल मता लूट लिया। सं० १०७७ मे महमूद का राजकवि फ़िरदौसी मर गया। इसीने शाहनामा बनाया था। सं० १०७८ में महमूद ने कालिंजर पर आक्रमण करने के लिए फिर प्रस्थान किया। लाहौर के त्रिलोचनपाल ने उसकी गति रोकी, किन्तु राहिब के युद्ध मे पराजित होकर यह नरेश मारा गया और महमूद ने लाहौर पर्य्यन्त अधिकार जमाया। त्रिलोचनपाल का उत्तराधिकारी उसका बेटा भीमपाल हुआ। अब महमूद कालिंजर पहुंचा, किन्तु गंड को फिर लडने का साहस न हुआ और बहुत सा धन देकर उसने अपना पीछा छुडाया। सं० १०८२ में त्रिलोचनपाल के उत्तराधिकारी भीमपाल का देहान्त हो गया। काबुल के हिन्दू शाहिया नरेशो मे यह अंतिम था। महमूद ने सं० १०८२ और ८३ मे प्रभासपत्तन के प्रसिद्ध मंदिर सोमनाथ पर आक्रमण किया और इसे लूटा इसका सविस्तर वर्णन गुजरात के इतिहास में आ चुका है। यहां से पलटने पर मुलतान के निकट जाटों ने उसे बहुत कष्ट दिया जिनसे तथा राजपूताने के चौहानों से बचने के लिए महमूद सिंध होकर वापस गया। सिंध के रेगिस्तान में उसके दल को भारी क्षति पहुंची। इसीलिए जाटों से बदला लेने को उसने दूसरे साल फिर चढाई की। मुलतान के निकट सिंध नदी पर जाटो से महमूद का भारी जल युद्ध हुआ इसमें जाट लोग पराजित हुए। हिन्दुस्तान पर महमूद का यह अंतिम धावा था। स० १०८७ में महमूद का शरीरान्त हुआ। जैसा कि ग़ज़नी के इतिहास मे लिखा जा चुका है, यह बड़ा उदार तथा विद्याप्रिय सुलतान था। फिर भी फ़िरदौसी के साथ इसका व्योहार उदारता का न

हुआ। मरते समय भी अपना लूट पाट का सारा कोष अपने सामने रखवा कर महमूद ने अपनी संपत्ति से भावी वियोग के कारण विलाप किया। इसके पीछे इसका बेटा मोहम्मद शासक हुआ, किन्तु इसे बंदी करके इसका दूसरा बेटा मसऊद दूसरे ही साल सुलतान बना। सं० १०८६ में इसने हिन्दुओं के प्रतिकूल सहफून की सहायता करने के लिए सालार मसऊद ग़ाज़ी को बहराइच भेजा, किन्तु एक मंदिर पर अधिकार करने के पीछे गोंडा नरेश सुहृध्वज उपनाम सुहलदेव ने सम्वत् १०६० के युद्ध में ग़ाज़ी का वध किया। यह ग़ाज़ी मियां धर्मार्थ आत्मबलि करने वाले ग़ाज़ी समझे जाते हैं। इनकी समाधि पर आज भी प्रति वर्ष भारी मेला जेठ मास में होता है। इसी सम्वत् में महामारी तथा दुर्भिक्ष का प्रकोप दक्षिणी एशिया भर में हुआ, जिससे केवल इस्फ़हान में चालीस हज़ार मनुष्य मरे। यही दशा बग़दाद आदि की हुई। सम्वत् १०६२ में मसऊद ने अपने बेटे मजदूद को सिंध के पूर्व वाले प्रान्त में अपना शासक नियुक्त किया। अफ़ग़ानिस्तान में सेलजूक की प्रबलता से मसऊद पराजित हुआ। अतएव सम्वत् १०६८ में आप हिन्दुस्तान में सेना भरती करने के लिए आये कि जिससे भारतीय दल द्वारा अफ़ग़ानिस्तान में विजय प्राप्त हो। यह देख इनकी सेना ने इन्हें राज्यच्युत करके इनके बंदी भ्राता मोहम्मद को फिर सुलतान बनाया। दूसरे साल मोहम्मद के बेटे अहमद ने मसऊद का वध कर डाला। अब मसऊद पुत्र मौदूद ने ग़ज़नी आकर नग्रहार के युद्ध में मोहम्मद का वध किया। सेलजूकों को भी इसने पराजित करके लाहौर में कुछ विद्रोह कारियों का दमन किया। मौदूद का शरीरान्त सं०

११०५ में हुआ और कई नाम मात्र के सुलतान एक दूसरे के पीछे तख़्त पर बैठे । अनन्तर सम्वत् ११९० में फ़र्रुख़ज़ाद सुलतान हुआ जिसने सेलजूकों को पराजित किया। इसी समय से सिंध में सूम्र ने अधिकार जमाया। सम्वत् ११७४ में सुलतान बहराम शाह ग़ज़नी का सुलतान हुआ। दो वर्ष पीछे लाहौर के गवर्नर मोहम्मद बहलोल ने विद्रोह किया, किन्तु बहराम ने उसे पराजित कर दिया।

गज़नी का वंश ।

संवत्	नम्बर	नाम	किसका पुत्र	विवरण
९९१	(१)	अलपतिगीन		सामानी वंश का तुर्की गुलाम ।
१०२०	(२)	इसहाक़	नं० १	
१०२३	(३)	बलकातिगीन		नं० १ का दास
१०३०	(४)	पिरीयापीरे		नं० १ का दास
१०३४	(५)	सबुक्तिगीन		नं० १ का दास
१०५४	(६)	इसमाइल	नं० ५	
१०५५	(७)	महमूद	नं० ५	इसने उत्तरी पंजाब जीता
१०८७	(८)	मोहम्मद	नं० ७	
१०८८	(६)	मसऊद	नं० ८	
१०६८	(८)	मोहम्मद फिर	नं० ७	
१०६६	(१०)	मौदूद	नं० ६	
११०५	(११)	मसऊद दूसरा	नं० १०	
११०५	(१२)	बहाउद्दीन अली	नं० ६	

संवत्	नम्बर	नाम	किसका पुत्र	विवरण
११०५	(१३)	अब्दुर्रशीद इज्जुद्दौला	नं० ७	
१११०		तुग़रिल		राज्य छीनने वाला।
१११०	(१४)	फ़र्रुख़ ज़ाद	नं० ६	
१११६	(१५)	ज़हीरुद्दौला इब्राहीम	नं० ६	
११५६	(१६)	अलाउद्दौला मसऊदतीसरा	नं० १५	
११७१	(१७)	कमालुद्दौला शीरज़ाद	नं० १६	
११७२	(१८)	मलिक अर्सलान	नं० १६	
११७४	(१६)	बहरामशाह	नं० १६	
१२०७	(२०)	खुसरूशाह	नं० १६	
१२१७	(२१)	खुसरू मलिक	नं० २०	

(विशेषतया डफ़ के आधार पर)

गोरी वंश।

संवत्	नम्बर	नाम	किसका पुत्र	विवरण
	(१)	इज्जुद्दीन हसन		
१२०५	(२)	फ़ज़ुद्दीन सूरी (सैफुद्दीन)		
१२०६	(३)	अलाउद्दीनहुसैन जहांसोज़		
१२१३	(४)	सैफुद्दीन मोहम्मद		
१२७३	(५)	ग़यासुद्दीन मोहम्मद		
१२५६	(६)	शिहाबुद्दीन मोहमम्मद		दिल्ली जीता
१२६३	(७)	महमूद	न० ५	
१२६७	(८)	बहाउद्दीन साम		

संवत्	नम्बर	नाम	किसका पुत्र	विवरण
१२६७	(९)	अलाउद्दीन उत्सुज़		
१२७२	(१०)	अलाउद्दीन मोहम्मद		

(विशेपतया डफ के आधार पर)

अनन्तर ग़ारियों ने ग़ज़नी के सुल्तानों को किस प्रकार पराजित कर के नष्ट किया सो अफ़ग़ानिस्तान के इतिहास में कहा जा चुका है। ग़ज़नी वंश का भारतीय राज्य भी शिहाबुद्दीन ग़ारी ने किस प्रकार लिया सो भी वर्णित हो चुका हैं। शिहाबुद्दीन ने पहले गुजरात से भारत विजय का विचार किया किन्तु वहां भीमदेव चालुक्य ने उसे पराजित कर दिया। अनन्तर इसका पृथ्वीराज से सामना हुआ और एक वार पराजित और वन्दी होकर दूसरी वार सं० १२४९ में इसने किस प्रकार पृथ्वीराज तथा उनके भाई को हराया सो भी कहा जा चुका है। उसी साल अजमेर और दूसरे साल दिल्ली पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। शिहाबुद्दीन ग़ोरी ने दिल्ली को मुसलमानी भारतीय प्रान्तों का राज्यस्थल बनाया। इसी संवत् में कुतवुद्दीन ने कालिंजर तथा महोवा जीते और सं० १२५१ में वार युद्ध कर के कोल का क़िला लिया। इसी साल शिहाबुद्दीन तथा कुतवुद्दीन ने मिलकर काशी, और कन्नौज के नरेश, जयचन्द्र को पराजित कर के उसके राज्य पर अधिकार जमाया। सं० १२५२ में पृथ्वीराज के भाई हम्मीर ने अजमेर मे सर उठाया, किन्तु कुतवुद्दीन ने उसे पराजित करके गुजरात के भीम देव को भो हराया। मैरों ने गुजराती दल की सहायता की थी सो सं० १२५३ मे कुतवुद्दीन ने उनपर आक्रमण किया, किन्तु पराजित होकर इसे

अजमेर भागना पड़ा । अजमेर भी पहुंचकर मैरो ने कई मास तक मुसलमानी दल पर घेरा डाला । अनन्तर दिल्ली से और दल पहुंचने पर ये लोग हट गये । इसी साल ग्वालियर पर आक्रमण हुआ । साल भर युद्ध करने के पीछे यह दुर्ग भी कुतबुद्दीन के हाथ आया और शम्सुद्दीन अलतमश यहां का शासक हुआ । इसी वर्ष दिल्ली मे जामा मसजिद बनी । सं० १२५४ में अन्हिलवाड़ पत्तन को कुतबुद्दीन ने लूटा तथा मोहम्मद वल्द बख़तियार ने पालों को पराजित कर के बिहार पर अधिकार जमाया । सं० १२५६ मे इसी मोहम्मद ने लक्ष्मणसेन को पराजित कर के बंगाल पर भी अधिकार पाया । सं० १२६० में आसाम पर आक्रमण करने में बख़तियार पुत्र मोहम्मद मारा गया । स० १२५६ मे ग़ोर के सुलतान ग़यासुद्दीन का शरीरान्त हो गया और शिहाबुद्दीन अपने भाई के स्थान पर सुलतान हुआ । चार साल के पीछे घक्करों ने इसका वध किया । इसके मरते ही ग़ोर का विशाल राज्य ऐसा अस्त हो गया कि मानो वह जादू की पुड़िया थी । शिहाबुद्दीन का भतीजा महमूद सुलतान हुआ । और सं० १२६३ में इसने सुख पूर्वक कुतबुद्दीन को सुलतान मान लिया । इसके हाथ मे सारा उत्तरीय भारत बड़ी सुगमता पूर्वक आया था और बुन्देलखंड तथा उत्तरी ग्वालियर पर भी इसका अधिकार था । इस भांति प्रायः ३० वर्षो के प्रयत्नों से उत्तरीय भारत में मुसलमानी साम्राज्य स्थापित कर के शिहाबुद्दीन ग़ोरी सकुटुम्ब नष्ट हो गया । उसके विशाल बल द्वारा अर्जित कोई भी प्रान्त उसके वंश में न बचा, किन्तु उसके प्रयत्नों से मुसलमानी राज्य भारत में ५०० वर्षों के लिए स्थापित हुआ ।

भारत में कुछ वंशों को छोड़ किसी राज कुल का वास्तविक शासनकाल डेढ़ दो सौ वर्षों से अधिक नहीं रहा। किसी प्रान्त को उठा लीजिये तो यही दशा पाई जावेगी। फिर भी भारतीय राजवंश परिवर्तन से कभी कोई भारी हलचल देश में न मचा। एक राजकुल के जाने पर दूसरा प्रायः उन्हीं नियमों के अनुसार शासन करने लगता था। शासक कोई भो राजवंश हुआ, किन्तु शासन प्रणाली हिन्दू सभ्यता वाले नियमों के अनुसार चली। एक ही समय भारत मे वहुतेरे प्रभावशाली शासक हुआ करते थे, किन्तु उन सब में शासन प्रथा एक ही थी। नियम स्थापक ब्राह्मण थे और उनके अनुसार शासन करने वाले क्षत्रिय। राज्य परिवर्तन से न्याय संबन्धी नियमों में प्रायः कोई परिवर्तन नहीं होता था। एक ही समय विविध राज्यों में भी वहुत करके सम नियम थे। जो अन्तर भी था वह प्रायः विविध प्रान्तों के जलवायु पार्थक्य के अनुसार होता था न कि न्याय संवन्धी विचार पार्थक्य से। आईन बनाने की सभाओं का यहां कभी प्रयोजन नही पड़ा। मौर्य्य चन्द्रगुप्त के समय में भी भारतीय सभ्यता के नियम ऐसे सुदृढ़ थे कि उन्हें बदलने का राजा भी अधिकार नहीं रखता था। ऐसा न केवल विचार है किन्तु प्रत्यक्ष रूप से मौर्य नियमों में लिखा है। धार्मिक स्वतंत्रता भो पूरी थी। प्रत्येक पुरुष को अपनी रुचि के अनुसार अपने धर्म पर चलने का अधिकार था। विविध धर्मों के अनुयायी आचार में सब धर्मों को पूज्य मानते थे और किसी को निंद्य नहीं कहते थे। इन्हीं उदार विचारों के कारण आक्रमण कारिणी वहिरंग जातियां भी हिन्दू समाज में मिल जाया करती थीं। मालव, यूनानी, शक, हूण, गुर्जर, मंगोल, आदि जातियों के

आने से भारतीय सभ्यता में कोई भेद नहीं पड़ा। वे सब इससे लाभ उठाकर हमसे अभिन्न होती गईं। जैसे योरोप में प्रत्येक निवासी राज्य में अपनी भी कुछ न कुछ सत्ता समझता है, वैसा नियम प्रकट रूप से यहां न था। ब्राह्मण हिन्दू सभ्यता के रक्षक थे, क्षत्रिय हिन्दू बल के, वैश्य हिन्दू व्यापार के और शूद्र कारीगरी तथा कार्य कौशल के। प्रत्येक विभाग दूसरे से सहृदयता रखता था, किन्तु उसके कार्यों में विशेष योग नहीं देता था। यदि राष्ट्रकूटों ने चालुक्यों को पराजित कर के अपना राज्य स्थापित किया अथवा ऐसा करने का प्रयत्न ही किया, तो वह लोग केवल चालुक्य राज-कुल के शत्रु समझे गये न कि सारी चालुक्य प्रजा के। जहां दो राजाओं में भारी युद्ध हुआ करते थे, वहीं खेती, कारीगरी, व्यपार, विद्याध्ययन आदि के कार्य निर्विघ्न चला करते थे और उनपर कोई भी युद्धकर्ता हस्तक्षेप नहीं करता था। शंकराचार्य तथा रामानुजाचार्य के प्रयत्न हिन्दू सभ्यता के लिए नवीन राज्य कुलस्थापन अथवा विनाश से बहुत बढ़कर महत्ता की बातें थीं। इन्हीं कारणों से भारत में राज्य परिवर्तन ऐसी भारी घटना नहीं समझी जाती थी जैसी कि अन्य देशों में।

मुसलमानों के आने से इस प्रणाली का पहले पहल भारी परिवर्तन हुआ। पहले मुसलमान विजयी भारत में दो धाराओं द्वारा आये और उनकी दो जातियां भी थीं, अर्थात् अरबी और अफ़गानी। अरब वालों का राज्य सं० ७६९ में सिन्ध, और मुलतान में स्थापित हुआ। यद्यपि यह समय मुसलमानी धर्म स्थापन के लिए अरुणोदय काल का था, तथापि अरब वालों ने किसी प्रकार का धार्मिक विरोध न किया।

अपने राज्य में इन्होंने ब्राह्मणों को ऊंचे, ऊंचे पद, दिये तथा हिन्दू धर्म से किसी प्रकार का विरोध न किया। भारतीयों से वह ऐसे मिल गये कि महमूद के आने पर ब्राह्मण नरेशों से मिलकर उन्होंने अफ़ग़ान नरेशों से युद्ध भी किया। यद्यपि अरबों ने हिन्दू धर्म स्वीकार नहीं किया तथापि हिन्दू सभ्यता को उनके द्वारा किसी प्रकार की क्षति न पहुंची। उनके द्वारा जो परिवर्तन हुआ वह बहुत अंशों में वैसा ही हुआ जो भारतीय नरेशों द्वारा होता था। जो दूसरी मुसलमानी धारा अफ़ग़ानिस्तान से आई, वह पहले पहल राज्य लोभ से न आकर धार्मिक उन्नति तथा लूट की चोप से आई। महमूद ने लाहौर पर्य्यन्त राज्य अवश्य फैलाया, किन्तु उसने ऐसा तभी किया जब ब्राह्मणों का यह राज्य पके फल की भांति उसके हाथो मे गिर पड़ा। उसका पूर्ण अभिप्राय धर्म फैलाने तथा लूट प्राप्त करने का था। इसीलिए महमूद ने प्रतिमा तोडने का उतना ही प्रयत्न किया जितना लुटवाने का। राज्य फैलाने पर उसने बहुत ही थोड़ा ध्यान दिया। हिन्दुओं के विचार से महमूद ने मथुरा, कन्नौज, प्रभासपत्तन, आदि पर मन्दिर तोडकर तथा प्रतिमाओं को नष्टकर के हम लोगों का केवल अपमान किया, किन्तु अपने विचार से वह हम लोगों को धार्मिक बनाने के प्रयत्न में था और प्रतिमाओं का अपमान कर के यह दिखला रहा था कि जिनको हम पूजते हैं उनमें कोई वास्तविक सामर्थ्य नहीं। महमूद कोई बुरा मनुष्य न था। उसने अपने राज्य में बहुतेरी उन्नतियां की और विद्वानों का अच्छा मान किया। उसमें जो कुछ बुराई समझी जा सकती है वह मुसलमानी मत की अंधभक्ति थी। हज़रत मोहम्मद ने काफ़िरों के साथ जो बर्ताव उचित कहा था वही मुहम्मद

करता था । यह अंधभक्ति किसी भारी शासक के लिए बड़ा विकराल दुर्गुण है, क्योंकि धार्मिक विषयों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता का इसमें पूर्ण अभाव है । इसी भारी दोष के कारण महमूद के कार्य दूषित थे, किन्तु वह अपने विचारों से उन्हें दूषित नहीं समझता था और धर्मोन्नति में प्रवृत्त था । इसी भारी विद्वेष के कारण हिन्दू मुसलमान मिलकर कभी एक जाति न होसके । यदि अन्य आक्रमण कर्त्ताओं की भांति ये केवल राज्य से प्रसन्न रहकर धार्मिक अत्याचार न करते तो जैन, बौद्ध, हिन्दू आदि की भांति समय पर धार्मिक विभिन्नता रहने पर भी हिन्दू मुसलमानों में कोई वास्तविक अन्तर न रहता ।

सिंहावलोकन ।

उन्नीसवीं शताब्दि के इतिहासों में ऐतिहासिक लोग बहुधा भारत का इतिहास लिखने में सिकन्दर के आक्रमण से आरंभ करते थे और दो चार पृष्ठों मे इधर उधर की बातें लिखकर महमूद के आक्रमणों पर आ जाते थे, तथा शिहाबुद्दीन की विजय वर्णित करके कुतबुद्दीन से भारतीय इतिहास का प्रबंध डालते थे । स्मिथ महाशय ने गौतम बुद्ध के समय से भारतीय इतिहास का विस्तृत वर्णन करके हम लोगों के साथ भारी उपकार किया है । फिर भी वैदिक समय को आपने भी छोड़ दिया है । इसीलिए इस ग्रंथ में हमने आर्य आगमन से इतिहास की डोर उठाई है ।

सं० पू० ६०~० से भारत में आर्यागमन प्रारंभ हुआ और सं० पू० ४००० ऋग्वेद की रचना होने लगी । इन दो हज़ार वर्षों का ग्रंथ हमारे पास कोई नहीं हैं, किन्तु पंडितों ने

वैदिक आधारों तथा अन्य प्रकार से यह सिद्ध किया है कि उस काल गद्यपद्य मय निबन्धों की रचना हुई थी। यह रचना वैदिक मंत्रों से न्यूनतर थी, सो वेदों के बनाने से समय के साथ नष्ट हो गई। इन दो हज़ार वर्षों में पांच मन्वंतरों का होना पाया जाता है, अर्थात् स्वायंभुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, तथा रैवत। स्वायंभुव मन्वन्तर का प्रायः ७०० वर्ष चलना समझा गया है। शेष चारों मन्वन्तर प्रायः १३०० वर्षों में समाप्त हुए। स्वायंभुव मनु के वंशधरों में जिन देशों का बटवारा हुआ है उनमें अरब तिब्बत और मध्य एशिया के कथन आये हैं। स्वायंभुव के वंशधरों मे प्रियव्रत, ध्रुव और पृथु की प्रधानता है। रैवत मन्वन्तर तक आर्य लोगो ने सारा पंजाब अधिकार मे कर लिया था। चाक्षुष मन्वन्तर में ऋग्वेद का गाना आरंभ हुआ तथा समस्त उत्तरीय भारत आर्यों के अधिकार में आया। सं० पू० ३८०० से वैवस्वत मन्वन्तर अब तक चल रहा है। वैवस्वत ने अयोध्या बसाकर सूर्यवंश को वहां स्थापित किया। प्रायः इसी समय माधव ने विहार मे हिन्दू राज्य स्थापित किया। कुछ दिनों में सूर्यवंशी निमि ने अयोध्या से बढ़कर मिथिला का राज्य जमाया। प्रायः २८०० वर्ष सं० पू० से चंद्र वंश भी इलाहाबाद के निकट झूसी में पहले पहल स्थापित हुआ। थोड़े दिनों के पीछे यह वंश सरस्वती नदी के दोनों किनारों पर जा बसा और कुरुक्षेत्र इसका मुख्यस्थल हुआ। राजा नहुष और ययाति इस वंश में भारी सम्राट हुए। ययाति ने अपने बड़े बेटे यदु को राज्यच्युत करके पुरु को गद्दी दी। इस कारण यदु मध्य तथा पश्चिमी भारत में राज्य जमाने के डौल में लगे और चन्द्रवंश का बल बंट गया। इस कारण थोड़े

दिनों में सूर्यवंशी दिवदास ने चंद्रवंशियों को पराहत कर के चंद्रवंशियों के कारण कुछ दिन से मुरझाये हुए सूर्यवंश के बल को फिर से जागृत किया। कुछ दिनों में हयहय वंशियों ने नर्मदा के निकट भारी साम्राज्य स्थापित किया। माहिष्मती इसकी राजधानी हुई। अनन्तर अयोध्या के रामचन्द्र ने बढ़कर लंकराज रावण को हराया, दक्षिणी और तामिल राज्यों पर दबाव डाला, पुष्कर, तक्षशिला, और मथुरा में अपने वंश के राज्य स्थापित किये और कुछ अन्य प्रान्तों को भी स्ववश करके हिन्दू सभ्यता की भारी उन्नति की। समय पर श्रीकृष्ण तथा राजा युधिष्ठिर ने आर्य बल की और भी उन्नति की। युधिष्ठिर ने सारे भारत पर विजय प्राप्त की और मध्य एशिया पर्य्यन्त नरेशों का दमन किया। रामचन्द्र का समय बाईसवीं शताब्दी सं० पू० का है और युधिष्ठिर का पंद्रहवीं। युधिष्ठिर के पीछे राजा जन्मेजय का नागों से भारी संग्राम हुआ। वेदों का निर्माण काल सं० पू० ४००० से २५०० तक है और ब्राह्मण उपनिषद् एवं आरण्यकों का स० पू० २५०० से १४०० पर्य्यन्त। इस काल पर्य्यन्त लेखनकला का प्रचार भारत में नहीं हुआ था और ग्रंथों की रक्षा स्मरण द्वारा होती थी। समय पर ग्रंथ बाहुल्य से स्मरण शक्ति पर अधिक बोझा पड़ने लगा। इसलिए राजा युधिष्ठिर के समय कृष्ण द्वैपायन व्यास ने वेदों का संपादन करके उनके चार भाग किये और एक एक भाग अपने एक एक शिष्य को बांट दिया। इसी समय आपने लोमहर्षण को इतिहास का काम दिया और उन्होंने एक संहिता रचकर तत्काल पर्य्यन्त ज्ञात इतिहास की रक्षा की। इनके शिष्यों ने और कुछ संहिता ग्रंथ बनाये। इन्हीं के आधार पर

प्राकृत पुराण बने जिनके आधार पर संस्कृत पुराण समय पर बनाये गये। इसी समय दर्शनों तथा अन्य शास्त्रों की भी उन्नति हुई।

राजा जन्मेजय के पीछे गौतम बुद्ध के पहले तक का समय हमने आदिम कलिकाल माना है। इसी में दाक्षिणात्य भारतीयों ने वैबिलोन से लेखनकला लाकर भारत में उसका प्रचार किया। कुछ लोगों का यह भी मत है कि भारत की लेखनकला वैबिलोन से पृथक है और वह इसी देश में बनी थी। जो हो भारत में लिपि प्रणाली का प्रचार दशवी से आठवीं शताब्दि सं० पू० में किसी समय से प्रारंभ हुआ। इस प्रणाली के प्रचार से नवीन ग्रन्थ बनने से स्मरण शक्ति पर बोझ पड़ने की आवश्यकता नहीं रही। अतएव विविध प्रकार के ग्रन्थ बनने का समय आया। फिर भी बहुत काल पर्य्यन्त पवित्र ग्रन्थों के कंठस्थ रखने की ही प्रथा प्राचीन परिपाटी के सम्मानार्थ चलती रही। इसलिए आदिम कलिकाल भर में सूत्रों के बनने की रीति स्थापित रही। सूत्रों का यह प्रयोजन है कि बहुत ही थोड़े शब्दों में बहुत बड़ा भाव प्रायः संकेत की भांति वर्जित किया जावे। फिर भी लेखनकला के विस्तार से काव्य ग्रन्थ, नाटक, स्मृति, पुराण, इतिहास, आदि भी इसी समय से बनने लगे। पहले नाटक भास कवि ने रचे। भास, पाणिनीय व्याकरण के नियमों पर नहीं चलते थे, जिससे प्रगट है कि वे उनके पूर्व के थे। कुछ लोगों का विचार है कि वाल्मीकीय रामायण भी पाणिनीय नियमावलंबी नहीं है किन्तु हमें वह ऐसा नहीं समझ पड़ता। भारत तथा मनुस्मृति के आदिम रूप भी आदिम कलिकाल में बने। निरुक्तकार यास्क महा-

शय भी मास के समकालीन अथवा उनके कुछ ही पूर्व समय के मालूम पड़ते हैं। आपके पहिले ३२ वैय्याकरण हो गये हैं और पाणिनि के पहिले १५१। इसलिए प्रगट है कि आदिम कलिकाल में आचार्यों का ध्यान भाषा परिष्कृत करने की ओर ज़्यादा था। वैदिक समय में आसुरी भाषा का प्रचार था, जो ज़ींद से मिलती जुलती थी। ब्राह्मण काल में यह भाषा विकसित होकर अंत में वैदिक भाषा से पृथक सी हो गई। इसे ब्राह्मणिक भाषा कह सकते हैं। ब्राह्मण काल के पीछे आदिम कलिकाल उपनाम सूत्रकाल में भाषा का और भी संस्कार हुआ और वैय्याकरणों ने उसे दृढ़ नियमों से जकड़ दिया। इसी समय से उसका नाम संस्कृत पड़ा। जो दर्शन शास्त्रीय सिद्धान्त ब्राह्मण काल में दृढ़ हुए थे उनका सूत्रकाल में विस्तार हुआ तथा अनीश्वरवाद भी स्थिर होकर प्रकृतिवाद और शरीरवाद के सिद्धान्त निकले। उधर पूर्व और उत्तर मीमांसा की भी दृढ़ता हुई। वैदिक समय में आर्यों तथा अनार्यों में भेद प्रत्यक्ष रहा। ब्राह्मण काल पर्य्यन्त आर्य सभ्यता का अच्छा विस्तार हुआ तथा अनार्यों ने भी इसे अपनाया, किन्तु सीमा प्रान्तों में अनार्यों का पार्थक्य पूर्ण रहा। यह दशा पश्चिमी पंजाब, दक्षिणी दक्षिण, पूर्वी बंगाल आदि की थी। सूत्रकाल में इन सभों ने भी आर्य सभ्यता ग्रहण करके हिन्दू मत में पदार्पण किया। वैदिक समय में धार्मिक विचार प्राकृत शक्तियों के व्यक्तीकरण अथवा दैवी करण से अधिक सम्बन्ध रखते थे। ब्राह्मण काल में उपनिषदों के साथ एक ईश्वर पर ध्यान जमा। सूत्र समय में अनार्यों के आर्य मत में बहुतायत से आने से उनके विचारों के लिए भी स्थान देना पड़ा, जिससे

तदनुसार-रुद्रकाली आदि के विचार उठकर पुष्ट और उन्नत हुए। अतएव सूत्रकाल में त्रिदेव सम्बन्धी धार्मिक विचारों पर दृढ़ता रही।

इस काल पर्य्यन्त धार्मिक सामाजिक तथा साहित्यिक उन्नति क्रमशः ऐसी सुन्दरता से होती आई कि वैदिक मत पूर्ण रूपेण परिपक्व हो गया। उसकी वृद्धि ऐसी क्रमोन्नति से हुई कि किसी समय भारी हल चल न समझ पड़ा। इस काल पर्य्यन्त वैदिक साहित्य का समय माना जाता है। महात्मा गौतम बुद्ध ने अपने नवीन मत स्थापित करने में प्राचीन हिन्दू विचारों का ही आश्रय लिया, किन्तु उन्होंने अपने चुने हुए विचारों को दृढ़ता से फैलाया और शेष को दृढ़ता से खंडित किया। आपके पूर्व खंडन प्रणाली का इतना बल कभी न हुआ था क्योंकि लोगों का ध्यान मंडन पर ही रहता था न कि खंडन पर। अतएव आपके द्वारा धार्मिक संसार में भारी हलचल उपस्थित हुआ और धार्मिक उन्नति का समय आया। आपके पूर्व किसी धार्मिक पुरुष की ऐसी भारी व्यक्तिगत महिमा भी न हुई थी जैसी आपकी हुई। इनसे पहिले वाले आचार्य अपने सिद्धान्तों में ऐसे मिल गये कि उनका व्यक्तित्व अंतर्ध्यान हो गया। इधर गौतम का व्यक्तित्व बहुत ही दृढ रहा। इन्ही के व्यक्तिगत माहात्म्य से रीझकर लोगो ने इन्हें कोई अवतारी पुरुष माना और फिर इनसे पहले वाले आठ अन्य व्यक्तियों को हिन्दुओं ने अवतार मानकर दशावतार का विचार दृढ़ किया। बौद्ध मत में हीनयान और महायान की दो शाखायें हैं, जो दक्षिणी और उत्तरी बौद्ध धर्म भी कहलाती हैं। हीनयान स्वयं गौतम के सिद्धान्तों पर विशेषतया अवलंबित है, किन्तु महायान

के समय इनकी महिमा इतनी बढ़ चुकी थी कि नर भाव से उठकर गौतम सम्बन्धी विचार देव भाव को प्राप्त हो गया था। महायानी बौद्ध धर्म में पौराणिक हिन्दू धर्म के विचार परम प्रचुरता से मिल गये हैं। यह मिलाव बढ़ता ही गया यहां तक कि समय पर महायानी मत हिन्दू धर्म में आकर लुप्त होगया। महाराज अशोक के समय हीनयान चलता था और कनिष्क के समय महायान बुद्ध के व्यक्तित्व की इतनी पूजा हुई कि उनकी अस्थि तथा चिता भस्म को ले लेकर लोगों ने स्तूप बनवाया। इसीलिए समय पर प्रतिमा पूजन का भी भाव बढ़ा। ब्राह्मण ग्रन्थों में केवल अनार्यों द्वारा प्रतिमा पूजन के कथन हैं, आर्यों द्वारा नहीं। बौद्ध काल के पीछे प्रतिमा पूजन का विस्तार आर्यों में भी हुआ। पश्चिमी एशिया में इस प्रणाली का बहुत अधिक मान था। महाराज कनिष्क पश्चिमी एशिया तथा उत्तरी भारत दोनों के समभाव के सम्राट थे। इस राजवंश द्वारा भारत में प्रतिमा पूजन का विस्तार बहुत अधिकता से बढ़ा। इस प्रकार उपनिषद् काल वाले ईश्वरीय विचारों के साथ ही साथ सूत्र काल मे त्रिदेव तथा बौद्ध काल में अवतार के भाव जुड़ गये। साहित्य में बौद्ध काल ने प्राकृत तथा संस्कृत दोनों भाषाओं में अच्छी उन्नति दिखलाई। गौतम बुद्ध के पूर्व प्राकृत भाषा मे पुराण आदि ग्रन्थ बने अवश्य थे किन्तु उनमें काव्य आदि की सुन्दरता ऐसी न थी कि वे रक्षित रहते। बौद्ध काल के प्राकृत ग्रन्थ ऐसे सुहावने बने कि वे पाठक को अद्य पर्य्यन्त अलौकिक आनन्द देते हैं। संस्कृत साहित्य मे आदिम बौद्ध काल ने पुराणों तथा स्मृतियों का चमत्कार दिखलाया और काव्य तथा अन्य प्रकार के भी ग्रन्थ बनने लगे।

आदिम कलिकाल में मगध, हस्तिनापुर, मथुरा, पांचाल, अयोध्या आदि के राजवंशों का प्राधान्य रहा। गौतम बुद्ध के कुछ पूर्व भारत में सोलह राज्यों का कथन है, जिनमें मगध, कोसल और अवंति राज्यों की प्रधानता है। इस प्राचीन काल में भी भारत में दो प्रजातंत्र राज्य थे अर्थात् मैथिलों और मल्लों का। इन सोलह राज्यों के अतिरिक्त महर्षि वाल्मीक ने दक्षिण में पांड्य राज्य का होना भी लिखा है। धीरे धीरे उत्तर और मध्य भारत की सोलह रियासतों में से सन्धि विग्रह द्वारा कई लुप्त हो गईं और मगध राज्य की भारी प्रधानता हुई। जिस काल भारत में सिकंदर का धावा हुआ तब भी मालवीय, क्षुद्रक, आदि कई प्रजातंत्र राज्य थे। सिकंदर ने पंजाब तथा सिंध को जीता किन्तु इन छोटे छोटे नरेशों से ही लड़कर यूनानी दल ऐसा घबड़ाया कि भारतीय सम्राट मगध नरेश का सामना करने की उसे हिम्मत न पड़ी। अतएव सिकंदर वापस गया और दो ही वर्षों में बैबिलोनिया जाकर मर गया। सिकन्दर के भारत छोड़ते ही उसके विजयों का फल पाश्चात्य भारत से भी दो ही चार वर्षों में नष्ट हो गया। यूनानियों को ध्वस्त करने में सबसे बड़ा पराक्रम चंद्रगुप्त मौर्य ने दिखलाया। अब मगध राज्य को भी हस्तगत करके तथा बहुतेरे अन्य भारतीय नरेशों को जीतकर चन्द्रगुप्त ने संसार भर में सब से पहला साम्राज्य स्थापित किया, जिसका नाम उसकी माता मुरा के कारण मौर्य हुआ। इनके समय यूनानियों ने साहस करके गंगा तट तक सेन संधान किया, किन्तु यह प्रयत्न निष्फल हुआ और उनको काबुल का राज्य मौर्य को देना पड़ा। चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक ने बौद्ध धर्म की भारी

वृद्धि की तथा सब के साथ दया का व्योहार करके अपनी महत्ता का पूर्ण परिचय दिया । आपके पीछे मौर्य्य साम्राज्य दो टुकड़ों में बटकर बलहीन हो गया और सं० पू० सात सौ के लगभग पुष्पमित्र शुंग ने शुंग साम्राज्य स्थापित किया। इनके समय हिन्दू मत का फिर प्राधान्य हुआ। प्रसिद्ध विजयी यूनानी मिनैंडर को पराजित करके पुष्पमित्र ने भारत को ऋणी बना रक्खा है। इसका आक्रमण सिकंदरी धावे से बहुत अधिक प्रभावशाली था, किन्तु निष्फल रहने से उसका इतिहास में तद्दृश कथन नहीं है। सिकंदर और सिल्यूकस ने भारतीय सम्राट से युद्ध करने का साहस भी न किया. किन्तु मिनैंडर ने भारतीय सम्राट से कई मास पर्य्यन्त संग्राम किया। शुंगों के पीछे पैंतालीस वर्ष तक काण्व ब्राह्मणों का साम्राज्य चल कर सं० २१ में ध्वस्त हो गया। इसी समय उज्जैन में विक्रमादित्य प्रमार का राज्य हुआ और कालिदास ने काव्यामृत प्रवाह द्वारा भारत का सर सदैव के लिए ऊंचा किया।

मौर्य काल से ही दक्षिण में आंध्र घराना शक्ति संपन्न था। सं० २६ में तत्कालीन आंध्र राज्य ने बढ़कर अंतिम काण्व नरेश सुशमा को युद्ध में मारा तथा उत्तरीय भारत में कुछ काल के लिए अपना प्रभाव फैलाया। इस से कुछ पूर्व से ही शक नाम्नी एक विजयिनी जाति मध्य तथा पाश्चात्य एशिया से आकर भारत के तक्षशिला, मथुरा, राजपूताना आदि स्थानों पर अधिकृत हुई थी। इन लोगों का मुख्य केन्द्र काठियावाड़ और गुजरात में रहा। उधर उत्तर पश्चिमी भारत में कुशनों का साम्राज्य फैला। ये तीनों राज्य एक ही शताब्दि के भीतर स्थापित हुए। इन तीनों में कुशनों की

प्रधानता थी। इनमें कनिष्क और हुविष्क मुख्य थे। तुर्की सम्राट होने पर भी इन्होंने बौद्ध धर्म का बहुत अच्छा प्रचार किया तथा उत्तरी भारत का थल मार्ग द्वारा रोम से व्यापारिक सम्बन्ध खोला। तामिल भारत का रोम वालों से व्यापारिक सम्बन्ध बहुत काल से जल मार्ग से चला आता था। कनिष्क ने चीन साम्राट को भी पराजित किया। शकों में रुद्रदामन भारी नरेश तथा पूर्ण पंडित था। विदेशी होकर भी शकों ने संस्कृत साहित्य का अच्छा मान किया। इधर, स्वदेशी आंध्रों ने प्राकृत साहित्य को उज्वल बनाया। इनमें गौतमीपुत्र श्रीशातकर्णी की प्रधानता है। आंध्र तथा कुशन साम्राज्य सं० २८० के लगभग समाप्त हुए और शक राज्य सं० ४४१ पर्य्यन्त चलकर गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वारा ध्वस्त किया गया। गुप्त साम्राज्य सं० ३७६ में स्थापित हुआ। इन शासकों में समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य प्रधान थे। समुद्रगुप्त ने पूर्वी तथा दक्षिणी भारत को बंगाल उडीसा तथा तामिल पर्य्यन्त जीता। गुप्त राज्य में भारत की शासन प्रणाली बहुत ऊंची तथा आदरणीय रही और संस्कृत साहित्य की भी भारी उन्नति हुई। चीनी यात्री फ़ाहियेन चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय भारत में आया था। इसने तत्कालीन भारत की बहुत बातों में भारी प्रशंसा की है। चोर डकैतों आदि का उस काल यहां नाम न था और धार्मिक स्वतंत्रता बहुत बढ़ी चढ़ी थी। गृह निर्माण, पाषाण, चित्रकारी, गानवाद्य, विज्ञान आदि की उस काल में अच्छी उन्नति हुई। सं० ५३० के लगभग हूणों का आक्रमण भारत पर हुआ। इनके प्रभाव से गुप्त साम्राज्य नष्ट होकर साधारण राज्य मात्र रह गया। हूणों का अधिकार पंजाब, राज-

पूताना, मालवा और काश्मीर में विशेषता से था। सं० ५८५ में तत्कालीन गुप्त नरेश बालादित्य ने मालवीय नरेश यशोवर्म्मन से मिलकर अन्तिम हूणराज मिहिरकुल को करारी पराजय दी। जिससे हूणों का राज्य भारत से टूट गया। फिर भी हर्षवर्द्धन के समय पर्य्यन्त भारत में कोई साम्राज्य उस काल स्थापित न हो सका। आपने सम्वत् ६६३ से ७०४ पर्य्यन्त राज्य किया। आपके समय चीनी यात्री ह्यूयन्त्सांग भारत में आया। इसने प्रायः समग्र भारत का बहुत अच्छा आंख देखा वर्णन छोड़ा है। उधर हर्ष के राजकवि बाणभट्ट ने भी हर्षचरित्र में अच्छा ऐतिहासिक मसाला रक्खा है। इस प्रकार इस काल का इतिहास भली भांति ज्ञात है। हर्ष के समय भारत के चार प्रधान राज्य थे अर्थात् पांड्य, पल्लव, चालुक्य और हर्षीय राज्य। नर्मदा पर्यन्त हर्ष का शासन था, महाराष्ट्र देश में चालुक्य पुलकेशिन का, उत्तरी तामिल देश में पल्लव नरसिंह वर्मन का और दक्षिणी तामिल में पांड्य नरेश का। हर्ष वर्द्धन महायानीय बौद्ध धर्म के बड़े प्रोत्साहक थे। दक्षिण में आंध्रों के पीछे कुछ दिन क्षत्रपों तथा आभीरों का राज्य रहा और फिर प्रायः ढाई सौ वर्ष राष्ट्रकूटों ने राज्य किया। अनन्तर सम्वत् ५८० के लगभग से ८०५ पर्य्यन्त प्रथम चालुक्य महाराष्ट्र देश के शासक रहे। इनमें पुलकेशी की प्रधानता थी। चालुक्यों के समय महाराष्ट्र में बौद्ध धर्म गिराव पर था और जैन, शैव तथा वैष्णव मतों का प्राबल्य था। चालुक्यों के पीछे सवा दो सौ वर्ष महाराष्ट्र देश राष्ट्रकूटों के (सं० १०३० पर्य्यन्त) फिर अधीन रहा। इनमें तीसरे गोविन्द की प्रधानता है। इन लोगों ने सिंध के अरबी मुसलमानों से

मिलकर उत्तरी परिहारों से प्रायः युद्ध किया। इनके समय बौद्ध धर्म का भारी पतन हो गया तथा शैव, वैष्णव और जैन मतों की उन्नति हुई।

तामिल देश में पल्लव लोग आंध्रों द्वारा दक्षिण से निकाले जाकर पहुंचे। समुद्रगुप्त के समय विष्णुगोप पल्लव कांची का प्रतापी नरेश था। इसके पीछे पल्लवों का प्रभुत्व चढ़ा, यहां तक कि तामिल प्रान्तो का वृहदंश इन्हीं के अधिकार में आ गया, केवल दक्षिण में पाण्ड्यों का कुछ प्रभाव रह गया। हर्षवर्द्धन के समय तामिल भारत में पल्लव तथा पांड्य दो ही प्रधान शासक थे। पल्लवों द्वारा तामिल में आर्य सभ्यता का अच्छा विस्तार हुआ। यों तो दक्षिण में अशोक के समय ही आर्य सभ्यता का पूरा विस्तार हो चुका था, तथापि तामिल प्रान्तों में अनार्यता का विभव शेष था। यहां आर्य्य प्रभाव फैलाने वाले पल्लव ही थे। ये लोग विशेषतया शैव थे। नंदिवर्मन पल्लवमल्ल के पीछे कुछ दिनों में पल्लवों का राज्य छोटे छोटे नरेशों में बट कर बलहीन हो गया। जब तक इनमें कोई शक्ति रही, तब तक इन्होंने महाराष्ट्र देश के शासकों से युद्ध किया। महाराष्ट्र और पल्लव देशों के शासक मानों सहज शत्रु थे। इन दोनों देशों में समय समय पर कई राजकुल बदले, किन्तु फिर भी प्रत्येक महाराष्ट्र शासक ने तामिल देश जीतने का प्रयत्न किया और तामिल शासकों ने भी महाराष्ट्रों के प्रतिकूल शताब्दियों पर्य्यन्त यही प्रयत्न जारी रक्खा। इन दोनों में शत्रुता बहुत करके मैसूर प्रान्त के लिए ही रहा करती थी। जब पल्लव राज्य छोटे छोटे नरेशों में बट गया तब उनकी एक शाखा गंगपल्लव ने प्रायः डेढ़ सौ वर्ष कुछ महत्ता स्थापित रक्खी। अनन्तर चोलों ने सं० ६५० के लगभग पल्लव

शक्ति अशेष कर दी और प्रायः ५० वर्षों के भीतर पांड्यों को भी ध्वस्त कर के समस्त तामिल देश पर अधिकार जमाया। इन लोगों ने लंका, बर्मा तथा भारतीय महासागर के द्वापुओं को भी जीता। चोलों की शक्ति सं० ११७५ पर्य्यन्त बहुत अच्छी रही, यद्यपि सं० ११२७ में चोलों के स्थान पर चोल चालुक्य वंश तामिल देश का शासक हो गया था। इनकी शक्ति सं० १२०० से गिरती गिरती १३०० में निर्मूल हो गई। तामिल देश मे पहले जैन धर्म की कुछ प्रधानता थी, किन्तु पीछे से शैव मत का बल बढ़ता गया। स्वामी रामानुजाचार्य के प्रयत्नों से लगभग सं० ११५० से वैष्णवमत भी उन्नत हो चला। चोल पतनारंभ काल से ही पांड्यो नें थोड़े दिनों के लिए फिर प्राधान्य प्राप्त किया और उधर मैसूर मे विष्णुवर्द्धन तथा वीर बल्लाल के प्रयत्नो से होय्सल वंश गौरवान्वित हुआ।

उधर महाराष्ट्र देश मे सं० १०३० से १२१३ पर्य्यन्त चालुक्यों का राज्य फिर से स्थापित हुआ। इन्हें कल्याण के पश्चिमी चालुक्य कहते हैं। इसी वंश की एक शाखा पूर्व में उत्तरी तामिल के वंगी प्रान्त में प्रतिष्ठित हुई थी। इन्हे पूर्वी चालुक्य कहते हैं। इन लोगों के चोलों से वैवाहिक तथा अन्य प्रकार के भी संबन्ध रहा करते थे। सं० १००० के लगभग ये लोग चोलों के अधीन हो गये थे, किन्तु सं० ११२७ मे इसी वंश का राजा चोल वंश का बल पूर्वक स्वामी हुआ। इसी ने चोल चालुक्य राजकुल चलाया। उधर पश्चिमी चालुक्यों में तैलप, सोमेश्वर, आहवमल्ल, और विक्रमादित्य त्रिभुवन मल्ल प्रधान थे। विक्रमादित्य ने भारी साम्राज्य प्राप्त किया, किन्तु इनके वंशधर अपनी अयोग्यता के कारण

उसकी रक्षा न कर सके। सं० १२१३ से प्रायः पैंतालीस वर्ष कलचुरि और पश्चिमी चालुक्यों का समय समय पर शासन रह कर अंत में देवगिरि का यादव वंश सं० १२४८ में महाराष्ट्र देश का शासक हुआ। इतने ही बीच शैव मत की लिङ्गायत शाखा के बढ़ने से महाराष्ट्र देश में जैन मत समाप्त हो गया और हिन्दू धर्म का अखण्ड बल फैला। यादवों में सिंधन प्रधान था। इन यादवों के समय दक्षिण में हेमाद्रि और बोपदेव अच्छे पण्डित हुए। सं० १३५१ से १३६६ पर्य्यन्त आक्रमण करके मुसलमानों ने महाराष्ट्र देश पर अधिकार जमा लिया और सं० १३६७ में तामिल देश के भी कुछ नरेशों को जीता, किन्तु तामिल मे मुसलमानों का अधिकार उस काल न हुआ। यद्यपि मैसूर तथा पाण्ड्य देशों के नरेश मुसलमानी आक्रमणों से बलहीन हो गये, तथापि सं० १३९२ मे स्थापित होकर विजयनगर राज्य ने प्रायः तीन शताब्दियों के लिए तामिल मे हिन्दू स्वतंत्रता फिर स्थापित रक्खी।

इधर उत्तर में हर्षवर्द्धन के पीछे थोड़े दिन तक अराजकता रह कर इनके मातामह का वंश शासक हुआ। ये सदैव बलहीन रहे और इनमें से तीन राजाओ को काश्मीर तथा बंगाल नरेशों ने राज्यच्युत किया। अंत में परिहारों ने संवत् ९०० के लगभग कन्नौज में शासन जमाया। इस वंश का पहिला नरेश मिहिर भोज कई प्रान्तो को जीतकर सम्राट हुआ। उसके बेटे महेन्द्रपाल ने पैतृक साम्राज्य को और भी बढाया, किन्तु इसके वंसधरों में साम्राज्य चलाने की पात्रता न थी। राष्ट्रकूटों के आक्रमण से यह राज्य मांडलिक

मात रहा और सं० ६७३ से ११३७ पर्य्यन्त किसी न किसी भांति चलकर अस्त हो गया। सं० ११३७ से १२५१ पर्य्यन्त काशी और कन्नौज का राठूर वंश चला। इसमें गोविन्दचन्द्र और जयचन्द्र की प्रधानता थी। इस अंतिम शासक के समय राज्य की अच्छी वृद्धि हुई, किन्तु इनका दिल्ली नरेश पृथ्वीराज से विगाड़ हो गया जिससे मुसलमानों द्वारा इन दोनों का विनाश हुआ। बंगाल का पाल वंश सं० ८०० के लगभग स्थापित होकर सं० १२५६ पर्य्यन्त चला। पहिले इनका राज्य बहुत बढ़ा और इन्होंने मगध को प्राप्त किया, किन्तु पीछे से मंगोलों के आक्रमण से सं० १०३२ पर्य्यन्त प्रायः सौ वर्ष के लिए इनका राज्य नष्ट प्राय हो गया। अनन्तर उन्हे पराजित करके इन लोगों ने फिर शासन जमाया, किन्तु सं० ११२५ के लगभग बंगाल मे विजयसेन का प्रभुत्व चढ़ा, जिससे पालों का राज्य संकुचित होकर मगध भर में रह गया। बिजय सेन वल्लाल सेन, और लक्ष्मणसेन ने एक दूसरे के पीछे सम्वत् १२५६ पर्य्यन्त बंगाल में राज्य किया। पाल नरेश बौद्ध थे और ये लोग तांत्रिक हिन्दू। संवत् १२५६ में पालों और फिर सेनों का राज्य बख़्तियार पुत्र मोहम्मद ने जीत लिया। पाल तो इसी समय से नष्ट हो गये, किन्तु सेन मांडलिक रूप में एक शताब्दि और चलकर अस्त हुए। पालों के सहारे बौद्ध धर्म मगध देश मे भारतीय अन्य प्रान्तों से लुप्त होकर भी बहुत काल पर्य्यन्त जीवित रहा, किन्तु मुसलमानों के अत्याचारों से यह वहां से भी गत हो गया। यह भी एक विचित्र बात है कि पहले पहल मगध देश ही में बौद्ध धर्म का बहुत प्रचार हुआ और अन्त में वहीं से इसका भारत से निर्वासन हुआ। जिस मोहम्मद ने मगध और

बंगाल को सुगमता से जीत लिया, वही आसाम जीतने के प्रयत्न में बेमौत मरा।

मध्य भारत में मालवा बघेलखंड और बुन्देलखंड प्रधानतया ऐतिहासिक प्रान्त हैं। मालवा में विक्रमादित्य का राज्य होना ऊपर कहा जा चुका है। अनन्तर समय के साथ यहां प्रमारों का राज्य फैला जिनमें सं० ८७७ के कृष्णराज प्रधान थे। वाक्पति राजमुंज चालुक्य तैलप द्वारा सं० १०५२ में मारे गये। इनके भतीजे भोज क राजत्व काल चालीस वर्ष के ऊपर चला। आप प्रसिद्ध विद्या रसिक थे। सं० ११११० के लगभग चालुक्य और चेदि नरेशों ने मिल कर आपका पराजित किया। इस काल से प्रमारों का मालवीय राज्य निर्बल हो गया। बाघेलखंड में पहले चेदि नरेशों की प्रधानता रही, किन्तु पीछे से सोलंकियों की बाघेल शाखा का प्राधान्य हुआ। बुंदेलखंड में सं० ८२७ से चंदेलों का राज्य आरंभ हुआ और १२६० मे यह राज्य कुतबुद्दीन ने ध्वस्त किया। इनमें यशोवर्मन् और धंग प्राधान भूपाल थे। गुजरात में सं० ६९२ से सोलंकियों का प्रधान्य हुआ। इनके पहले चौर नरेशों ने भी अच्छी ख्याति प्राप्त की थी और प्रभासपत्तन में सोमनाथ का मंदिर बनवाया था। सोलंकी नरेश भी इस मंदिर का अच्छा मान करते रहे, किन्तु महमूद ग़ज़नवी द्वारा यह ध्वस्त किया गया। भीमदेव सोलंकी ने फिर से बड़ा अच्छा सोमनाथ का मंदिर प्रभासपत्तन में बनवाया। इन नरेशों में मूलराज, सिद्धराज, और भीमदेव प्रधान थे। राजपूताना में पहले चौहानों की प्रधानता हुई। मेवाड़ का शिशोदिया वंश भी गरिमावान था। जब मुसलमानी आक्रमण से पृथ्वीराज के साथ चौहान वंश राज्य से भ्रष्ट हो गया

तब शिशोदियों का प्राधान्य हुआ। काबुल में कुशन साम्राज्य कुछ काल तक पतन के पीछे भी मांडलिक रूप मे रहा। कुशनो को वृहत् युएची कहते हैं। इनके पीछे इसी वंश के लघु यूएची शासक हुए, जिन्हें तुर्की शाहिया नरेश कहते हैं। यह लोग भी बौद्ध थे और इनके द्वारा अफ़गानिस्तान, वायव्य सीमा प्रान्त, तथा पश्चिमी पंजाब में बौद्ध मत की उन्नति रही। इनका प्रभाव सं० ६२७ में अरबो द्वारा नष्ट हुआ और तब सं०६५६ में काबुल में ब्राह्मण नरेश लोरमाण शासक हुआ। इस राजवंश को हिन्दू शाहिया नरेश कहते हैं। इनका राज्य समय पर लाहौर पर्यंत फैला। जयपाल और अनंद-पाल ने सबुक्तिगीन तथा महमूद से अच्छा युद्ध किया। अन्त मे त्रिलोचनपाल और भीमदेव के साथ इस वंश का राज्य समाप्त हो गया. और महमूद ने इस रियासत पर अधिकार जमाया। यद्यपि महमूद के पीछे दिल्ली का राज्य प्रभावशाली हुआ और अजमेर मे भी चौहानो का बल बढ़ा, तथापि मह-मूद के बलहीन वंशधरों से भी सब हिन्दू मिलकर लाहौर का राज्य न छीन सके। सिकंदर के समय और उसके पूर्व हिन्दुओ की प्रबलता प्रत्यक्ष ही दीखती है। इन्होंने सहज ही में फ़ारस का सिन्धी राज्य ध्वस्त कर डाला और सिकंदर के जीते जागते इनके प्राबल्य से उसका राज्य छटने लगा, तथा उसके मरने के ६ वर्ष के भीतर ही उसके द्वारा जीते हुए प्रान्त ऐसे स्वतंत्र हो गये कि मानों सिकंदर भारत मे आया ही न था। मिनैंडर के विजयों की भी यही दशा हुई। हूणों का आक्रमण ४८ ही वर्ष के भीतर बीत गया और विजयी हूण पददलित हुए। यही दशा मंगोलो के बंगाली आक्रमण की हुई। शक, कुशन, हूण, गुर्जर, आदि भारत मे

भारतीय हो कर ही रहने पाये। जिन भारतीयों ने सिकंदर के समय से चलने वाले बारह शताब्दियों के लंबे काल में इतना विक्रम दिखाया, उन्हीने न केवल महमूद से पराजय खाई, वरन् उसके बलहीन उत्तराधिकारियों तक का सामना करने का कभी साहस न किया। इससे समझ पड़ता है कि इस काल के हिन्दू अपने पूर्व पुरुषों की अपेक्षा बहुत ही गिरे हुए थे। महमूद से पराजित होना भारी लज्जा की बात न थी, क्योंकि उसके समान युद्धकर्त्ता उस काल एशिया भर में दूसरा न था। फिर भी यदि हिन्दू कादरता न दिखलाते तो भटिंडा अथवा जमुना के युद्ध में महमूद का भी सर्वनाश हो जाता। मुलतान के जाट थोडा सा अकड गये तो महमूद को सिंध ही से जाना पडा जिससे उसकी सेना नहस नहस हो गई। महमूद के बलहीन वंशधरों का लाहौर के राज्य पर डेढ़ सौ वर्ष प्रतिष्ठित रहना तत्कालीन भारतीय राजमंडल के लिए भारी लज्जा की बात है। शिहाबुद्दीन गोरी के आने पर उत्तरीय भारत का नृपसमुदाय ऐसा उलट गया मानों ताशों का कोई घर हो। अलाउद्दीन और काफूर के सामने यही दशा महाराष्ट्र तथा मैसूर नरेशों की हुई। यदि तत्कालीन हिन्दुओं में सँभलने का कुछ भी बल शेष होता, तो महमूदी आक्रमणों से शिक्षा ग्रहण करके वे अपने को संभाल लेते। महमूद ग़ज़नवी और मुहम्मद ग़ोरी वाले समय के बीच में भारत ने डेढ सौ वर्ष का अवकाश पाया किन्तु अपने को कुछ भी न संभाला। जैसी क्षुद्र शत्रुतायें महमूद के समय भारतीय राजमंडल का बल शोषण करती थीं, वैसी ही मोहम्मद के समय करती रहीं। महमूद के समय तो बहुत से राजाओं ने मिलकर भटिंडा पर अनंदपाल

का साथ दिया था, किन्तु कग़र गर पृथ्वीराज के साथ समरसिंह को छोड़ और कोई भी न देख पड़ा। इन बातों से प्रत्यक्ष प्रगट है कि महमूद और मोहम्मद के बीच भारतीय राजमंडल नें न केवल उन्नति न की वरन् अवनति भी की।

इतना होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि पूरा भारत चिरकाल से अवनति पर था। हूण पराभव पर्य्यन्त इसने सजीवता के प्रत्यक्ष प्रमाण दिये थे। उसके पीछे भी अच्छे अच्छे राज्य स्थापित हुए थे। साहित्य की अच्छी उन्नति हो आई थी और धार्मिक विषयों पर भी अच्छे विचार बढ़े थे। सामाजिक अवनति ने अवश्य अपना फल दिखलाया था, किन्तु व्यापार, कारीगरी आदि बहुत अच्छी दशा में थीं। मुसलमानों के पूर्ववाले भारत का यह सूक्ष्म दिग्दर्शन इसी स्थान पर समाप्त होता है। अब हम आगे के अध्याय मे साहित्य तथा धर्म पर कथन करके अपने इस भारतीय इतिहास के द्वीतीय भाग को भी समाप्त करेंगे। भारत में अद्य पर्यन्त चार क्रान्तियां हो चुकी हैं, पहली आर्यागमन में हुई, दूसरी गौतम बुद्ध से, तीसरी मुसलमान विजय के साथ और चौथी वृटिश साम्राज्य से। दो भागों में दोनों आदिम क्रान्तियों के फल दिखलाये जा चुके हैं और तीसरे में शेष दोनों के दिखलाये जावेंगे।

३०वां अध्याय।

संस्कृत साहित्य तथा हिन्दू धर्म (संवतारंभ से सं० १२५० तक)।

बीसवें अध्याय मे हम वाल्मीकीय रामायण, पुराणोंतथा स्मृतियों का वर्णन कर आये हैं। उन्नीसवें में बौद्ध साहित्य का कुछ कथन हुआ है। प्रथम भाग के कुछ अध्यायों में वेदों, ब्राह्मणों तथा सूत्रों का विवरण हो चुका है। अब मुसलमान आगमन पर्य्यन्त शेष साहित्य तथा धार्म्मिक उन्नतियो का कथन यहां किया जाता है। यहां पर साहित्योन्नति का वर्णन हम विशेषतया मैकडानल महाशय के आधार पर करेंगे। आपने इस काल वाले इतिहास को पांच भागों में विभाजित किया है, अर्थात् काव्य, शृङ्गार, नाटक, कथा कहानियां और दर्शन। इसी भांति कथन हमें भी युक्ति युक्त जान पड़ता है, क्योंकि इन सब विषयों के ग्रन्थों का इतिहासानुसार मिलाकर पूर्वापर क्रमानुसार कथन करने से विषय विभाग पर पूरा ध्यान जमना कठिन है, जिससे साहित्यिक इतिहास का ज्ञान तादृश न होगा।

सब से पहिला काव्य ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायण है जो छठी अथवा सातवीं शताब्दी सं० पू० का है। इसीके रचयिता होने से महर्षि वाल्मीकि आदि कवि कहे गये हैं।

आपसे भी पूर्व भास कवि ने कई नाटक ग्रन्थ रचे थे किन्तु उनकी रचनाओं में तादृश सौन्दर्य्य न होने से आदि कवि की पदवी उचित ही महर्षि को मिली। संस्कृत कवियो का समय निरूपण बहुत सुगम नहीं है। काव्य ग्रंथ रचने की प्रथा परम प्राचीन है, इतना तो हमें वाल्मीकीय रामायण से ज्ञात है, किन्तु शेष कवियों के विषय समय निरूपण सब दशाओं में असन्दिग्ध नहीं है। महर्षि पतंजलि ने पुष्पमित्र शुंग के समय पाणिनीय व्याकरण पर महाभाष्य रचा। आपका समय सं० पू०, १०० का है। महाभाष्य मे जो उद्धरण हैं उनसे प्रगट होता है कि उस काल काव्य रचना उन्नति पर थी। इसी शताब्दी के निकट वाले गिरिनार और नासिक के शिला लेख मिले हैं जिनमे उन्नत शैली का संस्कृत गद्य काव्य है। यह साहित्य औपन्यासिक ढंग का है। गिरिनार लेख से प्रकट है कि पद्य काव्य की विदर्भ प्रणाली वाली रचना भी उस काल प्रचलित थी, और यह चलन ऐसा दृढ़ था कि यह प्रणाली उस काल भी नवीन न होकर कई शताब्दियो से चलनेवाली प्राचीन समझ पड़ती थी। काण्व काल के कथन मे हम इस मत की पुष्टि में कई प्रमाण दे आये हैं कि कविकुल गुरु कालिदास का समय विक्रमाब्द के आरंभ का है न कि पाँचवीं अथवा छठी शताब्दी का जैसा कि मैकडानल आदि महाशयों का कथन है। कालिदास की रचनाओं का वर्णन महाकाव्य, नाटक, शृङ्गार काव्य आदि के सम्बन्ध में किया जावेगा। आपके पीछे महाराज कनिष्क के समय बौद्ध कवि अश्वघोष ने बुद्ध चरित्र नामक महाकाव्य रचा। इस ग्रन्थ का चीनी भाषा में अनुवाद सं० ४७१ और ४७८ के बीच मे हुआ। एक बौद्ध भिक्षु का प्राकृत छोड़ संस्कृत में बुद्ध चरित्र पर

महाकाव्य लिखना प्रगट करता है कि उस काल इस प्रणाली का बहुत ही दृढ प्रचार था। कनिष्क राज्यारंभ सं० १३५ के लगभग से हुआ और यह राज्य सं० १७७ पर्य्यन्त चला। गुप्त महाराज समुद्रगुप्त का शासन काल लगभग सं० ३८७ से ४३२ पर्य्यन्त माना गया है। आप स्वयं कवि थे और हरिषेण नाम का एक प्रसिद्ध कवि आपके आश्रित था। हरिषेण द्वारा रचित इस सम्राट का छोटा सा गद्य पद्य मय जीवन चरित्र प्रयाग के अशोक स्तंभ पर खुदा है। इसमें कुल मिलाकर ३० चरणों में पद्य कथन है और इतना ही गद्य कथन। यह रचना विदर्भ प्रणाली की है। इसमें ऐसा विशद काव्योत्कर्ष है जो कालिदास और दण्डी में पाया जाता है। समुद्रगुप्त के पुत्र चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का राजत्वकाल सं० ४३२ से ४७० तक है। आपके अमात्य वीरसेन का एक पाषाण लेख मिला है। यह भी विदर्भ प्रणाली का है। प्रायः सं० ४०० से ६०० तक के १८ सारगर्भित शिला लेख मिले हैं जो विशेषतया पद्य में हैं, कुछ गद्य मे भी। इनमें से अधिक में गुप्त संवत् में समय लिखा है और कुछ में मालवीय संवत् में। इनमे से अधिकतर लेख राजाओं की प्रशस्तियां हैं। इनके देखने से प्रगट है कि इस काल की रचना प्रणाली उन काव्य ग्रन्थों के समान है जो अब भी मिलते है। सं० ५२६ में दशपुर (मंडोसर) में एक सूर्य्य मन्दिर बना, जिसमें एक शिलालेख मिलता है। इसमें वत्सभट्टि रचित ४४ छन्दों एवं १५० चरणों में मन्दिर संबंधी कथन है। यह रचना कालिदासीय साहित्य से कई बातों मे मिलती है। इससे जान पड़ता है कि कालिदास की रचनायें वत्सभट्टि को ज्ञात थीं और यह उनका ऐसा आदर करता था कि उन्हीं की प्रणाली पर इसने अपनी रचना की।

इस काल पर्य्यन्त वाल्मीकि और कालिदास के अतिरिक्त और किसी कवि के भारी ग्रन्थ नहीं मिलते । सुवन्धु और भारवि के समय निश्चित प्रकारेण स्थिर नहीं हो सके हैं। इतना ज्ञात है कि हर्षवर्द्धन के राजकवि वाण इनके नाम आदर पूर्वक लिखते हैं, सो उस काल इनके यश प्रकट थे। सं० ६९१ के एक शिला लेख में भी कालिदास, सुवन्धु, भारवि और गुनाढ्य के नाम आदर पूर्वक आये हैं। गुनाढ्य का नाम हम आंध्र नरेशों के वर्णन में लिख आये हैं। आप उसी समस के कवि थे और आपकी रचना पैशाची भाषा में हुई थी। ब्रह्मगुप्तक खंडखाद्य की टीका अमरराज ने लिखी। इसमे लिखा है कि प्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर का शरीरान्त सं० ६४४ में हुआ। आपने पंच सिद्धान्तिका तथा वृहत्संहिता नामक दो ग्रन्थ रचे। संहिता में काव्य के ढंगकी रचना है। महाराज हर्ष का राजत्वकाल सं० ६६३ से ७०४ पर्य्यन्त है। आप स्वयं कवि थे और आपके राजकवि वाण और धावक वहुत प्रसिद्ध हैं। जैन ग्रन्थों में लिखा है कि सूर्य्य शतक के रचयिता मयूर कवि बाण के श्वसुर थे।

अब महा काव्यो का वर्णन उठाया जाता है। इनके पोछे शेष कवि गण का कथन कर दिया जावेगा। जैसा कि सभी को ज्ञात है, संस्कृत में प्रधान महाकाव्य ग्रन्थ छः माने गये हैं, अर्थात् कालिदास कृत कुमारसंभव और रघुवंश, भर्तृहरि कृत भट्टी काव्य, भारवि कृत किरातार्जुनीय, माघकृत शिशुपालवध और श्रीर श्री हर्षकृत नैषधीय। इन्हीं का कुछ वर्णन यहां पर किया जाता है। कुमारसंभव में १७ अध्याय हैं, किन्तु प्रथम सात ही का विशेष मान है। तारकासुर से पीड़ित होकर देवताओं ने ब्रह्मासे उसके बधकी विधि पूछी।

आपने आज्ञा दी कि महादेव और पार्वती का पुत्र उसे मार सकता है। इस विचार से देवताओं ने शिव, गिरजा का विवाह कराने के लिए शैवी समाधि भंग करने को कामदेव भेजा। इस स्थानपर वसन्त ऋतु का बहुत अच्छा वर्णन हुआ है। कामदेव के रुद्रद्वारा भस्म किये जानेपर एक अध्याय में उसकी स्त्री रति का "नव वैधव्य" भव "असह्यवेदना" पर विलाप कहा गया है। कालिदास प्रायः एक अध्याय में एक ही विषय का वर्णन देकर उसमें अपनी उत्कर्ष कवित्व शक्ति दिखला देते हैं। किसी छोटे विषय को भी लेकर आप उस-पर भारी वर्णन परम कुशलता पूर्वक लिख सकते थे। रघु-वंश में १९ अध्याय हैं। इसमें राजा दिलीप के साथ वर्णन उठाया गया है। अपुत्र होने के कारण आपने कुल गुरु वशिष्ठ की आज्ञा से गोचारण का कार्य्य उठाया कि जिसमें नन्दिनी की कृपा से पुत्र प्राप्त हो। गोचरण के से नीरस वर्णन में भी कालिदास ने अपनी रचना पटुता दिखलाई है। इस ग्रन्थ में दिलीप कृत गोचारण, रघुविजय, अजविलाप, दश-रथ मृगया रामयुद्ध, कुश जल विहार आदि का खूब ही वर्णन हुआ है। छः अध्यायों में राम का कथन है। अन्त मे अग्नि-वर्ण की नीचता और उसकी रानी की महत्ता पर ग्रन्थ यका-यक समाप्त हो जाता है। कालिदास की मुख्यता उपमा है। रघुवंश में विविध विषयों के समुचित वर्णन करने की आपने अद्वितीय शक्ति दिखलाई है। आपकी कथा मन्दगा-मिनी न होकर शीघ्रता पूर्वक चलती है और वर्णन कहीं शिथिल नहीं होने पाया है। सरलता भी आपकी रचना की एक मुख्यता है। आपकी रचना शैली ऐसी मनोहर है कि वह भारतीय एवं योरोपीय समालोचकों को सम भाव से

रिझाती है। इन दोनों तथा शेष चारों प्रधान महाकाव्यों पर मल्लिनाथ ने संजीवनी टीका रची है।

भट्टी काव्य के रचयिता महार्षि भर्तृहरि का शरीरान्त संवत् ७०८ में होना कहा गया है। आप वल्लभी नरेश श्रीधर सेन के यहां थे। वल्लभी में चार धरसेन थे, जिनमें चौथे का समय सं० ६९८ है। भर्तृहरि के शतकत्रय बहुत प्रसिद्ध हैं। आप वैयाकरण भी थे। भट्टी काव्य मे २२ अध्यायो द्वारा राम की कथा कही गई है, किन्तु इस कथन का प्रयोजन केवल इतना है कि व्याकरण के रूपो के उदाहरण आ जावें। किरातार्जुनीय मे १८ अध्याय हैं। इसके रचयिता भारवि कवि का समय अभी तक निश्चित नहीं है। ऊपर कहा जा चुका है कि बाण कवि की रचना तथा सं० ६९१ के एक शिला लेख में आपका नाम आता है। भारवि का चित्र काव्य तथा अर्थ गौरव प्रसिद्ध हैं। इस महा काव्य मे अर्जुन द्वारा किरात रूपधारी शिव से युद्ध और अस्त्र प्राप्ति का वर्णन है। शिशुपालवध मे माघ कवि ने २२ अध्यायो में युधिष्ठिर के राजसूय मे कृष्ण द्वारा शिशुपाल निपात की कथा कही है। इसमे भी चित्र काव्य है, किन्तु रचना सौन्दर्य्य तथा भाव प्रबलता की कमी नहीं है। इसे माघ काव्य भी कहते हैं। यह रचना सं० ९०० के लगभग की है। किसी कवि ने इसकी प्रशंसा मे यहां तक कह डाला है कि,

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थ गौरवं।
दंडिनः पद लालित्यम्माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

नैषधीय काव्य अथवा नैषध चरित्र में २२ अध्यायों द्वारा नल दमयन्ती की रुचिर कथा का वर्णन है। इसके रचयिता श्री

हर्ष का समय सं० १२०० के लगभग है। आप कन्नौज नरेश जयचन्द्र के यहां थे। आपने लिख दिया है कि मिथ्या विद्याभिमानियों का दर्प चूर्ण करने के लिए मैंने इस ग्रन्थ में बहुत सी कुंजियां रक्खी हैं। इस ग्रन्थ में सरलता जान बूझ कर नहीं रक्खी गई है और कवि का प्रकट प्रयत्न अर्थ गौरव का है। इसमें कथा मन्द गति से चलती है और विशेष श्रम साहित्य रचना चातुर्य्य प्रदर्शन में किया जाता है, फिर भी भारतीय काव्य विचार से ग्रन्थ बड़ी महत्ता का है। महा काव्य का लक्षण रीति ग्रन्थों में दिया गया है। उस लक्षण के अनुसार तथा साधारण विचार दोनों प्रकार से उपरोक्त ग्रन्थ महा काव्य हैं।

इनके अतिरिक्त कई और भी महा काव्य तथा काव्य ग्रन्थ संस्कृत साहित्य में हैं। विक्रमी नवीं शताब्दी के काश्मीरी कवि रत्नाकर ने हर विजय नामक ५० अध्यायों का भारी महा काव्य रचा। काव्य कृतिमता का सबसे बड़ा उदाहरण सं० ८५० के लगभग वाले कविराज ने राघव पांडवीय ग्रन्थ मे दिया है। इस पूरे ग्रन्थ मे द्वर्थ की ऐसी बहार है कि सारा ग्रन्थ और उसका प्रति छन्द एक अर्थ मे रामचन्द्र का कथन करता है और दूसरे में पांडवो का। द्वर्थ सम्बन्ध में यह ग्रन्थ अतः पर सीमा को पहुंच गया है। कई कवियों ने सात सात अर्थों वाले तक छन्द रचे हैं किन्तु कविराज ने सारे ग्रन्थ में द्वर्थ निभाकर साथ ही साथ रामायण और महाभारत की कथा कह डाली। नलोदय मे राजा नल का कथन है। इसमे विविध छन्दों और तुकों का चमत्कार दिखलाया गया है। तुक केवल अन्त में न आकर मध्य में भी आये हैं। कथा का डोर मात्र लेकर इसमें कवि ने श्रृङ्गार

तथा अप्रासंगिक विषयों के भारी वर्णन किये हैं। सं० १०५० वाले पद्मगुप्त ने नव साहसांक चरित्र में मालवीय नरेश सिन्धराज की कथा कही है। इसमें १८ अध्याय हैं। इसकी भी मुख्य कथा अप्रासंगिक वर्णनों तथा अनेक भारी भारी वक्तृताओं के कारण प्रायः सोने लगती है। रावण वध नामक प्राकृत का भी एक काव्य ग्रन्थ है जो किसी कालिदास का रचा हुआ है। काश्मीरी नरेश प्रवरसेन द्वारा झेलम नदी पर नौका सेतु निर्माण के कारण यह ग्रन्थ बना।

ऊपर पद्य काव्य का कथन हुआ है और अब गद्य काव्य का किया जाता है। हर्ष के समय अथवा उनसे कुछ पहले वाले दंडिन कवि ने गद्य में दशकुमार चरित्र रचा। इसमे दश कुमारों के वर्णन हैं जो हीन सामाजिक दशा दिखलाते हैं। इनकी कथा बहुत ही साधारण एवं अरुचिकर है, किन्तु अन्य प्रकार से दंडी का साहित्य गौरव प्रशंसनीय है। आपके पद लालित्य की प्रशंसा है। कुछ समालोचकों ने कालिदास से भी तुलना करने में "कविदंडी" कह कर इनका मान किया है, यद्यपि यह मान किसी अंश में समर्थनीय नहीं है। वासवदत्ता ग्रन्थ में उदयन की रानी वासवदत्ता का वर्णन है। यह ग्रन्थ सुबन्धु का है। इनका समय अज्ञात है, किन्तु आप बाण से पहले हुए हैं क्योंकि उन्होंने आपका नाम लिखा है। बाण हर्षवर्द्धन के राजकवि थे। आपका गद्य ग्रन्थ कादम्बरी एक अच्छा उपन्यास है। आपका दूसरा ग्रन्थ हर्ष चरित्र आठ अध्यायों मे है। इससे तत्कालीन इतिहास की अच्छी अंगपुष्टि होती है। बाण की रचना उन्नत प्रथा की है।

शृङ्गार।

शृङ्गार काव्य में भी पहला कथन कालिदास का ही आता है। इस विषय पर आपके ग्रन्थ मेघदूत तथा ऋतु-संहार कथनीय हैं। मेघदूत में ११५ छन्द हैं। एक यक्ष कर्तव्य पालन से विमुख होने के कारण कुवेर द्वारा शापित होकर अपने हिमालय वाले घर से दूर मध्य भारत में राम-गिरि पर रहने को बाधित होता है। वह वर्षा में काले मेघ देख कर उनसे अपनी प्रिय पत्नी के पास प्रेम सन्देशा भेजता है। इसमे हिमाचल तक पहुंचने में मेघ को मार्ग में जो जो मुख्य स्थान मिलेंगे उनका अच्छा वर्णन है तथा वियो-गिनी स्त्री के दुःखों एवं यक्ष के कष्टों का ऐसा हृदयहारी कथन है कि देखते ही बनता है। इस ग्रन्थ पर योरोपीय समालोचक भी बहुत मोहित हुए थे। ऋतुसंहार में षट्-ऋतु का वर्णन है। घटखर्पर ने २२ छन्दों में एक अच्छा शृङ्गार ग्रन्थ रचा है। आप विक्रमीय सभा के नवरत्न में समझे जाते हैं। काश्मीरी विल्हण ने चौर पंचाशिका में चोरी से प्रेम करने के पचास छन्द कहे हैं। आपका समय सं० ११२५ के लगभग है। कहते हैं कि आप किसी राजकुमारी के प्रेम में अनुरक्त हो गये थे। इसी कारण आपको बध दंड की आज्ञा मिली, किन्तु जब आपने चौर पंचाशिका में अपने गूढ प्रेम का परिचय दिया तब राजा ने इन्हें क्षमा प्रदान करके वह राज कुमारी भी दे दी। भट्टी काव्य के सम्बन्ध में भर्तृहरि का कथन ऊपर आ चुका है। आप साथ ही साथ वैयाकरण, दार्शनिक तथा कवि थे। चीनी यात्री इत्सिङ्ग ने सं० ७५० के इधर उधर भारत में बीस वर्ष विताये। आपने

लिखा है कि भर्तृहरि सात चार गृही तथा गृहत्यागी होकर अन्त को वैराग्य मे लगे । आपने शृङ्गार शतक, ज्ञान शतक तथा वैराग्य शतक नामक ग्रन्थों मे बड़े मार्के की रचना की हैं। आपबीती की मात्रा इनके चोखे छन्दों में खूब हैं और वे बड़े ही महत्ता पूर्ण हैं। शृङ्गार शतक के देखने से प्रगट होता है कि धीरे धीरे किस प्रकार आपका मन वैराग्य की ओर ढुलता गया। किसी कालिदास ने शृङ्गार तिलक अच्छे अच्छे नूतन भाव दिखलाये हैं। यह केवल २३ छन्दों का ही ग्रंथ होकर महत्तायुक्त माना जाता है। इसी प्रकार अमरु शतक ग्रन्थ है। इसमें विविध भावों का अच्छा चित्रण है, तथा मान, मान मोचन आदि के उत्कृष्ट वर्णन हैं। संस्कृत शृङ्गार काव्य में अशोक, कमल, भ्रमर, चातक, चकोर, चक्रवाक आदि के वर्णन बहुतायत से आते हैं। सं० १०५७ के पूर्व हाल कवि ने प्राकृत में सप्तशतक रचा। शृङ्गार काव्य में गीतगोविन्द का उच्च पद है। यह बंगाली कवि जयदेव का रचा हुआ है। आप लक्ष्मण सेन के समय में सं० १२०० के लगभग थे। इसमें राधाकृष्ण का उच्च प्रेम कहा गया है। वैष्णव लोग इस ग्रन्थ को बहुत पसन्द करते हैं। आपकी रचना अपने ढंग की अद्वितीय है। अनुप्रास का आपने अच्छा प्रयोग किया है और छन्द भी अच्छे लिखे हैं। इस ग्रंथ के छन्दों में राधाकृष्ण को जीवात्मा तथा परमात्मा मान कर निगूढ़ रहस्य पूर्ण धार्मिक अर्थ न केवल निकाले वरन रक्खे भी गये हैं।

नाटक।

नाटक का मुख्य विषय वार्त्तालाप है। इस लिए कहा

गया है कि ऋग्वेद के वार्त्तालाप सर्मा पनिस, यमयमी और पुरूरवस उर्वशी एक प्रकार के आदिम नाटक हैं। भरत प्रथम नाटकाचार्य्य समझे जाते है। पतंजलि कृत महाभाष्य मे कंसवध तथा वलि-वन्धन लीलाओं का होना कहा गया है। कहते हैं कि भरत ने देवताओ के सामने स्वयंवर द्वारा लक्ष्मी का विष्णु से विवाह होना नाटक में दिखलाया था। बंगाल की यात्रायें भी एक प्रकार के नाटक हैं। इस विभाग की उन्नति वैष्णवता एवं कृष्ण पूजन से हुई। संस्कृत में नाटक के रूपक तथा उप रूपक नामक दो भेद हैं और इनके भेदान्तर अनेक हैं। संस्कृत मे दुःखान्त नाटक नही होते और दशम दशा (मृत्यु) का अभिनय नही होता। शाप, निर्वासन, पतन, जातीय विपत्ति, भोजन, शयन, चुम्बन, कार्टना, खरोचना आदि नाटकीय परिणय के लिए अनुपयोगी समझे जाते है। विविध पात्रों के लिए विविध प्रकार की भाषाओं का व्यवहार होता है, जैसे वीरगण, नरेश, ब्राह्मण और उच्च श्रेणी के मनुष्य संस्कृत का व्यवहार करते हैं, तथा स्त्रियां और निम्न श्रेणी के मनुष्य प्राकृत का। प्राकृतों मे भी ऐसा भेद है कि उच्च श्रेणी की स्त्रियां प्रेम मे महाराष्ट्री प्राकृत बोलती हैं और साधारणतया शौरसेनी, लडके तथा उच्च सेवक भी शौरसेनी बोलते हैं, राज सेवक मागधी, जुवारी और बदमाश अवन्ती, गोप आभीरी, कोयला जलाने वाले पैशाची और परम नीच तथा पतित असभ्य लोग अपभ्रंश। नाटकों के कथानक रचने तथा पात्रों के शील गुण दिखलाने मे हमारे नाटक कारों ने अच्छी सफलता प्राप्त की है। नान्दी के साथ नाटक आरंभ होता है और तब सूत्र धार एक या दो पात्रों से वार्त्तालाप करता है। इसी बीच में युक्ति से मुख्य नाटक

आरंभ हो जाता है। कभी कभी दर्शकों की समालोचना शक्ति की प्रशंसा होती है। अंत में प्रायः जातीय विभव वर्द्धक आशीर्वाद के साथ नाटक समाप्त होता है । दृश्य और अंक होते हैं। अंकों की संख्या नाटकों में एक से दश तक होती है। दश अंकों वाले नाटक को महा नाटक कहते हैं। प्राचीन काल में राज महलों के संगीत शाला में नाटक खेला जाता था। नाटक रचयिताओं में कालिदास, भवभूति तथा शूद्रक की प्रधानता है।

अन्य विषयों की भाँति नाटक मे भी कालिदास हमारे श्रेष्ठतम कवि हैं। आपने शकुन्तला, विक्रमोर्वशी और मालविकाग्निमित्र नामक तीन नाटक रचे हैं। योरोप में तत्काल पर्य्यन्त अज्ञात भारतीय सभ्यता का आदर पहले पहल शकुन्तला नाटक ही के द्वारा हुआ। इस प्रकार कविता से अलौकिक आनंद देने के अतिरिक्त इस कविकुल मुकुट ने वाह्य प्रदेशों में हमारी बढ़ी हुई सभ्यता की भी साक्षी दी है। भारतीय साहित्य में नाटक संसार साहित्य के अच्छे रत्नों से पूरी होड़ लगा सकते हैं । हमारे नाटकों में प्राकृति का सौन्दर्य्य भी पात्रों के साथ अच्छा मिला रहता है। योरोपीय विद्वानों ने कालिदास को भारत का शेक्सपियर कह कर आदर दिया है। आपके नाटको से तत्कालीन सामाजिक स्थिति का अच्छा चित्र मिलता है । मृच्छकटिक के रचयिता राजा शूद्रक ने भी बड़ी ही सबल सजीव तथा सुष्ठु रचना की है। कुछ लोगों का विचार है कि दंडी कवि ने शूद्रक के नाम पर यह ग्रन्थ रचा होगा, किन्तु मृच्छकटिक के समान सौन्दर्य्य दशकुमार चरित्र में नहीं है। शूद्रक का समय हर्षबर्द्धन के कुछ पूर्व समझा जाता है। हर्ष ने

भी रत्नावली और नागानन्द नामक दो नाटक रचे हैं जो अच्छे हैं। कुछ लोगों का विचार है कि वास्तव में बाण ने रत्नावली रची होगी और धावक ने नागानन्द। हमारी समझ में बिना प्रमाण के ऐसे कथन अनर्गल समझने चाहियें। भवभूति ने उत्तर रामचरित्र, महावीर चरित्र और मालती-माधव नामक तीन उत्कृष्ट नाटक रचे हैं। आप विदर्भ के ब्राह्मण और कन्नौज नरेश यशोवर्मन के राजकवि थे। यह समय सं० ७६० का है। आपकी रचनाओं में करुणा रस की प्रधानता है। कालिदास के पीछे उत्तमता में आप ही का नम्बर है। विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस रचकर राजनीति की चालों का चमत्कार दिखलाया है। यह सं० ८५७ के पीछे का ग्रन्थ नहीं है। इसके समय के विषय इतने से अधिक कुछ ज्ञात नहीं है। भट्ट नारायण सं० ८६७ में थे। आपने वेणीसंहार नाटक रचा। इसमें वैष्णवता का कथन है। सं० ६५७ के लगभग राजशेखर ने बिद्धशालभंजिका, कपूर मंजरी, बाल रामायण और प्रचंड पांडव उपनाम बालभारत नामक नाटक रचे। सं० ६७० के लगभग कन्नौज नरेश मही-पाल के आश्रित क्षेमेन्द्र कवि ने चंड कौशिक ग्रन्थ रचा, जिसमें राजा हरिश्चन्द्र के दान की कथा है। अनन्तर मालव-पति भोज (सं० १०५५ से ११२२ तक) के कवि दामोदर मिश्र ने हनुमन्नाटक रचा। इसे महानाटक भी कहते हैं। चन्देल नरेश कीर्त्ति वर्मन के राजकवि कृष्णमिश्र ने प्रबोध चन्द्रोदय बनाया। यह कीर्त्तिवर्मन के यहां सं० ११२२ में खेला गया था। इस राजा का समय सं० ११०६-११५७ है। इसमें वैष्णव शाखा का धार्मिक विवरण है। बारहवीं शताब्दी के पीछे महा-भारत, रामायण आदि के विषयों पर बहुत से नाटक बने हैं।

कथा कहानियां।

हिन्दुओं की कथा कहानियों में धार्मिक सिद्धान्तों का पुष्टीकरण प्रायः पाया जाता है। यह भी बहुधा होता है कि कथित कथा के पात्र कोई, और कथा कहने लगते हैं और इस कथा के पात्र भी और कथाएं छेड़ते हैं। इस प्रकार एक कथा के भीतर बहुत सी स्वतंत्र कथाएं आ जाती है। फ़ारस तथा अरब वालो ने भारत की इस प्रणाली से लाभ उठाया है। अरेबियन नाइट्स ग्रन्थ इस प्रणाली का अच्छा उदाहरण है। भारत मे कथा कहानियों के कथन का प्रादुर्भाव बौद्ध ग्रन्थों से पहले पहल हुआ। इनका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण जातक ग्रन्थो में है। कहते हैं कि स्वयं गौतम बुद्ध ने जातकों को रचा था। इनमे बहुत सी सुन्दर कथाएं हैं जिनसे तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था तथा विचारों का अच्छा पता चलता है। जिस काल सं० पू० ३२३ में वैशाली की बौद्ध महासभा हुई थी तब भी जातकों का होना कहा गया है। कहते हैं कि इस सभा के प्रायः सात सौ वर्ष पीछे जातकों को इनका वर्तमान रूप मिला। चीनियों के यहां दो विश्व कोष हैं, जिनमे से पहला सं० ७२५ में बना था। इनमें बहुतेरी भारती कथाएं प्रस्तुत हैं और लिखा गया है कि ये २०२ भारतीय बौद्ध ग्रन्थो से ली गई हैं। जातक प्राकृत भाषा के ग्रन्थ हैं न कि संस्कृत के। इनके पीछे कथा कहानियों में पञ्चतंत्र का नाम सबसे पहले आता है। यह संस्कृत भाषा का ग्रन्थ कबका है सो निश्चित नहीं हो सकता है; किन्तु इतना ज्ञात है कि सं० ५२८ से ६३६ पर्य्यन्त राज्य करने वाले फ़ारस नरेश खुसरू अनुशीरवां ने पंहलवी भाषा में इसका अनुवाद

कराया था। उस काल फारस पर्य्यन्त इसका यश पहुंचने मे सो दो सौ वर्ष अवश्य लगे होंगे। अतएव यह ग्रन्थ सं० ४५० के लगभग का हो सकता है अब इसके पांच भाग होना सिद्ध है। पांच भागो के कारण अब यह पंचतंत्र कहलाता है, किन्तु पुराना नाम कुछ और ही होना समझ पड़ता है। प्रथम खंड मे करटक और दमनक नामक दो शृगालो का वर्णन विशेषता से है। संभव है कि ग्रन्थ का नाम ही करटक दमनक हो, क्योंकि सीरिया के अनुवाद में इसका नाम कलिलग दमनग तथा अरबी में कलीलादमना लिखा गया है। यह ग्रन्थ गद्य में है, किन्तु बीच बीच उदाहरणार्थ पद्य भी आ गया है। इसमे विशेषतया मनुष्येतर जीवधारियों का वर्णन है। इनके विषय बहुधा मनुष्योचित विचारों का कथन हुआ है किन्तु बीच बीच स्वाभाविक गुण कर्मों का भी विकास आ गया है। दोषों का निराकरण इसमे बहुत यत्न से है और ब्राह्मणों, राज दर्बारियों और स्त्रियों की भी कहीं कहीं निंदा है। कुल मिला कर इसके उपदेश सुन्दर तथा रोचक कथाएं हैं।

पंचतंत्र के पीछे हितोपदेश का नाम आता है। इसके रचयिता तथा समय का हाल अज्ञात है, केवल सं० १४३० की इसकी एक प्रति मिली है जिससे इसका रचना काल इससे पूर्व का होना सिद्ध है। इसकी ४३ कथाओं मे से २५ पञ्चतंत्र ही से ली गयी हैं। हितोपदेश चार भागो मे विभक्त है। ये दोनों नीति शास्त्र के ग्रन्थ हैं। वैताल पंचविंशति में वैताल विक्रम से २५ कथाएं कहता है। प्रति कथा के अंत में कोई न कोई गहन प्रश्न उठता है। उसका विक्रम द्वारा यथोचित उत्तर मिलता है। सिंहासनद्वात्रिंशिका में विक्रम

संबंधिनी ३२ कथाएं कही गई हैं। इसमें लिखा है कि विक्रमादित्य के सिंहासन में ३२ पुतलियां लगी थीं जिनमें से प्रत्येक एक एक कथा कहती हैं। शुक सप्तति में एक तोता ७० उपदेश पूर्ण कथाएं कह कर किसी मानसिक कुलटा का सतीत्व बचाता है। ये तीनों गद्य ग्रन्थ हैं। कथा सरित-सागर में १२४ अध्याय तथा २२००० श्लोक हैं। यह ग्रन्थ १८ लंबकों में विभक्त है। इसका रचयिता काश्मीरी कवि सोमदेव सं० ११३७ के लगभग प्रस्तुत था। आपने लिखा है कि यह ग्रन्थ प्राचीन कवि गुणाढ्य कृत बृहत् कथा पर अवलंबित है। सं० १०६४ में क्षेमेंद्र व्यास दास ने बृहत् कथा मंजरी बनाई थी। यह विस्तार में सरित्सागर का एक तृतीयांश होगा और यह भी गुणाढ्य कृत पैशाची ग्रन्थ बृहत् कथा पर अवलंबित है।

नीति शास्त्र पर भी संस्कृत में बहुत से ग्रन्थ हैं। भर्तृहरि कृत नीतिशतक और वैराग्य शतक ऐसे ही ग्रन्थ हैं। काश्मीरी कवि शिल्हण कृत शांतिशतक भी अच्छे उपदेश देता है। मोहमुद्गल में संसार त्याग की शिक्षा, तथा चाणक्य शतक में चन्द्रगुप्त के समकालीन चाणक्य के उपदेश हैं। नीति मंजरी में प्रायः २०० श्लोक हैं। इसके रचयिता द्याद्वि वेद हैं जो सायणाचार्य के पीछे हुए हैं। श्रीधरदास कृत सदुक्ति कर्णामृत सं० १२६२ का संग्रह ग्रन्थ है जिसमें चार सै छीयालीस कवियों की रचना है। शार्ङ्गधर पद्धति इससे प्रायः १०० वर्ष पीछे बनी। इसमें २६४ कवियों के छंद हैं। सुभाषितावलि में वल्लभ देव ने ५० कवियों की रचनायें रक्खी हैं। पाली भाषा का ग्रन्थ धम्मपद भी सुन्दर शिक्षाएं देता है। इन ग्रन्थों में वैराग्य का अच्छा परिपोषण

हुआ है और धार्मिक उपदेश दिये गये हैं। हमारे कवियों ने संसार भर को कुटुम्बवत् मानने की शिक्षा दी है और वन्य जंतुओं से भी सहृदयता दिखलाई है।

दर्शन।

ब्राह्मण तथा सूत्र काल में हम दर्शन काल की वृद्धि का दिग्दर्शन करा आये हैं। इसका प्रादुर्भाव बहुत करके उपनिषदों से हुआ। समय पर आचार्यों ने उपनिषदों के ज्ञान को बहुत कुछ सञ्चय किया। समय के साथ दर्शन शास्त्र के तीन जोड़े दृढ़ हुए अर्थात् योग सांख्य, पूर्व और उत्तरमीमांसा तथा वैशेशिक और न्याय। बौद्ध तथा जैन धर्मों का सांख्य से बहुत कुछ सम्बन्ध है। चारवाक ने इससे भी आगे बढ़ कर पूरा शरीर वाद लिखा है। आवागमन सिद्धांत भारत मे ऐसा दृढ़ था कि बौद्धों तथा जैनों ने इसे बिना तर्क के मान लिया। मुक्ति का विचार भी ऐसा ही है। स्वर्ग नर्क, देव, दानव आदि के विचार भी बौद्ध तथा जैनों और हिन्दुओं में प्रायः एक से पाये जाते हैं। सांख्य शास्त्र में महर्षि कपिल ने केवल प्रकृति और जीव को माना है, किन्तु ईश्वर का अनस्तित्व सिद्ध किया है। सत्व, रजस और तमस नामक त्रिगुणों का वर्णन सांख्य से ही आरम्भ होना कहा गया है। स्वयं कपिल का कोई ग्रन्थ रक्षित नहीं है। कपिल के पीछे सांख्य शास्त्र का पहला आचार्य पंचशिख था जिसका संवतारम्भ के समय प्रस्तुत होना कहा जाता है। सांख्य का पहिला ग्रन्थ ईश्वरकृष्ण कृत सांख्य कारिका है। इसका चीनी भाषा में अनुवाद सं० ६१४ और ६५० के बीच में हुआ। सांख्यकारिका की दो टीकायें हैं अर्थात् पहली सांख्य भाष्य गौडपाद कृत और दूसरी तत्वकौमुदी वाचस्पति मिश्र कृत।

गौड़पाद का समय सं० ७५७ और वाचस्पति का ११५७ है। जो सांख्य सूत्र कपिल कृत कहा जाता है, उसी को सांख्य प्रवचन भी कहते हैं। इसका निर्माण सं० १४५० के लगभग होना लिखा है। विज्ञानभिक्षु कृत सांख्य प्रवचन भाष्य सांख्य सूत्र की कारिका है। यह सं० १६०० के लगभग बनी। कपिल कृत तत्व समास एक और ग्रन्थ कहा गया है। इसमें उनके शिष्य पंचशिख का नाम आया है। नारायण तीर्थ कृत सांख्य चंद्रिका और रामकृष्ण भट्टाचार्य कृत सांख्य कौमुदी भी प्रसिद्ध ग्रन्थ है। शंकराचार्य के समय सांख्य शास्त्र का भारी मान था। सांख्यशास्त्र एक प्रकार से संसार के सारे मतों का मूल रूप है। गौतम बुद्ध ने प्रगट ही इसका मान किया हैं और हिन्दू मत में भी इसके सिद्धांत बहुतायत से मिले हैं। बहुतेरे पंडितों का विचार है कि ईसाई मत बहुत करके बौद्ध मत पर अवलंबित है और मुसलमानी मत पर ईसाई मत का प्रत्यक्ष ही प्रभाव है। इस प्रकार संसार के चार सब से बड़े मतों पर सांख्य शास्त्र ने भारी प्रभाव डाला है। परौणिक सांख्य में इससे वेदान्त के सिद्धान्त कुछ कुछ मिल गये हैं। योग शास्त्र प्राचीन काल से चला आता था, किन्तु सं० पू० १०० के लगभग महर्षि पतंजलि ने योग सूत्र बनाकर इसे बहुत क्रमबद्ध किया। आपने सांख्य संबंधी विचारों में ईश्वर संबंधी भाव मिला दिये। पतंजलि ने योग सूत्रों को चार भागों में बांटा है अर्थात् समाधि, साधना, विभूति और कैवल्य। योग सूत्र पर सब से अच्छी टीका व्यास की है जो ७वीं शताब्दि में बनी। योग के राजयोग क्रियायोग और हठयोग नामक तीन विभाग हैं। आसन, मुद्रा, आदि का वर्णन इसी संबंध में होता है।

पूर्व मीमांसा महर्षि जैमिनि कृत है। इसमें रीतियों की प्रधानता है। इसका सब से प्राचीन भाष्य शबर स्वामी कृत है। सं० ७५० के लगभग कुमारिल भट्ट ने तंत्र वार्तिक और श्लोक वार्तिक में शबर स्वामी कृत भाष्य की टीका रची। सायणाचार्य के भाई माधव ने जैमिनीय न्याय माला विस्तार में पूर्व मीमांसा सूत्रों की अच्छी टीका रची। पूर्व मीमांसा से संबंध रखने वाला उत्तर मीमांसा है जिसे वेदांत कहते हैं। यह महर्षि व्यास कृत कहा जाता है। इसे ब्रह्म अथवा शारीरक मीमांसा या अद्वैतवाद भी कहते हैं। इसका मूलाधार वैदिक वाक्य तत्वमसि है। यह शास्त्र जीवात्मा तथा परमात्मा को अभिन्न मान कर इनका अंतर अविद्या जन्य कहता है और संसार को माया बतलाता है। विद्या दो प्रकार की है, परा और अपरा। इन सिद्धान्तों का पूरा वर्णन वादरायण कृत ब्रह्म सूत्रों में है। प्रसिद्ध दार्शनिक शंकराचार्य ने इसका भाष्य रचा। माया के वर्णन को आपने बहुत दृढ़ किया है। शंकराचार्य के पीछे रामानुजाचार्य ने भी ब्रह्म सूत्रों की अच्छी टीका रची। वैशेषिक और न्याय शास्त्रों में पहला बहुत प्राचीन है। यह किसी अज्ञात नाम ऋषि का रचा हुआ है जिसे उसके सिद्धान्तों के कारण कणाद कहते है। न्याय शास्त्र गौतम कृत है। वैशेषिक और न्याय मिलकर पूरा शास्त्र बनता है। मैकडानल महाशय का मत है कि पहले ये दोनों शास्त्र अनीश्वरवादी थे किन्तु इनमें ईश्वर संबंधी विचार पीछे से मिला दिये गये। सांख्य, योग तथा वेदांत के सिद्धांत श्वेताश्वतरोपनिषद् में मिले हुए हैं। भगवद्गीता में भी इनका बहुत अच्छा वर्णन है जिसमें कर्त्तव्य की प्रधानता है। १४वीं शताब्दि में माधवाचार्य ने सर्व

दर्शन संग्रह रचकर प्राचीन संस्कृत सिद्धांतों के साथ बड़ा उपकार किया है। इसमें १६ सिद्धांतों का वर्णन है और ग्रन्थ कर्त्ता ने सबके साथ पूरी सहृदयता दिखलाई है।

धर्म।

हम ऊपर के वर्णनों में अवैदिक, वैदिक, ब्राह्मणिक और सूत्रकाल वाले धर्मों का विषय देख आये हैं और पौराणिक काल वाले धार्मिक विस्तार पर भी कथन कर चुके हैं। हम देख चुके हैं कि बौद्ध मत ने किस प्रकार धार्मिक संसार में क्रांति उपस्थित कर दी थी और किस प्रकार हिन्दू मत में त्रिदेव तथा अवतार संबंधी विचार पुष्ट हुए थे। कुशन साम्राज्य तथा बौद्ध मतों के कारण प्रतिमा पूजन ने किस प्रकार बल पकड़ा, सो भी हम देख चुके हैं। यह भी कहा जा चुका है कि बौद्ध प्रभाव वर्द्धन तथा हिन्दू विचार सम्मिश्रण से बौद्धों का हीनयानीय मत समय पर किस प्रकार बढ़कर महायान मत में परिवर्तित हुआ और भारत से हीनयान मत किस प्रकार हटकर महायान का यहां के बौद्धों में प्रचार हुआ। बौद्ध सिद्धांतों के दार्शनिक विस्तार कैसे हुए सो भी हम ऊपर देख चुके हैं। अब केवल इतना देखना है कि समय समय पर बौद्ध तथा जैन मतों का प्रचार कब कब और कहां कहां हुआ। इसका वर्णन राजनैतिक इतिहास के साथ स्थान स्थान पर आता गया है। फिर भी एक स्थान पर उसे सूक्ष्मतया दिखला देने से पाठकों को भारतीय धार्मिक परिवर्त्तनों का हाल कुछ विशेष सुगमता से ज्ञात हो सकता है। इसी लिए इसका कुछ कथन यहां पर किया जाता है। अंत में हिन्दुओं के सामाजिक विचारों के परिवर्तन का भी कुछ कथन कर दिया जावेगा।

जिस काल महात्मा बुद्ध प्रस्तुत थे, तब हिन्दुओं ने उन्हें कोई नवीन मत संस्थापक न मान कर धार्मिक उपदेशक मात्र समझा। यद्यपि बहुत से लोग बौद्ध भिक्षु हुए, तथापि वे यह नहीं समझते थे कि हम हिन्दू मत छोड़ कर किसी दूसरे मत में जा रहे हैं। बौद्ध मत बहुत काल पर्य्यन्त गृह त्यागियों का विश्वास मात्र समझा जाता रहा, न कि गृहस्थों का मत। धीरे धीरे इसने अपना प्रभाव बढ़ाया और अशोक के समय राजमत होने की गरिमा पाई। अशोक ने बौद्ध मत से छांट कर साधारण गृहस्थों के योग्य बहुत से नियम निकाले। इस प्रकार सारे भारत तथा लंका आदि तक में बौद्ध मत का प्रभुत्व फैला। सं० पू० दूसरी शताब्दि में तामिल भारत के पांड्य देश में हजारों बौद्ध थे। यही दशा पल्लव देश की हुई। महाराजा कनिष्क ने भी इस मत की भारी महिमा की, किन्तु इनके पीछे के कुछ वंशधरों ने वैष्णव तथा शैव मतों को अपनाया। शकों ने हिन्दू धर्म को ही प्रधानता दी। आंध्र नरेश हिन्दू होकर भी ब्राह्मण तथा बौद्ध दोनों को प्रायः बराबर मानते थे। मौर्यों के पीछे उत्तरी भारत मे पुष्पमित्र शुंग ने बौद्ध मत पर कठोर अत्याचार किये और ब्राह्मणों की महिमा बढ़ाई। शेष शुंगो तथा काण्वों के समय बौद्धों पर कोई अत्याचार तो न हुए, किन्तु इन भूपालों ने उत्तरी भारत में हिन्दू मत को ही प्रधानता दी। जब सं० २८० के लगभग कुशनों तथा आंध्रों का पतन हुआ, तब बौद्धो का कोई विशेष मान करने वाला न रहा। काबुल में कुशनों के उत्तराधिकारी लघु यूएची जाति के तुर्की शाहिया नरेश यद्यपि बौद्ध थे, तथापि इनका प्रभाव भारतीय प्रान्तों पर बहुत

कम पड़ता था । शेष भारत में यद्यपि बौद्धों पर कोई अत्याचार न था, तथापि कोई उनका विशेष मान भी करने वाला न रहा । सं० ३७६ से गुप्त साम्राज्य का प्राधान्य हुआ । गुप्तों के कारण भारत में हिन्दू मत का बहुत बड़ा प्रभाव बढ़ा । चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय चीनी यात्री फ़ाहियेन भारत में आया था । यद्यपि इसे उस काल बौद्ध मत का गिराव नहीं समझ पड़ा और इसने स्थान स्थान पर उसकी भारी महत्ता देखी, तथापि पूरे इतिहास पर विचार करने से प्रमाणित हुआ है कि उस काल भी बौद्ध मत का बहुत पतन हो चुका था और सारे गुप्त काल में इसका भारी गिराव हो गया ।

गुप्तों के समय बौद्ध मत का जो भारी पतन हुआ, वह इन सम्राटों द्वारा किसी अत्याचार का फल न था । स्वयं बौद्ध फ़ाहियेन ने लिखा है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य हिन्दू होने पर भी धन द्वारा बौद्ध संस्थाओं की सहायता करते थे । इसी प्रकार अन्य गुप्त सम्राटों का हाल था । इन्हों ने हिन्दू मत का पूर्ण प्रोत्साहन अवश्य किया किन्तु किसी अन्य मत पर अत्याचार कभी नहीं किया । बौद्ध तथा जैन मत बहुत अंशों में साधारण जन समुदाय की स्वतंत्रता के बाधक होते थे । अहिंसा आदि के कारण लोगों को इन मतों के द्वारा कष्ट होता था क्योंकि अपनी इच्छा के अनुसार वे मांसाशन आदि का व्यवहार नहीं करने पाते थे । स्वयं अशोक ने माता पिता आदि के आज्ञा पालन वाले नियम राज दंड द्वारा भी स्थापित करने की विधि प्रचलित की थी । इन बातों से सामाजिक स्वतंत्रता पर भारी आघात पहुंचते थे जो बौद्ध तथा जैन मतों को अप्रिय बनाते थे । इधर हिन्दू

मत में पूर्ण स्वतंत्रता थी और जब तक कोई अपने कर्मों से उचित दंड का भागी नहीं होता था तब तक किन्हीं धार्मिक नियमों के कारण उसे किसी प्रकार का दंड नही दिया जाता था । महायान मत उन्नति करता हुआ समय पर हिन्दुओं से बहुत कुछ मिल गया था, यहां तक कि बहुत स्थानों पर इनमें भेद जानना कठिन था। लोगों को स्वतंत्रता प्रदान के कारण अन्य कारणों के अभाव में हिन्दू मत अधिक लोक प्रिय था। हम देखते हैं कि अन्य बातों में भी हिन्दू मत जैन तथा बौद्ध मतों से किसी अंश में गिरा हुआ न था। जब जब जैन तथा बौद्ध मतों ने विशेष राज प्रोत्साहन पाया, तब तब उनको थोड़ी बहुत उन्नति अवश्य हुई, किन्तु जब राज प्रोत्साहन किसी मत पर न रहा अथवा हिन्दू मत पर हुआ, तब इन मतों की अवनति उपरोक्त कारणों से बड़ी शीघ्रता पूर्वक हुई। कुल बातों पर विचार करने से स्पष्ट प्रगट होता है कि जन समुदाय के लिए इन मतों की अपेक्षा हिन्दू मत अधिक उपयोगी रहा, और इसी लिए समय समय पर बौद्ध और जैन मत विविध वहिरंग कारणों से सबल तथा निर्बल होते हुए भी हिन्दू मत को कभी दबा न सके और अंततोगत्वा भारत में मृतप्राय हो गये। जैसे उत्तरी भारत में बौद्ध मत समय के साथ दबता गया, वैसे ही पल्लव राज्य में भी पौराणिक मत ने इसे दबा दिया । पल्लव नरेश पहले बौद्ध थे, फिर शैव हुए, और अंत में वैष्णव । जिन कारणों से हिन्दू मत ने भारत में बौद्ध मत को निर्मूल कर दिया, उन्हीं कारणों से नैपाल में वह आज बौद्ध मत को धीरे धीरे किन्तु दृढता से दबा रहा है। यद्यपि अपने जन्म वाले देश में बौद्ध मत दब गया, तथापि अन्य देशों में अब भी

भली भांति प्रचलित है। स० ६१८ में यह श्याम देश तक में फैला।

पाश्चात्य पञ्जाव तथा वायव्य सीमा प्रान्त में हूणों के आक्रमणों ने भी बौद्ध मत को भारी क्षति पहुंचाई। यही दशा महाराज हर्षवर्धन के राज्यारंभ काल पर्य्यन्त चली गई। आपने बौद्ध मत को भारी प्रोत्साहित किया। इन्हीं के समय सं० ६८६ से ७०२ पर्य्यन्त चीनी यात्री ह्यूयन्तसांग भारत में रहा। इस यात्री ने फ़ाहियेन की अपेक्षा बौद्ध मत की बहुत घटती कला देखी। उस काल वायव्य सीमा प्रान्त में इसका कुछ प्रभाव था, किन्तु घट रहा था। बंगाल तथा पूर्वी भारत में इसका बल मंद था। सौराष्ट्र (काठियावाड़) का वल्लभी राज कुल बौद्ध मत का सब से बड़ा पोषक था। हर्ष ने इसका भारी मान किया और मगध में भी इसका कुछ भारी प्रभाव देख पड़ता था। कांची में भी बहुत से बौद्ध थे। महाराज हर्ष के समय बुझती हुई बत्ती की भांति बढ़कर उनके पीछे यह विशाल मत भारत से लुप्तप्राय हो गया। इसकी घटती हुई कला दिनोदिन क्षीण ही पड़ती गई, यहां तक कि स्वामी शंकराचार्य ने इसे भारत से निर्मूल प्राय कर दिया। आपका जन्म समय कुछ अनिश्चित है। सोनानाथ दत्त ने शंकर का जन्म सं० ८५६ में माना है। आपके पिता विश्वजित उपनाम शिवगुरु और माता विशिष्टा थीं। आप तामिल देश के ब्राह्मण कुल भूषण थे। केरल प्रान्त का चिदंबर स्थान आपका जन्म स्थान कहा गया है। आपका शरीरान्त केवल बत्तीस वर्ष की अवस्था में माना जाता है, किन्तु जितनी विद्वत्ता आपने उपार्जित की थी और जितने ग्रन्थ बनाये अथवा अन्य कार्य

किये थे उनसे बहुतों का विचार है कि आप दीर्घजीवी हुए होंगे। आपने बाल काल ही में बहुत विद्या प्राप्त करके संन्यासाश्रम ग्रहण किया और फिर सारे भारत में भ्रमण करके बौद्ध, जैन, पाशुपति, पूर्व मीमांसावादी आदि को वाद में पराजित किया। आपका भारत भ्रमण इतना लंबा चौड़ा था कि रासकुमारी से आसाम, काश्मीर, तथा बलख़ पर्य्यन्त उसमें सब सम्मिलित थे। आपका शरीरान्त भी हिमालय के केदारनाथ स्थान पर हुआ था। शृंगेरी वाला शृङ्गगिरि मठ, द्वारका का शारदा मठ, पुरी का गोवर्द्धन मठ और बदरिकाश्रम का ज्योशी मठ आपही द्वारा स्थापित हुए। आपने पूर्व मीमांसावादी मंडन मिश्र को तथा पाशुपत मत-वादी नीलकंठ को बाद में पराजित किया। यह दोनों आपके शिष्य होकर उत्तर मीमांसावादी हो गये। इस प्रकार अपने मत को दृढ करके जैनों तथा बौद्ध मत वादियों को आपने कई वादों में पूर्ण पराजय दी। टूटता हुआ बौद्ध मत आपके प्रयत्नों से एक बारगी ध्वस्त हो गया और पालों द्वारा सम्मानित होकर केवल मगध में शेष रहा। मुसलमानों के धावे से जब पालों का पतन हुआ तब उन्हीं के साथ बौद्ध मत भी भारतीय अंतिम प्रान्त से भी अन्तर्ध्यान हो गया। शंकराचार्य ने ब्रह्म सूत्र भाष्य, उपनिषद् भाष्य और गीता भाष्य रचे थे। ये आपके त्रिरत्न कहलाते हैं। सनत सुजातीय तथा सहस्र नामाध्याय पर भी आपकी टीकायें हैं। बहुत से लोग शंकर का समय बहुत प्राचीन स्थापित करना चाहते हैं, किन्तु ऐसा यत्न सर्वथा असिद्ध है। यदि बौद्धों को पूर्णतया पद दलित करने वाले शंकराचार्य फ़ाहियेन अथवा ह्यन्तसांग के पहले हुए होते, तो ये यात्री उनका नाम अवश्य लिखते।

सं० १०७४ में प्रसिद्ध वैष्णव उपदेशक महात्मा रामानुजाचार्य का जन्म तामिल प्रान्त में हुआ। आप १२० वर्ष जीवित रहे। आपके समय मैसूर प्रान्त मे जैनों का बहुत बल था, किन्तु आपने उन्हें अपने वादों में पराजित करके प्रतापी मैसूर नरेश विट्ठदेव को वैष्णव बनाकर उसका नाम विष्णु वर्धन रक्खा। यह घटना सं० ११७३ की है। इस वैष्णव उपदेशक ने धार्मिक आवेश में आकर इस नियम पर जैनों से वाद किया कि जो हारे वह पत्थर के कोल्हू मे पिरवा दिया जावे। इस प्रकार आपने बहुत से जैन साधु तथा साधारण जैन समुदाय को वादो में पराजित करके पत्थर के कोल्हू मे पिरवा डाला। इस भांति मैसूर से जैन मत लुप्तप्राय हो गया। महात्मा मध्वाचार्य का जन्म सं० ११७६ का है। शंकराचार्य अद्वैतवादी थे, मध्वाचार्य द्वैत वादी तथा रामानुजाचार्य विशिष्टाद्वैत वादी। रामानुजाचार्य के सिद्धान्त ईसा के भक्ति सम्बन्धी विचारों से बहुत कुछ मिलते हैं, यहां तक कि थियासफ़ी वाले इन्हें ईसा का अवतार समझते हैं।

हम बौद्ध, जैन, तथा हिन्दू मतों के समय समय वाले पतनोत्थानों का वर्णन राजनैतिक इतिहास में स्थान स्थान पर करते आये हैं। उनका एकत्र दिग्दर्शन भी इसी स्थान पर कराया जा चुका है। अब जैन तथा हिन्दू मतों के विषय दो चार बातें लिखकर सामाजिक विचार वर्धन आदि के साथ यह अध्याय भी समाप्त किया जावेगा। सं० पू० ३४० में जैनों के ओसवाल और श्रीमल नामक दो विभाग हुए। इसी काल महावीर की प्रतिमा उपकेश पत्तन में स्थापित हुई। संभवतः जैनों में पहली मूर्तिपूजा का आरंभ इसी

प्रकार हुआ । इसके प्रायः सौ वर्ष पीछे स्थूलभद्र ने जैन भिक्षुओं की एक सभा करके जैन धर्म को निश्चित किया। जैन धार्मिक ग्रन्थों में इस सभा ने ११ अंग तथा चौदह पर्व स्थित किये । ये विचार लिखे न जाकर स्मरणशक्ति द्वारा रक्षित हुए । बौद्धों की भांति जैन लोगों ने भी पहले प्राकृत का ही व्योहार किया । वात्सायन कृत कामशास्त्र विक्रमादित्य से प्रायः १०० वर्ष पूर्व का ग्रन्थ है। इसमे बत्तीस विद्याओं और चौंसठ कलाओं के नाम लिखे हैं । कामशास्त्र के अनुसार बत्तीस विद्यायें निम्नानुसार थी :—४ वेद, ४ उपवेद, ६ वेदांग, ८ दर्शन, तथा इतिहास, पुराण, स्मृति, प्रकृतिवाद, अर्थशास्त्र, शिल्पशास्त्र, अलङ्कार, काव्य, देश भाषा, अवसरोक्ति और यवन दर्शन । इसके कुछ पीछे का ग्रन्थ शुक्रनीति है । उसमें हिन्दुओं के लिए १० आज्ञायें लिखी हुई हैं, अर्थात् :—जीवन में अपना कर्तव्य मत छोड़ो, झूठ मत बोलो, पर स्त्री गमन मत करो, झूठी गवाही मत दो, जाली टीप (दस्तावेज़) मत बनाओ, उतकोच (लांच या रिशवत) मत लो, जो अपने को उचित प्रकार से मिलना चाहिये उससे अधिक कुछ न छीनो, चोरी मत करो, अत्याचार मत करो, राज विद्रोह मत करो । इन १० आज्ञाओं से प्रगट होता है कि उस काल समाज बहुत उन्नति कर चुका था । महाराज विक्रमादित्य की सभा के नवरत्न निम्नानुसार कहे गये हैं :—धन्वन्तरि वैद्य, क्षपणक शब्द शास्त्री (Philologist), अमरसिंह कोषकार, शंकु शिक्षाचार्य, वैताल भट्ट जादूगर, घटखर्पर राजनैतिक, कालिदास कवि, वराहमिहिर ज्योतिषी, और वररुचि प्राकृत वैय्याकरण । इनमें से कुछ पीछे के सिद्ध हो गये हैं ।

मुख्य पुराणों में हम देख आये हैं कि हिन्दुओं में एक दूसरे का छुआ अथवा पकाया हुआ भोजन खाने में छुआ छूत का विचार बढ़ा हुआ न था। वर्तमान समय में यह बहुत बढ़ गया है। यह भारी परिवर्तन किस काल से और कैसे हुआ सो अनिश्चित है। कुछ लोगों का विचार है कि कान्यकुब्जों में ऊंच नीच सम्बन्धी झगड़े राजा जयचन्द के यज्ञ से आरंभ हुए। स्त्रियों को परदे में रखने की प्रणाली मुसलमानागमन पर्य्यन्त स्थापित नहीं हुई थी। स्त्री शिक्षण भी इस काल पर्य्यन्त जारी था। शूलपाणि ने कलिवर्ज्य में बहुत से प्राचीन आचरणों को कलियुग के लिए अनुचित बतलाया है। इस ग्रन्थ ने हिन्दू समाज को जितनी हानि पहुंचाई है वह अकथनीय है। फिर भी इसका पूरा भार शूलपाणि ही पर नहीं रक्खा जा सकता, क्योंकि यह निर्विवाद है कि स्मृतियों के टीकाकार प्रायः उन्हीं नियमों को सिद्ध करते थे जो उनके पूर्व लोक प्रचार में आ चुकते थे। मुख्य पुराण ग्रन्थ बन चुकने के पीछे भारत में जनसमुदय में प्रचार पाने के लिए हिन्दू बौद्ध तथा जैन धर्मों में होड़ सी लगी रही। जैन मत ने भारी प्रबलता कभी न पाई किन्तु शंकराचार्य के समय और उनसे पीछे कुछ प्रान्तों में इसका बल अवश्य बढ़ा था। अंत में हिन्दू मत ने इन दोनों को दबा कर मुसलमानागमन के पूर्व अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर लिया था।

संस्कृत साहित्य तथा भारतीय धर्म्मों का कुछ कथन ऊपर किया जा चुका है। अब वैद्यक तथा देश भाषाओं का दिग्दर्शन शेष है।

आयुर्वेद ।

हमारे यहां आयुर्वेद का सूत्रपात बहुत प्राचीन काल में हुआ । सबसे पहले सोमनाथ जल में वैदिक ऋषियों ने आरोग्य के गुण पाये। आश्विन देवताओं के वैद्य थे और वेदों ने रुद्र को वैद्यों में सर्वप्रधान माना है । ऋग्वेद के देखने से विदित होता है कि उस काल वैद्यों का अस्तित्व था । धर्म शास्त्र, धनुर्वेद, गान्धर्व वेद तथा आयुर्वेद नामक चार उपवेद प्रसिद्ध थे । भरद्वाज ऋषि ने इन्द्र से वैद्यक सीखी तथा आत्रेय ने उसे अपने शिष्यों को सिखलाया। समुद्र मथन के समय १४ रत्नों में धन्वन्तरि भी थे जो हाथ में अमृति लिये निकले थे । आपने काशी का राज्य पाया। इन्हें देवदास भी कहते हैं । आपने वैद्यक शास्त्र सुश्रुत को सिखलाया । संसार में वैद्यक शास्त्र सब से पहले भारत ही में प्रचलित हुआ । यही से अरब, मिश्र तथा यूनान होकर यह शास्त्र शेष योरोप एवं पश्चिमी एशिया में पहुंचा । महाभारत में आठ मुख्य वैद्यक ग्रन्थ के नाम लिखे हैं, अर्थात्

नम्बर	नाम ग्रन्थ	नाम रचयिता
(१)	आत्रेय संहिता	आत्रेय
(२)	चरक	अग्निवेश और चरक
(३)	भिलतन्त्र	भिल
(४)	जातुकर्ण तन्त्र	जातुकर्ण
(४)	पराशर संहिता	पराशर
(६)	हारीत संहित	हारीत
(७)	कर्परि तन्त्र	कर्परि
(८)	सुश्रुत	धन्वन्तरि और सुश्रुत ।

इनमें भिलतन्त्र, जातुकर्ण तन्त्र, पराशर संहिता। और कर्पर्रि तन्त्र अप्राप्त हैं। मुख्य ग्रन्थ चरक और सुश्रुत हैं। इनके पीछे आत्रेय संहिता की भारी प्रशंसा है। जैसे धन्वन्तरि से सुश्रुत ने विद्या प्राप्त की थी, वैसे ही अग्निवेश से चरक ने सीखी। आत्रेय संहिता के पीछे चरक प्राचीन तम् ग्रन्थ है। इसमें ८ खंड तथा १२४ अध्याय हैं। चरक में स्पष्ट वर्णन, व्याधि विभाजन तथा दवा करने के ढग को प्रधानता है। उधर सुश्रुत अवयवों का अच्छा वर्णन करता है तथा चीर फाड़ का विषय उत्तम प्रकार से लिखता है। इसमें शल्य शास्त्र की प्रधानता है और इसके सम्बन्ध में २० धातु यन्त्रों का वर्णन है। वाग्भट्ट ने चरक और सुश्रुत के आधार पर अष्टांग हृदय ग्रन्थ रचा। प्रायः ३०० वर्षों का भावप्रकाश भी अच्छा ग्रन्थ है। शारंगधर, राजनिर्घंट, दिव्यगुण, माधव निदान, रस रत्नाकर, रसेन्द्र चिन्तामणि आदि प्रसिद्ध वैद्यक ग्रन्थ हैं। लोलिम्बराज भी अच्छे आयुर्वेदज्ञ हो गए हैं। बहुत काल से आयुर्वेद में नूतन खोज तथा आविष्कारों का काम प्रायः बिलकुल बन्द है। इसमें उन्नति की विशेष आवश्यकता है।

देश भाषा।

जिस काल आर्य्य लोग भारत में आये तब इनकी भाषा आसुरी कहलाती थी। उस काल इन्द्र आदि को प्राशंसा सूचन में असुर कहते थे। समय के साथ उन्नति करके जब आसुरी भाषा वैदिक हुई, उस काल अथवा उससे कुछ पीछे की जनसमुदाय वाली भाषा पहली प्राकृत कहलाई। समय समय पर उन्नति करती हुई वैदिक तथा ब्राह्मणिक भाषा संस्कृत बनी और उधर पहली प्राकृत दूसरी प्राकृत अथवा पाली हो गई। बौद्ध ग्रन्थ बहुत करके इसी भाषा में

लिखे गये हैं। समय पर इस भाषा ने भी उन्नति करके तीसरी प्राकृत का रूप पाया, जिसके मागधी अर्द्ध मागधी, शौरसेनी, गुर्जर आदि के विभाग हुए। इन्हीं से समय के साथ इन्ही नाम वाले हिन्दी भाषा के भेदान्तर प्रकट हुए। अर्द्ध मागधी को अवधी कहते हैं। जनसमुदाय में प्राकृत का ही व्यवहार अधिक था और संस्कृत केवल विद्वान आर्य्यों की भाषा थी। पहले पहल विदेशी शकों ने राजकीय लेखों में संस्कृत का समादर किया। लगभग चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय तक जनसमुदाय मे संस्कृत का मान बहुत बढ़ चुका था। इस काल जैनों तथा बौद्धों ने भी अपने धार्मिक ग्रन्थों तक में संस्कृत का व्यवहार आरंभ किया। अनन्तर कुछ शताब्दियों के पीछे देश भाषाओं का समय आया। इनमें प्राचीनतम तथा सब से अधिक फैलाव वाली हिन्दी भाषा है। हिन्दी का प्राचीनतम कवि पुंड अथवा पुष्य कहा गया है, जिसे सिहसरोज ने अवन्ती के राजा मान का कवि माना है और इनका समय सं० ७७० दिया हैं। इस काल अवन्ती में किसी राजा मान का पता नही लगता, किन्तु चित्तौर में राजा मान प्रमार थे। जान पड़ता है कि प्रमार होने के कारण ये अवन्ती के नरेश लिख दिये गये हैं। चित्तौर के रावल खुमान का राजत्व काल स० ८६६ से सं० ८९० पर्य्यन्त हैं। इनका वर्णन भी किसी भाट कवि ने खुमान रासा में किया था किन्तु यह ग्रन्थ अब लुप्त हो गया है। सं० ११८० मे मसऊद का पुत्र साद हिन्दी का कवि था। अन्हिलवाड़ के महाराज सोलंकी सिद्ध राज का काल सं० ११५० से १२०० तक था। इनके यहां कुतुब अली कवि ने एक छन्दोबद्ध प्रार्थना पत्र भेजा था। सं० ११९१ में साईं

दान चारण बीकानेर में हुआ है । सं० १२०५ में अकरम फ़ैज़ और सं० १२२५ में प्रसिद्ध कवि चन्द्र वरदाई हुए। इसी समय के कुछ दान पत्रादि हिन्दी भाषा में मिले हैं। जगनिक वन्दीजन बारदर वेणा और जल्हन कवि भी इसी समय के हैं । जल्हन चन्द कवि का पुत्र कहा गया है। इन बातों से प्रकट है कि हिन्दी का प्रारंभ मुसल्मानागमन से ही विशेष करके हुआ। पीछे से इस भाषा ने बहुत कुछ उन्नति की जिसका कथन यथा स्थान आवेगा ।